भगवान श्री रजनीश

साधना-सूत्र

नवीनतम प्रकाशन

एक ओंकार सतनाम्
दिया तले अन्धेरा
ताओ उपनिषद् भाग : ३
महावीर-वाणी भाग : ३
शिव-सूत्र
गूंगे केरी सरकरा
कस्तूरी कुंडल बसै
पिव-पिव लागी प्यास
गीता-दर्शन अध्याय : १०
गीता-दर्शन अध्याय : १८
तत्त्वमसि
अकथ कहानी प्रेम की
बिन घन परत फुहार
भज-गोविन्दम्
एस धम्मो सनंतनो : १
सहज समाधि भली
भक्ति-सूत्र खंड : १
भक्ति-सूत्र खंड : २
मेरा मुझमें कुछ नहीं
जिन-सूत्र खंड : १

समस्त साहित्य एवं टेप्स के लिए

सम्पर्क सूत्र : सचिव रजनीश फाउन्डेशन
१७, कोरेगांव पार्क, पूना–४११ ००१.

साधना-सूत्र

मैबेल कॉलिन्स

द्वारा

लिखित

"लाइट आन दी पाथ"

(साधना-सूत्र)

पर

भगवान श्री रजनीश

[illegible] के [illegible]

प्रवचन

सम्पादन

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

संकलन

मा योग दर्शन

रजनीश फाउन्डेशन प्रकाशन, पूना

१९७६

पूर्व-स्वर

मैबेल कॉलिन्स की भांति भगवान श्री रजनीश द्वारा पुनः 'लाइट आन दी पाथ' (साधना-सूत्र) का अवतरण हुआ है। इसका एक-एक सूत्र मूल्यवान है। एक-एक शब्द को ध्यानपूर्वक सुनना...

...ये नियम शिष्यों के लिए हैं...

शिष्य का क्या अर्थ है?

शिष्य का अर्थ है : जो झुकने को राजी है।

शिष्य का अर्थ है : एक गहन विनम्रता।

शिष्य का अर्थ है : अपने को झुकाकर, हृदय को एक पात्र बना लेना।

नदी बहती है, और प्यासे आप खड़े रहें, और झुकने को राजी न हों, तो नदी छलांग लगाकर आपके हाथों मे नहीं आयेगी। नदी आप पर नाराज भी नहीं है। नदी आपकी प्यास को मिटाने को प्रतिपल तत्पर भी है। पर झुकना पड़ेगा, झुककर नदी मे अंजलि बनानी पड़ेगी, तो नदी आपके हाथों में भी आ जायेगी।

सिर्फ प्यासे हैं, इतना काफी नहीं है। जो अंजलि बनाकर झुकते भी हैं और जो कहते हैं कि मैं मिट भी जाऊं तो कोई हर्ज नहीं है, लेकिन जीवन का रहस्य मेरे बोध मे आ जाये। मै धूल की तरह चरणों में भी पड़ जाऊं, तो भी कोई हर्ज नहीं है, लेकिन जान जाऊं कि जीवन का स्वाद क्या है, अर्थ क्या है, प्रयोजन क्या है?

पूना के श्री रजनीश आश्रम में आनन्द की, आलोक की गंगा बही जा रही है हरपल। आनन्द के प्यासे हों तो श्री रजनीश आश्रम में आ जाना। पर आना ही पर्याप्त नहीं है, यहां आकर सब भांति मिटना होगा, मरना होगा। मिटने की, मरने की पूरी तैयारी हो, तत्परता हो, तो ही आने का साहस करना। यहां ज्ञान की अग्नि हरक्षण जल रही है, आपको बिना जलाये न छोड़ेगी। यहां आनन्द की गंगा हर क्षण बही जा रही है, आपको बिना बहाये न छोड़ेगी। यहां प्रेम का सागर हर क्षण उमड़ आता है, आपको बिना डुबाये न छोड़ेगा।

इसलिए गहरी प्यास हो; झुकने की, मिटने की तत्परता हो; बहने की, डूबने की अभीप्सा हो; तो ही आना। अन्यथा...

भगवान श्री रजनीश शिष्यों के लिए हैं।

श्री रजनीश आश्रम शिष्यों के लिए है।

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

प्रवचन क्रम

महत्त्वाकांक्षा

प्रवचन : १ अप्रैल ६, १९७२, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

ये नियम शिष्यों के लिए हैं।

इन पर तुम ध्यान दो।

इसके पहले कि तुम्हारे नेत्र देख सकें, उन्हें अश्रुपात की क्षमता से मुक्त हो जाना चाहिए।

इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें, उन्हें बहरे हो जाना चाहिए।

और इसके पहले कि तुम सद्गुरुओं की उपस्थिति मे बोल सको, तुम्हारी वाणी को चोट पहुंचाने की वृत्ति से मुक्त हो जाना चाहिए।

इसके पहले कि तुम्हारी आत्मा सद्गुरुओं के समक्ष खड़ी हो सके, उसके पैरों को हृदय के रक्त से धो लेना उचित है।

१. महत्त्वाकांक्षा को दूर करो

टिप्पणी : महत्वाकांक्षा पहला अभिशाप है। जो जो कोई अपने सहयोगियों से आगे बढ़ रहा है, उसे यह मोहित करके अपने पथ से विचलित कर देती है। सत्कर्मों के फल की इच्छा का यह सबसे सरल रूप है।

बुद्धिमान और शक्तिशाली लोग इसके द्वारा बराबर अपनी उच्च संभावनाओं से स्खलित होते रहते हैं। फिर भी यह बड़ी आवश्यक शिक्षा का साधन है। इसके फल चखते समय मुंह मे राख और धूल बन जाते हैं। मृत्यु और वियोग के समान इससे भी अन्त मे यही शिक्षा मिलती है कि स्वार्थ के लिए, अहं के विस्तार के लिए कार्य करने से परिणाम में निराशा ही प्राप्त होती है।

मैंने तुम्हें बुलाया और तुम आ भी गये हो, लेकिन बाहर से आ जाना बहुत आसान है और जब तक भीतर से भी मेरे पास न आ जाओ, तब तक आने और न आने का बहुत अर्थ नहीं है। लेकिन जो बाहर चल कर आ सकता है—जिसकी प्यास है और आकांक्षा है—वह भीतर भी चलकर आ सकता है। बाहर चलकर आना इस बात का सबूत है कि खोज है, लेकिन उतना सबूत काफी नहीं है। उससे इशारा तो होता है और शुभ इशारा होता है। बाहर चलकर आना जरूरी है, लेकिन पर्याप्त नहीं। भीतर भी चलना होगा—और भीतर की यात्रा शुरू हो सके, उससे पहले कुछ बातें तुम्हारे सम्बन्ध में समझ लेनी जरूरी हैं, क्योंकि तुम्हीं यात्रा करोगे, कोई और तुम्हारे लिए यात्रा नहीं कर सकता है।

न तो इस जगत में दूसरे की आंखों से देखा जा सकता है और न दूसरे के चरणों से चला जा सकता है। यहां तो मरना भी स्वयं ही पड़ता है स्वयं के लिए और जीना भी। यहां दूसरा आपकी जगह नहीं ले सकता। इसलिए सबसे पहले कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं तुम्हारे सम्बन्ध में—क्योंकि वहां अगर भ्रान्ति है, तो ठीक रास्ता भी गलत जगह पहुंचायेगा। अगर तुम्हें अपने सम्बन्ध में ही ठीक समझ नहीं है, तो तुम ठीक रास्ते को भी गलत मंजिल तक ले जाने वाला बना लोगे। और अगर तुम्हें समझ है अपने सम्बन्ध में, तो ऐसा कोई भी रास्ता नहीं है, जो तुम्हें ठीक जगह न पहुंचा दे। गलत रास्ते भी ठीक मंजिल तक पहुंच जाते हैं—ठीक आदमी चाहिए, चलने वाले पर सब कुछ निर्भर है।

रास्ता नहीं पहुंचाता, चलने वाला ही पहुंचता है।

रास्ता बदल जाता है तुम्हारे साथ। तुम जैसे हो, वैसा ही रास्ता हो जाता है। इसलिए कोई बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं, जिनपर तुम अन्धे की तरह चल सको।

पहली बात, अपने सम्बन्ध में ठीक समझ लें—क्योंकि तुम्हारे से ही निकलेगा रास्ता और अन्त में तुमसे ही पैदा होगी मंजिल।

तुम्हीं सब कुछ हो। बीज भी तुम्हीं हो, वृक्ष भी तुम्हीं बनोगे और जब फूल खिलेंगे और सुगंध निकलेगी उन फूलों में, वो सुगंध मे भी तुम रहोगे। अपने सम्बन्ध में गलत समझ हो, तो सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है।

पहली बात—पहली बात तो ये ठीक से समझ लो कि तुम्हें कुछ भी पता नहीं। काश, तुम्हें पता ही होता तो फिर मेरे पास आने की कोई भी जरूरत नहीं होती। सूरज की एक किरण भी तुम्हें मिल जाए, तो सूरज तक पहुंचने का मार्ग खुल गया। क्योंकि उसी किरण को पकड़कर तुम सूरज तक पहुंच जाओगे। और सागर की एक बूंद भी तुम चख लो, तो तुमने सारा सागर चख लिया।

अगर तुम्हें थोड़ा भी पता हो जीवन का, तो फिर किसी से पूछने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह जो थोड़ा सा पता है—उसके सहारे चलो, तो जैसे कोई आदमी एक छोटा सा दिया लेकर अन्धेरे में चले, तो दो ही कदम पर प्रकाश पड़ता है; लेकिन जब वह दो कदम चल लेता है, तो दो कदम और आगे प्रकाश पड़ता है। फिर वह और दो कदम चल लेता है, तो दो कदम और आगे प्रकाश पड़ता है। दो कदम प्रकाश पड़ता हो जिस दिये से, उससे भी हजारों मील की यात्रा तय की जा सकती है। कोई हजारों मील के रास्ते को प्रकाशित करने की जरूरत नहीं है। हाथ में दिया हो छोटा—तो भी बड़े से बड़े अन्धकारपूर्ण रास्ते को पार किया जा सकता है। दो कदम ही काफी हैं।

अगर तुम्हें थोड़ा भी पता हो अपने सम्बन्ध मे तो मेरे पास आने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी के भी पास जाने की कोई भी जरूरत नहीं।

तो पहिली बात तो यह ठीक से समझ लेना कि तुम्हें अपने सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं है—अभी। और तुम जो भी जानते हो, वे सब शब्द हैं। शब्दों में न तो कोई प्राण होते हैं, न कोई अर्थ होता है। शब्द से ज्यादा असत्य इस जगत में और कुछ भी नही है।

अनुभव—अनुभव मे अर्थ है। मैं कितना ही कहूं—जो मैं जानता हूं, उसे मैं शब्दों में न डाल पाऊंगा। कभी भी कोई नही डाल पाया। और कभी कोई डाल भी नहीं पाएगा। क्योंकि जो मैं जानता हूं, वह मेरा अनुभव है। और जब मैं उसे शब्द बनाता हूं, तो तुम्हारे कानों मे जो सुनाई पड़ता है, वह अनुभव नहीं है, वह कोरा शब्द है।

मैं कहता हूं—परमात्मा। तुम सुन लेते हो। और मैं कहता हूं—आत्मा। और वह भी सुन लिया जाता है। लेकिन न तो आत्मा से कुछ प्रकट होता है और न

परमात्मा से। शब्द सुनाई पड़ते हैं और बहुत बार सुन लेने पर ऐसा भ्रम भी पैदा हो जाता है कि हम समझते हैं।

शब्दों की समझदारी नासमझी का दूसरा नाम है।

तुम्हें कुछ भी पता नहीं, यह बात ख्याल में ले लें।

कुछ आधारभूत है—क्योंकि जो व्यक्ति यह समझ ले बिना कुछ जाने कि मैं जानता हूं, उसके जानने का द्वार बन्द हो जाता है। बीमार समझ ले कि स्वस्थ है, तो चिकित्सा की तलाश बन्द हो जाती है। अज्ञानी को ख्याल हो जाय ज्ञान का तो अज्ञान जितना नहीं भटकाता था, उतना ज्ञान भटका देगा।

इस बात का ख्याल आ जाये कि मुझे कुछ भी पता नहीं, तो यह ज्ञान की पहली किरण है। अब तुम ईमानदार हुए। अब तुमने कम से कम एक सच्ची बात स्वीकार की, कि मुझे कुछ भी पता नहीं। तुमने अपने शास्त्र हटाकर रख दिये और तुमने अपने शब्दों को छोड़ दिया। और तुम ईमानदार हुए, प्रामाणिक हुए अपने प्रति कि न मुझे आत्मा का पता है, न मुझे मोक्ष का। मुझे पता ही नहीं कि जीवन क्या है?

यह अज्ञान की स्वीकृति—ज्ञान का पहला चरण है।

यहां अगर कोई ज्ञानी आ गया हो—वापस लौट जाये, मैं उन्हीं के साथ काम कर सकूंगा, जिन्हें इस बात का बोध है कि वे अज्ञानी हैं। तुम्हारा ज्ञान बाधा बन जायेगा। फिर ज्ञान हो ही गया हो तो व्यर्थ श्रम उठाने की जरूरत नहीं है। इसलिए इसे ठीक से समझ लें, कि तुम बीमार हो तो मैं तुम्हें दवा दूंगा। और अज्ञानी हो तो मैं तुम्हें ज्ञान की तरफ ले चलने की कोशिश करूंगा। तुम अगर अन्धेरे में हो तो मैं तुम्हें प्रकाश का रास्ता बताऊंगा। अगर तुम प्रकाश में ही खड़े हो, तो मेरा श्रम और अपना श्रम व्यर्थ मत करना। जो आदमी सोया हो उसे जगाना बहुत आसान है। जो आदमी जागकर पड़ा हो और सोचता हो कि सोया है—उसे जगाना बहुत मुश्किल है।

दूसरी बात—जीवन सबका एक ही बात को खोज रहा है—कैसे दुख मिटे, कैसे आनन्द उपलब्ध हो? एक ही तलाश है और एक ही प्यास है। वह वृक्ष भी अगर उठ रहा है जमीन से आकाश की तरफ, तो इसी तलाश में है। अगर पक्षी उड़ रहे हैं, और पशु चल रहे हैं और आदमी जी रहा है—तलाश वही है। एक पत्थर भी अगर अस्तित्व में है, तो उसकी भी भीतरी खोज आनंद की है। तो दूसरी बात ख्याल में ले लेना कि खोज क्या रहे हो?

बहुत लोग परमात्मा को खोजने निकल पड़ते हैं, लेकिन परमात्मा की खोज मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है कि परमात्मा के संबंध में कोई भी तो भीतर गहरी प्यास नहीं है। अपनी प्यास को पकड़कर चलें—एक दिन शायद वही प्यास, परमात्मा की प्यास बन जाये। लेकिन अभी नहीं है। अभी तो आप ठीक से समझ लें, कि आपकी

तलाश आनन्द की तलाश है। शायद ये खोज आगे बढ़े, और यही छोटी सी गंगोत्री से निकली गंगा आनन्द की तलाश में चले। और जैसे-जैसे धीरे-धीरे खोज गहरी हो, वैसे-वैसे पता चले कि आनन्द तो परमात्मा का ही एक नाम है। और शायद पता चले कि आनन्द तो परमात्मा का ही एक गुण है। और शायद पता चले कि हमारी खोज सिर्फ आनन्द की नहीं है, कुछ और ज्यादा की है। लेकिन प्रारम्भिक खोज आनन्द की है, परमात्मा की नहीं है।

कुछ लोग पहले से ही परमात्मा की बात में पड़ जाते हैं, तो कठिनाई हो जाती है। बीज बिना हुए वृक्ष होने की कोशिश शुरू हो जाती है। फिर अड़चन होती है। फिर दाड़-धूप बहुत होती है, परिणाम कुछ भी नहीं आता। और जब परिणाम नहीं आता, तो निराशा पकड़ लेती है, विषाद घेर लेता है।

तो एक बात—आनन्द की तलाश के लिए यहा आये हैं। छोड़ें परमात्मा को, जल्दी नहीं है। आप आनन्द की खोज पर यात्रा शुरू करें और अन्त परमात्मा की उपलब्धि पर होगा। लेकिन शुरूआत परमात्मा से मत करें। पहली सीढ़ी से ही चढ़ना उचित है, और क ख ग से ही शुरूआत करना ठीक है। आनन्द सबकी समझ में आता है—फिर वह नास्तिक हो तो भी, फिर वह हिन्दू हो, या मुसलमान हो, या ईसाई हो, या जैन हो तो भी। ईश्वर को मानता हो, न मानता हो; धर्म में आस्था रखता हो या न रखता हो—कोई भी हो, आनन्द की खोज सार्वभौम है। उससे ही शुरू करे, जो सबकी खोज है।

यह दुनिया में इतने धर्मों का विवाद न हो, हिन्दू और मुसलमान और ईसाई की लड़ाई न हो, जैन और हिन्दू के बीच कलह न हो—अगर हम सार्वभौम खोज को स्वीकार करें। लेकिन हम ईश्वर की खोज से शुरूआत करते हैं, और ईश्वर का हमें न कोई पता है और न ईश्वर को खोजने की कोई प्रबल आकांक्षा है, न हमें प्रयोजन है। तो शब्दों पर लड़ते हैं। तो जिस ईश्वर का हमें कुछ पता नहीं, उसकी हम अलग-अलग शाब्दिक व्याख्याएं करते हैं। फिर इन व्याख्याओं में विरोध होता है, फिर मन्दिर और मस्जिद और गुरुद्वारे खड़े होते हैं और आदमी व्यर्थ ही परेशान होता है।

आनन्द से शुरू करें, फिर आपकी नास्तिक से भी कोई द्विविधा नहीं है, द्वंद्व नहीं है। फिर हिन्दू हों या मुसलमान हों, कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि जब हम आनन्द की खोज कर रहे हैं, तो हम उस तत्त्व की खोज कर रहे हैं, जो प्रत्येक प्राणी खोज रहा है, किसी का इन्कार नहीं है। और धीरे-धीरे जैसे-जैसे खोज गहरी होगी, वैसे-वैसे पता चलेगा कि आनन्द की खोज अन्त में परमात्मा की खोज बन जाती है।

तीसरी बात, याद रखें—आनन्द खोजना चाहते हैं लेकिन त्यागेंगे क्या, चुकायेंगे

क्या ? किस चीज से आनंद की खोज करना चाहते हैं ? आपके पास है क्या, जो आप देंगे ?

अगर आदमी एक कदम भी चलता है, तो उसे वह जमीन छोड़ देनी पड़ती है, जिस पर खड़ा था, तो ही आगे बढ़ पाता है। इस जगत में कोई गति नहीं है, अगर हम कुछ छोड़ने को राजी न हों। त्याग के बिना एक कदम भी नहीं उठता है। अगर हाथ में मिट्टी, कंकड़, पत्थर भरे हैं—और हीरे-जवाहरात चाहिये—तो छोड़ देने पड़ेंगे। कम से कम हाथ खाली करना पड़ेगा, व्यर्थ को हटा देना पड़ेगा, ताकि सार्थक उतर सके। क्या है आपके पास ? आप डर मत जाना—न तो मैं कहूंगा कि आप धन छोड़ दें, क्योंकि वह आपके पास है नहीं, किसी के पास नहीं है। इस दुनिया में बड़े से बड़ा धनी भी दरिद्र ही होता है—धन है ही नहीं किसी के पास।

दो तरह के दरिद्र होते हैं—एक गरीब दरिद्र होते हैं। एक अमीर दरिद्र होते हैं। बाकी दरिद्र ही होते हैं। अभी तक मैंने अमीर आदमी नहीं देखा। पैसे वाले बहुत दिखाई पड़ते हैं, पर अमीर नहीं। वे भी पकड़ने की दौड़ में उतने ही हैं, जितना गरीब से गरीब आदमी। जैसा भिखमंगा अपने हाथ में, जो उसे मिल गया है, उसे पकड़े हुए है; वैसा बड़ी से बड़ी तिजोरी जिसके पास है, वह भी उतने ही जोर से पकड़े हुए है। वह पकड़ एक-सी है, तो गरीबी एक-सी है। तो आपके पास धन तो है नहीं—किसी के पास नहीं है। इसलिए मैं नहीं कहता कि आप धन छोड़ दें। जो नहीं है, उसे आप छोड़ेंगे भी कैसे ?

मैं आपसे नहीं कहता कि आप अपना जीवन दे दें—वह भी आपके पास नहीं है। जिसका आपको पता ही नहीं, वह आपके पास कैसे हो सकता है ? और आप कंप रहे हैं प्रतिपल मृत्यु के भय से। अगर आप जीवन ही होते, तो आप मृत्यु से डरते क्यों ?

जीवन की तो कोई मृत्यु नहीं होती। जीवन तो मृत्यु बन कैसे सकता है ? लेकिन आप कंप रहे हैं मृत्यु से। प्रतिपल मौत आपको घेरे हुए है। सब तरह से आप अपने को बचाने की कोशिश कर रहे हैं कि मैं मिट न जाऊं, मर न जाऊं, समाप्त न हो जाऊं। जीवन भी आपके पास नहीं है। इसलिए मैं आपसे न कहूंगा कि जीवन दान कर दें, जो है ही नहीं, उसका आप दान भी कैसे करेंगे ?

मैं तो आपसे वह मांगूगा जो आपके पास है, और वह मांगूंगा जो सभी के पास है। जैसा मैंने कहा कि सभी की खोज है आनन्द, ऐसी एक सम्पदा सभी के पास है—और वह है दुःख। वह आपके पास काफी है, वह आपके पास जरूरत से ज्यादा है। जन्मों-जन्मों से आपने उसके अतिरिक्त कुछ इकट्ठा ही नहीं किया है। आपके पास राशियां लग गई हैं। गौरीशंकर छोटा पड़ जाये—आपने जो दुःख के ढेर लगाये हैं, वे उससे बड़े हैं, वे भी शरमा जायें। हिलेरी और तेनसिंह आपके दुःख

के ढेर पर चढ़ने में सफल न होंगे, वे बड़े हैं। वह जन्मों-जन्मों की आपकी मेहनत है, आपने दुःख के सिवाय कभी कुछ कमाया नहीं है। आप अभी भी कमा रहे हैं।

मैं आपसे चाहूंगा कि आप दुःख छोड़ दें, आप दुःख का त्याग कर दें। कोई आपसे दुःख मांगता नहीं, मैं आपसे दुःख मांगता हूं। और अगर आप दुःख दे सकें, तो आनन्द के लिए रास्ता निर्मित हो सके। और अगर आप दुःख छोड़ सकें, तो आपको पता लगे कि जो आप सोचते थे कि आप दुःख में जी रहे हैं, वह आपकी भ्रान्ति थी। दुःख ने आपको नहीं पकड़ा था, आपने ही दुःख को पकड़ा हुआ था। मगर एक बार छोड़ें, तो ही पता चलेगा कि कौन किसको पकड़े हुए था। आप सदा यही पूछते रहते हैं कि दुःख से कैसे छुटकारा हो ? आपकी बातों से ऐसा लगता है कि जैसे दुःख ने आपको पकड़ा है, और छुटकारा चाहिए। अगर दुःख आपको पकड़े हुए है, तो फिर आप छूट न पाएंगे। फिर पकड़ ही आपके हाथ में नहीं है, दुःख के हाथ में है। फिर तो आप विवश हैं, असहाय हैं। और जन्मों-जन्मों से नहीं छूट पाए हैं, तो अब कैसे छूट जाइएगा ?

मैं आपसे कहता हूं कि दुःख ने आपको नहीं पकड़ा हुआ है, आप दुःख को पकड़े हुए हैं। और अगर आप राजी हुए, तो आपको यह समझ में आ जायेगा। न केवल समझ में, बल्कि आप छोड़कर भी अनुभव कर लेंगे कि यह छूटता है। और जब आप दुःख को छोड़ने की कला में कुशल हो जाते हैं, तब आपको पता लगता है कि जो भी ढो रहे थे, उसके लिए आपके अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं था। और आपने जो भी भोगा है, कोई और कसूरवार नहीं है—यह आपकी मर्जी थी, आप दुःख चाहते थे। जो हम चाहते हैं, वही होता है। और जो भी आप हैं, आप अपनी चाहों का फल हैं। न तो कोई परमात्मा जिम्मेवार है, न तो कोई भाग्य जिम्मेवार है; किसी को प्रयोजन नहीं है आपको दुःखी करने के लिए।

सच तो यह है कि यह पूरा अस्तित्व आपको आनन्दित करने के लिए तत्पर है। यह पूरा अस्तित्व चाहता है कि आपका जीवन एक उत्सव बन जाये। क्योंकि जब आप दुःखी होते हैं, तो आप चारों तरफ दुःख भी फेंकते हैं। जब आप दुःखी होते हैं तो आपके घाव की दुर्गन्ध सारे अस्तित्व में पहुंचती है। और जब आप दुःखी होते हैं तो यह अस्तित्व भी पीड़ा पाता है। यह सारा जगत आपके साथ पीड़ित होता है और आपके आनन्द के साथ आनन्दित होता है। कोई अस्तित्व की चाह नहीं है कि आप दुःखी हों। क्योंकि यह तो अस्तित्व के लिए ही आत्मघात है। और आप दुःखी हैं और दुःखी होने में आपने कुछ व्यवस्था बना रखी है। और उस व्यवस्था को आप जब तक न तोड़ दें, तब तक आप कभी भी आनन्द की तरफ़ आंख न खोल पायेंगे ?

आपकी व्यवस्था क्या है ? मनुष्य की व्यवस्था क्या है, दुःख संग्रहीत करने की।

वह कैसे इकट्ठा करता है! यह समझ लें थोड़ा, तो शायद छोड़ने में आसानी हो। कल सुबह से हम प्रयोग में उतरना शुरू होंगे।

आप रोना चाहते हैं अगर...। एक छोटा बच्चा है, रोना चाहता है—मनस्विद कहते हैं कि बच्चे की रोने की प्रक्रिया, रेचन की प्रक्रिया है। जब भी बच्चे में तनाव भर जाता है, तो वह रोकर अपने तनाव को बहा देता है। एक छोटा बच्चा है। आप भी छोटे बच्चे थे। उसे भूख लगी है, वक्त पर उसे दूध नहीं मिल रहा है तो वह रो रहा है, क्योंकि वह तनाव से भर गया है। और तनाव को बाहर निकालना जरूरी है। वह रो लेगा, तनाव बाहर निकल जायेगा, वह हल्का हो जायेगा। लेकिन हम उसे समझाते हैं कि रोओ मत। हम सब तरह के उपाय करते हैं कि वह रोए न, हम हाथ में खिलौना दे देते हैं, ताकि वह भूल जाये। हम मुंह में झूठी कोई चीज लगा देते हैं, उसका अंगूठा उसके मुंह में दे देते हैं, ताकि वह समझ ले कि मां का स्तन मिल गया, और भूल जाए। हम उसे हिलाने लगते हैं, झुलाने लगते ह, ताकि उसका ध्यान विचलित हो जाये और वह रोए न। हम सब तरह का उपाय करते हैं, हम उसे रोने नहीं देते। वह जो तनाव निकल जाता रोने से, वह इकट्ठा हो जायेगा—वह निकलेगा नहीं। ऐसे हम इकट्ठे होने देते हैं। और हर व्यक्ति न मालूम कितना रुदन, न मालूम कितनी पीड़ा, संग्रहीत कर लेता है, उसके ढेर पर इकट्ठा बैठ जाता है।

आपने न मालूम कितने तनाव इकट्ठे कर लिए हैं। न तो आप कभी दिल भर कर रोये, और न आप कभी दिल भर कर हंसे। न रोने से रुक गया है कुछ, न हंसने से रुक गया है कुछ। न आपने कभी दिल भर कर क्रोध किया है और न कभी दिल भर कर क्षमा ही की है। आप बिलकुल अधूरे-अधूरे ही रह गये हैं। सब तरफ आप की शाखाएं निकलना चाहती हैं, लेकिन निकल नहीं पायीं। सब तरफ पत्ते निकलना चाहते थे, लेकिन नहीं फूट पाये। आपका वृक्ष ठूंठ की तरह रह गया है। इस संग्रहीत पीड़ा, अविसर्जित पीड़ा का नाम नर्क है। और यह नर्क आप ढो रहे हैं।

यहां मैंने आपको बुलाया है, ताकि आपके नर्क को फेंका जा सके और आप उसे फेंक सकते हैं। इस शिविर में आप छोटे बच्चे की भांति हो जायें। आप भूल ही जाना कि आप बड़े सुसंस्कृत हैं, कि आप बड़े शिक्षित हैं, कि आप बड़े पद पर हैं, कि आपके पास धन है, कि गांव में इज्जत है—आप सब छोड़ देना। आप ऐसे हो जाना, जैसे कि आप पहले दिन के पैदा हुए बच्चे हैं—न कोई प्रतिष्ठा है, न कोई शिक्षा है, न कोई पद है, न कोई धन है, न कोई मान-मर्यादा है। अगर मान-मर्यादा, पद, इस सबको बचाना हो, तो कल सुबह के पहले आप यहां से जितनी जल्दी हो, भाग जाना और लौटकर मत देखना—उनके लिए मैं नहीं हूं। आपकी मान मर्यादा, आपकी इज्जत, आपकी समझदारी, सुरक्षित रहे—आप भाग जायें, आप यहां मत रुकें।

यहां तो मैं उनके लिए हूं, जो छोटे बच्चे की तरह सरल होने को तैयार हैं। तो ही मैं कुछ कर पाऊंगा, क्योंकि सिर्फ बच्चों को ही कुछ सिखाया जा सकता है। और सिर्फ बच्चों को बदला जा सकता है, और सिर्फ बच्चों के जीवन में क्रान्ति हो सकती है।

ध्यान के इन प्रयोगों में, जो यहां चलेंगे—आपके हृदय में जो भी दुःख हो, उसे उलीच कर डाल देना, उसे बाहर फेंक देना। क्रोध हो उसे आकाश में उलीच देना, हिंसा हो उसे आकाश में उलीच देना। किसी पर हिंसा करनी नहीं है, खुले आकाश में विसर्जित कर देनी है। दुःख, पीड़ा, संताप, जो भी भीतर हो; उसे फेंक देना है। उसे इतनी तरह से उलीचना, जितनी तरह से आपमे सामर्थ्य हो। आप सारी ताकत लगा देना, कि भीतर जो भी दुःख हो, वह प्रकट हो जाये। यह आप समझ लें कि दुःख जब अचेतन में दब जाता है, तो जब तक उसे प्रकट न किया जाय पुनः, वह आपके बाहर नहीं जाता, भीतर दबा रहता है। उसे प्रकट करें, उसे चेतन में ले आयें। वह जो भीतर अंधेरे में दबा है, उसे खींच लें बाहर, रोशनी में ले आयें। कुछ चीजें रोशनी में मर जाती हैं। वृक्ष की जड़ों को आप अगर खींचकर रोशनी में ले आये, वे मर जायेंगी। उनको अन्धेरा चाहिये, अन्धेरे मे ही वे रहती हैं, अन्धेरे में उनका जीवन है।

दुःख का जीवन भी अन्धेरे में ही है, जड़ों की भाति। आप उसे खींचकर बाहर ले आयें, और पायेंगे कि मृत्यु हो गई। आप उसको भीतर दबाते जायें, वह जन्मों-जन्मों तक आपका साथी रहेगा, सगी रहेगा। दुःख को लाना है बाहर।

एक बात और आप समझ लें।

दुःख को आप बाहर से ही भीतर को ले गये हैं। उसे कृपा करके बाहर ही वापस लौटा दें। दुःख भीतर नहीं है। दुःख सब बाहर से ही भीतर ले जाया जाता है। आप जब पैदा होते हैं—आपका जो निज-स्वभाव है, वहां कोई दुःख नहीं है। दुःख बाहर से भीतर लाया जाता है। एक आदमी है, उसने आप को गाली दे दी, आप दुःखी हो गये। आप बाहर से गाली को भीतर को ले आये। अब इस दुःख को आप भीतर संभालेंगे, दबा लेंगे; तो यह बढ़ेगा, फैलेगा, आपकी रग-रग में, रोएं-रोएं में जहर बन जायेगा। आप एक दुःखी व्यक्तित्व हो जायेंगे।

दुःख हम बाहर से भीतर लाते हैं, वह हमारा स्वभाव नहीं है।

इसलिए कहता हूं कि दुःख से मुक्त हुआ जा सकता है, क्योंकि स्वभाव से मुक्त नहीं हुआ जा सकता, केवल पर-भाव से मुक्त हुआ जा सकता है। जो अपना नहीं है, उसी से हम मुक्त हो सकते हैं। जो अपना ही है, उससे मुक्त होने का कोई मार्ग नहीं है।

दुःख को बाहर उलीचना है। इन आने वाले दिनों में जितना उलीच सकें, उलीचें। और जैसे-जैसे उलीचेंगे उतनी-उतनी समझ बढ़ेगी कि अजीब पागलपन था कि हम इसे संभाले थे। इसे तो सहज ही फेंका जा सकता था, यह तो हमारे हाथ में था, लेकिन हम नाहक ही हाथ को रोके हुए थे।

और दूसरी बात—जैसे-जैसे दुःख उलीचेंगे, बाहर से आया हुआ दुःख—जैसे ही बाहर वापस भेज दिया जायेगा, भीतर आपको आनन्द की स्फुरणा शुरू हो जायेगी।

आनन्द भीतर है—उसे कोई बाहर से नहीं लाता, वह बाहर से नहीं आता, वह आपका स्वभाव है। वह आप हैं। वह आपके भीतर छिपा है, वह आपकी आत्मा है।

अगर यह बाहर से इकट्ठा कचरा, बाहर फेंक दिया जाये, तो वह भीतर की आत्मा फैलने लगती है, विस्तीर्ण होने लगती है। उसकी रोशनी आपको दिखाई पड़ने लगती है और आपको उसका नाद सुनाई पड़ने लगता है और आप एक भीतर के संगीत में डूबने लगते हैं। लेकिन यह होगा तब ही, जब आप बाहर का कचरा बाहर फेंक देंगे, ताकि भीतर एक आकाश निर्मित हो जाये, जगह बने। उस जगह में, जो भीतर छिपा है, वह फैल सके।

दुख को बाहर फेंकना है, ताकि आनन्द भीतर से फैलने लगे। और जब आनन्द भीतर से फैलने लगे, तो दूसरी बात और भी समझ लेनी जरूरी है।

दुःख को अगर दबायें, तो बढ़ता है और दुःख को अगर प्रकट करें तो घटता है।

आनन्द बिलकुल उलटा है।

आनन्द को अगर दबायें तो घटता है, आनन्द को अगर प्रकट करें तो बढ़ता है।

तो पहले तो दुःख को फेंकना है, क्योंकि वह फेंकने से ही घटता है। उसको दबाना मत, क्योंकि वह दबाने से बढ़ता है। और जब आनन्द की झलक भीतर से आने लगे तो आनन्द को फेंकना है। क्योंकि आनन्द को जितना बाहर फेंकें, उतना भीतर बढ़ता है, उतनी ताजी पर्तें टूटने लगती हैं। जैसे कुएं से कोई पानी उलीचता जाये, तो झरने से नए स्रोत कुएं को भरते चले जाते हैं। आनन्द का स्रोत भीतर है, इसलिए डरना मत कि आनन्द उलीचने से कम हो जायेगा। दुःख उलीचने से कम होता है, क्योंकि भीतर उसका स्रोत नहीं है। वह बाहर से ली गयी चीज थी, अगर उलीचेंगे तो कम होगी।

अगर दुःख बचाना हो तो यह तरकीब ध्यान में रख लेना—कभी उलीचना मत। दुःख अगर बढ़ाना हो, यही कसम कर लिया हो—और लगता है कि बहुत लोग यही तय किये बैठे हैं, तो दुःख को कभी उलीचना मत, प्रकट मत करना। आंसू आते हों, तो पी जाना, क्रोध आता हो, तो दबा लेना। कुछ भी भीतर से पैदा होता हो उपद्रव, तो उसे भीतर ही दबा देना है, वह बढ़ जायेगा—आप एक महानर्क बन जायेंगे।

दुःख को घटाना हो, तो उलीचना है, आनन्द को बढ़ाना है, तो उलीचना है।

क्योंकि आनन्द भीतर है, और नई पर्तें टूटती जायेंगी। और जैसे-जैसे आनन्द को आप उलीचेंगे ज्यादा शुद्धतर आनन्द की झलक मिलनी शुरू होगी।

आनन्द बांटने से बढ़ता है।

इसलिए तो भाग जाते हैं, बुद्ध और महावीर जगल में, जब दुःख में हैं, क्योंकि दुःख उलीचना है। अच्छा है एकान्त में उलीचें, ताकि किसी को स्पर्श भी न करे। लेकिन जब आनन्द से भरते हैं तो वापिस लौट आते हैं, जन-समूह में, क्योंकि अब बांटना है। और जब बांटना ही है तो अब जन-समूह मे आकर ही बांटना उचित है ताकि किसी को लग जाये, शायद कोई पकड़ ले धन, शायद कोई नाच उठे, शायद किसी के हृदय की वीणा को छू जाये और वीणा बजने लगे।

तो ध्यान रखना, चाहे क्राइस्ट, चाहे मोहम्मद, चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, जब दुःख में हैं, तब एकान्त में चले जाते हैं, क्योंकि उलीचना है दुःख, उचित है अकेले में उलीच दें, किसी को पता भी न हो। और जब भर जाते हैं आनन्द से, तो लौट आते हैं समूह मे, भीड़ मे, क्योंकि अब उलीचना है आनन्द और अब जितना बट जाये, उतना अच्छा है।

दुःख उलीचना है और जब आनन्द की झलक आने लगे, तो आनन्द भी उलीचना है। और हो जाना है बिलकुल छोटे बच्चों की भांति, जिसे न चिन्ता है अतीत की, न फिक्र है भविष्य की, जिसे कुछ पता भी नहीं है कि दूसरे उसके संबंध में क्या सोचते हैं, तो ही जिस घटना के लिए मैंने आपको पुकारा है—वह घट पायेगी। और जिस यात्रा पर चाहता हूं आपको गतिमान कर दूं—वह यात्रा गतिमान हो पायेगी।

थोड़े से साहस की जरूरत है, और आनन्द के खजाने बहुत दूर नहीं हैं। थोड़े से साहस की जरूरत है, और नर्क को आप ऐसे ही उतारकर रख सकते हैं, जैसे कि कोई आदमी धूल-धमास से भर गया हो रास्ते की, राह की, और आकर स्नान कर ले और धूल बह जाये। बस ऐसे ही ध्यान स्नान है। दुःख धूल है। और जब धूल झड़ जाती है और स्नान की ताजगी आती है, तो भीतर से जो सुख, जो आनन्द की झलक मिलने लगती है, वह आपका स्वभाव है।

अब हम सूत्र को लें।

मैबल कॉलिन्स की ये छोटी सी पुस्तिका, लाइट आन दि पाथ, पथ प्रकाशिनी है। मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत मूल्यवान थोड़ी सी पुस्तिकाओं में से एक है। मैबल कॉलिन्स इस पुस्तिका की लेखिका नहीं हैं, क्योंकि यह पुस्तिका उन थोड़े से सार शब्दों में से है, जो बार-बार मनुष्य अविष्कृत करता है, और बार-बार खो देता है।

सत्य कठिन है बचाना।

सत्य जब उतरता है, तो परम-ऊंचाई के व्यक्तित्व हों तभी। जो बहुत शिखर पर खड़े होते हैं जीवन चेतना की, वे ही सत्य की झलक उपलब्ध कर पाते हैं। वे कहते हैं, वे लिखते हैं, वे हजार तरह के उपाय करते हैं कि जो झलक उन्हें मिली है, वह सभी की सम्पदा बन जाये, सभी के लिए धरोहर हो जाये। लेकिन जो उन ऊंचाइयों पर नहीं हैं, वे उनके शब्दों को कभी भी ठीक से समझ नहीं पाते। और वे जो भी समझते हैं, वह गलत होता है। और वे जो भी व्याख्या करते हैं, वे भी गलत ही होती हैं। और फिर धीरे–धीरे–धीरे–धीरे वह जो सत्य की पहली किरण थी, वह खो जाती है और असार शब्द हाथ में रह जाते हैं। कभी-कभी तो वे शब्द भी खो जाते हैं और तब पुनः-पुनः उन सार शब्दों की खोज करनी पड़ती है।

मैबल कॉलिन्स का कथन है कि यह जो शब्द इस पुस्तिका में उसने संग्रहीत किये हैं, ये उसने लिखे नहीं हैं, वरन् ध्यान की किसी गहराई में उसने देखे हैं। उसका कहना है, और कहना ठीक है कि किसी विलुप्त हो गई संस्कृत पुस्तिका में ये शब्द उल्लिखित थे। और वह पुस्तिका विलुप्त हो गई है, खो गई है। आदमी से उसका सम्बन्ध टूट गया है, और उसने यह पुस्तिका पुनः देखी है। उसने उसी पुस्तिका को वैसा उतार कर रख दिया है।

इस जगत में जो भी मूल्यवान है, उसके खोने का डर है, लेकिन बिलकुल खो जाने का डर नहीं है। क्योंकि जब भी कोई उसी ऊंचाई पर पहुंचेगा—कोई भी व्यक्ति, तब उसे फिर खोजा जा सकता है। दुनिया के बहुत से शास्त्र इसी तरह बार-बार खोजे जाते रहे हैं। कुरान इसी तरह अवतरित हुआ। जब पहली दफा मोहम्मद को सुनाई पड़ा कि पढ़ो—तो मोहम्मद तो बे-पढ़े थे, पढ़े-लिखे नहीं थे, तो उन्होंने कहा कि मैं क्या पढ़ूं? उनके सामने कुछ अक्षर तैर रहे हैं ध्यान मे और आवाज भीतर से आती है—कि पढ़। तो मोहम्मद ने कहा, मैं क्या पढ़ूं, क्योंकि मैं तो पढ़ा-लिखा नहीं हूं? तो भीतर से आवाज आती है कि इन शब्दों को पढ़ने के लिए बाहर की पढ़ाई की जरूरत नहीं है—तू पढ़। मोहम्मद खुद इतने घबड़ा गये कि यह जो हो रहा कोई भ्रम है, कोई स्वप्न है या मैं विक्षिप्त हो गया हूं। घर आकर कंबल ओढ़कर सो रहे, बुखार आ गया, सारा शरीर कंपने लगा। उनकी पत्नी ने पूछा, आपको हुआ क्या है? तो तीन दिन तक तो पत्नी को भी नहीं बताया, क्योंकि खुद पर ही भरोसा नहीं आ रहा था कि जो देखा है, वह सच्चा हो सकता है। और वह भी पक्का नहीं था, क्योंकि जब अपने पर ही भरोसा नहीं आ रहा हो, तो पत्नी को क्या भरोसा आयेगा! कहेगी कि पागल हो गये हो, सन्निपात हो गया है। डाक्टर को बुलाएं, चिकित्सक को बुलाएं, इलाज करवाएं। तीन दिन तक अपने को रोके रखा, लेकिन वह बार-बार होती रही घटना और वे ही अक्षर बार-बार दोहरते रहे। और धीरे-धीरे मोहम्मद उन

अक्षरों को पहचानने लगे और कुरान की आयतें उतरनी शुरू हो गईं। कुरान इस तरह अवतरित हुआ है।

यह मैबल कॉलिन्स के ऊपर इसी तरह पुस्तिका, लाइट आन दि पाथ, अवतरित हुई है। इस पुस्तिका का एक-एक सूत्र मूल्यवान है। यह हजारों-हजारों साल की और हजारों-हजारों लोगों की साधना का सार-निचोड़ है। एक-एक शब्द को बहुत ध्यानपूर्वक सुनना।

ये नियम शिष्यों के लिए हैं।

सभी के लिए नहीं, सिर्फ शिष्यों के लिए हैं।

क्या अर्थ है ?

ये नियम सिर्फ उनके लिए हैं, जो सीखने को तैयार हैं। ये नियम सबके लिए नहीं हैं, क्योंकि बहुत से लोग हैं, जो सीखने को तैयार ही नहीं हैं।

इसलिए मैंने कहा कि अगर तुम अज्ञानी हो, इसका तुम्हें पता है, तो रुकना, अन्यथा भाग जाना। क्योंकि जो अज्ञानी है, वह शिष्य हो सकता है। जो अज्ञानी है और समझता है कि मैं अज्ञानी हूं, उसने शिष्य की योग्यता पा ली है, वह सीखने को तैयार होगा। ज्ञानी सीखने को तैयार नहीं होगा। इसलिए ज्ञानी अज्ञानी रह जाते हैं, क्योंकि वे सीखने को तैयार नहीं होते और अज्ञानी ज्ञानी हो जाते हैं, क्योंकि वे सीखने को तैयार होते हैं।

और सीखने की कुशलता और कला का नाम शिष्यत्व है।

ये नियम उनके लिए हैं, जो शिष्य हैं।

शिष्य का क्या अर्थ है ?

शिष्य का अर्थ है, जो झुकने को राजी है।

जो ज्ञान को अपने अहंकार से ज्यादा मूल्यवान मानता है, और जो कहता है कि मैं सिर झुकाऊंगा, मैं सिर धरती पर रख दूंगा अगर मुझे प्रकाश की थोड़ी-सी किरण भी मिलती हो। मैं सब खोने को तैयार हूँ, मैं अपने को भी देने को तैयार हूँ।

शिष्य का अर्थ है—एक गहन विनम्रता।

शिष्य का अर्थ है अपने को झुका कर, हृदय को एक पात्र बना लेना।

नदी बहती है और प्यासे आप खड़े रहें और झुकने को राजी न हों, तो नदी छलांग लगा कर आपके हाथों में नहीं आयेगी। नदी आप पर नाराज भी नहीं है। नदी आपकी प्यास को मिटाने को, प्रतिपल तत्पर भी है, पर झुकना पड़ेगा, झुककर नदी में अंजलि बनानी पड़ेगी, तो नदी आपके हाथों में भी आ जायेगी।

बस ज्ञान भी झुके बिना उपलब्ध नहीं होता।

तो ये नियम उनके लिए हैं, जो झुकने को राजी हैं। सिर्फ प्यासे हैं, इतना काफी

नहीं है। जो अंजलि बना कर झुकते भी हैं और जो कहते हैं कि मैं मिट जाऊं, तो भी हर्ज नहीं है—लेकिन जीवन का रहस्य मेरे बोध में आ जाये। मैं धूल की तरह चरणों में भी पड़ जाऊं, तो भी कोई हर्ज नहीं है—लेकिन जान जाऊं कि जीवन का स्वाद क्या है, अर्थ क्या है, प्रयोजन क्या है? मैं क्यों हूं और किसलिए हूं?

जो अपने को बचाने की कोशिश में लगे हैं, जिनकी झुकने की जरा सी भी वृत्ति नहीं है, उनके लिए ये नियम नहीं हैं। तो आप सोच लेना—कि आपकी वृत्ति अगर शिष्य की है, तो ही ये नियम आपकी समझ में आयेंगे, और समझ में आयें तो ही इनका प्रयोग आप कर सकेंगे।

रोज मैं देखता हूं—लोग आते हैं, वे जानना चाहते हैं, लेकिन सीखना नहीं चाहते। जानने का अर्थ होता है, मुफ्त में जान लेना। सीखने का अर्थ होता है अपने को देना, चुकाना। सीखने का अर्थ होता है—झुकना। और जानने का अर्थ है कि ठीक!

एक मित्र मेरे पास आये, मैंने उनसे पूछा...बहुत बार लिखते थे कि आना चाहता हूं, आना चाहता हूं। तो मैंने उनसे पूछा कि बहुत बार लिखते थे कि आना चाहता हूं, किसलिए? तो उन्होंने कहा कि विचारों का आदान-प्रदान करना चाहता हूं। तो मैंने कहा कि अगर आपको पक्का भरोसा हो कि आपको कुछ मिल गया है, तो मैं शिष्य-भाव से उसे सीखने को तैयार हूं। अगर आपको भरोसा न हो—मुझे पक्का भरोसा है कि मुझे कुछ मिल गया है, तो आप शिष्य-भाव से सीखने को तैयार हो जाओ। आदान-प्रदान का उपाय ही नहीं है। या तो मुझे दे दें अगर आपके पास हो; या मैं दे दूं, अगर आपकी लेने की तैयारी हो। आदान-प्रदान का क्या मतलब है? अगर आपको भी मिल गया है और मुझे भी मिल गया है, तो बात ही खतम हो गई, लेना-देना क्या? और अगर दोनों को ही नहीं मिला है, तो लेंगे-देंगे क्या? अगर दोनों में से एक को मिल गया हो तो लेन-देन हो सकता है। तो मैंने कहा कि पहले हम पक्का कर लें। वे बड़ी बेचैनी में पड़ गये। यह भी नहीं कह सकते कि उनको मिल गया है, मिला नहीं है; यह भी नहीं मान सकते कि लेने की दीनता बताएं, यह भी नहीं मान सकते। कहने लगे कि मैं सोचकर आऊंगा। मैंने कहा कि अगर मिल गया है तो सोचना क्या है, और नहीं मिला हो तो सोचना क्या है—साफ ही होगा? और मैंने उनसे कहा कि सोचकर आप न आ पायेंगे, अभी तक तो नहीं आ पाये। वह आदान-प्रदान तो कर कहते हैं। झूठे शब्द हैं, जैसे दो अन्धे एक दूसरे को रास्ता बताएं—तो आदान-प्रदान।

बुद्ध और महावीर एक बार एक ही धर्मशाला में ठहरे हुए थे, मिलना नहीं हुआ। चिन्ता की बात मालूम पड़ती है। दो भले आदमी मिलते हैं तो अच्छा होता है। और न मालूम कितने लोग सोचते रहे कि क्यों नहीं मिले। जिनकी धर्म में कोई

आस्था नहीं, वे समझते होंगे कि दोनों अहंकारी रहे होंगे इसलिए नहीं मिले। जैनी समझते हैं कि महावीर क्यों मिलें वे तो ज्ञानी हैं—बुद्ध को मिलना हो तो आ जायें मिलने। बौद्ध सोचते हैं कि बुद्ध क्यों मिलें वे तो ज्ञानी हैं—अगर महावीर को मिलना हो तो आ जायें मिलने। लेकिन बुद्ध और महावीर के न मिलने का कारण दूसरा है—मिलने का कोई अर्थ ही नहीं है, कोई प्रयोजन ही नहीं है।

दो अज्ञानी मिले, कोई सार नहीं है। दो ज्ञानी भी मिले, तो भी कोई सार नहीं है। एक अज्ञानी और ज्ञानी मिले तो कुछ सार घटित होगा, नहीं तो क्या सार घटित होगा। दो ज्ञानी के मिलने से क्या फायदा है, क्या अर्थ है—कुछ भी नही। दो अज्ञानी के मिलने से क्या अर्थ है, क्या फायदा है—कुछ भी नहीं है। एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के मिलने पर कुछ क्रान्ति घटित हो सकती है।

ये सूत्र शिष्यों के लिए हैं।

इसका अर्थ यह है कि जब किसी गुरु के पास जायें, और अगर सच मे चाहते हैं कुछ क्रान्ति घटित हो, तो इस हालत मे जाना—जो जानता है उसके पास इस भांति जाना—कि आप नहीं जानते। उनके लिए यह सूत्र है, तो ही क्रान्ति घटित होगी, जीवन बदलेगा।

इन पर तुम ध्यान दो :

इसके पहले कि तुम्हारे नेत्र देख सकें, उन्हें अश्रुपात की क्षमता से मुक्त हो जाना चाहिए।

तुम्हारी आंखें इतने आंसुओं से भरी हैं कि तुम देख न सकोगे। तुम इतने दुःख से भरे हो कि तुम देख कैसे सकोगे! तुम्हारा दुःख सब विकृत कर देगा। आंखों से आंसुओं को बह जाने दो। आंसुओं को आंखो से निकल जाने दो। रो लेने दो आंखों को और उस जगह पर आ जाने दो, जहा रोने को भी कुछ न बचे।

तुम्हें पता ही नहीं, नेत्र की कोई भी जरूरत न होगी—या समझें कि तीसरा नेत्र उपलब्ध हो जायेगा या यही आंखें इतनी स्वच्छ हो जायेंगी।

यह सिर्फ आंख के लिए ही सच नहीं है, तुम्हारा यही शरीर इतना पारदर्शी हो जायेगा, अगर दुःख से मुक्त हो जाये। तुम्हारे यही हाथ अगर दुःख से खाली हो जायें, तो इनके स्पर्श में वही गरिमा आ जायेगी, जोकि परमात्मा के स्पर्श में होगी। लेकिन दुःख से भरे, तुम सब तरफ से बन्द हो। तुम्हारी आंखें लगता है कि देखती हैं; लेकिन अन्धी हैं। उनपर इतना बोझ है कि उनसे देखा नहीं जा सकता। तुम्हारे हाथ छूते हैं, लेकिन वह छूना मुर्दा होता है। क्योंकि भीतर जो जीवन की धारा बहती और उस स्पर्श को जीवंत करती, वह तो दुःख और पीड़ा के अवरोध के कारण बाहर तक आ नहीं पाती।

इन आठ दिनों में तुम अपनी आंखों को आंसुओं से मुक्त कर लेना। आंसुओं से मुक्त करने का उपाय यह नहीं कि तुम आंसुओं को दबा लेना, क्योंकि दबाओगे तो वे और भी भर जायेंगे। आंसुओं से मुक्त करने का अर्थ है कि तुम आंसुओं को बह जाने देना। रोकना ही मत। आंसू अद्‌भुत है—उसका कीमिया है—उसका रहस्य है। छोटे बच्चों की आंखों में जो ताजगी मालूम पड़ती है, जो भोलापन, उसका कारण है। छोटे बच्चे रो पाते हैं हृदयपूर्वक, आंखों को खाली कर लेते हैं।

जीसस ने कहा है : जब तक तुम छोटे बच्चों की भाँति न हो जाओ, तब तक मेरे प्रभु के राज्य में तुम्हारा प्रवेश नहीं होगा।

रोना और देखना।

सूत्र कहता है कि इसके पहले तुम्हारे नेत्र देख सकें, उन्हें अश्रुपात की क्षमता से मुक्त हो जाना चाहिए।

भीतर अश्रु न बचें। और जब भीतर अश्रु नहीं बचते, और रोने का कोई भाव नहीं बचता, दुःख की कोई संग्रहीत राशि नहीं बचती, तब तुम तैयार हो गये। अब तुम कुछ देख सकते हो—अभी और यहीं।

अगर आंखें खाली हों आंसुओं से तो उसे देखा जा सकता है, जिसे हम जन्मों-जन्मों से खोज रहे हैं। यह अस्तित्व ही—ये कंकड़, पत्थर, पौधे, आकाश के तारे, तुम, तुम्हारे आसपास बैठे लोग—इन सबके भीतर वही परम आनन्द की घटना घट रही है और वही परम-जीवन प्रवाहित हो रहा है। लेकिन अन्धी आंखें नहीं देख पातीं। और आंखें अन्धी हैं, क्योंकि दुख से भरी हैं। आंखों को खाली कर लेना है। आंख तो प्रतीक है। दुख में स्वयं को खाली कर लेना है।

इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें, उन्हें बहरे हो जाना चाहिए।

क्या मतलब है?

इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें, उन्हें बहरे हो जाना चाहिए।

अभी तुम सुनते हो बहुत, लेकिन अभी तुम वही सुनते हो, जो तुम सुनना चाहते हो। अभी तुम वह नहीं सुनते हो, जो है। जो कहा जाता है, वह सुनाई नहीं पड़ता। जो सुनना चाहते हो, वही सुन लेते हो। अभी तुम्हारे कान चुनाव करते हैं—छांट लेते हैं मतलब की बात, गैर-मतलब की बात छोड़ देते हैं। जिससे तुम्हारा प्रयोजन पूरा होता है, उसे पकड़ लेते हैं। जिससे तुम्हारा प्रयोजन पूरा नहीं होता, उसे छोड़ ही देते हैं, या सुनते ही नहीं, या सुनकर भी अनसुनी कर देते हैं।

इसके पहले कि तुम सुन सको...

क्या सुन सको?

जिसके पास तुम सीखने गये हो—इसके पहले कि उसकी वाणी तुम्हारी समझ में आ सके, तुम्हारे कान बहरे हो जाने चाहिये।

तुम्हारी जो सुनने का ढांचा और आदत है, वह जो चुनाव है, वह जो तुम्हारा मतलब को प्रविष्ट कर देने की चेष्टा है और जो तुम्हारी स्वार्थ के आधार पर सोचने की व्यवस्था है—वह सब टूट जानी चाहिए। तुम जिन कानों को अब तक जानते रहे हो—तुम्हारे कान—वे बहरे हो जाने चाहिए। उनके बहरे होते ही तुम्हारे कान भी वैसे ही निर्मल हो जायेंगे, जैसी आंखें। और तब जो कहा जाएगा, वही सुना जाएगा।

ऐसा हुआ है कि बुद्ध ने एक रात अपने भिक्षुओं को कहा कि अब तुम जाओ रात्रि का अन्तिम कार्य करो। उस दिन एक चोर भी सुनने आ गया था। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा कि जाओ और रात्रि का अन्तिम कार्य करो—रात्रि का अन्तिम कार्य था—रात्रि की अन्तिम ध्यान की प्रक्रिया—इसके पहले कि निद्रा में प्रवेश करो, तुम समाधि में डूब जाओ और फिर नींद को आ जाने दो। तो भिक्षु उठकर ध्यान करने चले गये। और चोर ने सोचा कि ठीक याद दिलाया—आधी रात होने के करीब है, अब मैं जाऊं और अपने काम में लगूं। पर चोर ने सोचा कि बुद्ध भी गजब के आदमी हैं, कहां से इनको पता चला कि मैं अपने काम में लगूं। जाओ और अपने आखिरी काम में लगो। और एक वेश्या भी आई थी—उसने भी सुना, शब्द वही थे, लेकिन उसने सोचा कि अब उठूं—और मेरे बाजार और दुकान का वक्त हो गया। तो बुद्ध बाद में निरन्तर कहते थे कि उस रात तो मैंने एक ही बात कही थी, लेकिन समझने वालों ने अलग-अलग समझी।

तुम वही समझ लेते हो, जो तुम समझना चाहते हो। चोर का कान कुछ और सुनता है, वेश्या का कान कुछ और सुनता है, सन्यासी का कान कुछ और सुनता है। लेकिन जो कान भी अपना अर्थ डाल देते हैं, वे कान उचित नहीं हैं, वे कान बहरे हो जाने चाहिये। तभी तुम गुरु का वचन सुन सकोगे, नहीं तो गुरु के वचन में भी तुम अपना ही अर्थ निकालोगे। और गुरु के वचन से तुम वही समझोगे, जो तुम समझना चाहते हो। यह बड़ी होशियारी की बात है। और तब जिम्मेवारी भी तुम गुरु पर डाल देते हो और मतलब भी अपना पूरा कर लेते हो। और जो कभी नहीं कहा गया था, जैसा कोई अभिप्राय भी नहीं था, उसके आधार पर तुम चलना शुरू कर देते हो। अगर तुम भटकोगे, तो तुम कहोगे कि गुरु ने भटकाया। तुम न कहोगे कि तुम्हारे कान सुनते समय गलत थे। अगर तुम गलत कहोगे, तो तुम कहोगे कि गुरु ने कहा था, इसलिए हमने ऐसा किया। तुम यह न समझोगे कि तुम्हारे कान ही व्याख्या गलत करते हैं।

इसलिए सूत्र कहता है : इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें, उन्हें बहरे हो जाने चाहिये।

तुम अब तक अपने सुनने की जो आदतें यहां ले आये हो, उन्हें अलग कर देना। तुम सीधे सुनना। व्याख्या मत करना, अर्थ मत निकालना। जैसा मैं कहूं उसमें से तुम अपना हिसाब मत निकालना। जैसे कि अगर मैं कह रहा हूं कि इससे पहले कि तुम्हारी आंखें आंसुओं से खाली न हो जायें, तुम देख न पाओगे। तुममें से अनेक ने अपने मन में सोचा होगा, लेकिन मेरे भीतर तो कोई आंसू ही नहीं हैं। इसलिए ये बात किसी और से कही जा रही है। मैंने कहा कि इसके पहले कि तुम कुछ जान सको, तुम्हें झुकना होगा। तुम्हारे मन ने कहा होगा लेकिन मैं तो सदा ही झुका हुआ हूं—गुरु के चरण छूता हूं, सन्तों के पास जाता हूं, साधुओं की सेवा करता हूं। यह बात किसी और के लिए कही गयी है। तब तुम बच गये। तब तुमने अपने को हटा लिया और जो कहा गया था, वह नहीं सुना। यहां जो भी बात कही जा रही है, वह तुमसे कही जा रही है, किसी और से नहीं। इसलिए दूसरे का तुम विचार ही मत करना। तुम सिर्फ अपना ही ख्याल करना, और अपना भी जब ख्याल करो तो ईमानदारी बरतना।

और इसके पहले कि तुम सद्गुरुओं की उपस्थिति में बोल सको—तुम्हारी वाणी को चोट पहुंचाने की वृत्ति से मुक्त हो जाना चाहिये। सद्गुरु की उपस्थिति में बोल सको...

तो एक शर्त है—तब तक मत बोलना गुरु से कुछ, जब तक कि तुम्हारी वाणी चोट पहुंचा सकती है। तब तक तुम जो भी बोलोगे, वह व्यर्थ होगा। और तब तक तुम जो भी बोलोगे, वह तुम्हारे और तुम्हारे गुरु के बीच फासले को बढ़ायेगा, घटाएगा नहीं।

हम वाणी से बड़ी हिंसा करते हैं। हम चाहें तो मौन से भी कर लेते हैं। हम हिंसा करने में कुशल हैं। कभी-कभी तुम नहीं भी बोलते हो और इसलिए नहीं बोलते हो कि तुम्हारा ना बोलना चोट पहुंचायेगा। कभी तुम बोलते भी हो, तो तुम्हारे बोलने में धार होती है। तुम्हारे शब्द भले ही ऊपर से मीठे दिखाई पड़ते हों, भीतर उनमें जहर होता है। तुम्हारी हंसी में, तुम्हारे उठने-बैठने में, तुम्हारे इशारों में, तुम्हारी आंखों में, चोट पहुंचाने की, हिंसा करने की वृत्ति होती है।

यह सूत्र कहता है कि यह तुम सब जगह कर रहे हो, वह ठीक है, लेकिन गुरु के सामने तब ही बोलना, जब तुम्हारी यह वृत्ति जा चुकी हो—तो ही तुम गुरु के करीब बोलने से आओगे। अन्यथा बेहतर है कि तुम चुप रहना। तुम सुनना, बोलना मत। ठीक भी है, क्योंकि सुनने से ही तुम्हें कुछ मिलेगा, तुम्हारे बोलने से नहीं। और लोग बहुत अद्भुत हैं।

एक सज्जन मेरे पास आते थे, वह मुझसे घंटे, दो घंटे बातें करते थे। वह जमाने भर की बातें करते थे। मुझे सिर्फ 'हां', 'हूं' ही भरना पड़ता था। 'हां', 'हूं' भी सिर्फ इसलिए भरना पड़ता था कि उन्हें कहीं ऐसा न लगे कि उनकी बातें बेकार हैं। बातें बिलकुल बेकार थीं, उनमें कहीं कोई सार न था, उनसे कोई मेरा सम्बन्ध भी न

था। लेकिन उन्हें कहीं ऐसा न लगे कि मैं समझ रहा हूं कि उनकी बातें बेकार हैं, इसलिए मैं 'हां', 'हूं' भरता रहा। घंटे, दो घंटे, न मालूम कहां-कहां का कचरा मुझ पर डाल कर, जब वे जाने लगते, तो मुझसे एक बात कहना कभी नहीं भूलते थे कि आज आपने जो बातें कहीं—उनसे बड़ा आनन्द आया। मुझसे कह जाते थे जाते वक्त, कि आज आपने जो बाते कहीं, उनसे बड़ा आनन्द आया! मैं कुछ बोला भी नहीं था, मुझे बोलने का अवसर ही नहीं था। बोलते वे ही थे, सुनता मै था, लेकिन जाते वक्त वे हमेशा मुझसे कह जाते थे कि जो बाते आपने कहीं, बड़ी मूल्यवान थीं।

मैं ऐसा नहीं सोचता हूं कि वे कुछ झूठ बोलते थे—ऐसा उनको लगता होगा। ऐसा भी नहीं कि वे कोई धोखा देते थे। वे बड़े भाव से, बड़ी निष्ठा से कहते थे। धोखे का भी कोई कारण नहीं, ऐसी उन्हें प्रतीति होती होगी। यह जो हमारी स्थिति है, इस स्थिति को लेकर जब आप एक गुरु के पास जाते हैं और कुछ भी कहते रहते हैं, तो आप समय खो रहे हैं अपना, जो कि सुनने में सार्थक हो सकता था और आप फासले पर हट रहे हैं।

गुरु और शिष्य के बीच—गुरु की तरफ से आये हुए शब्द तो निकट लाते हैं, शिष्य की तरफ से आये हुए शब्द दूर ले जाते हैं।

गुरु और शिष्य के बीच जो मिलन है, वह शिष्य के मौन और गुरु के शब्द में होता है।

और एक घड़ी ऐसी आती है, जब गुरु भी शब्द को हटा लेता है, शिष्य का मौन गहन हो जाता है—तब दोनों का मौन मिलन बनता है। लेकिन शिष्य को मौन की तरफ़ से शुरू करना चाहिये।

तो ये शर्त है कि जब तक तुम्हारे शब्द हिंसा की वृत्ति से मुक्त न हो जायें—इसे पहचानना पड़ेगा, यह जटिल है, क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं चलता कि तुम्हारे कौन से शब्द क्या हिंसा कर सकते हैं!

मैं एक घर मे मेहमान था। पिता ने अपने बेटे को बुलाया और मुझसे कहा कि मिलिए इनसे, आप हैं मेरे सुपुत्र! सुपुत्र शब्द बहुत अच्छा है, लेकिन जिस ढंग से उन्होंने कहा, उसका मतलब था कुपुत्र! ये खड़े हैं मेरे सुपुत्र—उन्होंने मुझे बताया। फिर अपने सुपुत्र से बोले, क्या खड़े देख रहे हो, पैर छुओ।

कभी-कभी तो छुरी से भी ऐसे घाव नहीं किये जा सकते जैसे शब्द से किये जा सकते हैं। यह बेटा अपने बाप को कभी भी क्षमा नहीं कर पायेगा। बहुत कठिन है मां-बाप को क्षमा कर देना। बहुत मुश्किल है, क्योंकि मां-बाप को पता ही नहीं कि वे क्या बोल रहे हैं। और कोई डर भी नहीं है। बच्चे का डर क्या है, कुछ भी बोल रहे हैं! आपको पता नहीं है कि आप क्या बोल रहे हैं अपनी पत्नी से, क्या बोल रहे

हैं आप अपने पति से, किस तरह बोल रहे हैं आप अपने नौकर से, किस भांति आप बोल रहे हैं अपने मित्र से, आप क्या कर रहे हैं अपने चारों तरफ़!

थोड़ा पहचानने की जरूरत है।

इस शिविर के काल में अच्छा हो चुप रहें, और जब भी शब्द बोलें, तो सोचके बोलना कि इस शब्द से किसी को भी चोट न पहुंचे। आप पायेंगे कि आप के शब्दों का गुण-धर्म बदल गया। और आप पायेंगे कि आपके भीतर की चेतना की स्थिति बदलने लगी। एक निर्णय कर लेना है कि कम से कम शब्द बोलेंगे। अनिवार्य होगा तो बोलेंगे। बिलकुल अनिवार्य होगा तो ही। अगर एक वाक्य में काम चल जायेगा, तो एक ही वाक्य बोलेंगे और अगर एक शब्द में काम चल जायेगा तो एक ही शब्द में चला लेंगे। अगर हाथ के इशारे से चल जायेगा, तो शब्द का उपयोग न करेंगे। और अगर मौन से चल जायेगा तो श्रेष्ठतम् है। फिर भी अगर किसी शब्द का उपयोग करना पड़े, तो उतने ही शब्दों का उपयोग करना, जिससे किसी को चोट न पहुंच रही हो।

कोई आदमी ध्यान में खड़ा है—आप सिर्फ हंसते हुए उसके पास से निकल जाते हैं, आपके मन का भाव होता है कि क्या पागलपन कर रहे हैं। आपने हिंसा की। और हो सकता है कि आपका यह भाव, वह आदमी, अगर नासमझ हो और पकड़ ले। और यह भी हो सकता है कि जो घटना उसके जीवन में घटने जा रही थी—वह न घट पाये। तो आप जिम्मेवार हो गये, आपने बड़ी हिंसा की। लोग एक दूसरे से कुछ भी कह देते हैं। वे कह देते हैं कि किस पागलपन में पड़े हो, ऐसे कहीं ध्यान हुआ है। जैसे कि उन्हें ध्यान हो गया हो और जैसे कि उन्हें पता ह कि कैसे ध्यान होता है। मगर कोई भी किसी से कुछ भी कह देता है। सोच-समझ के बोलना। एक-एक शब्द को ख्याल मे लेकर बोलना। और तब तुम देखोगे कि तुम्हारा मन किस तरह की हिंसा में लीन है। और जब तक ऐसी स्थिति न आ जाये कि तुम्हारे शब्दों से हिंसा तिरोहित हो जाये, तब तक सूत्र कहता है—गुरु के सामने मत बोलना।

इसके पहले कि तुम्हारी आत्मा सद्गुरुओं के समक्ष खड़ी हो सके, उसके पैरों को हृदय के रक्त से धो लेना उचित है।

अपनी आत्मा को अपने ही रक्त से धो लेना उचित है, इसके पहले कि सद्गुरुओं के समक्ष खड़े होने में समर्थ हो सको।

प्रतीक है—अपने ही जीवन को सब भांति, अग्नि से गुजार लेना जरूरी है, ताकि तुम निखर जाओ, ताकि तुम्हारा कचरा जल जाये, और सोना सोना ही बच रहे—तब, तब गुरु के समक्ष खड़े होना।

गुरु के समक्ष ऐसे उपस्थित होना चाहिए, जैसे मैं उपस्थित नहीं हूं।

इसलिए तिब्बत में गुरु के चरणों में सैकड़ों दफे दिन में नमस्कार करता है शिष्य। जब देखता है तब नमस्कार करता है, तब लोट जाता है।

एक युवक मेरे पास आया और उसने कहा कि मैं एक तिब्बती लामा के पास ध्यान सीख रहा था और यह बात मुझे बिलकुल नहीं जंचती थी कि बार-बार चरणों में लोटने की क्या जरूरत है। मैंने उससे कहा—तू जरूरत की फिक्र छोड़, तू तीन महीने लोटके आ और फिर मेरे पास आना। उसने कहा, लेकिन इससे फायदा क्या होगा। तीन महीने गंवायेगा और क्या होगा। ऐसे भी तूने तीस साल जिन्दगी के गंवा दिये हैं, तीन महीने आर समझ लेना। पर तू पहले लोटके आ और लोटते वक्त सोचना मत। तू तो पूरे भाव से सिर को जमीन पर रख देना कि जैसे मिट्टी हो गया।

तीन महीने बाद वह युवक आया और उसने कहा कि यह आपने क्या कर दिया। मैं तो सोचता था कि यह सब व्यर्थ है, इसमें क्या सार है, यह तो कवायद है। यह बार-बार लोटना—इससे क्या होगा। लेकिन तीन महीने निरन्तर...तब मुझे ख्याल आया कि वह जो अहंकार है, वह जो अकड़ है, वह तरकीबें खोजती है। वह कहती है इससे क्या होगा ? लेकिन तीन महीने चरणों में गिर-गिर के वह मेरे भीतर से अहंकार झुका। और जो बातें मैं उस गुरु की कभी भी नहीं समझ सकता था—वे मेरी समझ में आनी शुरू हुई। और जो मैंने कभी नहीं सुना था और सदा उसने कहा था—वह मुझे सुनाई पड़ा।

अपने को गलाना, जलाना और मिटाना, ताकि खाली हो सकें और उस खालीपन में गुरु से सम्बन्धित हो सकें।

सूत्र कहता है कि ये बातें स्मरण में आ जायें।

महत्त्वाकांक्षा को दूर करो। यह पहला सूत्र है, जो गुरु कहेगा, अगर इतने चरण पूरे हुए। तो संसार के सारे गुरुओं ने जो कहा है, वह पहला सूत्र है—महत्त्वाकांक्षा को दूर करो।

क्या है महत्त्वाकांक्षा ?

कुछ होने की वासना। कुछ होने की वासना कि राष्ट्रपति हो जाऊं, कि प्रधान मन्त्री हो जाऊं, कि राकफेलर हो जाऊं, कि आइन्स्टीन हो जाऊं या कि बुद्ध या महावीर हो जाऊं। कुछ होने की वासना, कुछ होने का पागलपन।

पहला सूत्र है : महत्त्वाकांक्षा दूर करो।

क्यों ?

क्योंकि जब तक तुम कुछ होना चाहते हो, तब तक तुम वह न हो पाओगे, जो तुम होने को पैदा हुए हो। जब तक तुम कुछ होना चाहते हो, तब तक तुम अपने स्वरूप को न पा सकोगे। क्योंकि तुम्हारा जो स्वरूप है, वह तो तुम हो ही, वह तुम्हें

होना नहीं है। और जो भी तुम होना चाहते हो—वह वंचना होगी, वह अपने से भागना होगा, वह अपने से बचना होगा। ऐसा समझो कि एक गुलाब का फूल, कमल का फूल होना चाहता है। वह हो नहीं सकता। लेकिन भ्रम में जी सकता है और नष्ट हो सकता है। और नष्ट होने में यह होगा कि वह गुलाब का फूल भी न हो पायेगा, कमल का फूल तो हो नहीं सकता।

तुम जो हो, परमात्मा तुम्हें वैसे ही स्वीकार करता है—अन्यथा तुम होते ही नहीं। तुम जैसे हो, परमात्मा तुम्हें वैसे ही स्वीकार करता है—अन्यथा वह तुम्हें बनाता ही नहीं। वह दोहराता नहीं, पुनरुक्ति नहीं करता। बुद्ध कितने ही प्यारे हों, फिर भी दोबारा नहीं बनाता। दुबारा तो बनाते ही वे कारीगर हैं, जिनकी प्रतिभा इतनी कम है कि नये को नहीं खोज पाते। परमात्मा प्रत्येक को अनूठा और नया बनाता है। एक-एक को अद्वितीय बनाता है। राम कितने ही प्यारे हों, लेकिन दोबारा...! और सोचो अगर बहुत राम पैदा होने लगें तो बहुत बेमानी हो जायेंगे, उबाने वाले भी हो जायेंगे। और अभी राम के दर्शन की इच्छा होती है, फिर उनसे भागने की इच्छा होगी। बस राम एक काफी हैं। एक से ज्यादा में बात बासी हो जाती है। परमात्मा बासापन पसन्द नहीं करता। तो तुम्हें इसलिए पैदा नहीं किया है कि तुम राम बन जाओ कि कृष्ण बन जाओ, कि बुद्ध बन जाओ। तुम्हें पैदा किया है—कुछ जो तुम्हीं बन सकते हो। और कोई भी नही बन सकता है। न पहले कोई बन सकता था, न बाद में बन सकेगा। अगर तुम चूक जाते हो, तो अस्तित्व से वह घड़ी चूक जायेगी। वह तुम्हीं बन सकते थे, तुम्हारे अतिरिक्त कोई और उस नियति को नहीं पा सकता था।

महत्त्वाकांक्षा दूर करो, ताकि तुम अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सको।

महत्त्वाकांक्षा दूसरे की नकल में दौड़ती है—किसी वैसे बन जाओ—भागो, दौड़ो, कुछ करो। झूठा होगा सब करना। ऊपर ऊपर होगा, आवरण होगा, नकली होगा। और तुम जो असली हो, वह भीतर छिपे रह जाओगे बीज की तरह, और बाहर कागज के फूल चिपका लोगे।

महत्त्वाकांक्षा दूर करो—छोड़ ही दो ख्याल कि तुम्हें कुछ और होना है, तुम्हें तो सिर्फ एक ही ख्याल होना चाहिये कि तुम्हें परमात्मा ने क्या बनाया है, उसे तुम्हें जानना है, होना भी नहीं, वह तुम हो। एक ही ख्याल रखो कि तुम जो हो उसको उघाड़ना है, तुम्हें कुछ होना नहीं है। कोई आदर्श नहीं चाहिये, कोई तुम्हारे लिए ब्लू-प्रिन्ट की जरूरत नहीं है कि इस भांति तुम हो जाओ।

अध्यात्म की खोज आदर्श की खोज नहीं, अध्यात्म की खोज तुम्हारे भीतर जो मौजूद ही है, उसका आविष्कार है, उसको उघाड़ लेना है।

जो भी चाहिये, वह है। और जो भी तुम हो सकते हो, वह तुम हो—अभी इसी

क्षग, उसमें रत्तीभर भी जोड़ना नहीं है। सिर्फ कुछ घटाना है। जो कचरा इकट्ठा
दिया है, वह भर हटाना है। जोड़ना कुछ भी नही है। हीरा मौजूद है कचरे के
ढेर मे। और तुम किसी और की नकल मत करना, और किसी और जैसे होने
कोशिश मत करना। यह किसी और जैसे होने की कोशिश है, महत्त्वाकांक्षा, एम्बीश
महत्त्वाकाक्षा को दूर करो।

महत्त्वाकांक्षा पहला अभिशाप है। जो कोई अपने सहयोगियों से आगे बढ़
है, उसे यह मोहित करके अपने पद से विचलित कर देती है। सत्कर्मों के फल
इच्छा का यह सबसे सरल रूप है। बुद्धिमान और शक्तिशाली लोग इसके
बराबर अपनी उच्च सभावनाओ से स्खलित होते रहते हैं। फिर भी यह बड़ी आवश
शिक्षा का साधन है। इसके फल चखते समय मुँह मे राख और धूल बन जाते
मृत्यु और वियोग के समान इसके भी अन्त में यही शिक्षा मिलती है कि स्वार्थ के लि
अहं विस्तार के लिए, कार्य करने से परिणाम मे निराशा ही प्राप्त होगी।

महत्त्वाकाक्षा का एक रूप मैने कहा। एक और रूप है, जो गौण है, लेकिन
भी काफी हमें जोर से पकड़े रहता है, उसके अन्धड़ मे भी हम काफी प्रवाहित
हैं। दूसरे जैसे होने की आकाक्षा, एक।

दूसरे से आगे होने की आकाक्षा।

महत्त्वाकाक्षा का यह दूसरा अर्थ है। सदा यह फिक्र लगी रहती है कि पड़
से मेरा मकान बड़ा कैसे हो जाये, कि पड़ोसी से मेरी इज्जत ज्यादा कैसे
जाये, कि पड़ोसी से मैं आगे कैसे निकल जाऊ? किसी न किसी तुलना में आप अ
को सोचते रहते हैं। जब तक आप दूसरे की तुलना मे अपने को सोच रहे हैं—अ
अपने को सम्मान ही नही दिया, आप अपना अपमान कर रहे हैं। क्योंकि न
पड़ोसी आप जैसा है, और न आप पड़ोसी जैसे हैं। दोनों की कोई तुलना नहीं
सकती। सब तुलना भ्रान्त और गलत है। और आपको दूसरे से आगे होने के
नहीं भेजा गया है, आपको तो अपने ही जैसा होने के लिए भेजा गया है। और
से आगे होकर भी क्या होगा? क्योंकि आप फिर पायेंगे कि कोई उसके भी आगे

इस दुनिया मे कोई कभी नही पाता ऐसी जगह, जहा उससे आगे कोई न हो।
जिन्दगी बड़ी जटिल है। अगर आप राष्ट्रपति हो जाते हैं, तो यह भी हो स
है कि सड़क पर चलते एक भगी, सड़क साफ करते एक भंगी को देखके भी अ
मन में एक महत्त्वाकाक्षा जग जाये। क्योंकि उसके पास जैसा स्वस्थ शरीर है,
आपके पास नही है। एक साधारण आदमी को देखके आपके मन में ईर्ष्या जग ज
क्योंकि उसके पास जैसा सुन्दर चेहरा है, वैसा चेहरा आपके पास नही है, भले
आप राष्ट्रपति हों। कोई न कोई आगे है, कहीं न कहीं आगे है। जिन्दगी में ह

उपाय हैं आगे होने के। और कोई आदमी कभी नहीं पाता कि वह सबसे सब बातों में आगे पहुँच गया। पीड़ा बनी ही रहती है।

सिर्फ वही आदमी आनन्द को उपलब्ध होता है, जो आगे होने की दौड़ ही छोड़ देता है।

और जो कहता है, जहा मैं हूं, वहां मैं पूरी तरह हो जाऊं, आगे होने का सवाल नहीं है। जो मैं हूं. वह मैं पूरी तरह हो जाऊं, किसी से तुलना का सवाल नहीं है। जो भी मैं हू, वह अधूरा न रह जाये। मेरा फूल पूरा खिल जाये, वह जैसा भी है। घास का फूल ही सही, मगर पूरा खिल जाये।

परमात्मा ने जो मुझे बनाया है, वह मैं पूरा-पूरा हो जाऊं—इसमें किसी और से तुलना नही है। एक गुलाब का फूल खिलता है, वह फिक्र नहीं कर रहा है कि बड़ा फूल पड़ोस मे खिला है। वह छोटा सा फूल सही, लेकिन वह उतना ही आनन्दित है। और परमात्मा उसे स्वीकार कर रहा है, पूरा अस्तित्व उसे स्वीकार कर रहा है, वह नाच रहा है हवाओं में उसी तरह जैसा बड़ा फूल नाच रहा है।

एक झेन फकीर हुआ बोकोजू। उससे किसी ने पूछा कि मैं तुम जैसा कैसे हो जाऊँ? तो उसने कहा कि तू रुक, जरा लोगों को चले जाने दे। वह दिन भर बैठा रहा आदमी—थक गया, परेशान हो गया, कोई न कोई मौजूद था। फिर सांझ जब सब चले गये तो उसने कहा कि अब देर न करो—दिन भर हो गया है बैठे-बैठे, मैं तुम जैसा कैसे हो जाऊं? तो बोकोजू ने कहा कि तू मेरे साथ बाहर आ। बाहर वृक्ष लगे थे बहुत, कोई छोटा था, कोई बड़ा था। बोकोजू ने कहा, देख, यह छोटा वृक्ष छोटा है, यह बड़ा वृक्ष बड़ा है। इन दोनों को मैने कभी नहीं सुना चर्चा करते—न तो छोटे ने बड़े से पूछा कि मैं तेरे जैसा कैसे हो जाऊं, न बड़े ने छोटे से पूछा कि मैं तेरे जैसा कैसे हो जाऊं? क्योंकि छोटे में जो फूल खिलते हैं, वह बड़े में नही खिलते, बड़े सुगन्धित हैं। और बड़े की आसमान में ऊंचाई है, और छोटा आसमान में ऊंचा नहीं है। लेकिन ये एक दूसरे से पूछते नहीं हैं, न तुलना करते हैं। ये मेरी खिड़की के पास वर्षों से हैं, मैंने कभी इनमें गुफ्तगू नहीं सुनी, न कोई प्रश्न उठा। और ये दोनों एक से आनन्दित हैं, इनके आनन्द में रत्ती भर फर्क नहीं है। क्योंकि प्रत्येक ने अपने को स्वीकार कर लिया है, वह जैसा है—है। तू भी मुझसे मत पूछ, अगर तू सच में शान्ति चाहता है। तू मुझसे भी मत पूछ—तू जैसा है, वैसा है। और मैं जब तुझसे नहीं पूछता कि तेरे जैसा कैसे हो जाऊं, तो तू क्यों मुझसे पूछ रहा है?

वह आदमी कहने लगा लेकिन इसीलिए तो पूछ रहा हूं कि आप इतने शान्त और आनन्दित हैं और मैं इतना अशान्त और दुःखी हूं। इसीलिए तो पूछ रहा हूं कि तुम्हारे जैसा कैसे हो जाऊं। तो बोकोजू ने कहा, मैं तुझे तरकीब भी बता रहा हूं, लेकिन

तू सुन ही नहीं रहा। मैं तुझे तरकीब तो बता रहा हू कि मैं भी पहले तेरे जैसा ही दुःखी और अशान्त था, क्योंकि मैं भी किसी और जैसा होने की कोशिश कर रहा था। जब से मैं अपने जैसा ही होने को राजी हो गया, पीड़ा समाप्त हो गई।

तुलना में दुःख है, तुलना में हिंसा है।

छोड़ें तुलना—किसी से मत तौलें अपने को। कोई अर्थ भी नहीं है, कोई उपाय भी नहीं है। राजी हो जायें, जैसे हैं। और एक ही बात की फिक्र लें कि जो मै हूं, जैसा हूं, वह पूरा का पूरा मेरे सामने कैसे प्रकट हो जाये।

यहां हम इसी बात की खोज करेंगे। न तो मैं आपको बनाना चाहता हूं बुद्ध, न राम, न कृष्ण। कोई जरूरत नहीं है, वे हो चुके। मैं आपको बनाना चाहता हूं वही, जो आप हो सकते हैं। जो बीज आपमें है, वही अंकुरित हो। दूसरे से भी आपको आगे-पीछे नहीं रखना चाहता—कोई किसी से आगे-पीछे नहीं है। हर एक आदमी अपनी जगह है। आप अपनी ही जगह पर खिल सके, जो भी सुगन्ध छिपाई है आपने अपने हृदय में, वह बाहर आ सके। मैं आपको आप ही बनाना चाहता हू।

कल सुबह हम ध्यान करेंगे, दस-दस मिनिट के चार चरण होंगे।

पहले चरण में श्वांस—जितनी तीव्र हो सके, लोहार की धौंकनी की भांति, श्वांस ही श्वांस रह जाये।

दूसरे दस मिनिट के चरण में भावों का रेचन, जो भी भीतर दबा पड़ा है—रुदन, आंसू, चीख, चिल्लाहट, क्रोध, हिंसा...सबको बाहर फेंक देना। और विचार ही नहीं करना...शरीर के द्वारा बाहर फेंक देना। शरीर जो करना चाहे, उस क्षण में उसे करने देना, ताकि सब भार गिर जाये।

तीसरे चरण में 'हू' मन्त्र का प्रयोग—इतने जोर से कि आकाश गूंजने लगे। बाहर फेंकना है, 'हू' की चोट और हुंकार। इस हुंकार का परिणाम होता है कुण्ड-लिनी पर हथौड़ी की तरह। भीतर कुण्डलिनी पर चोट पड़ती है, और कुण्डलिनी की शक्ति ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। यह अनुभव प्रकट होगा। जैसे ही चोट पड़नी शुरू होगी, आप को लगेगा कि भीतर शक्ति के तेज तूफान ऊपर की तरफ उठने शुरू हो गये। और उनके उठते ही आप दूसरे जगत में प्रवेश करने लगते हैं।

चौथे चरण में दस मिनिट का होगा मौन—पूर्ण मौन, जिसमें परम-सत्ता से मिलन होगा।

अब हम सुबह मिलेंगे।

जीवन की तृष्णा

प्रवचन : २ अप्रल ७, १९७३ सुबह
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउण्ट आबू,

२. जीवन की तृष्णा को दूर करो।

३. सुख-प्राप्ति की इच्छा को दूर करो।

किन्तु जो महात्त्वाकांक्षी हैं, उन्हीं के समान परिश्रम करो।

जिन्हें जीवन की तृष्णा है, उन्हीं के समान प्राणिमात्र के जीवन का सम्मान करो। जो सुख के लिए ही जीवन-यापन करते हैं, उन्हीं के समान सुखी रहो।

हृदय के भीतर पाप के अंकुर को ढूंढ़ कर उसे बाहर निकाल फेंको। यह अंकुर श्रद्धालु शिष्य के हृदय में भी उसी प्रकार बढ़ता और पनपता है, जैसे कि वासनायुक्त मानव के हृदय में। केवल शूरवीर ही उसे नष्ट कर डालने मे सफल होते हैं। दुर्बलों को तो उसके बढ़ने-पनपने, फूलने-फलने और फिर नष्ट होने की राह देखनी होती है।

जीवन का नियम बहुत विरोधाभासी है, पैराडॉक्सिकल है—उल्टे परिणाम आते हैं। जैसे कोई व्यक्ति अपनी छाया से भागना चाहे, तो जितना भागेगा, उतना ही पायेगा कि छाया भी उसके साथ भाग रही है। भागकर छाया से बचने का उपाय कोई नहीं है। रुक जाये कोई, तो छाया भी रुक जाती है। भागे कोई तो छाया भी उतनी ही शक्ति से पीछा करती है। छाया से छूटने का एक ही उपाय है—यह जान लेना कि वह छाया है—वह है ही नहीं। और तब है कि नहीं—कोई अन्तर नहीं पड़ता। छाया से बचने का—भागना मार्ग नहीं है, छाया के प्रति जागना मार्ग है। और जब कोई जान लेता है कि छाया मात्र छाया है, तो उससे बचने की चेष्टा भी छोड़ देता है। क्योंकि जो है ही नहीं, उससे बचना भी क्यों!

और जैसे ही कोई बचने की चेष्टा छोड़ देता है, बच जाता है—यह विरोधाभास है।

जब तक बचना चाहते हैं, बच न सकेंगे और जब बचना ही नहीं चाहेंगे, तब बच जायेंगे।

जैसे नदी में कोई जीवित आदमी डूब जाता है, मुर्दा नहीं डूबता, मुर्दा नदी में तैर जाता है। जीवित डूब जाता है, मुर्दा तैर आता है, बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। नदी के नियम बड़े बेबूझ मालूम पड़ते हैं। जिन्दा आदमी को बचाना चाहिए, मुर्दा डूब भी जाये तो हर्ज नहीं है। लेकिन जिन्दा आदमी डूब जाता है और मुर्दा बच जाता है। शायद मुर्दा आदमी नदी के नियम को ज्यादा ठीक से समझता है। उसे पता है कि नदी के साथ क्या करना है। और जिन्दा आदमी जो भी करता है, झंझट में पड़ता है।

क्या पता है मुर्दा आदमी को—जो जिन्दा को पता नहीं है!

मुर्दे को एक कला आती है—वह नदी के हाथों में अपने को छोड़ देता है, नदी

जो करना चाहे, करे। फिर नदी नहीं डुबाती, फिर नदी तैराने लगती है। जिन्दा आदमी नदी से लड़ता है—लड़कर ही टूटता है और डूबता है। नदी नहीं डुबाती, आदमी खुद ही लड़कर अपने को नष्ट कर लेता है और डूब जाता है। नदी तो उबारती है, क्योंकि मुर्दे को उबार देती है। अगर जिन्दा आदमी भी मुर्दे की भांति नदी के साथ व्यवहार करे तो नदी उसे डुबाने में असमर्थ है। लेकिन अभी कठिन है।

जिन्दा आदमी मुर्दे की भांति व्यवहार करे—वही संन्यासी का लक्षण है।

और जिस दिन कोई आदमी जीते जी मुर्दे की भांति व्यवहार करने लगता है, उसे परम-जीवन उपलब्ध हो जाता है।

और जो जिन्दगी को पकड़ने की कोशिश करते हैं, उनके हाथ से जिन्दगी छूटती चली जाती है।

जीसस ने कहा है कि बचाओगे तो तुम खो दोगे और अगर तुम खोने को राजी हो, तो तुम्हें पूरा जीवन मिल जायेगा, परम-जीवन मिल जायेगा।

ये सूत्र इस विरोधाभास की तरफ ही इंगित करते हैं।

पहला सूत्र है : जीवन की तृष्णा दूर करो।

लेकिन क्यों ? जीवन की तृष्णा को क्यों करें दूर ?

इसीलिए—ताकि जीवन तुम्हें मिल सके—ताकि तुम पा सको, जान सको, जी सको—क्या है जीवन।

जिनके मन में तृष्णा है जीवन की, वे जीवन को जानने से वंचित रह जाते हैं। उलटा है। होना तो यही चाहिये कि जो जीवन की तृष्णा रखते हैं, उन्हें जीवन मिले, लेकिन उन्हें नहीं मिल सकता, उन्हें मिलती है केवल मौत। वे केवल मरते हैं और मरने में ही उनका समय व्यतीत होता है। लेकिन जो व्यक्ति जीवन की तृष्णा छोड़ देता है, जो कह देता है कि मुझे चिन्ता नहीं जीवन की और न कोई वासना है, अगर मौत आती हो, तो अभी आ जाये, मैं राजी हू—उस आदमी को अमृत के दर्शन हो जाते हैं। उलटा है। मगर उलटा होने का कारण है। जब आकाश में, बहुत घने काले बादल घिरते हैं, तो ही बिजली दिखाई पड़ती है। अंधेरे की पृष्ठभूमि होती है, कालेपन की, तो बिजली उभर कर प्रकट होती है। बिजली को देखना हो, तो काले बादल होने जरूरी हैं।

जिन्हें जीवन को देखना है, उन्हें मृत्यु की पृष्ठभूमि को स्वीकार कर लेनी जरूरी है। जो मृत्यु से राजी हो जाता है, उसके भीतर की जीवन-चिंगारी बहुत प्रकट होकर दिखाई पड़ने लगती है। जो मृत्यु से डरता है, भयभीत होता है, जो मृत्यु से बचता है, उसे जीवन की चिंगारी दिखाई नहीं पड़ती। मृत्यु के स्वीकार के साथ ही अमृत की उपलब्धि है। और हम सब मरने से डरते हैं। ऐसा नहीं है कि इस डर से हम मरने

से बच जाते हैं। मृत्यु तो आती ही है, लेकिन इस डर के कारण जो जीवन हमारे निकट था, उसे हम देखने से वंचित रह जाते हैं। हम भयभीत होते हैं मृत्यु से और जीवन हमारे पास से गुजर जाता है। हमारी आँखें लगी रहती हैं मृत्यु पर और जीवन हमारे निकट से गुजरता रहता है।

जीवन तो अभी और यहीं है।

जीवन को पाने के लिए कहीं भविष्य में जाने की कोई जरूरत नहीं है। जीवित तो आप अभी हैं और यहाँ हैं। न तो पीछे लौटना आवश्यक है, न आगे जाना जरूरी है। जीवन तो मिला ही हुआ है, लेकिन मन आपका या तो पीछे डोलता रहता है उन क्षणों में जो जा चुके हैं, और या फिर भविष्य की चिन्ताओं में, भविष्य की कल्पनाओं में और योजनाओं में भटकता रहता है। उन क्षणों में जो अभी आए नहीं हैं। और इस भांति जीवन की पतली धारा आपके पास से बहती चली जाती है और आप उससे अपरिचित ही रह जाते हैं। उसमें कभी स्नान भी नहीं हो पाता, उससे आपका कभी कोई सम्बन्ध भी नहीं जुड़ पाता।

जीवन की तृष्णा दूर करो।

क्यों ?

इसीलिए ताकि जीवन तुम्हें उपलब्ध हो सके।

जीवन की तृष्णा का अर्थ है—भविष्य।

सभी तृष्णाएं भविष्य में होती हैं। कोई भी वासना अभी नहीं होती। यह बहुत आश्चर्य की बात है। इसी क्षण में आप कोई वासना में नहीं डूब सकते। तृष्णा होती ही है भविष्य में। वह होती ही कल है। वासना के लिए समय चाहिये, उसकी पूर्ति के लिए समय चाहिए, स्थान चाहिये। जब भी आप कुछ चाहते हैं तो सदा भविष्य में चाहते हैं। अगर भविष्य न हो तो चाह मर जाती है, अगर चाह न हो तो भविष्य समाप्त हो जाता है।

दो उपाय हैं—या तो चाह छूट जाये, तो आदमी वर्तमान में आ जाता है, या आदमी वर्तमान में आ जाये तो चाह छूट जाती है। क्योंकि अभी और यहीं चाह को निर्मित करने का उपाय नहीं है।

क्या चाहिये अभी और यहीं ? थोड़ा सोचें।

इसी क्षण—आप कौन सी वासना कर सकते हैं ?

और वासना करेंगे कि आप भविष्य में चले गये।

वर्तमान और वासना का सम्बन्ध नहीं बनता।

आपने कुछ चाहा कि आपने क्षण को छोड़ दिया। कल, आने वाले कल में, आपका मन दौड़ गया।

जीवन की तृष्णा का अर्थ हुआ कि आप जीवन को भी कल में खोज रहे हैं, भविष्य में।

और जीवन यहा है, जीवन अभी है। जीवन तो आप हैं। आप खड़े हैं उसके बीच में—और आपकी आंखें कल पर लगी हैं। इसलिए जो आज है, वह दिखाई नहीं पड़ता और छूट जाता है।

इसलिए सूत्र कहता है कि जीवन की तृष्णा दूर करो, ताकि तुम जीवन को जान सको।

सुख-प्राप्ति की इच्छा से बचो, ताकि सुख तुम्हें उपलब्ध हो सके।

सभी हैं दुःखी, इसलिए नहीं कि जीवन का स्वभाव दुःख है, बल्कि इसीलिए कि हमें सुखी होने की कला नहीं आती। और हमें दुःखी होने की इतनी कला आती है, जिसका कोई हिसाब नहीं। हम दुःख की तलाश में हैं। जो आदमी भविष्य में वासना करेगा—और सभी वासनाएं भविष्य की होती हैं—वह दुःख में पड़ेगा। क्योंकि भविष्य कभी आता नहीं, सिर्फ आता हुआ दिखाई पड़ता है। आता है जो, वह तो वर्तमान है। जो नहीं आता, वह भविष्य है। कुछ भी करो, जो भी मिलेगा, वह वर्तमान होगा। और अगर आपके मन की आदत हो गई भविष्य में जीने की, तो आप आज भी भविष्य में जियेंगे, कल भी, परसों भी। जो भी दिन आएगा, आप भविष्य में हट जायेंगे। और भविष्य मे जो भी आप चाहते हैं, वह मिलेगा कैसे? जब भविष्य ही नहीं आता, तो भविष्य मे चाही गई चाहें पूरी कब होंगीं? दुःख परिणाम होगा, इसलिए वासना का फल दुःख है।

जीवन दुःख नहीं है—वासना दुःख है।

जितनी ज्यादा वासनाएं, उतना ज्यादा दुःख। अगर आप बहुत दु.खी हैं, तो ये मत समझना कि परमात्मा आप पर नाराज है। अगर आप बहुत दुःखी हैं, तो सिर्फ इतनी ही खबर दे रहे हैं कि बहुत वासनाएं है। और वे वासनाए अतृप्त रह जाती हैं, तो दुःख के घाव हृदय में बन जाते हैं।

अगर दुःख ज्यादा हो तो दुःख से बचने की कोशिश मत करना—वासना को छोड़ना।

क्योंकि दुःख तो फल है और वासना बीज है।

और जिसने बीज बो दिया, उसका तीर चल पड़ा। और तीर रोका जा सकता है, जब तक उसने प्रत्यंचा न छोड़ी हो। प्रत्यचा छोड़ देने के बाद, तीर को रोकने का कोई उपाय नहीं है।

जिसने वासना की, वह दुःख पायेगा।

उसने बीज तो बो दिया, उसने फसल तो बिठा दी, फ़ल भी उसी को काटने पड़ेंगे। जो दुःख आप पा रहे हैं, वे अतीत में बोई वासनाओं के बीज हैं। और अगर आप

चाहते हैं कि भविष्य में दुःख न हो, आगे दुःख न हो, तो आज, वर्तमान में वासना के बीज मत बोना। क्योंकि जो बीज आज बोये जा रहे हैं, वे ही, आज नहीं कल फल निर्मित हो जायेंगे।

यह भी समझ लेने जैसा है कि जितना सुख चाहो, उतना दुःख मिलता है। ज्यादा दुःख चाहिए, ज्यादा सुख मांगो।

अगर सच में ही सुख चाहिये, तो सुख मांगना ही मत—फिर तुम्हें कोई दुःखी न कर सकेगा।

फिर इस दुनिया की कोई शक्ति तुम्हें दुःखी नहीं कर सकती। फिर यह सारा जगत भी इकट्ठा हो जाय तो तुम्हें रत्ती भर भी दुःख नहीं दे सकता।

अगर तुमने सुख न मांगा तो तुम दुःख की परिधि के बाहर हो गये।

तुमने सुख मांगा, कि तुम दुःख के जगत में प्रवेश कर गये।

तुम जितना मांगोगे सुख, उतना ही दुःख तुम्हें मिल जायेगा।

यह गणित हमारे ख्याल में नहीं आता है। यह पेराडॉक्सिकल, विरोधाभासी नियम ख्याल में नहीं आता, इसलिए हम बड़े परेशान होते हैं। मांगते हैं सुख और मिलता है दुःख। हम सब प्रयास करते हैं सुख को पाने के, लेकिन मौलिक भूल हो जाती है।

सुख का सम्बन्ध प्रयास से नहीं है—सुख का सम्बन्ध सुख न मांगने से है।

लाओत्से कहता है, मुझ जैसा सुखी कोई भी नहीं, क्योंकि मैं सुख कभी मांगता ही नहीं।

'बिन मांगे मोती मिले'—वह जो नहीं मांगता, उसे सब कुछ मिल जाता है।

और वह जो मांगता है, वह सब कुछ खो देता है।

भिखारी की तरह इस जगत में जो जियेगा, वह दुःखी जियेगा, सम्राट की तरह इस जगत में जो जियेगा, वह सुखी जियेगा। लेकिन किसको कहता हूं मैं सम्राट?

सम्राट मैं उसको कहता हूं, जो सुख मांगता नहीं। और भिखारी मैं उसे कहता हूं, जो सुख मांगता है। तो जिन्हें हम सम्राट कहते हैं आमतौर से, वे तो भिखारी हैं, वे भीख मांगते हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि ऊपर से दिखाई पड़ने वाला भिखारी भीतर से सम्राट होता है।

बुद्ध को हमने देखा, भिक्षा का पात्र लिए हुए सड़कों पर भीख मांगते हैं। लेकिन वह आदमी सम्राट है, वह कुछ भी नहीं मांग रहा है। सुख की वासना छोड़ दी। और तब आदमी सुखी हो जाता है। इसे थोड़ा प्रयोग करें। आप इन दिनों में यहां मेरे पास होंगे—कोई सुख की कामना न रखें और देखें कि मन कैसा सुख से भर जाता है। शान्ति की कामना न करें, और देखें कि अशान्ति कैसे विसर्जित हो जाती

है। सन्तोष की भीख न मांगें और देखें कि कैसे सन्तोष की वर्षा होने लगती है। इसे कर के ही देखें तो ही ख्याल में आ सकेगा।

जीवन का गहनतम प्रयोग है यह। और जीवन के सम्बन्ध में जो भी खोज की जा सकी है, उनमें बड़ी से बड़ी खोज है—सुख मत मांगो, अगर सुखी होना चाहते हो। शान्ति मत मागो, अगर शान्ति चाहते हो। जो मांगोगे, वही खो जायेगा। जो नहीं मागोगे, वही मिल जायेगा। मांगकर तो बहुत देख भी लिया, अब न मांगकर भी देख लो।

मुझ पर भरोसा करने की जरूरत नहीं है, प्रयोग करने की जरूरत है। मेरे कहने से क्या होगा। यह बात बुद्धि में समझ भी आ जाये कि ऐसा है, तो भी परिणाम न होंगे—उसे करना ही होगा। ये थोड़े से दिन हमारे पास हैं, इन थोड़े से दिनों के लिए निर्णय कर लो कि इतने दिनों के लिए कम से कम सुख न मागेंगे, कोई शान्ति न मांगेंगे, कोई सन्तोष न मागेंगे। और देखो क्या परिणाम घटित होता है? और एक बार ख्याल में आ जाये कि सुख मिलता है न मागने से, तो फिर मैं नहीं सोचता कि आप दुबारा कभी मांगने की भूल करेंगे। क्योंकि दु:ख तो कोई भी नहीं चाहता। इतना पता भर चल जाये कि दुःख मांगने से ही मिलता है तो मांगना छोड़ा जा सकता है। मांगने की क्या मजबूरी है! मांगने मे किसको अच्छा भी कहा लगता है। लेकिन यह रहस्य-सूत्र अनुभव में आ जाये तभी।

किन्तु जो महत्त्वाकांक्षी हैं, उन्हीं के समान परिश्रम करो।

छोड़ो महत्त्वाकांक्षा, लेकिन जो महत्त्वाकांक्षी हैं. उन्हीं के समान परिश्रम करो। महत्त्वाकाक्षियों को देखते हैं, कितने पागल होकर श्रम करते हैं। किसी को एम. एल. ए. होना है, किसी को एम. पी. होना है, किसी को मिनिस्टर होना है—कितने पागल की तरह श्रम करते हैं। कैसी उनकी दौड़ है? न सोते हैं, न विश्राम करते हैं—चौबीस घण्टे एक ही चिन्तन। कैसी उनकी भक्ति है, कैसा उनका भाव है।

यह सूत्र कहता है : महत्त्वाकांक्षा तो छोड़ दो लेकिन महत्त्वाकांक्षी जैसा श्रम करता है, वैसा ही श्रम करो।

वह जैसा पागल की तरह दौड़ता है धन के लिए, पद के लिए, यश के लिए—उसके पागलपन में बड़ी खूबी है, उसका पागलपन सीखने योग्य है। कभी देखा है, एक आदमी जब धन के लिए खोज करता है, तो उसकी ध्यानस्थ अवस्था देखी है? और जब आप ध्यान के लिए बैठते हैं तब, तब आप ऐसे बैठे होते हैं कि ठीक है—हो जाये तो हो जाये। लेकिन जब आप धन के लिए दौड़ते हैं, तब आप ऐसा नहीं कहते कि हो जाये तो हो जाये, तब आप जीवन लगा देते हैं। आप सब कुछ लगा देते हैं, जो आपके पास है।

मिट्टी की खोज में आदमी सब कुछ लगा देता है। अमृत की खोज में कुछ भी नहीं लगाना चाहता।

उससे भी सीखो, वह जो पागल है—धन के लिए।

धन का पागलपन तो छोड़ दो, लेकिन पागलपन बचा लो, वह पागलपन काम में आएगा।

व्यर्थ के लिए बहुत लोग दीवाने होते हैं, सार्थक के लिए लोग दीवाने नहीं होते, सार्थक में बड़ी बुद्धिमानी दिखलाते हैं!

मेरे पास लोग आते हैं। एक मित्र—राजनीति, राजनीतिक पद की खोज में लगे रहते हैं। वे मेरे पास आते हैं कि कुछ कृपा करें और ध्यान हो जाये। मैं उनसे बोला कि जब तुम्हें ध्यान करना है, तो तुम मेरी कृपा मांगने आते हो, लेकिन जब तुमको मिनिस्टर होना होता है, तब तुम खुद ही मेहनत करते हो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह कृपा सिर्फ एक झूठा शब्द है? यह सिर्फ तुम्हारी तरकीब है, यह सिर्फ तुम मुफ्त में पाना चाहते हो। तुम भी जानते हो कि अगर राजनीति में आगे बढ़ना है तो मेहनत करनी पड़ेगी, लेकिन ध्यान मे अगर आगे बढ़ना है, तो तुम सोचते हो कोई और कृपा कर दे। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ध्यान में तुम जाना ही नहीं चाहते? जहां तुम जाना चाहते हो, वहा तुम मेहनत करते हो, और जहां तुम नहीं जाना चाहते, वहां तुम लफ्फाजी के शब्दों में पड़ते हो। और मैंने उनसे कहा कि ध्यान रखो, जिस दिन इतनी मेहनत ध्यान के लिए करोगे, उसी दिन कृपा भी सम्भव हो पायेगी।

कृपा भी मुफ्त नहीं मिलती, उसे भी अर्जित करना होता है, उस तरफ भी यात्रा करनी होती है।

और केवल उन्हीं को सहायता मिलती है, जो अपने को सहायता देने में कंजूसी नहीं करते। केवल वे ही पाते हैं प्रसाद, जो प्रयास करते हैं। वह भी मुफ्त नहीं। मुफ्त कुछ भी नहीं है। और परम-सत्य की और परम-आनन्द की खोज तो, मुफ्त कैसे हो सकती है!

यह सूत्र कहता है : छोड़ो महत्त्वाकांक्षा, लेकिन जो महत्त्वाकांक्षी हैं, उन्हीं के समान परिश्रम करो।

जिन्हें जीवन की तृष्णा है, उन्हीं के समान प्राणि-मात्र के जीवन का सम्मान करो।

छोड़ दो जीवन की तृष्णा, लेकिन जो जीवन के लिए दीवाने हैं और जो जीना चाहते हैं किसी भी कीमत पर—वह जो उनकी गुणवत्ता है, उसे मत छोड़ देना। अपने जीवन की तृष्णा छोड़ दो, लेकिन प्राणि-मात्र के जीवन का सम्मान करो। जो सुख के लिए ही जीवन-यापन करते हैं, उन्हीं के समान सुखी रहो, लेकिन सुख की वासना मत करो। सुख को मांगो मत, सुख में जियो।

यह जरा समझ लेने जैसा है।

लोग पूछते हैं, सुख में कैसे जिए?

उनसे मैं कहता हू कि तुम सुख में इसी क्षण जियो, कैसे मत पूछो। सांस लो तो सुख से, हाथ उठायो तो सुख से, चलो तो सुख से, बैठो तो सुख से। तुम जो भी करो, उसे इतने सुखी मन से करो, कि तुम्हारी प्रत्येक क्रिया सुख का झरना हो जाये। सुख के लिए रुको मत और यह भी मत पूछो कि कैसे? तुम जो भी कर रहे हो, क्षुद्र से क्षुद्र कार्य भी—बुहारी लगा रहे हो घर के बाहर, उसे भी सुख से लगाओ, उसमे भी आनन्द लो।

जो भी तुम्हें करना पड़ रहा है, जहां भी तुम खड़े हो, उसे दुःख से मत करो। नहीं तो तुम अगर मोक्ष मे भी प्रवेश कर जाओ, तो भी तुम दुःख से ही प्रवेश करोगे। तुम वहां भी दुःख खोज लोगे। तुम्हारी दुःख खोजने की दृष्टि तुम्हारे साथ होगी, तुम वहा भी अन्धेरा निर्मित कर दोगे। परमात्मा भी मौजूद हो, तो भी तुम कुछ न कुछ भूल-चूक निकाल लोगे, ताकि तुम दुःखी रह सको।

जो भी कर रहे हो, उसे सुख से करो—सुख को मागो मत।

इन शिविर के दिनों मे इसे ख्याल मे रखना।

सुख मे जीना—सुख मागना मत। जो भी हो, उसमे खोज करना कि सुख कहा मिल सकता है, कैसे मिल सकता है। तब एक रूखी-सूखी रोटी भी सुख दे सकती है, अगर तुम्हे सुख लेने का पता है। तब साधारण सा जल भी गहरी तृप्ति बन सकता है, अगर तुम्हे सुख लेने का पता है। तब एक वृक्ष की साधारण छाया भी महलों को मात कर सकती है, अगर तुम्हे सुख लेने का पता है। तब पक्षियों के सुबह के गीत, या सुबह सूरज का उगना, या रात आकाश में तारों का फैल जाना, या हवा का एक झोंका भी गहन सुख की वर्षा कर सकता है, अगर तुम्हें सुख लेने का पता है। सुख मांगना मत और सुख में जीना। मागा कि तुमने दुःख मे जीना शुरू कर दिया।

अपने चारों तरफ तलाश करना कि सुख कहा है?

सुख है। और कितना मैं पी सकूं कि एक भी क्षण व्यर्थ न चला जाये, और एक भी क्षण रिक्त न चला जाये, निचोड़ लू। जहां से भी, जैसे भी सुख मिल सके, उसे निचोड़ लूं। तो तुम जब पानी पियो, जब तुम भोजन करो, जब तुम राह पर चलो या बैठकर वृक्ष के नीचे सिर्फ सांस लो, तब भी सुख में जीना।

सुख को जीने की कला बनाना—वासना की माग नही।

इतना सुख है कि तुम समेट भी न पाओगे। इतना सुख है कि तुम्हारी सब झोलियां छोटी पड़ जायेंगी। इतना सुख है कि तुम्हारे हृदय के बाहर बाढ़ आ जायेगी। और न केवल तुम सुखी हो जाओगे, बल्कि तुम्हारे पास भी जो बैठेगा, वह भी

तुम्हारी सुख की छाया से, तुम्हारे सुख के नृत्य से आन्दोलित हो उठेगा। तुम जहां जाओगे, तुम्हारे चारों तरफ सुख का एक वातावरण चलने लगेगा। तुम जिसे छुओगे, वहां सुख का संस्पर्श हो जायेगा। तुम जिसकी तरफ देखोगे, वहां सुख के फूल खिलने लगेंगे।

तुम्हारे भीतर इतना सुख होगा कि तुम उसे बांट भी सकोगे। वह बंटने ही लगेगा। सुख अपने आप ही बंटने लगता है। वह तुम्हारे चारों तरफ फैलने लगता है। सुख की तरगें तुमसे उठने लगेंगी। और सुख के गीत तुमसे झरने लगेंगे। लेकिन सुख मांग नहीं है—सुख जीने का एक ढंग है।

इस बात के फर्क को ठीक से समझ लेना।

सुख कोई इच्छा नहीं है, सुख जीने की एक कला है—मांगा कि चूक जाओगे।

सीखो—कला को। इसी क्षण से शुरू कर देना। इसी क्षण क्या कमी है!

पक्षी गीत गा रहे हैं, सूरज की किरणें तुम पर बरस रही हैं, चारों तरफ जीवन प्रफुल्लित है और तुम जीवित हो। इसी क्षण सुख की कहां कमी है! इसी क्षण सुख से भरा है सब कुछ।

लेकिन वासना करो और तुम दुःखी हो जाओगे इसी क्षण। मत वासना करो—खाली मौन...फिर कौन तुमसे ज्यादा सुखी हो सकता है!

यह सूत्र कहता है: जो सुख के लिए ही जीवन-यापन करते हैं।

और दुःख ही पाते है। जो सुख के लिए ही जीते हैं, वे सुख कभी पाते नहीं। तुम उनकी फिक्र छोड़ो। तुम सुखी रहो।

हृदय के भीतर पाप के अंकुर को ढूंढकर उसे बाहर निकाल फेंको। यह अंकुर श्रद्धालु शिष्य के हृदय मे भी उसी प्रकार बढ़ता और पनपता है, जैसे कि वासनायुक्त मानव के हृदय में। केवल शूरवीर ही उसे नष्ट कर डालने में सफल होते हैं। दुर्बलों को तो उसके बढ़ने-पनपने, फूलने-फलने और फिर नष्ट होने की राह देखनी पड़ती है।

मन में वर्षों के, जन्मों के सस्कार हैं। और जन्मों-जन्मों तुमने सिवाय दुःख के कुछ और इकट्ठा नहीं किया है। वे संस्कार धक्के मारते हैं और तुम्हें बार-बार दुःख के वर्तुल में प्रविष्ट करा देते हैं।

पाप का एक ही अर्थ है : दुःखी होने की वृत्ति पाप है। यह जरा अजीब लगेगा। यह परिभाषा तुमने कभी सुनी न होगी—दुःखी होने की वृत्ति पाप है।

क्यों?

क्योंकि जो आदमी खुद दुःखी होता है, वह अनिवार्यतः दूसरों को दुःख देने में रस लेता है—इसलिए पाप है।

पाप का अर्थ है : दूसरे को दुःख देना।

लेकिन दूसरे को अगर दुःख देना हो, तो पहले अपने को दुःख देने की कला में निष्णात होना चाहिये। क्योंकि जो तुम्हारे पास नहीं है, तुम दूसरों को दुःख कैसे दे सकोगे? अगर तुम दुःखी नहीं हो तो तुम दूसरे को दुःख कैसे दे सकोगे? तुम्हें दुःखी होना ही चाहिये। और यह साधारण रूप से नहीं, तुम्हें दुःख का बड़ा वैज्ञानिक होना चाहिये—कि तुम दुःख की कई तरकीबें खोज सको, कि तुम हर जगह से दुःख निकाल लो। जहा स्वर्ग भी बह रहा हो, वहा से भी तुम नर्क की धुन निकाल पाओ, तो ही तुम दुःखी हो सकोगे। और स्वर्ग चारों तरफ मौजूद है और बह रहा है, तुम उसमें से नरक खोज लेते हो!

खुद दुःखी होना जरूरी है, दूसरे को दुःख देने के लिए।

दूसरे को दुःख देना पाप है।

तो इसका अर्थ यही हुआ कि मौलिक रूप से स्वयं को दुःख देना पाप है। और जो आदमी स्वयं को दुःख नहीं देता, वह किसी को भी दुःख नहीं देता। वह दे नहीं सकेगा—वह सोच भी नहीं सकेगा। और जो स्वयं को दुःख नहीं देता, वह इतने सुख से भर जायेगा, महासुख से—कि वह उसे बाटना चाहेगा, वह उसे दूसरों को देना चाहेगा। क्योंकि जितना बांटा जाय, सुख उतना बढ़ता है।

दुःख क्यों हम दूसरे को देना चाहते हैं?

हम दुःखी हैं बहुत। और जब भी हम किसी को अपने से ज्यादा दुःखी कर लेते हैं, थोड़ी सी सुख की झलक हमें मिलती है—बस वही हमारा सुख है, उतना ही सुख हम जानते हैं। दूसरा अगर आपसे ज्यादा दुःखी हो जाये, तो आपको थोड़े सुख की झलक मिलती है। वह सुख है नहीं, लेकिन तुलनात्मक, रिलेटिवलि है। जब आप एक बड़ी लकीर खींच देते हैं दुःख की अपने पास, तो आपका दुःख छोटा मालूम पड़ने लगता है। इसलिए हम अपने चारों तरफ दुःख की लकीरें खीचते रहते हैं। दुःखी पति पत्नी को दुःखी करेगा और जब तक ठीक से दुःखी न कर ले, तब तक उसे सुख की झलक न मिलेगी। दुःखी पत्नी पति को दुःखी करेगी, दुःखी बाप बेटे को दुःखी करेगा, दुःखी बेटे बाप को दुःखी करेंगे। यह पूरा समाज हमारा दुःख का एक अन्तर-जाल है, जिसमें हम एक दूसरे को दुःखी कर रहे हैं। और जब भी हम अपने चारों तरफ दुःख के डबरे बना लेते हैं, तो बीच में हमें जरा सुख की सांस मिलती है, कि चलो मैं इतना दुःखी नहीं हूँ, जितने और लोग दुःखी हैं।

और फिर जब हम दूसरों को दुःख देने में लग जाते हैं, तो हम अपना दुःख भूल ही जाते हैं। हमें ख्याल ही नहीं रहता कि मैं भी दुःखी हूँ। हम इतने व्यस्त हो जाते हैं दूसरे को दुःख देने में कि हमें अपनी चिन्ता ही भूल जाती है। इसलिए

दूसरे को दुःख देने वाले लोग एक लिहाज से सुखी मालूम पड़ते हैं—उन्हें अपनी फिक्र ही नहीं। अपने को भुलाने का यह उपाय है।

पाप है दूसरे को दुःख देना—तो पाप हुआ अपने को दुःख देना भी।

यह सूत्र कहता है : पाप के बीज को, अंकुर को निकाल फेंको।

जब भी तुम्हें दुःखी होने की कोई वृत्ति पकड़े, उसे उसी वक्त निकाल फेंकना। उसके साथ मत जाना, उसमें मत बहना, उसके साथ तादात्म्य मत करना। जब भी तुम्हें दुःखी होने की कोई वृत्ति पकड़े, तो तत्क्षण चारों तरफ देखना और सुख को खोजना। दुःख की वृत्ति को निकालके बाहर फेंक देना। अगर तुम दुःखी होने से बच जाओ, तो तुम दूसरे को दुःख देने से बच जाओगे—तुम्हारे जीवन से पाप समाप्त हो जायेगा।

आनन्द पुण्य है।

और जब तुम आनंदित होते हो, तो तुम पुण्यात्मा हो।

मैं नहीं कहता कि तुम दान दोगे, तो तुम पुण्यात्मा हो जाओगे। मैं नहीं कहता कि तुम मंदिर और मस्जिद, और गुरुद्वारे बनाओगे तो पुण्यात्मा हो जाओगे। जरूरी नहीं है—हो सकता है कि वे भी दूसरे के दुःख देने की वृत्ति से पैदा हो रहे हों। हो सकता है, वे भी दूसरे को दुःखी करने की वृत्ति से पैदा हो रहे हों। तुम्हारे पड़ोसी ने लाख रुपये दान दिया हो, तो तुम दो लाख रुपये दान दे सकते हो। क्योंकि तुम्हारा अहंकार जब तक पड़ोसी से बड़ा न हो जाये, तब तक तुम उसे दुःखी न कर पाओगे।

सुना है मैंने एक नगर में, एक बहुत बड़ा दानी आदमी था, जिसने कभी एक पैसा भी दान नहीं किया। लेकिन दानी वह बड़ा था। उसके दान की बड़ी कथा थी, और कभी उसने एक पैसा दान नहीं किया। लेकिन गांव में किसी को भी दान चाहिये हो तो पहले उसी बड़े दानी के पास जाना पड़ता था। वह दानी लिखवा देता था लाख, दो लाख, पांच लाख; क्योंकि उसे देना कभी भी नहीं पड़ता था, देता तो कभी भी नहीं था। मगर जब वह पांच लाख लिखवा देता था, तो पूरे गांव के धन-पतियों के प्राणों में आग लग जाती थी, उनको भी लिखाना पड़ता था। वह कभी देता न था—यही उसका दान था कि पांच लाख लिखवा देता था, दस्तखत कर देता था। फिर गांव भर के पैसे वाले कुछ न कुछ देते थे। क्योंकि फिर पीड़ा मालूम होने लगती है। और ऐसे दानी आपको हर गांव में मिल जायेंगे। और जो लोग दान इकट्ठा करते हैं, वे भलीभांति जानते है कि दो चार नाम होने चाहिये लिस्ट पर, फिर किसी के पास जाओ तो उसके अहंकार को भी चोट लगती है, अब उसे भी कुछ न कुछ देना पड़ता है। साधारण भिखमंगा भी जानता है कि जब घर से निकलता है, तो अपने पात्र में कुछ पैसा डाल लेता है, खुद के ही, क्योंकि जब वह पैसा बजाता है अपने पात्र में, तो आपको भी लगता है कि कोई दे चुका है। खाली पात्र में तो आप

भी डालने को राजी न होंगे, क्योंकि कोई अहंकार को चोट नहीं लगेगी। कोई दे चुका है तो पीड़ा मालूम पड़ती है कि अगर अब मैंने न दिया तो इस भिखमंगे के सामने, मैं दीन हो रहा हूँ।

भिखमंगा भी समझता है कि जब आप अकेले हों तो आपसे नहीं मांगना है, जब चार आदमी आपके साथ मौजूद हों तो आपका पैर पकड़ लेता है—क्योंकि चार के सामने अब इज्जत का सवाल है। दूसरे को दुःख देने के लिए, हम दान भी कर सकते हैं। दूसरे को दुःख देने के लिए हम मंदिर भी बना सकते हैं। दूसरे को दुःख देने के लिए हम कुछ भी कर सकते हैं। तब सब पाप हो जाता है।

आनन्द पुण्य है, क्योंकि जब आप आनन्दित होते हैं, तो जो भी आप करते हैं, उससे आनन्द ही बहता है। जो भी आप करते हैं, जब तक उससे आनन्द न बहने लगे, तब तक आप समझना कि पुण्य की आपको कोई प्रतीति नहीं है। पर पाप के अंकुर उखाड़ न फेंके जायें, तो पुण्य का जन्म भी न होगा। क्योंकि पाप के पत्थर पुण्य के झरनों को रोके रखते हैं।

तो एक बात ख्याल रखना कि जहां भी पता चले कि मैं दुःख की वृत्ति में पड़ रहा हूँ, किसी भी कारण से, तो देर मत करना, उसे तत्क्षण उखाड़ कर फेंक देना। उसके साथ थोड़ी सी भी दोस्ती उचित नहीं है, क्योंकि थोड़ी देर भी आप रुक गये, तो दुःख जड़ें फैला लेगा, आपके भीतर प्रवेश कर जायेगा। बड़े साहस की जरूरत है।

सूत्र कहता है—केवल शूरवीर ही उसे नष्ट कर डालने में सफल होते हैं। दुर्बलों को तो उसके बढ़ने-पनपने, फूलने-फलने और फिर नष्ट होने की राह देखनी होती है।

बड़ी कमजोरी होती है। खुद के दुःख को उखाड़ फेंकने में भी हम कमजोर होते हैं। क्या कारण होगा? क्योंकि लगता तो ऊपर से ऐसा है कि जब हम दुःखी नहीं होना चाहते, तो दुःख की किसी भी चीज को हम उखाड़ फेंकेंगे। लेकिन नहीं, पुराने दुखों से हमारी दोस्ती और निकटता और सामीप्य बन जाता है, वे हमारे सबंधी हो जाते हैं।

आपको ख्याल में न हो, लेकिन आदमी का मन बड़ा जटिल है। अगर आपको कोई बीमारी है, और आप सोचते हैं कि बड़ी बीमारी है और डाक्टर के पास आप जाते हैं, और वह कहता है कि कुछ भी नहीं, सर्दी-जुकाम है। तो आपके मन में बड़ी पीड़ा होती है कि अच्छा, तो सिर्फ सर्दी-जुकाम है, तो आना बेकार हुआ! डाक्टर अगर कह दे कि छोटी-मोटी बीमारी है, तो मन को अच्छा नहीं लगता। आप जैसे बड़े आदमी को छोटी-मोटी बीमारी! बड़े आदमी को बड़ी बीमारी ही होनी चाहिये। मन में कुछ पीड़ा होती है।

अगर आपकी सारी बीमारियां एकदम से छीन ली जायें, तो आप राजी न होंगे, हालांकि आप एकदम से कहेंगे कि नहीं, मैं राजी हूँ, सारी बीमारियां छोड़ने को। लेकिन आप फिर से सोचना, आप राजी न होंगे, क्योंकि आपकी बीमारियों के बिना आप रहेंगे कैसे? आप खाली खाली हो जायेंगे। आप करेंगे क्या? आप रोना किस बात का रोयेंगे? आप शिकायत किस बात की करेंगे? आप पड़ोसियों का सिर किस बात को लेकर खायेंगे? आप चारों तरफ घूमेंगे कौनसा झंडा लेकर, अगर आपकी सारी बीमारियां अलग कर ली जायें? आप बिलकुल खाली और बेकार हो जायेंगे—अनएम्प्लायड, अनऑक्युपाइड, सारी व्यस्तता नष्ट हो जायेगी। आप अचानक पायेंगे कि बिलकुल बेकार है इस जगत में, न कोई बीमारी है, न कोई शिकायत है, तब करें क्या? अभी तो शिकायतें बहुत हैं, तो दिन बीत जाता है, समय मजे से कटता है। अभी तो बड़े दुःख हैं तो उनकी चर्चा कर करके काफी रस मिलता है। सोचा कभी आपने कि आपकी बीमारियां कोई जादू से छीन ले एक क्षण में, आप राजी न होंगे, क्योंकि आपकी बीमारियों का जोड़ ही तो आप समझते हैं, आप हैं। आप ही मिट जायेंगे।

जंजीरें भी बहुत दिनों तक हाथों में रह जायें, तो आभूषण मालूम पड़ने लगती हैं।

बीमारियां भी जिंदगी का एक ढंग हो जाती हैं, ए वे ऑफ लाइफ; एक व्यवस्था बन जाती है। बीमार अपनी बीमारी को भी बचाता है, दुःखी अपने दुःख को भी सम्भालता है—ये सम्पदाएं हो जाती हैं। और जब मैं यह कह रहा हूँ, तो ध्यान रखना कि मैं आप सबकी बाबत कह रहा हूँ। यह मन का नियम है, इसलिए ऐसा मत सोचना कि यह किसी पागल के सम्बन्ध में बात सच होगी—मैं तो अपने दुःख छोड़ना चाहता हूँ। क्योंकि अगर तुम ही अपने दुःख छोड़ना चाहते हो तो तुमने उन्हें कभी का छोड़ दिया होता। उन्हें तुमने पकड़ा है, तो जरूर तुमने कोई तरकीब निकाली है, जिनसे तुम उन्हें सम्भाले हुए हो; अन्यथा कौन रोकता था, तुमने उन्हें फेंक दिया होता। कोई नहीं रोकता, कोई तुम्हें दुःखी नहीं कर रहा, लेकिन तुम्हारे मन के भीतर कोई जाल है, जो तुम्हारे दुःखों को ही बचाता है।

अब मनसुविद कहते ह कि दुःख में भी इन्वेस्टमेन्ट है, दुःख में भी पूंजी लगी है तुम्हारी। एक छोटा बच्चा है, वह देखता है कि जब बीमार होता है तो मां भी पास बैठती है, सिर पर हाथ रखती है। जब बीमार होता है तो बाप भी पास आता है, सिर पर हाथ रखता है। जब बीमार होता है तो न कोई डांटता है, न कोई डपटता है, सभी प्रेम करते हैं। बीमार होता है तो चारों तरफ से करुणा, सहानुभूति उसे मिलने लगती है। बच्चे के मन में अनजाने एक बात बैठ जाती है, कि जब वह बीमार है, तब भला है, तब अच्छा है। और जब वह स्वस्थ होता है तो कोई उसके पास नहीं बैठता, कोई उसके सिर पर हाथ भी नहीं रखता। न बाप उसकी फिक्र करता है,

न माँ उसकी चिन्ता रखती है। डाट-डपट—और सभी उसको सुधारने की कोशिश में लगे रहते हैं। तब सभी—सारा जगत कठोर मालूम पड़ता है।

तो बच्चा अनुभव करता है कि स्वस्थ होने में कुछ न कुछ खराबी है। बीमार होने में कुछ न कुछ भलाई है। बीमारी में सारा जगत अपना हो जाता है, और स्वास्थ्य में सारा जगत पराया हो जाता है। बच्चे के मन में बीमार रहने का रस पैदा हो गया। अब जब भी इसको जीवन में कठिनाई मालूम पड़ेगी, जब भी यह पायेगा कि दुनिया कठोर है, तब अनजाने यह बीमारी की वासना करेगा और जब भी यह पायेगा कि दुनिया में हार रहा है, कोई सगी साथी नहीं, अकेला है, तभी यह बीमार होना चाहेगा। और जो तुम चाहोगे, वह हो जायेगा।

मनस्विद कहते हैं कि सौ में से नब्बे बीमारियां, तुम्हारे निमन्त्रण पर आती हैं। और इन नब्बे के कारण बाकी दस को आने का रास्ता बनता है। मूलतः तुम बुलाते हो, वही आता है। तुम्हारे घर में कोई भी मेहमान बिना बुलाया नहीं है। लेकिन यह हो सकता है कि तुम्हें पता ही न हो कि निमन्त्रण कब भेजा? किस नींद में निमन्त्रण भेज दिया, यह तुम्हें पता न हो? या हो सकता है, निमन्त्रण भेजे बर्षों बीत गये हों, और मेहमान अब आया हो, और बीच का तुम्हें कोई तारतम्य पता न हो। जब भी कोई मुसीबत होती है और तुम सहानुभूति चाहते हो, दया चाहते हो, प्रेम चाहते हो, तुम बीमार पड़ जाते हो। अगर कोई आदमी इसलिए बीमार पड़ा है कि वह सहानुभूति चाहता है, तो वह अच्छा नहीं होना चाहेगा। ऊपर से वह चिकित्सक के पास जायेगा, डाक्टर की खोज करेगा और भीतर गहरे अचेतन में चाहेगा कि बीमार बना रहूँ। उसकी बीमारी मे इन्वेस्टमेन्ट है।

कभी ख्याल किया, आदमी दुःखी भी नही होना चाहता, अगर उससे कुछ फायदा न हो। एक बच्चा गिर पड़े और उसकी मां पास न हो तो वह चारों तरफ देखता है। अगर मां पास नहीं, तो वह रोता नहीं। यह बड़ी हैरानी की बात है—क्योंकि रोना बेकार है, उसमें कोई फायदा नही, उसमे कोई इन्वेस्टमेन्ट नहीं होता, उससे आगे कोई लाभ मिलने वाला नहीं दिखता। क्योंकि जिससे लाभ मिल सका था, वह पास मौजूद नहीं, तो बच्चा चारों तरफ देख लेता है। गिरने से नहीं रोता है, देखके रोता है चारों तरफ कि मां मौजूद है या नहीं। अगर मा मौजूद है तो छाती पीट कर रोने लगता है। अगर मां मौजूद नहीं है, तो बात को आयी-गयी कर देता है।

क्या मामला है?

अभी दुःखी होना भी व्यर्थ है। अभी दुखी होने में कोई सार नहीं है। अभी ठीक मौका नहीं। दुःखी होने का कोई फायदा नहीं। लगने से, चोट से दुःख नहीं आ रहा है। दुःख मन की एक वृत्ति है, उससे भी हम लाभ लेना चाहते हैं! अगर

तत्क्षण इसको मां दिखाई पड़ जाये, वह रोना शुरू कर देगा, अब इससे कुछ लाभ हो सकता है।

आपने देखा है : स्त्रियां घर में बड़े मजे में बैठी रहती हैं, प्रसन्न रहती हैं, गपशप करती हैं; पति आया उनके चेहरे में फर्क हो जाता है, उनके सिर में दर्द होने लगता है, कमर दुखने लगती है, पेट दुखने लगता है, कुछ न कुछ उपद्रव शुरू हो जाता है! पति के घर में प्रवेश के साथ ही, न मालूम कितनी बीमारियां पत्नियों में प्रकट होती हैं! और ऐसा नहीं है कि वे जानके या झूठ इनको पैदा कर लेती हैं। पैदा होती हैं, इन्वेस्टमेन्ट है। पति को देखते से ही! प्रेम की आकांक्षा है। और कोई पति, जब तक पत्नी बीमार न हो, प्रेम देता नहीं। पत्नी बीमार हो तो प्रेम देना मजबूरी हो जाती है। देना ही पड़ता है, न दे तो अपराधी मालूम पड़ता है, तो वह पत्नी बीमार होकर आपमें अपराध का भाव पैदा कर रही है, कि तुम 'गिल्ट' अनुभव करो, कि मैं इतनी बीमार पड़ी हूँ और तुम क्लब की तरफ जा रहे हो। मैं इतनी बीमार पड़ी हूँ और तुम ध्यान कर रहे हो। और मैं इतनी बीमार पड़ी हूँ और तुम पुस्तक, या अखबार पढ़ रहे हो। मैं इतनी बीमार पड़ी हूँ, वह यह कह रही है, उसकी गहरे अचेतन की माग है कि मुझे प्रेम दो। और अगर प्रेम नहीं मिलता तो दुःख के द्वारा प्रेम को मांग रही है। तो अब इस पत्नी को स्वस्थ करना बहुत मुश्किल है, क्योंकि अब ये मामला बीमारी का नहीं है। यह मामला तो बहुत गहरे अचेतन दुःख की पकड़ का है—दुःख में लाभ है।

तुम दुःखी हो, क्योंकि तुम दुःख में लाभ देख रहे हो। और जब तक तुम दुःख में लाभ देखते रहोगे, तब तक तुम दुःखी रहोगे। दुख में कोई भी लाभ नहीं है, क्योंकि दुःख आत्मघात है। और दुःख की कोई भी वृत्ति पैदा हो और कितना ही प्रलोभन दे और कितना ही लाभ का आश्वासन दे, उसे उखाड़ कर फेंक देना। वे सब आश्वासन झूठे हैं, धोखे भरे हैं। और अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर से दुःख की वासना को ऐसे उखाड़ता फेंकता रहे, तो बहुत शीघ्र पायेगा कि जहां-जहां दुःख पैदा होता था, वहीं-वहीं सुख के झरने प्रकट होने शुरू हो गये।

सुख बहुत निकट है, तुम्हारे भीतर भरा है। लेकिन दुःख की आदत जब तक छूट न जाये और दुःख में सुख देखने की वृत्ति न खो जाये—तब तक वे सुख के स्रोत उपलब्ध नहीं हो सकते हैं।

द्वैतभाव

प्रवचन : ३ अप्रैल ७, १९७२, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

४. द्वैतभाव को समग्ररूप से दूर करो।

यह न सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से या मूर्ख मनुष्य से दूर रह सकते हो। वे तो तुम्हारे ही रूप हैं। यद्यपि तुम्हारे मित्र अथवा गुरुदेव से कुछ कम ही वे तुम्हारे रूप हों, फिर भी वे हैं तुम्हारे ही रूप।

...स्मरण रहे कि सारे ससार का पाप व उसकी लज्जा तुम्हारी अपनी लज्जा, तुम्हारा अपना पाप है। तुम संसार के एक अंग हो और तुम्हारे कर्मफल उस महान कर्मफल से अकाट्यरूप से सम्बद्ध हैं।

...और ज्ञान प्राप्त करने के पहले तुम्हे सभी स्थानो मे से होकर निकलना है, अपवित्र और पवित्र स्थानों से एक ही समान।

जैसे जैसे मनुष्य ज्यादा सभ्य हुआ हैं, जैसे-जैसे ज्यादा शिक्षित, सुसंस्कृत हुआ है, वैसे-वैसे ज्यादा चिन्तित, बेचैन और परेशान भी हो गया है। क्या होगा कारण? जैसे-जैसे मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है, दुःख क्यों बढ़ जाता है?

दुःख बढ़ जाता है, इस कारण कि बुद्धि का सारा विकास द्वैत-भाव पर निर्भर है।

बुद्धि तोड़ती है, बुद्धि अलग करती है, विश्लेषण करती है। बुद्धि सीमाएं खींचती है, परिभाषाएं करती है।

हृदय जोड़ता है, सीमाएं तोड़ता है, परिभाषाएं समाप्त हो जाती हैं, रहस्य का जन्म हो जाता है।

और जितना हो जीवन में हृदय, उतनी ही चिन्ता कम हो जाती है। और जितनी हो ज्यादा बुद्धि, उतनी ही चिन्ता बढ़ जाती है।

बुद्धि की प्रक्रिया खण्ड-खण्ड करने की प्रक्रिया है—जैसे कांच का प्रिज्म होता है और सूरज की किरण उसमें से निकले, तो तत्क्षण उसके सात टुकड़े हो जाते हैं, सात रंग दिखाई पड़ने लगते ह। वही किरण प्रिज्म के पहले शुभ्र थी, वही किरण प्रिज्म से पार होकर सात टुकड़ों में बंट जाती है, सतरंगी हो जाती है।

वर्षा में आकाश में इन्द्र-धनुष बन जाता है, क्योंकि वर्षा की बूंदें प्रिज्म का काम कर देती हैं, किरण को तोड़ देती हैं और सात रंगों में बांट देती हैं। बुद्धि ठीक प्रिज्म जैसा काम करती है—जहां भी बुद्धि से देखेंगे, वहां चीजें टूट जायेंगी, अलग-अलग हो जायेंगी। यही बुद्धि का खतरा भी है, यही उसकी उपयोगिता भी है। क्योंकि अगर किसी भी चीज पर सीमा खींचनी हो, ठीक ठीक जानना हो कि क्या है, तो उसे तोड़ना ही पड़ेगा, अन्यथा फिर कुछ भी न जाना जा सकेगा, क्योंकि जगत में तो सभी कुछ जुड़ा हुआ है।

अगर वस्तुतः एक चीज भी जाननी हो, तो तभी जानी जा सकती है, जब सब जा
लिया जाये। और यह तो असम्भव मालूम पड़ता है। एक छोटा-सा कंकड़ का टुकड़
भी इस पूरे अस्तित्व से जुड़ा है। उस ककड़ के टुकड़े के होने में इस पूरे अस्तित्व ने
भाग लिया है। सूरज ने दान दिया है, आकाश ने जगह दी है, पृथ्वी ने वस्तु दी
है—इन सबसे मिलकर बना है पत्थर का टुकड़ा। अनत ने अनंत प्रकार से उसे जीवन
दिया है। तो जब तक हम सबको ही न समझ लें, तब तक उस पत्थर के टुकड़े को भी
हम समझ न पायेंगे।

पर यह तो अति कठिन है। तब तक रुकना पड़ेगा, जब तक सब न जान लिया
जाये? और कैसे हम सबको जान पायेंगे? क्योंकि सब है इतना विराट्। और यह
एक को भी जानना हो, तो शेष को जानना जरूरी है। तो इसका अर्थ तो यह हुआ
कि अज्ञान होगा शाश्वत, हम कभी भी जान न पायेंगे।

बुद्धि जानने में सहायता देती है। सहायता इसलिए देती है कि वह तोड़ देती है,
खड बना देती है। वह कहती है, सबको जानना जरूरी नही है—एक खंड को भी बाटकर
जाना जा सकता है। विज्ञान बुद्धि के सहारे खड़ा हो पाता है। लेकिन खतरा भी है।
और खतरा यह है, जो अनबटा है, उसे बुद्धि बाट देती है। जो अपने आप मे अखंड
है, उसको खंड-खड कर देती है। इसलिए बुद्धि से कुछ भी जान लिया जाये, वह
ज्ञान परम-ज्ञान नहीं हो पाता। वह अधूरा ही होगा, क्योंकि बहुत से हिस्से अनजाने
रह गये, बहुत सी मौलिक बातें बिना खोजी रह गईं। इसलिए विज्ञान कहता है कि
उसकी सारी जानकारी अस्थायी है, वह कभी स्थायी नहीं हो पाती। और इसलिए
विज्ञान को हर रोज अपना ज्ञान बदल लेना पड़ता है। ज्ञान भी रोज बदलता है।

धर्म कहता है, ऐसे ज्ञान का मूल्य ही क्या, जो रोज बदल जाता हो? अस्थायी ज्ञान
का मूल्य ही क्या? तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि जो कल ज्ञान था, और आज
अज्ञान हो गया! वह था तो कल भी अज्ञान, हमें पता नही था। जो आज ज्ञान है,
वह कल अज्ञान हो जायेगा। तो तो अर्थ हुआ कि आज भी, वह है तो अज्ञान ही,
लेकिन हमें पता नहीं था। जैसे-जैसे हमे पता चलेगा, हमारा ज्ञान अज्ञान होता
जायेगा। तो फिर ज्ञान क्या है।

धर्म कहता है : जब तक हम पूर्ण को, पूर्ण की तरह ही न जान लें, तब तक हम
अज्ञानी ही रहेंगे।

पूर्ण को बाटकर जानने में भ्रांति है। उपयोगिता है, लेकिन भ्रांति है। और भ्रांतियां
भी उपयोगी हो सकती हैं। विज्ञान ऐसी ही भ्रांति है, जो बड़ी उपयोगी है। लेकिन धर्म
एक दूसरे ज्ञान की खोज करता है, जो वस्तुतः ज्ञान है, और जो एक बार जान लिये
जाने पर फिर भी अज्ञान नहीं हो सकता—जो शाश्वत है।

इस शाश्वत ज्ञान के लिए क्या करना होगा?

जैसे विज्ञान तोड़ता है—अगर हमें शाश्वत ज्ञान को पाना है, तो हमें जोड़ने की कला सीखनी पड़ेगी। इस सूत्र में उसी कला की ओर इशारा है।

यह सूत्र कहता है : द्वैतभाव को समग्र रूप से दूर करो।

दुई न रह जाये, दो न बचे, एक ही बचे। और जिस दिन तुम्हारे बीच और अस्तित्व के बीच कोई फासला न रह जायेगा, कोई दूरी न रह जायेगी—ऐसा भी न लगेगा कि मैं जानने वाला हूँ, और वह जो जगत है, उसे मैं जान रहा हूँ; वह जाना जाने वाला है—जिस दिन ज्ञेय और ज्ञाता का भी फासला न रह जायेगा—जिस दिन सब द्वैत टूट जायेगा, सब सीमाएं गिर जायेंगी और तुम अस्तित्व के साथ एक हो जाओगे—जैसे ओस की बूंद कमल के पत्ते पर गिरे और सरोवर के साथ एक हो जाये—ऐसा जिस दिन मिलन हो जायेगा अस्तित्व से—उस दिन ही जो जानने योग्य है, वह जाना जाता है। उस दिन ही जो जाना जाता है, वह फिर खोने की संभावना नहीं है। उसी दिन ही जो जाना जाता है, वह मुक्ति लाता है।

विज्ञान शक्ति दे सकता है, लेकिन मुक्ति नहीं।

क्योंकि विज्ञान उपयोगी तथ्य दे सकता है, लेकिन शाश्वत सत्य नहीं।

शाश्वत सत्य की खोज की एक ही प्रक्रिया है और वह यह है—एकत्व की अनुभूति।

लेकिन बड़ा कठिन है। क्योंकि हमारे तो सारे देखने के ढंग ही बुद्धि पर निर्भर हैं। जहां से भी देखें, वहीं से चीजें दो हो जाती हैं।

अभी मैं बोल रहा हूं, आप सुन रहे हैं। यह घटना एक है। यहां बोलने वाला एक छोर है, वहां सुनने वाला दूसरा छोर है—घटना एक है। यहां एक ही घटना घट रही है। यहां बोला जा रहा है, सुना जा रहा है—ये दो चीजें नहीं हैं। एक छोर से बोला जा रहा है, दूसरे छोर से सुना जा रहा है। यह एक ही अनुभव के दो कोने हैं। घटना एक है—लेकिन जैसे ही विचार करेंगे, वैसे बोलने वाला अलग हो गया, सुनने वाला अलग हो गया। सुनने के क्षण में जब आपका मन कोई काम नहीं कर रहा है, मौन सुन रहा है, तब दो नहीं होते। बोलने के क्षण में जब मन कोई काम नहीं कर रहा है, कोई विचार नहीं कर रहा है, शुद्ध बोलना और शुद्ध सुनना जहां मिलते हैं, वहां तो एक ही रह जाता है। न सुनने वाला होता है, न बोलने वाला होता है। और वहीं समझ आती है और वहीं सम्वाद भी होता है। जहां सुनने वाला अलग, बोलने वाला अलग—वहां तो विवाद होता है। वहां तो भीतर विवाद चलता ही रहता है।

वस्तुतः जितना गहरे हम उतरते हैं, उतनी एकता का पता चलता है।

लेकिन जैसे ही सोचते हैं लौटके, वैसे ही लगता है चीजें बंट गयीं, दो हो गई, अलग-अलग हो गयीं। वह जो सुनने वाला है, अलग हो गया; वह जो बोलने वाला है, अलग हो गया।

जब दो व्यक्ति गहरे प्रेम में होते हैं, या गहरी मैत्री में, तो उनके प्रेम में दो नहीं होते। उनके प्रेम में प्रेम ही रह जाता है—वहां प्रेमी भी खो जाता है, प्रेयसी भी खो जाती है। और जब यह खोना होता है, तभी प्रेम का जन्म होता है। जब तक यह खोना न हो, तब तक प्रेम का कोई जन्म नहीं होता। लेकिन जब हम सोचेंगे प्रेम के सम्बन्ध में, तो प्रेमी अलग हो जायेगा, प्रेयसी अलग हो जायेगी।

जब भक्त अपनी पूरी लीनता में होता है, तो भगवान और भक्त मे कोई फासला नही होता। अगर फासला हो तो भक्ति अधूरी है, भक्ति है ही नहीं। वहाँ भी भक्त मिट जाता है, और भगवान भी मिट जाता है, दोनों के बीच एक की ही उपस्थिति रह जाती है। ये दोनों छोर लीन हो जाते हैं और एक ही अस्तित्व रह जाता है। लेकिन जब हम सोचेंगे भक्ति के सम्बन्ध में, तो भगवान अलग है, भक्ति अलग है।

छोड़ें, शायद आपको प्रेम का भी अनुभव न हो, क्योंकि प्रेम का अनुभव भी बहुत मुश्किल हो गया है। और भक्ति का तो होगा ही नहीं, क्योंकि वह तो करीब-करीब असंभव हो गया है। जिस समाज में प्रेम का ही अनुभव मुश्किल हो जाये, उस समाज में भक्ति का अनुभव सम्भव नहीं रह जाता। जो प्रेम ही नही जानते, वे भक्ति कैसे जान पायेंगे।

प्रेम ही संसार की सीढ़ी है, जिससे व्यक्ति भक्ति के मन्दिर तक उठ पाता है।

लेकिन जिन्होंने प्रेम ही नहीं किया जीवन में, वे भक्ति के रस को भी कभी न समझ पायेंगे। इसका यह अर्थ ही नहीं है कि प्रेम ही भक्ति है, इसका इतना ही अर्थ है कि प्रेम भक्ति का प्रशिक्षण है। इसका इतना ही अर्थ है कि इस जगत में भक्ति के करीब से करीब अगर कोई घटना है—तो वह दो व्यक्तियों का प्रेम है।

क्यों ?

क्योंकि दो व्यक्तियों के गहरे प्रेम में भी अद्वैत की झलक उपलब्ध होती है। झलक ही उपलब्ध होती है, लेकिन झलक भी काफी है। और अंधेरे मे जब घनघोर चारों तरफ अंधेरा हो, तो बिजली की एक कौंध भी बहुत कुछ साफ कर जाती है। फिर खो जाती है, बिजली फिर खो जाती है। बिजली कोई दिया नहीं है आपके हाथ में कि आप उससे रास्ते को खोज लेंगे। लेकिन अंधेरे रास्ते पर अंधेरी रात में बिजली कौंध जाये, एक दफे एक झलक भी रास्ते की मिल जाये—तो आपकी दृष्टि बदल जाती है, भय बदल जाता है। आप जानते हैं कि रास्ता है, आप जानते हैं कि रास्ता देख लिया है—अब आप निर्भीक हैं, अब आप खोज सकते हैं, अब आप टटोल सकते हैं।

अब भूल भी होगी, भटकन भी होगी, तो भी आस्था न खोयेगी, क्योंकि आपने रास्ते की एक झलक देख ली है—रास्ता है। अंधेरे में भूल सकते हैं, भटक सकते हैं, देर-अबेर लगेगी, लेकिन मंजिल पर पहुंचना हो जायेगा। क्योंकि रास्ता है, अब एक आस्था पैदा हो जायेगी।

जिन लोगों के जीवन में प्रेम की घटना घट जाती है, उसके जीवन में भक्ति की सम्भावना शुरू हो जाती है। एक आस्था है—दो मिट सकते हैं, इसका कम से कम एक अनुभव हो गया। दो मिट सकते हैं—ऐसी घड़ी भी आ गयी। ऐसा क्षण भी आया, पल भर को आया, बिजली की तरह कौंधा और मिट गया, लेकिन देखा कि वहां दो नहीं थे—एक था।

तो फिर भगवान और भक्त के बीच की सम्भावना भी विश्वास के योग्य हो जाती है। फिर आस्था लायी जा सकती है, फिर भरोसा किया जा सकता है। इसलिए ही कहता हूँ कि भक्ति की सम्भावना तो बहुत मुश्किल हो गयी, क्योंकि प्रेम की ही सम्भावना अति कठिन हो गयी है।

लेकिन, एक बात समझनी जरूरी है, दो के मिटने की घटना को समझना जरूरी है। तब हम किन्हीं और पहलुओं से सोचें, शायद किसी क्षण में आपको भी ऐसा लगा हो कि आप मिट गये हैं

वह क्षण कैसे भी उपलब्ध हुआ हो, वह क्षण कहां से भी उपलब्ध हुआ हो, लेकिन अगर आपके जीवन में कोई भी एक क्षण है, कोई एक सौन्दर्य की अनुभूति है—आप किसी एक फूल के पास बैठे हों, और फूल को देखते-देखते आप मिट गये हों और फूल भी मिट गया हो, और मात्र फूल की सुगन्ध, मात्र फूल का सौन्दर्य शेष रह गया हो—दोनों छोर मिट गये हों और एक पारदर्शी सौन्दर्य का बोध-मात्र रह गया हो—तो आपको ख्याल आ सकता है कि यह सूत्र किस तरफ इशारा कर रहा है। या संगीत के सुनते क्षण में, संगीतज्ञ भी भूल गया हो, आप भी भूल गये हों, मात्र संगीत रह गया हो—तो भी आपको ख्याल आ सकता है कि अद्वैत की बात की क्या प्रतीति होगी। अन्तिम प्रतीति क्या होगी—यह तो जब अनुभव होगा, तभी होगा।

लेकिन अभी आपके जीवन में कभी भी ऐसा कोई क्षण घटा हो, सौन्दर्य का, प्रेम का, किसी रस-बोध का—जहां ऐसा लगा हो कि यहां जानने वाला और जाना जाने वाला, दो नहीं रह गये हैं, विषय और विषयी मिट गये हैं—एक अनुभव की तरंग मात्र रह गयी है, एक लहर जिसमें दोनों छोर खो गये हैं और मध्य का भाग ही रह गया है—ऐसी प्रतीति अगर कभी भी आपको हुई हो, तो इस सूत्र को समझना आसान हो जायेगा।

अगर ऐसी प्रतीति न हुई हो, तो ध्यान में इस प्रतीति को करने का उपाय है। ध्यान में इस भांति डूबने की कोशिश करना कि ध्यान ही न रह जाये। आपको यह ख्याल ही न बचे कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, आपको यह ख्याल ही न बचे कि मैं किसी का ध्यान कर रहा हूँ। आप इतने आनन्द-मग्न हो जाना कि दो मिट जायें।

दोपहर के कीर्तन में सम्भव है—अगर आप पूरी तरह लीन हो जायें नृत्य में, तो नर्तक मिट जायेगा, बाहर का जगत भी खो जायेगा, भीतर की अस्मिता भी खो जायेगी, सिर्फ एक कृत्य रह जायेगा, शुद्ध कृत्य, प्योर एक्ट—नृत्य का, आनन्द का, एक महोत्सव का—उस क्षण में किसी ऊंचाई पर दो का सारा बोध नष्ट हो जाता है और एक ही शेष रह जाता है। वह एक विराट् है, उस एक में सब समाया हुआ है—उसमें ये पास खड़े वृक्ष भी भागीदार होंगे, उसमे यह आकाश भी भागीदार होगा, उसमें यह पृथ्वी भी भागीदार होगी, उसमें यह सारा अस्तित्व भागीदार है। फिर उस अनुभूति के बाहर कुछ भी नहीं है, सभी कुछ उस अनुभूति में समा जाता है। ऐसी प्रतीति का नाम ही ध्यान है। और ऐसी प्रतीति जब इतनी प्रगाढ़ हो जाये, कि खोये ही ना, आप कुछ भी करें, बनी ही रहे। चल या उठें, बैठें या खायें, या पियें, संसार में हों कि संन्यास में हों, दुकान मे हों कि मंदिर मे हों, जब ऐसी प्रतीति के मिटने का कोई उपाय न रह जाये, तो वही ध्यान की प्रतीति समाधि बन जाती है।

इस समाधि की यात्रा पर ही हम निकले हुए हैं। इसलिए इस सूत्र को बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है।

सूत्र कहता है—द्वैत भाव को समग्र रूप से दूर करो। यह न सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से या मूर्ख मनुष्य से दूर रह सकते हो। वे तो तुम्हारे ही रूप हैं। यद्यपि तुम्हारे मित्र अथवा गुरुदेव से कुछ कम ही वे तुम्हारे रूप हों, फिर भी वे हैं तुम्हारे ही रूप।

...स्मरण रहे कि सारे संसार का पाप व उसकी लज्जा, तुम्हारी अपनी लज्जा, तुम्हारा अपना पाप है। तुम संसार के एक अंग हो और तुम्हारे कर्मफल उस महान कर्मफल से अकाट्य रूप से सम्बद्ध हैं।

...और ज्ञान प्राप्त करने के पहले तुम्हें सभी स्थानों में से होकर निकलना है, अपवित्र और पवित्र स्थानों से, एक ही समान।

बहुत सी बातें कही गयी हैं। और बहुत विचारणीय है। यदि यह सच है कि अस्तित्व एक है, और मैं अस्तित्व से अलग थलग नहीं हूँ, मैं कोई द्वित्व नहीं हूँ मेरी सीमाएं काम-चलाऊ हैं, मैं किन्हीं सीमाओं पर समाप्त नही होता हूँ, तो फिर दूसरा भी कोई नहीं है। तो फिर दूसरे के साथ भी जो घट रहा है, वह मेरे साथ ही घट रहा है। थोड़ी दूरी पर सही, लेकिन मेरे साथ ही घट रहा है। अगर महावीर ने यह

कहा है कि चींटी को भी मत मारना, तो इसी अर्थ में कहा है। अहिंसा की पूरी जीवन-दृष्टि अद्वैत के इसी भाव पर निर्भर है।

चींटी को मत मारना—इसका अर्थ यह नहीं है कि चींटी पर दया करना या कि दया की जा सकती है। इसका कुल अर्थ इतना ही है कि जब भी तुम किसी को चोट पहुंचा रहे हो, या दुःख पहुंचा रहे हो, या मार रहे हो, तो तुम्हें पता नहीं कि तुम आत्मघात में ही संलग्न हो।

सभी हिंसा आत्महत्या है।

अगर सारा जीवन मेरे साथ एक है, तो कहीं भी मैं चोट पहुंचाऊं, मैं अपने को ही चोट पहुंचा रहा हूँ। इसलिए इस बात को ख्याल में रखना—जब भी तुम किसी को चोट पहुंचाते हो तो तुम जानो या न जानो, तुम्हें भी चोट पहुंच ही जाती है, क्योंकि दूसरा तुमसे अलग नहीं है। फासला हो सकता है, दूरी हो सकती है और बीच की यात्रा लंबी हो सकती है, लेकिन हम जुड़े हैं और संयुक्त हैं। इसलिए तुम किसी को भी दुःख पहुंचाओ, तो तुम्हें दुःख भोगना ही पड़ेगा। तुम अपने को दुःख पहुंचाए बिना, किसी को दुःख पहुंचाने में सफल नहीं हो सकते—कोई उपाय नहीं है।

किसी को भी दुःखी करके देखो—तुम दुःखी हो ही जाओगे।

और इससे उल्टा भी सही है। तुम किसी को सुखी करके देखो और तुम पाओगे कि सुख न मालूम कितने रूपों में तुम्हारे हृदय में भी गुंजरित हो उठा है। और तुम किसी के रास्ते से एक छोटा सा कांटा भी हटाओ, तो तुम्हारे अपने रास्ते से अनेक कांटे हट जाते हैं। और तुम किसी के रास्ते पर एक छोटा सा फूल भी रखो, तो तुम्हारे रास्ते पर फूल की शैय्या बिछ जाती है। क्योंकि तुम जो भी कर रहे हो, उसकी अनंत गूंज चारों ओर हो जाती है। और इसीलिए हो जाती है अनंत तक उसकी गूंज, क्योंकि तुम जुड़े हो, सयुक्त हो।

एक छोटा सा भी विचार तुम्हारे भीतर पैदा होता है, तो सारा अस्तित्व उसे सुनता है। और थोड़ा सा भाव भी तुम्हारे हृदय में उठता है तो सारे अस्तित्व में उसकी झंकार सुनी जाती है। और ऐसा ही नहीं है कि आज ही—अनन्त काल तक वह झंकार सुनी जायेगी। तुम्हारा यह रूप खो जायेगा, तुम्हारा यह शरीर गिर जायेगा, तुम्हारा यह नाम मिट जायेगा, तुम्हारा कोई नामो-निशान भी पता लगाना मुश्किल हो जायेगा—लेकिन तुमने जो चाहा था, तुमने जो किया था, तुमने जो सोचा था, तुमने जो भावना बनायी थी, वे सब इस अस्तित्व में गूंजती रहेंगी। क्योंकि तुम यहां से भले ही मिट जाओ, तुम कहीं और प्रकट हो जाओगे। और तुम यहां से खो जाओगे, लेकिन किसी और जगह तुम्हारा बीज पुनः अंकुरित हो जायेगा।

हम जो भी कर रहे हैं, वह खोता नहीं।

और हम जो भी हैं, वह भी खोता नहीं। क्योंकि हम एक विराट् के हिस्से हैं। लहर मिट जाती है, सागर बना रहता है और वह जो लहर मिट गई है, उसका जल भी उस सागर मे शेष रह गया है।

इसे बहुत तरह से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इसका व्यापक परिणाम तुम्हारे जीवन, तुम्हारे आचरण, तुम्हारे भविष्य पर होगा। अगर यह बात ठीक से ख्याल में आ जाये, तो तुम दूसरे ही आदमी हो जाओ।

एक ढंग की जिन्दगी तुमने बनायी है, उस जिन्दगी का मूल आधार यह है कि मैं अलग हूँ। और इसीलिए आदमी इतना चिन्तित और दुःखी और परेशान है, क्योंकि तुम अलग हो नहीं, तुम्हारे अलग होने की सब कोशिश निष्फल जाती है, आखिर मे तुम पाते हो कि विफल हो गये।

मृत्यु क्या है?

मृत्यु सिवाय इसके कुछ भी नहीं है कि तुम्हे जो वहम् था कि मै अलग हूँ—वह इस वहम् को तोड़ देती है। मृत्यु तुम्हें अद्वैत में वापस ले जाती है। काश, तुम खुद ही अद्वैत मे वापस जा सकते, तो फिर मृत्यु तुम्हारे लिए घटती ही नहीं। लेकिन तुम्हारे लिए मृत्यु बिल्कुल जरूरी है, क्योंकि तुम अपनी तरफ से अद्वैत में लौटने की कोई आकाक्षा नहीं रखते।

जन्म के पहले भी तुम अद्वैत में थे और मृत्यु के बाद भी तुम अद्वैत मे वापस पहुंच जाते हो। बीच मे थोड़ी देर की लहर—बीच मे थोड़ी देर का लहर का शोर-गुल, थोड़ी देर के लिए लहर का उठना, सूरज की किरणों मे नाचना—थोड़ी देर के लिए लहर को भी ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं भी हूँ। और लहर को यह लगता होगा कि सागर से अलग है। लगता ही होगा। और यह भी लगता होगा कि मेरे आस-पास जो लहरें उठ रही हैं, मुझसे भिन्न हैं। और यह भी लगता होगा, क्योंकि इसके पीछे तर्क भी हैं।

लहर का भी अगर तर्क हो, उसके पास भी बुद्धि हो, तो लहर भी सोचेगी कि मैं एक कैसे हो सकती हूँ दूसरी लहरों जैसी। कोई लहर बहुत छोटी है, मैं इतनी बड़ी हूँ। मैं बहुत छोटी हूँ, कोई लहर पहाड़ जैसी बड़ी है। हम सब भिन्न भिन्न है, हम कैसे एक हो सकते ह? और फिर यह भी तो ख्याल लहर को आयेगा ही कि कोई लहर गिर रही है, और मैं तो अभी जन्म पा रही हूँ, उठ रही हूँ—तो गिरती हुई लहर से मेरी एकता कैसी हो सकती है! अगर मैं गिरती हुई लहर से एक होती, तो उसके साथ गिरती? और अगर गिरने वाली लहर मेरे साथ एक होती तो मेरे साथ उठती?

आप देखते हैं, कोई मर रहा है। आप जवान हैं, कोई बूढ़ा हो गया है, कोई

बच्चा है—आप एक कैसे हो सकते हैं? जब आप मरेंगे तो सभी आपके साथ मर जाते, अगर एक होते।

लेकिन हम जानते हैं कि एक लहर उठ रही है, दूसरी लहर गिर रही है, फिर भी लहरें एक हैं; भीतर, नीचे जुड़ी हैं। और जिस जल से यह उठ रही है लहर, उसी जल में गिरने वाली लहर वापस लौट रही है। इन दोनों के नीचे के तल में कोई फासला नहीं है। यह एक ही सागर का खेल है। थोड़ी-सी देर के लिए लहर ने एक रूप लिया, फिर रूप खो जाता है और अरूप शेष रह जाता है।

हम भी लहरों से ज्यादा नहीं हैं।

इस जगत में सभी कुछ लहरवत् है।

एक वृक्ष भी एक लहर है, एक पक्षी भी एक लहर है, एक पत्थर भी, एक मनुष्य भी। अगर हम लहरें हैं एक ही सागर की, तो इसकी तो व्यापक निष्पत्ति होगी।

इसकी निष्पत्ति इस सूत्र में है।

यह मत सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से या मूर्ख मनुष्य से दूर रह सकते हो।

यह मत सोचो कि बुरा आदमी बुरा है, और तुम भले हो। क्योंकि बुरा भी तुमसे जुड़ा है। और सच तो यह है कि अगर बुरा जगत से मिट जाय, तो भले भी उसी दिन मिट जायेंगे। अगर जगत में शैतान न हो, अगर जगत में असाधु न हो, अगर चोर, हत्यारा, बेईमान न हो, तो उसके साथ ही साधु भी मिट जायेंगे। साधु, असाधु के बिना कैसे जी सकता है? यह कभी सोचा—साधु जीता ही असाधु के साथ है! वह एक ही सिक्के का दूसरा पहलू है। वह जो अच्छा आदमी है, शुभ आदमी है, नैतिक है, धार्मिक है—वह भी जीता है अधार्मिक के कारण। अधार्मिक के बिना वह भी जी न सकेगा।

रावण के बिना राम के होने का कोई उपाय नहीं है।

न ही राम के बिना रावण के होने का कोई उपाय है। इसलिए जो ऊपर-ऊपर देखते हैं, वे सोचते हैं कि राम और रावण में बड़ी दुश्मनी है। जो भीतर देखते हैं, वे पाते हैं कि इनसे ज्यादा गहरी मैत्री खोजनी कठिन है। क्योंकि जिसके बिना हम हो ही न सकें, उसको शत्रु कहियेगा? जिसके बिना हम हो ही न सकें, वही हमारा मित्र है। जिसके बिना अस्तित्व ही सम्भव न होगा, जो हमारा आधार है, उसको शत्रु कहियेगा? तो फिर शत्रु की सारी परिभाषा ही बदलनी पड़ेगी। फिर तो शत्रु मित्र से भी निकट हो गया।

राम हो सकते हैं रावण के बिना?

कभी सोचा—राम की कथा में रावण को काट दें, तो राम की सारी कथा एकदम व्यर्थ हो जायेगी। रावण के कारण ही सारा रस है। रावण की मौजूदगी के कारण ही

राम की सारी गरिमा है। वह जो राम का शुभ है, वह रावण की अशुभ की पृष्ठभूमि में ही उभरता है।

रावण के बिना राम वैसे ही होंगे, जैसे ब्लैक-बोर्ड के बिना उस पर लिखे हुए सफेद अक्षर हो जायेंगे। ब्लैक-बोर्ड हट जाये, सफेद अक्षर खो जायेंगे। वे सफेद अक्षर उभरकर दिखते थे—इसलिए नहीं कि वे सिर्फ सफेद थे, बल्कि इसलिए भी कि काले तख्ते पर थे। उनकी सफेदी मे काले तख्ते का हाथ था। काले तख्ते के कारण ही वे इतने शुभ्र मालूम होते थे। काला तख्ता हट गया, वे शुभ्र अक्षर भी खो गये।

बड़े मजे की बात है कि अगर साधुओं की आकाक्षाएं पूरी हो जाय, और जगत साधु हो जाये, तो सबसे पहले मिटने वाली चीज होगी, वह साधुओं का अस्तित्व होगा। साधु अपने को ही मिटाने में लगे रहते हैं। अभी तक सफल नही हो पाये। कभी भी सफल नहीं हो पायेंगे, क्योंकि वे हो ही नहीं सकते, असाधु के बिना। जैसे रात के बिना दिन का होना असभव है, और जैसे अंधेरे के बिना प्रकाश का होना असंभव है, और जैसे मृत्यु के बिना जन्म का होना असंभव है, वैसे ही सभी विपरीत आपस में जुड़े हैं। तो यह कोई बुद्धिमान न सोचें कि जो मूढ हैं, उनसे वे अलग हैं। कोई सुंदर व्यक्ति यह न सोचे कि कोई कुरूप है, तो उससे वह अलग है। और कोई स्वस्थ आदमी यह न सोचे कि बीमार से वह भिन्न है। हम सब गहरे में जुड़े हैं। हम सब जुड़े हैं।

अगर यह जोड़ ख्याल में आ जाये, तो बुद्धिमान का अहंकार गिर जायेगा। क्योंकि बुद्धिमान अहंकार ही क्या कर रहा है? वह यही अहंकार कर रहा है कि मैं मूढ़ नहीं हूँ। लेकिन मूढ़ के बिना वह हो नहीं सकता। वह मूढ़ के आधार पर ही खड़ा है। अहंकार का भी क्या बल है? अहंकार से ज्यादा नपुसक कोई चीज है जगत मे? बुद्धिमान का अहकार यही है कि मैं मूढ़ नहीं हूं, लेकिन मूढ़ के बल पर ही वह खड़ा है।

नेता सोचता है कि मैं अनुयायी नहीं हूँ, लेकिन अनुयायियों के बिना क्या नेता हो सकता है? अनुयायियों की वजह से ही वह नेता है।

महान पुरुष सोचते हों कि वे महान हैं—तो वे महान नहीं हैं, क्योंकि वे इस बात को भूल गये हैं कि क्षुद्र लोगों के कारण ही महान दिखाई पड़ते हैं। महान व्यक्ति को यह बात भी ख्याल मे आ ही जायेगी कि मैं क्षुद्र लोगों के कारण ही महान दिखायी पड़ रहा हूँ। तब तो महानता भी क्षुद्र हो गयी। क्योंकि जिस महानता को क्षुद्रता की दीवाल का सहारा चाहिये हो, उस महानता में महानता भी क्या रही! और बात दोनों तरफ एक सी ही है।

अगर बुद्धिमान को यह दिखाई पड़ जाये कि मूढ़ता भी मेरे ही सिक्के का दूसरा

पहलू है, तो मूढ़ के प्रति उसका जो अपमान है, जो अवमानना है, वह खो जायेगी। मूढ़ के प्रति एक बन्धु-भाव पैदा हो जायेगा। अगर साधु को यह दिखाई पड़ जाये कि असाधु मेरे ही सिक्के का दूसरा अंग है, तो साधु के मन में जो असाधु की निन्दा है, वह समाप्त हो जायेगी। असाधु के प्रति भी गहरी मैत्री और प्रेम का उदय हो जायेगा। और जब तक किसी साधु में ऐसी करुणा पैदा न हो, तब तक जानना कि उसे अभी अद्वैत का कुछ भी पता नहीं है।

अद्वैत का पता होते ही—वह जो विपरीत है, वह भी मेरा हिस्सा हो जाता है। तो फिर पुण्यात्मा जानता है कि मेरा दूसरा हिस्सा पापी है। और पुण्यात्मा यह भी जानता है कि जब तक पृथ्वी पर पाप हो रहा है, तब तक मैं भी भागीदार हूँ।

जरा जटिल है यह बात, समझ लेनी पड़ेगी।

जब तक पृथ्वी पर पाप हो रहा है, तब तक मैं भी भागीदार हूँ—चाहे मैं पाप करूं या चाहे मैं पाप न करूं। अगर मैं पाप करूं, तो मैं भागीदार हूँ ही, अगर मैं पाप न भी करूं तो भी। चूंकि मैं इस जगत-चेतना का एक हिस्सा हूँ, और यह चेतना पाप करती है, तो मैं भागीदार हूँ।

बुद्ध ने कहीं कहा है कि जब तक एक भी व्यक्ति बन्धन में है अज्ञान के, तब तक कोई भी मुक्त कैसे हो सकेगा? एक भी लहर अगर सागर की गन्दी है, तो दूसरी लहर पवित्र कैसे हो सकेगी? यह तो तभी हो सकता था, जब लहरें अलग-अलग होतीं, तब एक लहर पवित्र हो जाती और एक अपवित्र रह जाती। लेकिन अगर लहरें एक ही सागर का हिस्सा हैं, तो पवित्रता, अपवित्रता का द्वन्द्व हमें छोड़ देना पड़ेगा, पुण्य और पाप का भेद हमे छोड़ देना पड़ेगा। और हमें यह जानना पड़ेगा कि ये दोनों ही एक साथ हैं। और जो व्यक्ति ऐसा समझ लेता है, देख लेता है कि दोनों एक साथ हैं, वह दोनों के पार चला जाता है। और वह जो दोनों के पार चला जाता है, वही सन्त है।

इसे हम थोड़ा ख्याल में लें।

साधु के विपरीत असाधु है, असाधु के विपरीत साधु है। सन्त के विपरीत कोई भी नहीं है! इसलिए हम बुद्धत्व को ज्ञान से अलग रखते हैं। ज्ञानी के विपरीत अज्ञानी हैं, लेकिन अज्ञान और ज्ञान को जो एक ही जैसा समझ लेता है और अज्ञान और ज्ञान को देख लेता है कि दोनों जुड़े हैं, उसको हम बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, प्रज्ञा को उपलब्ध हुआ, ऐसा कहते हैं।

वास्तविक ज्ञान, अज्ञान के विपरीत नहीं है, ज्ञान और अज्ञान दोनों से छुटकारा है।

यह जरा कठिन ह।

यह भी हमारी समझ में आता है कि अज्ञान से छुटकारा कर लें और ज्ञानी हो जायें। यह भी हमारी समझ में आता है कि पाप को छोड़ दें और पुण्यात्मा हो जायें।

यह भी हमारी समझ में आता है कि दुश्चरित्रता को छोड़ दें, सच्चरित्र हो जायें। लेकिन यह समझ द्वैत पर खड़ी है। गहरे धर्म से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यह समझ बचकानी है! यह समझ नासमझी से भरी है। यह ऊपर-ऊपर समझ मालूम पड़ती है; भीतर, भीतर बिलकुल नासमझी है। क्योंकि ये दोनों चीजे विपरीत दिखाई पड़ती है, लेकिन भीतर जुड़ी हैं।

इसका तो यह भी अर्थ हुआ—गुरजियफ कहता था कि तुम दुनिया मे जितना चरित्र बढ़ाओगे, उतना ही तुम दुश्चरित्रता भी बढाओगे। समझना अड़चन की बात मालूम पड़ती है। और गुरजियफ ठीक कहता है—क्योंकि दोनों का अनुपात सदा समान होगा। इसलिए दुनिया में जितनी नीति बढ़ती है, उतनी अनीति भी बढती है।

आमतौर से लोग सोचते हैं कि एक युग था, जब नीति ही नीति थी, गलत है, ऐसा कोई युग नहीं हो सकता। ऐसा कोई युग नहीं हो सकता, जब नीति ही नीति रही हो। इसका एक ही मतलब हो सकता है कि नीति इतनी कम रही होगी, कि अनीति भी बहुत कम रही होगी। इसलिए हमें पता नहीं चलता कि अनीति थी। आज दोनों चीजें बहुत बढ़ गई हैं। आज नीति भी है, तो शिखर पर, और अनीति भी है, तो भी शिखर पर। इसलिए दोनों चीजे बहुत साफ दिखाई पड़ती है। आज फासला स्पष्ट दिखाई पड़ता है, क्योंकि दोनों अति पर पहुच गयी हैं। दोनों एक साथ घटती और बढ़ती हैं।

इसे हम ऐसा समझें, कि अगर आप चाहते हों कि पहाड़ छोटा रहे, तो छोटी खाई बनेगी पास। अगर आप चाहते हैं कि पहाड़ बहुत बड़ा हो, आकाश को छुए, तो उतनी ही बड़ी खाई भी पास में बन जायेगी। आप सोचते हों कि पहाड़ तो बहुत बड़ा हो और खाई बिलकुल न हो, तो आप नासमझ हैं, यह नहीं हो सकता।

नीत्शे ने कहा है कि जिस वृक्ष को आकाश को छूने की आकांक्षा हो, उसको अपनी जड़ें पाताल तक भेजनी पड़ती हैं।

जितना वृक्ष ऊपर उठता है, उतनी ही जड़ें नीचे जाती हैं। आप यह सोचते हों कि वृक्ष तो आकाश छू ले और जड़ें बिलकुल नीचे न जायें, तो आप पागल हैं। कोई मौसमी पौधा आकाश नहीं छू सकता, उसकी जडें ही इस योग्य नही होतीं। जितना ऊपर उठना हो, उतना ही नीचे भी जाना पड़ता है, यह है जीवन का अनुपात। तो अगर आप चाहते हैं कि समाज बहुत चरित्रवान हो जाये, तो आपको तैयार होना चाहिये कि समाज में उसी हैसियत के चरित्रहीन लोग भी पैदा हों। अगर आप चाहते हैं कि समाज बहुत बुद्धिमान हो जाये, तो ठीक उसी अनुपात के गैर-बुद्धिमान भी पैदा हों। अगर आपको बड़े बुद्धिमान चाहिए, तो बड़े मूढ़ स्वीकार करने होंगे। उनसे बचने का कोई उपाय नहीं है।

जीवन का गणित ऐसा है, इसमें कुछ भी किया नहीं जा सकता। अगर आप चाहते

हैं बहुत सुन्दर लोग हों, तो बहुत कुरूप लोगों को बर्दाश्त करना होगा। क्योंकि सुन्दर हो ही सकता है कुरूप के विपरीत। ज्ञानी हो ही सकते हैं अज्ञानी के विपरीत। कोई दूसरा उपाय नहीं। और अगर आप चाहते हैं कि दुनिया में पाप बिलकुल न हो, तो आपको पुण्य को भी छोड़ देने के लिए तैयार होना होगा। फिर पाप नहीं हो सकते। आप चाहते हों दुनिया में कुरूपता न हो, तो आपको सौन्दर्य के सब मापदण्ड तोड़ डालने चाहिए। आपको सौन्दर्य की बात ही छोड़ देनी चाहिये, फिर कोई भी कुरूप न होगा। क्योंकि बिना सौन्दर्य के मापदण्ड के कुरूप को कैसे खोजियेगा? आप चाहते हैं कि दुनिया में मूढ़ता न हो, तो आपको बुद्धिमानों को समाप्त कर देना होगा। चाहते हों कि असाधु न हों तो साधुओं को नमस्कार कर लेनी होगी। ये दोनों साथ-साथ होंगे। सभी विपरीत साथ-साथ होते हैं।

पर एक उपाय है—विपरीत मे चुनो ही मत।

यही यह सूत्र कह रह है—विपरीत में चुनो ही मत। जान लो कि दोनों एक ही हैं। सौंदर्य और कुरूप दोनों एक ही मापदण्ड के कारण हैं। बुद्धिमान और बुद्धू दोनों एक ही मापदंड के कारण हैं। दोनों के पार उठ जाओ। दोनों के जो पार उठ गया, उसे ही हम सत कहते हैं, परमहंस कहते हैं। ये दोनों के जो पार उठ गया, उसको ही हम परम-ज्ञानी कहते हैं। क्योंकि वही जान पायेगा कि सत्य क्या है। जो दो में कहीं भी उलझा है—इधर या उधर—वह सत्य को कभी भी न जान पायेगा। क्योंकि सत्य दोनों को समाहित करता है।

और जो चुनाव करता है—वह एक को चुनता है, दूसरे को काटता है। तो वह दूसरा कहां जायेगा? वह दूसरा भी है। आप कहते हैं, परमात्मा प्रकाश है, तो फिर अंधेरे का क्या होगा? अच्छा लगता है आपको प्रकाश, इसलिए आप परमात्मा को प्रकाश कह लेते हैं। यह आपकी पसंदगी की ही खबर देता है, लेकिन फिर अंधेरे का क्या होगा? अंधेरा भी है। और अगर परमात्मा है सिर्फ प्रकाश, तो इसका अर्थ हुआ कि जगत में फिर दो परमात्मा होंगे, एक अंधेरे का भी परमात्मा होगा। और तब बड़ी झंझट होगी। और ये दो परमात्मा लड़ते रहें, कोई भी जीत नहीं सकता। यह द्वंद्व अंतहीन और व्यर्थ होगा। और यह द्वद्व झूठा होगा। क्योंकि प्रकाश के होने के लिये अंधेरे की जरूरत पड़ती है और अंधेरे के होने के लिए प्रकाश की जरूरत पड़ती है, तो यह द्वद्व झूठा होगा। यह लड़ाई, माक-फाइट होगी। जैसे पहलवान अक्सर लड़ते हैं, वे सब भीतर मिले होते हैं, सिर्फ दिखावा और काफी शोर-गुल मचता है। बड़ी कुश्ती होती है, देखने वाले बड़े प्रभावित होते हैं, बड़े आंदोलित होते हैं। किंतु सब सौदा होता है, सब भीतर से तय होता है। और कौन जीतेगा यह भी तय होता है। कौन हारेगा इस बार, यह भी तय होता है। एक बार एक

जीत जाता है, दूसरी कुश्ती में फिर दूसरा जीत जाता है, तीसरे नगर की कुश्ती में फिर दूसरा जीत जाता है। और यह सब सांझा है।

ठीक अन्धेरे और प्रकाश के बीच ऐसे ही साझेदारी है। उनके बीच कोई लड़ाई नहीं है। और लड़ाई जिनको दिखती है, वे नाहक ही उत्तेजित हो रहे हैं, वे नाहक ही परेशान हो रहे हैं। लेकिन दोनों के पार उठा जा सकता है। दोनों के पार में दोनों ही समाविष्ट हो जाते हैं। परमात्मा दोनों है और दोनों नहीं है। न तो परमात्मा प्रकाश है, और न परमात्मा अन्धकार है। परमात्मा दोनों है। और जब दोनों है, तो फिर हम उसे प्रकाश भी नहीं कह सकते, अन्धकार भी नहीं कह सकते। वह द्वन्द्वातीत है, वह दोनों के पार है, वह बियॉन्ड ह।

यह सूत्र कहता है: यह न सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से या मूर्ख मनुष्य से दूर रह सकते हो, वे तो तुम्हारे ही रूप हैं, यद्यपि तुम्हारे मित्र अथवा गुरुदेव से कुछ कम ही वे तुम्हारे रूप हों, फिर भी वे हैं तुम्हारे ही रूप।

भला तुम सोचो कि तुम्हारे जो निकटतम हैं, उतने निकट वे नहीं हैं। लेकिन कितने ही दूर हों—सब दूरी निकटता का ही रूप है। इससे उल्टा भी सच है। चाहे तुम कितना ही किसी के पास रहो, सब पास होना भी दूरी का ही एक नाम है। कितने ही पास रहो। किसी के कितने ही निकट आ जाओ, दूरी तो बनी ही रहती है। छाती से छाती मिलाकर बैठ जाओ, तो भी दूरी बनी रहती है। वह जो निकटतम भी है, वह भी दूरी का ही एक रूप है। थोड़ी होगी दूरी, लेकिन थोड़ी और ज्यादा दूरी में क्या फर्क है? दूरी तो दूरी है—क्या फर्क है? एक कोस का फासला है मेरे और तुम्हारे बीच, कि एक इंच का फासला है—फासला तो फासला है।

जो निकट है, वह भी दूर है।

जो दूर है, वह भी निकट है।

क्योंकि दूरी और निकटता एक ही मापदण्ड पर तौले जाते हैं—फासला है। दोनों ही फासले के नाम हैं। दूरी और निकटता दोनों ही दूरी के नाम हैं। मित्र पास होगा, शत्रु दूर होगा। जो तुम्हें प्रिय है, पास लगता होगा, जो तुम्हे अप्रिय है, दूर लगता होगा—लेकिन थोड़ा गहरे खोजेंगे, तो पायेंगे यह सब सम्बन्ध हैं, और सभी सम्बन्ध दूरियों के बीच होते हैं। जिससे तुम्हारी निकटता इतनी ज्यादा हो गई कि फासला न रह गया, उससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध भी न रह जायेगा। सम्बन्ध के लिए दूरी चाहिये। तुम कहते हो यह मेरी पत्नी है, यह मेरी प्रेयसी है, यह मेरा बेटा है, यह मेरा पिता है—यह सब दूरी के नाम हैं। सम्बन्ध तो दूरी में ही तय होता है।

अगर नदी के दोनों किनारे इतने पास आ जायें, इतने पास कि फासला ही न रहे, तो फिर बीच में सेतु बनाने की कोई जरूरत न रहेगी। अगर नदी के किनारे इतने पास

आ जायें कि उनमें कोई फासला न रहे, तो नदी खो जायेगी और वे किनारे न रह जायेंगे, वह एक ही किनारा हो जायेगा।

हमारे सब सम्बन्ध दूरियों के नाम हैं, या दूरियों को छिपाने की तरकीबें हैं।

जब हम सम्बन्ध के नाम रख लेते हैं, तो ऐसी भूल हो जाती है कि दूरी समाप्त हो गई। कहते हैं किसी को कि मेरी पत्नी है, तो ऐसा लगता है कि दूरी मिट गई। लेकिन पति और पत्नी उतनी ही दूरी पर हैं, जितनी दूरी पर कोई हो सकता है। फासला मिटता ही नहीं। फासला इस संसार में मिट ही नहीं सकता। इस संसार में तो फासले रहेंगे ही। हां, इस संसार के ऊपर जो अपनी चेतना को उठा लेता है, वह अचानक पाता है कि फासले खो गये। तब नदी किनारा हो जाती है, किनारा नदी हो जाता है। तब कोई अन्तर नही है। तब नाव नदी हो जाती है, नदी नाव हो जाती है। तब फासले बिलकुल गिर जाते हैं, क्योंकि विपरीत के बीच में भी एक का अनुभव हो जाता है। वह जो एक की प्रतीति है, विपरीत के बीच, वह ख्याल में आ सके, इसलिए ये नियम और ये सूत्र हैं।

स्मरण रहे कि सारे संसार का पाप व उसकी लज्जा, तुम्हारी अपनी लज्जा है और तुम्हारा अपना पाप है।

इस जगत में अगर किसी को साधु होने का गौरव है, तो समझना कि वह आदमी अभी तक साधुता को समझ नहीं पाया है। और अगर कोई कहता हो कि मैं हूं पुण्यात्मा, और तुम हो पापी, तो समझना कि यह आदमी बड़ी भ्रान्ति और बड़े अज्ञान में पड़ा है। जिसको भी प्रतीति होगी थोड़ी-सी भी, जीवन के सत्य की, उसे तत्क्षण दिखाई पड़ेगा कि जहां भी, कहीं भी कुछ हो रहा है, मैं भी उसमें भागीदार हूं। अगर वियतनाम में युद्ध होता हो, वहां आदमी कटते हों, अगर बंगला देश में युद्ध होता हो, वहां आदमी कटते हों, या कहीं भुखमरी हो, या कहीं हत्या हो, हिंसा हो, लूट हो, तो मैं भी भागीदार हूं। निश्चित ही सीधे-सीधे मैंने कुछ भी नही किया है—न तो मैं वियतनाम में युद्ध करने गया हूं, न बंगला देश में किसी की हत्या की है, तो सीधा लगता है कि मेरी क्या जिम्मेवारी होगी, मेरा क्या सम्बन्ध होगा? लेकिन इस जगत में जो भी हो रहा है इस क्षण—मैं इस जगत का हिस्सा हूं। और इस जगत में जो भी कहीं प्रकट हो रहा है, उसमें मेरा हाथ है, क्योंकि मैं इस जगत में हूं, मेरा होना भागीदारी है। होने मात्र से मैं भागीदार हो गया हूं। और जरूर जाने-अनजाने मैं ऐसे काम कर रहा होऊंगा, जो बहुत फासले पर होंगे, लेकिन जिनका परिणाम वहां प्रकट होता होगा।

अगर मैं कहता हूं कि मैं हिंदू हूं, मुसलमान नहीं हूं, तो मैं दुनिया में कलह पैदा करवा रहा हूं। भला मैं हिंदु-मुस्लिम दंगे में भाग न लूं और जब हिंदू-मुस्लिम दंगा

हो, तो यह भी हो सकता है कि मैं समझौता करवाने जाऊं और अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम हैं, यह भी गीत गाऊं। और लोगों में भाई-चारा पैदा करवाने की कोशिश करूं, लेकिन मैं कहता हूँ कि मैं हिंदू हूँ, दूसरा मुसलमान है—हम दोनों अलग हैं। दंगा-फसाद में मैं भागीदार नहीं होऊंगा, लेकिन दंगा-फसाद मे मेरा हाथ है। नहीं मैं लड़ने जाता हूँ वियतनाम में, या चीन में या बंगला देश में या कहीं और, लेकिन मैं मानता हूँ कि मैं भारतीय हूँ, तो मैं दुनिया को बांटता हूँ, मैं जमीन को टुकड़ों में देखता हूँ। और जब मैं जमीन को टुकड़ों में देखता हूँ, तो युद्ध मे भागीदार हो जाता हूँ। दुनिया की राजनीति में जो भी कुछ हो रहा हो—या तो परोक्ष में मेरा हाथ होगा, या अपरोक्ष में मेरा हाथ होगा, इधर बचने का कुछ उपाय नहीं है।

सार्त्र ने कहीं कहा है कि आदमी बच नहीं सकता, वह कुछ भी करे।

यह हो सकता है कि आपके गांव में दो लोग चुनाव के लिए खड़े हों, और आप दोनों मे से किसी को भी वोट न दें। पर आप यह मत सोचना कि आप बच गये, क्योंकि आपका वोट का न देना भी उतना ही निर्धारक है, जितना आपका वोट का देना होता है। यह हो सकता है कि आपके वोट के न देने से एक आदमी जीत गया, आप वोट देते तो दूसरा आदमी जीतता। तो आप दें तो कोई जीतता है, आप न दें तो कोई जीतता है। आप बच नहीं सकते, आप भाग नही सकते। आप यह नहीं कह सकते कि मैं नही दूंगा वोट तो मैं भागीदार नहीं हूँ, क्योंकि आपके न देने से किसी की जीत हो सकती है। तो फिर आप भागीदार हो गये। जरा दूरी से हुए, लेकिन भागीदार हो गये। अगर आप चुप हैं, कुछ भी नहीं बोलते, तो भी भागीदार हो सकते हैं, आपकी चुप्पी समर्थन बन सकती है। जीवित होते हुए इस संसार से बचने का कोई उपाय नही है।

जो व्यक्ति इस भांति अनुभव कर पाता है कि ससार में मैं जुड़ा हूँ, इस संसार का सब पाप, सब पुण्य मेरा भी है, वही व्यक्ति वस्तुतः संतत्व की तरफ विकसित हो रहा है। तब न तो उसके मन में किसी की निंदा है, क्योंकि किसी की भी निंदा अपनी ही निंदा है। न किसी की प्रशंसा है, क्योंकि किसी की प्रशंसा अपनी ही प्रशंसा है। तब निंदा और प्रशंसा के पार, जीवन को द्वंद्व से अलग हटकर देखने की क्षमता पैदा होती है। तब कोई व्यक्ति साक्षीभाव को उपलब्ध हो पाता है।

जब मैं यह अनुभव कर लेता हूँ कि मेरे कर्तृत्व के जगत मे मेरे मुक्त होने का कोई उपाय ही नहीं है, तभी वह व्यक्ति कर्तृत्व से मुक्त होता है और साक्षी बनता है। साक्षी का मतलब यह है कि मैं सिर्फ देखने वाला हूँ और जो कुछ भी हो रहा है, उसमें म भी भागीदार हूँ, क्योंकि मैं हूँ। इसलिए न तो मैं कहूँगा कि तुम पापी हो, क्योंकि मैं भी हूँ। और न मैं कहूंगा कि तुम पुण्यात्मा हो, क्योंकि ये फासले ऊपरी हैं,

भ्रान्त हैं, खतरनाक हैं। तब तो मैं इतना ही कहूंगा कि पाप हो कि पुण्य, अच्छाई हो कि बुराई, युद्ध हो कि शान्ति, मैं दोनों के बीच साक्षी हूँ, मैं दोनों का द्रष्टा हूँ।

और जो व्यक्ति साक्षी-भाव को जन्मा लेता है, वह व्यक्ति अद्वैत में प्रवेश कर जाता है।

तुम ससार के एक अंग हो और तुम्हारे कर्मफल उस महान कर्मफल से अकाट्य रूप से सम्बद्ध हैं। और ज्ञान प्राप्त करने के पहले तुम्हें सभी स्थानों में से होकर निकलना है, अपवित्र और पवित्र स्थानों में से एक ही समान।

इस जगत मे चाहे बुरा हो, चाहे भला, दोनों ही साधक के लिए शिक्षण हैं। चाहे पाप हो, चाहे पुण्य, दोनों से होकर गुजरना है और अपने को निखारना है। पाप का भी उपयोग कर लेना है और पुण्य का भी—पार जाने के लिए। पाप को भी सीढ़ी बना लेना है और पुण्य को भी—पार जाने के लिए।

अगर तुम्हारे भीतर कोई बुराई हो तो उसका भी सृजनात्मक उपयोग है। उससे भी कुछ सीखा जा सकता है और उसकी पीड़ा और उसके दुःख को भोगकर भी तुम्हारे भीतर निखार आयेगा—तुम जगोगे। जलोगे, पीड़ा होगी, कष्ट होगा, लेकिन वह कष्ट भी तुम्हें जगने में सहयोगी होगा, वह पीड़ा भी तुम्हें वापिस उसी भूल को करने से रोकेगी। इस जगत में सभी कुछ उपयोग किया जा सकता है और ऐसे उपयोग की समझ का नाम ही साधना है।

साधना का अर्थ नहीं है कि बुराई को छोड़ो, भलाई को पकड़ो। साधना का अर्थ है, बुराई मे से भी सत्य की तरफ उठो। भलाई में से भी सत्य की तरफ उठो। बुराई और भलाई मे मत चुनो, दोनों से अनुभव का निचोड़ ले लो और दोनों से प्रौढ़ बनो। दोनों से तुम्हारी समझ गहरी हो, तुम्हारा दृश्य विस्तीर्ण हो। दोनों के बीच से तुम अपनी नाव को, अपनी नदी को बहाओ, कि वह सागर तक पहुँच सकती हो। पाप और पुण्य तुम्हारे किनारे बन जायें। तुम चुनना मत—अगर तुम पाप चुन लोगे तो भी किनारे को चुन लोगे और नदी मे न बह पाओगे। और अगर पुण्य चुन लोगे, तो भी किनारे को चुन लोगे, और नदी में न बह पाओगे। और किनारे चाहे पाप के हों, चाहे पुण्य के अपनी जगह ही बने रहते हैं, सागर तक नहीं पहुंचते। सागर तक तो नदी पहुंचती है, जो दोनों के बीच बहती है, दोनों का उपयोग कर लेती है। अगर तुम्हारे जीवन में कोई बुराई हो तो उसका भी उपयोग कर लेना। उससे भयभीत मत होना, उसका भी उपयोग कर लेना।

मेरे पास एक मित्र आए, वह कहने लगे कि मुझ से तो क्या होगा ध्यान—क्योंकि मैं तो हूँ शराबी, और शराब की लत तो ऐसी पड़ गयी कि इस जन्म में छूटनी मुश्किल है। अब तो अगले जन्म तक राह देखनी पड़ेगी। छोड़ने के बहुत उपाय कर

चुका, सब व्यर्थ हो जाते हैं। और अब तो उपाय भी छोड़ दिये, क्योंकि धीरे-धीरे संकल्प भी खो गया। विफलता इतनी हाथ लगी कि अब तो भरोसा भी नहीं है कि कोई निर्णय लूं, तो पूरा हो सकता है। इसलिए आप मुझसे यह मत कहना कि शराब छोड़ दो, अगर शराब पीते हुए ध्यान का कोई उपाय हो, तो आप मुझे कहें। मैंने उन्हें कहा कि तुम शराब भी ध्यान के लिए ही पी रहे हो। सुनकर बहुत चौंके। उन्होंने कहा कि लोग ठीक ही कहते हैं कि आप खतरनाक आदमी हैं, आपके पास नहीं आना था! मैं तो सोचकर आया था कि आप कोई तरकीब बतायेंगे जरूर, हिम्मत बढ़ायेंगे, और शराब छुड़वायेंगे—आप कहते हैं कि शराब भी ध्यान है! मैंने उनसे कहा, समझने की कोशिश करो और अगर तुम्हें समझ में आ जाये कि शराब भी ध्यान है, तो शराब छूट भी सकती है! आखिर शराब तुम पीते किसलिए हो? शराब को भूलो, तुम पीते किसलिए हो?

कहा, कि अपने को भूलने को पीता हूँ। मैंने कहा कि भूलने की आकांक्षा, ध्यान की आकांक्षा है। खोने की, डूबने की आकांक्षा, ध्यान की आकाक्षा है। तुम गलती से शराब पी रहे हो। तुम ध्यान पीना चाहते हो, और शराब पी रहे हो! तो मैं तुमसे शराब छोड़ने को न कहूंगा—मैं तो तुमसे कहूंगा कि तुम शराब से सीखो, भूलने की कला, डूबने की कला। और अगर तुम्हें कला आ जाये डूबने की, भूलने की, तो तुम्हें शराब का सहारा छोड़ने में बहुत दिक्कत न रहेगी। अगर तुम बिना शराब के भी डूब सको और भूल सको, तो शराब छूट ही जायेगी, क्योंकि मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम शराबी नहीं हो, तुम ध्यानी हो, लेकिन तुम गलत तरह का ध्यान कर रहे हो।

तो वे मुझसे कहने लगे कि फिर मैं ध्यान में आ जाऊं, लेकिन मैं वहा भी शराब पीता रहूंगा। मैंने कहा कि तुम शराब की बात ही मुझसे मत करो, तुम्हें मैं नई शराब देता हूँ, तुम उसे पियो, और अगर इसका स्वाद तुम्हें जम जाए तो पुराना बे-स्वाद हो जायेगा। और जब तक नये का स्वाद ही पसन्द न आये, तो पुराने को छोड़ना समझदारी भी नहीं है, सार भी नहीं है। पहले ठीक से अनुभव तो ले लो नये का। अगर नये में कुछ बल बना होगा तो···और अगर ध्यान में इतना भी बल नहीं है कि शराब को छुड़ा सके, तो ध्यान परमात्मा से मिला सकेगा इस वहम में मत पड़ना। आखिर इतनी छोटी चीज़ भी न छूटती हो, तो ध्यान ही निर्बल है, शराब सबल है। और हमेशा सबल मित्र चुनने चाहिए, निर्बल मित्र क्या चुनने? वे आ गये, भरोसा उन्हें नहीं था, लेकिन ध्यान में वे इतने डूब सके, जितना डूबना उन लोगों के लिए मुश्किल है, जिन्होंने कभी शराब नहीं चखी, क्योंकि डूबना तो उन्हें आता ही था।

जिन्होंने कभी शराब नहीं चखी; उन्हें डूबना आता ही नहीं।

यह नहीं कह रहा हूँ कि आप शराब पीने लगें। जरूरी नहीं है, उसे बिना चखे भी ध्यान में जाया जा सकता है। लेकिन अगर चखी हो, तो उसका उपयोग कर लेना उचित है।

जीवन में किसी भी अनुभव को व्यर्थ छोड़ना ठीक नहीं है, उससे सार निकाल लेना जरूरी है।

वे ध्यान में गहरे डूबे और शराब खो गयी। अब वे मुझे आकर कहते हैं कि आपने मुझे धोखा दिया, आप पहले ही कह देते ऐसा तो, मैं कभी आता ही नहीं। आपने शराब छोड़ने की बात ही नहीं की, इसी वहम में मैं आ गया कि यह आदमी ठीक है, शराब छुड़वाता नहीं, ध्यान करवाता है, अपना कुछ हर्ज भी नहीं है। लेकिन अब ध्यान में रस ऐसा लग गया है कि... लेकिन आप चकित होंगे, उनकी पत्नी मुझे मिलने आयी और उसने कहा कि यह आपने क्या कर दिया है, इससे तो वे शराबी ही ठीक थे। आप समझते हैं कि जिंदगी कैसी अजीब है! पत्नी कहती है वे शराबी ही ठीक थे, क्योंकि कम से कम वे मुझसे डरते तो थे, अब वे ध्यानी हो गये, अब वे किसी से डरते भी नहीं हैं। और शराब पीते थे तो मेरा रौब भी था उनपर, वह घर में कंपते हुए घुसते थे और अपराधी भाव अनुभव करते थे और हमेशा क्षमा-याचना करते थे, अब हालत बिलकुल उल्टी हो गई। और चूंकि वे शराब पीते थे, इसलिए हजार बातों में मैं उन्हें झुका लेती थी, और मेरा कहना उन्हें मानना पड़ता था, अब मुझे झुकना पड़ता है और उनका कहना मानना पड़ता है।

आप पक्का मत समझना कि पत्नी कहती कि शराब छोड़ दो, तो सच में चाहती हो कि छोड़ दो। या बाप बेटे से कहता है कि तू चोरी मत कर, तो सच में चाहता हो कि चोरी मत कर। जिंदगी जटिल है। यह तो आप छोड़ें, तब पता चले। तब आपके आस-पास की सारी व्यवस्था संकट में पड़ जाती है।

इस दुनिया में सारे लोग कहते हैं—अच्छे हो जाओ। लेकिन वह आपको कहते ही इसलिए हैं कि आप अच्छे हो नहीं पाते। और अच्छे हो जाओ यह कहके वे आपकी निन्दा कर देते हैं और आपको दबा देते हैं। एक दूसरे को डॉमिनेट करने का यह उपाय है। अगर आप सच में अच्छे हो जाओ, तो जो जो आपको अच्छा बनाना चाहते थे, वे-वे सबसे पहले आपके प्रति असंतुष्ट हो जायेंगे, क्योंकि उनकी मालकियत खो जायेगी और उनके हाथ के नीचे से दबा हुआ आदमी मुक्त हो जायेगा।

तो जितने लोग कहते हैं, अच्छे हो जाओ—यह पावर पॉलिटिक्स है, इसके भीतर राजनीति है। लेकिन कोई किसी को अच्छा देखना नहीं चाहता, क्योंकि अच्छा देखने से ही खुद नीचा हो जाता है, दूसरा ऊपर हो जाता है। जिन्दगी का जाल है।

लेकिन एक बात ख्याल रखनी जरूरी है—तुम जो भी हो, जहां भी हो, वहीं से रास्ता परमात्मा तक जाता है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां से उसका रास्ता न जाता हो। इसलिए हर जगह का उपयोग कर लेना और हर अनुभव को उसकी दिशा में मोड़ देना।

बुरे से बुरा अनुभव भी उसकी दिशा मे मुड़ जाता है और पाप से पाप भरा हुआ अनुभव भी, उसकी तरफ मुड़ते ही पुण्य हो जाता है। लेकिन यह सारा का सारा आसान है करना, अगर एक बात ख्याल में रहे कि इस जगत में हम अलग नहीं हैं—एक ही चैतन्य के हिस्से हैं, एक ही बड़े सागर की लहरें हैं।

उत्तेजना एवं आकांक्षा

प्रवचन : ४ अप्रैल ८, १९७२, सुबह
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

५. उत्तेजना की इच्छा को दूर करो।

इन्द्रियजन्य अनुभवों से शिक्षा लो और उसका निरीक्षण करो, क्योंकि आत्म-विद्या का पाठ इसी प्रकार आरम्भ किया जा सकता है और इसी प्रकार तुम इस सीढ़ी की पहली पटिया पर अपना पैर जमा सकते हो।

६. उन्नति की आकांक्षा को दूर करो।

फूल के समान खिलो और विकसित होओ। फूल को अपने खिलने का भान नहीं रहता, किन्तु वह अपनी आत्मा को वायु के समक्ष उन्मुक्त करने को उत्सुक रहता है। तुम भी उसी प्रकार अपनी आत्मा को शाश्वत के प्रति खोल देने को उत्सुक रहो। परंतु उन्नति की आकाक्षा नहीं, शाश्वत ही तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे सौंदर्य को आकृष्ट करे। क्योंकि शाश्वत के आकर्षण से तो तुम पवित्रता के साथ आगे बढ़ोगे, पनपोगे, किन्तु व्यक्तिगत उन्नति की बलवती कामना तुमको केवल जड़ व कठोर बना देगी।

आवाज परमात्मा की बहुत धीमी है, केवल वे ही सुन सकते हैं उस आवाज को, जिन्होंने व्यर्थ की आवाजों से, व्यर्थ की आवाजों के आकर्षण से अपने को मुक्त कर लिया हो। हम तो भीड़ में जीते हैं आवाजों की। परमात्मा का स्वाद बहुत सूक्ष्म है, और केवल वे ही उस स्वाद को ले सकेंगे, जिनकी स्वाद लेने की क्षमता उत्तेजना की दौड़ ने नष्ट नहीं कर दी है। लेकिन सारी इंद्रियां उत्तेजना के लिए आतुर हैं।

और उत्तेजना का एक नियम है कि जितनी उत्तेजना दी जाये, उतनी ही ज्यादा उत्तेजना की जरूरत होती चली जाती है।

जैसे कोई आदमी शराब की एक प्याली पिये, तो आज बेहोश हो गया, लेकिन कल दो प्याली की जरूरत पड़ेगी—एक प्याली काफी नहीं होगी। एक प्याली को पचा लेने की क्षमता पैदा हो जायेगी। एक प्याली से कोई उत्तेजना ही पैदा नहीं होगी। कल दो प्याली की जरूरत पड़ेगी, लेकिन परसों तक दो प्याली भी व्यर्थ हो जायेगी—उतनी उत्तेजना भी शरीर समालेगा, तब तीन प्याली की जरूरत पड़ेगी। और ऐसी घड़ी भी आ सकती है कि शराब पानी जैसी हो जाये, उसमें कोई उत्तेजना न रह जाये। तब और मादक जहर काम में लाने पड़ेंगे।

आसाम में अब भी तांत्रिकों का छोटा सा समुदाय सांप को पाल कर रखता है, क्योंकि और सभी तरह के जहर नशा नहीं लाते, सिर्फ सांप से जीभ पर कटायें, तो थोड़ा बहुत नशा आता है।

उत्तेजना की दौड़ में हम धीरे-धीरे जड़ होते चले आते हैं।

जितनी तेज उत्तेजना हम लेंगे, उतनी ही हमारी इंद्रियों की क्षमता अनुभव करने की कम हो जाती है।

फिर और ज्यादा चाहिये, और ज्यादा चाहिये और इस दौड़ का कोई अंत नहीं है। आखिर में यह दौड़ इंद्रियों को बिलकुल पत्थर बना देती है। अगर आप भोजन में बहुत तेज उत्तेजनाएं पसंद करते हैं, तो बहुत शीघ्र ही आपके स्वाद की क्षमता मर जायेगी—कितनी ही मिर्च आप लें बेस्वाद मालूम पड़ेगा। मिर्च का रस क्या है? तेज उत्तेजना है स्वाद को जगाने के लिए।

लेकिन जिसे हम जगाने के लिए लेते हैं, वही मारने का कारण हो जाता है।

अगर आप बिना मिर्च के भोजन लें, तो आपको लगेगा कि आप मिट्टी खा रहे हैं। भोजन का जो स्वाद है, वह आपको आता ही नहीं अब, आपकी स्वाद की क्षमता कम हो गई है। यह उल्टा लगेगा—स्वाद की दौड़ में स्वाद की क्षमता कम हो जाती है। जो स्वाद बुद्ध और महावीर को भोजन से मिला होगा, वह आपको नहीं मिल सकता। इसलिए मैं तो निरंतर कहता हूँ कि जिसे आप त्यागी कहते हैं, उन जैसा परम-भोगी खोजना मुश्किल है, क्योंकि उनका जो भी अनुभव है, वह शुद्धतम है। अगर बुद्ध पानी भी पियेंगे, तो उसमें भी जो स्वाद ले पायेंगे, वह आप शराब में भी न ले पायेंगे। क्योंकि जितनी उत्तेजना कम दी गई है इन्द्रियों को, उतनी ही इन्द्रिया ज्यादा सक्षम रहती हैं और सूक्ष्म को पकड़ने में कुशल होती हैं।

अगर आप जोर से बैण्ड-बाजे के सुनने के आदी रहे हों, तो फिर पक्षियों की धीमी सी आवाज आपको सुनाई नहीं पड़ेगी। लेकिन उनका भी गीत है। फिर झींगुर की सन्नाटे में आने वाली आवाज का आपको पता भी नहीं चलेगा, उसका भी गीत है। फिर हवाएं जो वृक्षों से गुजरती हैं, उनकी जो सरसराहट है, उसका भी संगीत है, लेकिन वह आपको सुनाई नहीं पड़ेगा। लेकिन ये भी उत्तेजनाए काफी हैं। हृदय के भीतर जो गीत की गूज उठती है, वह तो आपको पता ही नहीं चलेगी। और आपके अंतर–आकाश में जो नाद प्रतिध्वनित होता है ओंकार का, वह तो आपको कभी पता न चलेगा। और जिसने अपने हृदय के नाद को नहीं सुना, उसने कुछ भी नहीं सुना। वह वचित ही रह गया संगीत के परम माधुर्य से।

यह बात पहले खयाल में ले लें, फिर हम सूत्र को समझने चलें कि जितनी उत्तेजना की दौड़ होगी, उतनी ही ज्यादा आपके अनुभव की क्षमता कम हो जायेगी। इसलिए आज दुनिया में उत्तेजना बहुत है, अनुभव बहुत कम है। इतने सुख के साधन दुनिया मे कभी भी नही थे। पुराणों में स्वर्ग की जो चर्चा है, उसमें भी इतने साधनों का वर्णन नहीं है। कल्पना में जो थी बातें, वे सब पूरी हो गयीं। विज्ञान ने कल्पना को साकार कर दिया। आपके पास इतने साधन हैं अनुभव के, लेकिन आदमी जो अनुभव करने वाला है, वह बिलकुल जड़ हो गया है।

अमेरिका से एक युवती कुछ दिन पहले मेरे पास आई, उसने मुझे कहा कि

आपकी पुस्तक मैंने पढ़ी है, 'फ्राम सेक्स टु सुपर कॉन्शसनेस', 'सम्भोग से समाधि की ओर'। उसको पढ़कर ही मैं आपके पास आई हूँ। मुझे न ध्यान में कोई उत्सुकता है, न मुझे परमात्मा की कोई तलाश है, लेकिन मुझे सेक्स में, काम-सम्बन्ध में, किसी तरह का भी रस मुझे अनुभव नहीं होता, मैं उससे ही परेशान हूँ। किसी तरह का रस मुझे अनुभव नहीं होता, मुझे कोई उत्तेजना ही प्रतीत नहीं होती। मैं चिकित्सा करा चुकी हूँ डाक्टरों के पास। मनोविश्लेषकों के पास मानसिक विश्लेषण करा चुकी हूँ, हजारों रुपये व्यर्थ खराब हो गये हैं, लेकिन मुझे सेक्स में किसी तरह का रस नहीं है। सोचा आपने यह किताब लिखी है तो आपके पास आई। मैंने उससे पूछा कि सेक्स के संबंध में तूने प्रयोग क्या-क्या किये हैं?

तो आपने अभी सुना भी न होगा, लेकिन अमरिका में बहुत प्रचलित हो गया है। एक विद्युत-जननेन्द्रिय उन्होंने बनायी है, एक इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर। पुरुष की जननेन्द्रिय जैसी, विद्युत जननेन्द्रिय बना ली है, जो बैटरी से चलती है या बिजली से चलती है। तो वह लड़की इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर का प्रयोग कर रही थी। तो इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर का जब आप प्रयोग करेंगे, तो आपकी काम-इंद्रिय बिलकुल जड़ हो जायेगी, क्योंकि किसी पुरुष की जननेन्द्रिय में विद्युत-जननेन्द्रिय जैसे शक्ति नहीं हैं। तो मैं उसको कहा कि तुझे और कोई कठिनाई नहीं है—यह इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर ने तुझे नष्ट कर दिया है, तू इसे छोड़ दे। कोई भी इन्द्रिय हो, अगर आप उसके साथ उत्तेजना की दौड़ में पड़ेंगे तो निश्चित ही जो नैसर्गिक क्षमता है इन्द्रिय की, वह खो जायेगी। जानकर आप हैरान होंगे कि तन्त्र ने तो जननेन्द्रिय के साथ भी सूक्ष्म अनुभव के प्रयोग किये हैं—तो दूसरे के शरीर से भी जननेन्द्रिय का जो घर्षण है, वह भी उत्तेजना है, उसकी भी जरूरत नहीं है। आपके काम-केन्द्र पर जो काम-वासना उठती है, उसका भी अनुभव है, बिना दूसरे की मौजूदगी के बिना दूसरे की सहायता के। वह और भी सूक्ष्म है, उसका रस और भी गहरा है। लेकिन उत्तेजना जब तक जननेन्द्रिय के पास पहुंच जाती है, तब भी वह काफी उत्तेजना हो गई। वह भी आप अपने शरीर के भीतर घर्षण की स्थिति में पहुंच गये। दूसरा मौजूद नहीं है, लेकिन आपके भीतर ही घर्षण शुरू हो गया, वह भी काफी स्थूल हो गई बात! तो तंत्र ने फिर यह भी प्रयोग किया है कि सिर्फ भाव में—शरीर मे उसकी कोई भी प्रतिध्वनि न हो, सिर्फ भाव में काम का अनुभव हो। वह और भी सूक्ष्म है। लेकिन भाव का भी घर्षण है, तो भाव में भी नहीं! भाव के नीचे भी जो अचेतन का तल है, जहां हमें पता भी नहीं चलता कि क्या हो रहा है, वहां तंत्र उस अनुभव को ले गया है। और तब तन्त्र ने जो काम के गहन अनुभव उपलब्ध किये हैं, वे पृथ्वी पर किसी ने भी उपलब्ध नहीं किये हैं। डुबाते जाना है।

अगर आप मंत्र-शास्त्र के संबंध में कुछ जानते हैं, तो आपको पता होगा कि

मंत्र शुरू किया जाता है उच्चार से। ओम्—तो उच्चार करते हैं, तो उच्चारण काफी उत्तेजित हो गया, संघर्ष शुरू हो गया, आपकी वाणी जाकर वायु मण्डल से टकरा गई, स्थूल हो गई बात। लेकिन शुरूआत करते हैं, और फिर ओम् को बन्द कर लेते हैं, फिर भीतर ही गुंजार करते हैं—ओम्। बाहर कहीं कोई ध्वनि पैदा नहीं होती, लेकिन भीतर उसका रस लेते हैं। लेकिन भीतर भी तो संघर्ष पैदा होता है। तो फिर धीरे-धीरे भीतर भी ओम् के गुंजार को छोड़ देते हैं, अपनी तरफ से नहीं करते। फिर तो इस बात की फिक्र करते हैं कि ओम् का गुंजार भीतर होता हो, तो उसको सुनें। हम न करें, क्योंकि हमारे करने से घर्षण हो जायेगा। और भीतर एक ओंकार का गुंजन है, जब हम नहीं करते, तब वह सुनाई पड़ता है, जिसको अजपा जाप कहा है। हम जाप नहीं करते और जाप होता है।

लेकिन जैसे-जैसे हम भीतर सूक्ष्मता में उतरते हैं, वैसे-वैसे हमें उत्तेजना का मोह छोड़ना पड़ता है। और एक ऐसा स्थल है भीतर, जो उत्तेजना शून्य है, जिसको बुद्ध ने शून्य कहा है। इसीलिए शून्य कहा है, क्योंकि वहां कोई उत्तेजना नहीं है। जब तक उसका अनुभव न हो जाये, तब तक आनन्द का कोई अनुभव न होगा।

अब आप फर्क को समझ लें।

सुख पैदा होता है उत्तेजना से, और आनन्द पैदा होता है निरुत्तेजना से।

सुख में घर्षण है; आनन्द में शून्यता है, शान्ति है।

इसलिए सुख की खोज में हर सुख, दुःख हो जाता है, क्योंकि और बड़ा सुख चाहिये तब। आज एक स्त्री सुंदर मालूम पड़ती है, लेकिन चार दिन साथ रह जाने के बाद सुन्दर न रह जायेगी। चार दिन साथ रहने के बाद और सुन्दर स्त्री की जरूरत है, क्योंकि आपकी इन्द्रियाँ तब तक उस उत्तेजना के लिए राजी हो गयीं; अब और बड़ी उत्तेजना चाहिये।

एक मित्र मेरे पास आये थे। पति और पत्नी में गहरा संघर्ष है। मैंने उन दोनों की बातें सुनीं, तो फिर मुझे ऐसा लगा कि उन दोनों के बीच कहीं भी मिलन का कोई सेतु नहीं रहा है। मैंने उससे पूछा कि तुम ईमानदारी से मुझे कहो कि तुम एक दूसरे को देखते भी हो...तुम एक दूसरे की तरफ आंख भी उठाते हो। पति ने मुझे कहा कि आप पूछते हैं, तो मैं कहता हूँ, कि मैं जब इस अपनी पत्नी को प्रेम भी कर रहा होता हूँ, तब भी कल्पना में यह नहीं होती, कोई फिल्म अभिनेत्री होती है। और जब तक मैं किसी फिल्म अभिनेत्री को न सोच लूं, तब तक मैं इसको प्रेम ही नहीं कर पाता। पति ने सोचा था, यह उसको ही घट रहा है। पत्नी ने कहा, जब आप बता ही रहे हैं, तो मैं भी आपको बता दूं—मैं भी जब आपसे विवाहित न थी, मेरे एक प्रेमी थे, जब तक मैं उसको न सोच लूं आप में, तब तक मैं आपको प्रेम नहीं कर पाती।

इसका अर्थ आप समझते हैं, क्या हुआ?

दोनों में से कोई किसी को प्रेम नहीं कर रहा है। और दो नहीं हैं उस मकान में, चार आदमी हैं, वे दो बीच में खड़े हैं इन दोनों के। और उन दो के कारण ही इनमें कभी कोई मिलन न हो पायेगा। लेकिन उनकी भी मजबूरी है, क्योंकि दोनों की उत्तेजना एक दूसरे में समाप्त हो गयी है।

अनुभव से उत्तेजना समाप्त हो जाती है, इसलिए अनुभव से सुख दुःख बन जाते हैं।

जो सुख आपको नहीं मिला है अभी तक, वही सुख मालूम पड़ता है। जब मिल जायेगा, वही दुःख हो जायेगा—मिला कि दुःख हुआ।

मिलते ही सुख, दुःख हो जाते है, क्योंकि उत्तेजनाएं और बड़ी उत्तेजनाओं की मांग करती हैं।

और आपके अनुभव की इन्द्रियां शिथिल होती चली जाती हैं। एक घड़ी ऐसी आती है कि आप कुछ भी अनुभव नहीं कर पाते हैं, क्योंकि आपकी सब इंद्रियों के अनुभव की जो संवेदनशीलताएं हैं, वे सब जड़ हो गई होती हैं। फिर आप परमात्मा की खोज में लगते हैं! जब आदमी बूढ़ा हो जाता है—मैं बूढ़ा आदमी उसको कहता हूँ—उम्र से नहीं—बूढ़ा आदमी उसको कहता हूँ, जिसने उत्तेजनाओं की दौड़ में अपनी सारी इंद्रियों को जड़ कर लिया है। यह जवानी में भी हो सकता है, यह बचपन में भी हो सकता है। आज अमेरिका में बचपन में भी हुआ जा रहा है। अब इतनी देर नहीं लगती, बुढ़ापे तक रुकने की जरूरत नहीं है। अगर आपको इतनी सुविधाएं मिलें उत्तेजना की, तो आप बचपन में ही जड़ हो जायेंगे। और जब सब तरफ से इंद्रियां जड़ हो जाती हैं, तब आदमी खोज करता है—आनंद कहां है, आत्मा कहां है, परमात्मा कहां है? बड़ी मुश्किल है, क्योंकि उसकी खोज के लिए तो इंद्रियों की संवेदना की क्षमता शुद्ध होनी चाहिये।

अगर महावीर और बुद्ध अपने राजमहलों को छोड़कर भाग जाते हैं तो यह घटना बहुत ऊपर है। भीतर घटना तो यह है कि उत्तेजना की जगह को छोड़ कर हट रहे हैं, ताकि इंद्रियों की शुद्धि और उनकी नैसर्गिकता को पुनः पाया जा सके। जंगल की तरफ भाग रहे हैं, उसका अर्थ है कि निसर्ग की तरफ भाग रहे हैं, प्रकृति की तरफ भाग रहे हैं; ताकि अनुभव करने के जो द्वार हैं हमारे भीतर, उन पर जितना कूड़ा-करकट और कचरा इकट्ठा हो गया है, वह हट जाये। वह जब हट जायेगा और हम सूक्ष्मतर होने लगेंगे, तभी हम उसको सुन पायेंगे, जो केवल सूक्ष्म इंद्रियों से ही सुना जा सकता है और उसको देख पायेंगे, जो केवल सूक्ष्म आंखों से ही देखा जा सकता है। इसी संबंध में यह सूत्र है।

पहला सूत्र : उत्तेजना की इच्छा को दूर करो।

हटाओ उत्तेजना की इच्छा को। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सूत्र इन्द्रिय विरोधी है। सच तो यह है कि आपकी उत्तेजना की इच्छा ही इन्द्रियों की हत्या है। यह सूत्र इन्द्रियों की शुद्धिकरण का सूत्र है, उनका विरोधी नहीं है। अगर आप स्वाद से उत्तेजना को हटा दें, तो रूखी रोटी में भी वैसा स्वाद उपलब्ध हो सकेगा, जो राजमहलों के भोग में उपलब्ध नहीं हो सकता, क्योंकि स्वाद रोटी पर, भोजन पर निर्भर नहीं करता, स्वाद लेने वाले पर निर्भर करता है। आप पर निर्भर करता कि आप कितना अनुभव कर सकते हैं, कितना गहरा उतर सकते हैं अनुभव में। उत्तेजना की इच्छा को दूर किये बिना कोई भी व्यक्ति साधना के जगत में प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि साधना का अर्थ ही है कि अब हम स्थूल को छोड़ते हैं और सूक्ष्म की तलाश में निकलते हैं। लेकिन सूक्ष्म की तलाश करनी तो आपको होगी, आप सूक्ष्म को अनुभव भी कर सकते हैं या नहीं, आपके पास वह क्षमता भी है, जिससे सूक्ष्म का मेल हो सके?

अगर वह क्षमता ही नहीं—आंखें अंधी हैं तो देखा नहीं जा सकता, तो सूक्ष्म मौजूद भी हो जाये, तो भी आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। आपको क्रमशः शुद्ध होता जाना है। आपको इतना शुद्ध होते जाना है कि कोई भी घटना घटती हो अन्तरतम् के केन्द्र पर, तो भी आपको उसकी प्रतीति पड़े, तो भी आपको अहसास हो जाये।

आप समझें—जिस इन्द्रिय को हम ज्यादा उत्तेजना देते हैं, वह मृत हो जाती है। और मृत हो जाने के कारण हमें और उत्तेजना देनी पड़ती है, तो हम उसे और मृत करते हैं। दुष्चक्र पैदा हो जाता है—फिर रोज नया स्वाद चाहिए, रोज नई स्त्री चाहिए, रोज नया पुरुष चाहिए, रोज नया मकान चाहिए, रोज नई कार चाहिए, फिर रोज नया चाहिए। पर वह नया भी कितनी देर टिकता है? थोड़ी देर को पुलक आती है, क्योंकि इसकी उत्तेजना हमारे अनुभव मे नहीं होती, तो थोड़ा जरा अच्छा लगता ह, फिर थोड़ी देर में सब चीजें पुरानी हो जाती हैं। हर चीज पुरानी हो जायेगी, जो नयी है। इसलिए कोई चीज तृप्ति नही देगी, बल्कि हर चीज अतृप्ति देगी। तो तृप्ति का रास्ता क्या होगा?

तृप्ति का रास्ता होगा वस्तुओं पर ध्यान मत दें, स्वयं की अनुभव करने की क्षमता पर ध्यान दें, तो बहुत-थोड़ी वस्तुएं बहुत तृप्ति दे सकती हैं। न कुछ से भी आनंद मिल सकता है, क्योंकि आप देख ही रहे हैं सब कुछ होने से भी आनंद मिलता नहीं है। न कुछ से भी आनंद मिल सकता है।

डायोजनीज़ हुआ यूनान में, उसने सब छोड़ दिया, बड़ा चिन्तक था। महावीर की तरह यूनान में नग्न हो जाने वाला वह अकेला आदमी था। वह नग्न हो गया, सिर्फ उसने एक भिक्षापात्र रख लिया था, भिक्षा के लिए, पानी पीने के लिए। फिर एक दिन उसने देखा एक गांव से गुजरते हुए एक ग्रामीण को, कि वह अपनी अंजलि में भरकर

पानी पी रहा है, तो उसने तत्क्षण अपना भिक्षापात्र भी फेंक दिया। उस ग्रामीण ने पूछा, आपने यह क्या किया? उसने कहा कि मुझे यह ख्याल ही न था कि जब पानी हाथ से पिया जा सकता है, मैं इस आनन्द से क्यों वंचित रहूँ! भिक्षापात्र तो जड़ है, उस जड़ में पानी पड़ता है, मुझे कोई अनुभव नहीं होता उसका—तो मेरी अंजलि में ही पानी को लूंगा, मेरे हाथ भी पानी के स्पर्श को अनुभव करेंगे, पानी की शीतलता को, पानी की जीवन-दायिनी शक्ति को। और मेरे हाथों का प्रेम भी पानी में प्रवेश करेगा, तो वह पानी जीवन्त हो जायेगा, उसको भी मैं पिऊंगा। और जब डायोजनीज ने पहली दफा अंजलि से पानी पिया, तो वह नाचने लगा और उसने कहा कि मैं भी कैसा पागल था, एक जड़ वस्तु से पानी पी रहा था, उसमें से गुजरकर पानी भी जड़ हो जाता था। हाथ की उष्मा, हाथ की गर्मी पानी को न मिल पाती थी और वह पानी का अपमान भी था।

इसलिए डायोजनीज की यह बात कह रहा हूँ कि हमारी सारी इंद्रियां जड़ भिक्षापात्र की तरह हो गई हैं। उनके द्वारा हम जो भी लेते हैं, वह मुर्दा हो जाता है। भोजन जब तक थाली में दिखाई पड़ता है, तब तक सुन्दर मालूम पड़ता है, जैसे ही मुंह में जाता है, साधारण हो जाता है। हमारा मुंह उसे साधारण कर देता है! संगीत कान में पड़ता है, साधारण हो जाता है। फूल आंख में दिखाई पड़ते हैं, साधारण हो जाते हैं।

हम हर चीज को साधारण कर देते हैं, जब कि जगत बिलकुल असाधारण है।

जो फूल आपको वृक्ष पर दिखाई पड़ रहा है, वैसा फूल कभी नहीं खिला था। वह फूल बिलकुल नया है, उस तरह का दूसरा फूल पूरी पृथ्वी पर खोजना असम्भव है। उस तरह का फूल कभी इतिहास में न हुआ और न कभी आगे होगा। ऐसे अद्वितीय फूल के होने की घटना को भी हमारी आंखें साधारण कर देती हैं, कह देती हैं कि ठीक है, गुलाब का फूल है, हजारों देखे हैं। वह जो हजारों देखें हैं, उनकी वजह से आंखें अन्धी हो गई हैं, और यह जो सामने मौजूद है, वह दिखाई नहीं पड़ता। उन हजारों से इस फूल का क्या सम्बन्ध है?

इमर्सन ने लिखा है कि इस गुलाब के फूल को देख कर मुझे ख्याल आया कि इस गुलाब के फूल को तो कोई भी पता नहीं है हजारों फूलों का—न आने वाले फूलों का, न जा चुके फूलों का। यह गुलाब का फूल तो परमात्मा के लिए सीधा मौजूद है और यह फूल इसलिए आनन्दित है, क्योंकि कोई तुलना नहीं है। लेकिन जब मैं इसे देखता हूँ, तो हजारों फूल जो मैंने देखे हैं, बीच में आ जाते हैं, आंखें धुंधली हो जाती हैं, यह फूल की अनूठी घटना व्यर्थ हो जाती है—इससे न कोई सौन्दर्य का अनुभव हो सकता है और न हृदय के कोई तार हिल पाते हैं, न कोई रोआं कंपता है।

हम एक असाधारण जगत में जी रहे हैं। यहां चारों तरफ विराट् मौजूद है न मालूम कितने रूपों में। वह यहां परम-सौंदर्य घटित हो रहा है, परम-संगीत बज रहा

है, नाद का कोई अन्त नहीं है। लेकिन हम बहरे, अन्धे की तरह इस सबके बीच से गुजर जाते है। हमे कुछ भी छूता नहीं। हम मरी हुई लाशें हैं। हमने अपनी इन्द्रियों को कब्रें बना लिया है। हम उनके भीतर घिरे हैं, ताबूत की तरह बन्द हैं। हम गुजर रहे हैं—हमें कुछ छूता नहीं, कुछ अनुभव नहीं होता। हम पूछते हैं आनन्द कहां है? और हम पूछते हैं परमात्मा कहां है? और वह चारों तरफ मौजूद है। बाहर-भीतर उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। और ऐसा कोई क्षण नहीं है, जो आनन्द का क्षण न हो। लेकिन अनुभव करने वाला चाहिये। और अनुभव करने वाले को हम उत्तेजना में मार डालते हैं।

त्याग की मेरे लिए परिभाषा—त्याग परम-भोग का विज्ञान है।

और जो जानता है छोड़ना, वही अनुभव कर पाता है।

व्यर्थ को छोड़ें, ताकि सार्थक का अनुभव हो सके।

उत्तेजना को छोड़ें, ताकि सूक्ष्म की प्रतीति हो सके।

चीन में कहावत है कि जब कोई संगीतज्ञ परम-संगीत को उपलब्ध हो जाता है, तो वह अपनी वीणा को तोड़कर फेंक देता है। ठीक है—जिन्होंने कहा है। ऐसा खूब समझके कहा होगा, क्योंकि वीणा के तार भी तो उत्तेजना पैदा करते हैं। और जब कोई परम-संगीत को उपलब्ध हो जाता है, तो उसे वीणा के तार भी संगीत में बाधा बन जाते हैं। तब वह उन्हें तोड़कर फेंक देता है। तब तो वह उस संगीत को सुनने लगता है, जो मौजूद ही है, जिसको पैदा नहीं करना पड़ता, जो बज ही रहा है चारों तरफ। ऐसा कोई क्षण नहीं है, जब वह बज रहा हो। हम उसे नहीं सुन पाते तो हमें वीणा के तार पर पैदा करना पड़ता है। यह हमारी इन्द्रियों की कमजोरी के कारण वीणा के तारों की सहायता लेनी पड़ती है। वीणा के तार संगीत पैदा नहीं कर रहे हैं, केवल शोर गुल पैदा कर रहे हैं, व्यवस्थित शोर-गुल पैदा कर रहे हैं। लेकिन हम चूंकि बहुत कमजोर हो गये हैं और हमें कुछ सुनाई नहीं पड़ता है, इसलिए हम तारों से, वाद्यों से पैदा किये हुए संगीत की फिक्र करते हैं।

जापान में झेन फकीर एक ध्यान को निरन्तर अपने साधकों को देते हैं। वे कहते हैं, उस आवाज को सुनो, जो एक हाथ की ताली से पैदा हो सके। इसपर वर्षों ध्यान करवाते हैं। दो हाथ की ताली की आवाज तो सबने सुनी है, लेकिन झेन फकीर कहते हैं कि उस ताली की आवाज पर ध्यान करो, जो एक हाथ से ही पैदा होती है। दो तालियों की जिसमें जरूरत नहीं होती। बिलकुल पागलपन की बात है। कहीं एक हाथ से कोई ध्वनि पैदा हुई है। मगर झेन फकीर कहता है कि सुनो, एक दिन सुनाई पड़ेगी, सुनते चले जाओ। एक ऐसा नाद भी है जो बिना घर्षण के पैदा होता है। उसी नाद को हमने ओंकार कहा है, उसमें दो हाथ की ताली नहीं बजती, वह संघात से पैदा

नहीं होता, आघात से पैदा नहीं होता। वह मौजूद ही है, वह जीवन का ढंग ही है, वह जीवन के साथ ही बज रहा है। मगर वह बहुत सूक्ष्म हो गया है। हमें तो जोर से कोई चीज टकराये तो ही पता चलता है। अगर कहीं कुछ भी न टकरा रहा हो, तो हमें लगेगा कि कुछ भी नहीं हो रहा है।

लेकिन बहुत कुछ हो रहा है, चुपचाप। जीवन का जो भी गहन है, वह बिलकुल मौन में हो रहा है। बीज जमीन में टूट रहे हैं, कोई आवाज नहीं है। पौधे बड़े हो रहे हैं, कोई आवाज नहीं है। तारे चल रहे हैं, कोई आवाज नहीं है। सूरज निकल रहा है, कोई शोर-गुल नहीं है। लेकिन एक सूक्ष्म अस्तित्व में जो सन्नाटा हमें मालूम पड़ता है, वहां भी एक संगीत है सन्नाटे का, मौन का। पर उसके लिए हमारी इन्द्रियां सक्षम होनी चाहिये।

उत्तेजना की इच्छा को दूर करो।

इन्द्रिय-जन्य अनुभवों से शिक्षा लो।

क्या शिक्षा है?

इन्द्रियों को मारो मत, इन्द्रियों को जिलाओ, इन्द्रियों को ज्यादा संवेदनशील बनाओ। प्रत्येक इन्द्रिय शुद्धतम अनुभव कर सके—तो प्रत्येक इन्द्रिय से परमात्मा का अनुभव हो सकता है। तब उसका स्वाद भी लिया जा सकता है। यह बात बड़ी व्यर्थ मालूम पड़ेगी कि परमात्मा का स्वाद! और आप कहेंगे कि आप क्या कह रहे हैं। हमने तो सदा यही कहा है कि परमात्मा का दर्शन होता है। उसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा का स्वाद नहीं होता। उसका कारण यह है कि दुनिया के अधिकतम साधकों ने आंखों को शुद्ध करके ही उसकी खोज की है, और कोई कारण नहीं है। क्योंकि आंखें शुद्ध करके खोज की है, इसलिए उन्होंने कहा साक्षात्कार, दर्शन। हमने तो अपनी पूरी खोज का नाम ही दर्शन रख दिया है। पर यह आंखों के कारण है—आदमी आंख केन्द्रित है। और ऐसा इसी मुल्क में नहीं है, सारी दुनिया में है। पश्चिम में भी वे अनुभवी को 'सिअर' कहते हैं, देखने वाला। लेकिन क्यों? कोई भी नहीं कहता स्वाद लेने वाला! कोई भी नहीं कहता श्रवण करने वाला! कोई भी नहीं कहता कि परमात्मा की गन्ध!

उलटा लगेगा, लेकिन अगर आंख देख सकती है तो नाक क्यों नहीं सूंघ सकती? और आंख के देखने में हमें कोई अड़चन नहीं मालूम पड़ती। और अगर मैं कहूं परमात्मा का स्वाद—तो अड़चन मालूम पड़ेगी। उसका कारण सिर्फ इतना है कि आदमी की बाकी सब इन्द्रियां, आंख की बजाय, ज्यादा जल्दी स्थूल हो जाती हैं।

आंख मनुष्य के शरीर में सबसे तरल इन्द्रिय है। ऐसा समझें कि आंख मनुष्य के शरीर में सबसे कम शरीर का हिस्सा है, अशरीरी है। और इसलिए जब हम किसी

की आंखों में झांकते हैं तो उसमें पूरी तरह झांक लेते हैं। इसलिए बहरा आदमी उतना नहीं खोता, अन्धा आदमी बहुत खो देता है। आंख के बन्द होते ही अस्सी प्रतिशत अनुभव बन्द हो जाते हैं। बाकी इन्द्रियों से हम बीस प्रतिशत अनुभव लेते हैं, आंख से अस्सी प्रतिशत अनुभव लेते हैं। इसलिए बहरे आदमी पर आपको उतनी दया नहीं आती, जितनी अन्धे आदमी पर दया आती है। उसका कारण है। क्योंकि वह कितना खो रहा है। आंख के खोते ही अस्सी प्रतिशत अनुभव खो जाते हैं। इसलिए आंख केन्द्रित होने की वजह से हमने कहा—ईश्वर का दर्शन। लेकिन यह जरूरी नहीं है।

अगर आप अपनी स्वाद की इन्द्रिय को शुद्ध कर लें, तो स्वाद से भी उसका स्वाद मिलेगा। अगर आप अपने हाथ के अनुभव को शुद्ध कर लें, तो उसका स्पर्श भी होगा। आप किसी भी इन्द्रिय को शुद्ध कर लें, तो आपको उसकी प्रतीति उसी इन्द्रिय से हो जायेगी। अगर आप अपनी सारी इन्द्रियों को शुद्ध कर लें, तो परमात्मा आप पर सब तरफ से बरस पड़ेगा।

साधना इन्द्रिय-शुद्धि है।

और इन्द्रिय शुद्धि का सूत्र है—उत्तेजना की इच्छा को दूर करो, इन्द्रिय-जन्य अनुभवों से शिक्षा लो और उसका निरीक्षण करो।

क्या है निरीक्षण?

कि जितनी उत्तेजना, उतनी इन्द्रिय मरती है। जितनी कम उत्तेजना, उतनी इन्द्रिय जगती है, सजग होती है।

आत्म-विद्या का पाठ इसी प्रकार प्रारम्भ किया जा सकता है, और इसी प्रकार तुम सीढ़ी की पहली पटिया पर अपना पैर जमा सकते हो।

जिसका हमें अनुभव करना है, वह भीतर छिपा है। और उत्तेजना की खोज होती है बाहर। तो जितनी उत्तेजना, उतने ही हम अपने से दूर निकल जाते हैं। इसलिए मजे कि बात है कि आदमी चांद पर उतर जाता है और अपने भीतर उतरने की उसे कोई फिक्र नहीं है। वह भी उत्तेजना की तलाश है। लेकिन कैसी भी उत्तेजना हो? चाँद पर पहुंचने की आकांक्षा कितनी पुरानी है? जब से मनुष्य है, तब से चाद पर पहुंचने की आकांक्षा है। और बच्चे पैदा होते ही चांद की तरफ हाथ बढ़ाने लगते हैं। आदमी अनन्त काल से सोच रहा है चांद पर पहुच जाये, लेकिन आपको पता है कि क्या हुआ? जब पहली दफा आदमी चाद पर उतरा, तो सारी दुनिया में भारी उत्तेजना थी; विशेष-कर अमेरिका में, क्योंकि उनका आदमी उतर रहा था, तो और भी ज्यादा उत्तेजना थी, सारे लोग अपने टेलीविजन लगाये बैठे हुए थे। लेकिन दो घंटे के बाद उत्तेजना खत्म हो गई—आदमी उतर गया, लोगों ने टेलीविजन बंद कर दिये। फिर उनकी रुटीन, रोज की दुनिया शुरू हो गई। चौबीस घंटे चर्चा रही और बात समाप्त हो गई! हजारों

वर्षों से जिस उत्तेजना के लिए आदमी आतुर था, वह दो घंटे में खतम हो गई! चांद पर पहुंच गया, अब क्या है? एक क्षण को लगा कि कोई बड़ी घटना घट रही है, फिर सब ठीक हो गया, फिर दुनिया अपने रास्ते पर चलने लगी। इतनी बड़ी विजय की यात्रा, इतने कल्पों तक जिसका स्वप्न देखा हो, वह भी दो घंटे में पुराना पड़ जाये!

आदमी का मन हर चीज को पुरानी कर देता है।

और दूर हम कितने ही निकल जायें—जितने दूर जाते हैं, उतना ही भीतर का अनुभव मुश्किल होता जाता है।

आत्म-विद्या का पहला पाठ इन्द्रियों के अनुभव से शुरू होता है, कि उत्तेजना में मत जाओ, तो तुम अपने पास आ सकोगे। दूर की खोज मत करो, तो तुम निकट को उघाड़ सकोगे।

उन्नति की आकांक्षा को दूर करो।

उन्नति की आकांक्षा भी वैसी ही घातक है, शायद उससे भी ज्यादा, जितनी उत्तेजना की आकांक्षा है। पर बड़ा अजीब लगेगा, क्योंकि हम तो सोचते हैं कि अध्यात्म ही तो आत्म-उन्नति की आकांक्षा है, कि हम आनंद चाहते हैं, कि मुक्ति चाहते हैं, कि परमात्मा को चाहते हैं। यह भी तो उन्नति की आकांक्षा है।

लेकिन एक बुनियादी फर्क समझ लेना जरूरी है।

एक वह उन्नति है, जो आपकी चाह से आती है। और एक उन्नति है, जो आपकी चाह से नहीं आती। जब आपमें चाह नहीं होती, तब आती है। एक उन्नति है, जो आपकी चेष्टा से आती है और आपकी चेष्टा से आई हुई उन्नति आपसे बड़ी नहीं होगी। हो भी नहीं सकती। आपका ही कृत्य आपसे बड़ा नहीं हो सकता। कृत्य हमेशा कर्ता से छोटा होता है। आप जो भी करेंगे, वह आपसे छोटा काम होगा। होगा ही। आप अपने से बड़ा काम कर कैसे सकते हैं? जब आप ही करने वाले हैं तो काम आपसे बड़ा नहीं होगा, कितना ही बड़ा काम हो, आप उससे बड़े ही रहेंगे। कितना ही सुंदर कोई चित्र बनाये, चित्रकार चित्र से बड़ा रहेगा। और कितना ही कोई मधुर संगीत पैदा कर ले, संगीतज्ञ संगीत से बड़ा रहेगा। जो आप करते हैं, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। कृत्य सदा कर्ता से छोटा होगा, यह तो बड़ी कठिन बात हो गई। इसका तो मतलब हुआ कि अगर आप कोई आध्यात्मिक उन्नति भी कर लें, तो वह आपसे बड़ी नहीं हो सकती, जो आप हैं; आपसे छोटी होगी। तब तो आप एक बड़े चक्कर में हैं। आप अपने से छूट नहीं सकते, आप रहेंगे ही और सदा बड़े रहेंगे, जो भी आप पा लें। अगर आपको परमात्मा भी मिल जाये—ध्यान रखना मैं कह रहा हूं कि अगर आपकी कोशिश से आपको परमात्मा मिल जाये, तो आपसे छोटा होगा। होगा ही, क्योंकि आपकी कोशिश से मिला है, आपसे बड़ा नहीं हो सकता।

इसलिए आप परमात्मा को कोशिश से नहीं पा सकते, क्योंकि वह आपसे बड़ा है। तो उसको पाने का एक दूसरा उपाय है, कोशिश को छोड़कर उसे पाया जा सकता है।

यह सूत्र कहता है : उन्नति की आकांक्षा को दूर करो।

फूल के समान खिलो और विकसित होओ।

फूल को अपने खिलने का भान भी नहीं होता। कली कब फूल बन जाती है, पता भी नहीं चलता।

किन्तु वह अपनी आत्मा को वायु के समक्ष उन्मुक्त करने को उत्सुक रहता है।

कली सिर्फ उत्सुक होती है खुलने को। खुलने की कोई चेष्टा नहीं करती। कोई व्यायाम, कोई प्राणायाम, कोई योगासन, कली कुछ भी नहीं करती। कली सिर्फ आतुर होती है, सिर्फ प्यासी होती है। उसके भीतर जो सुगन्ध है, वह हवाओं में लुट जाये। वह आतुरता भी चेष्टा नहीं बनती, प्रतीक्षा ही रहती है। कली सिर्फ प्रतीक्षा करती है, सुबह सूरज उगेगा, हवायें आयेंगी, और कली फूल बन जायेगी। लेकिन कोई चेष्टा नहीं होती कि वह फूल बन जाये, कि किसी स्कूल मे भरती हो, किसी गुरु के पास जाए, कहीं सीखे, कोई उपाय सीखे, कोई विधि, कोई तन्त्र-मन्त्र, वह कुछ नहीं करती —वह सिर्फ प्रतीक्षा करती है।

तुम भी उसी प्रकार अपनी आत्मा को शाश्वत के प्रति खोल देने को उत्सुक रहो। परंतु उन्नति की आकांक्षा नहीं, शाश्वत ही तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे सौन्दर्य को आकृष्ट करे।

इस फर्क को समझ लेना। तुम कोशिश मत करना अपनी तरफ से शाश्वत को पाने की, तुम तो सिर्फ तैयारी रखना कि अगर शाश्वत तुम्हारे मे आना चाहे तो तुम बाधा न दो। तुम तो सिर्फ द्वार खुला रखना कि ऐसा न हो कि शाश्वत तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे और पाए कि बन्द है। कि परमात्मा तुम्हें खोजता हुआ आए और पाए कि तुम घर पर नहीं हो, तुम कहीं गये हो और तुम्हारा किसी को कोई पता नहीं है। कि परमात्मा तुम्हारे हृदय मे आना चाहे और पाए कि वहां इतनी भीड़ है कि प्रवेश का कोई उपाय नहीं। कि वहां कोई जगह ही नहीं कि मेहमान ठहर सके। वहां कोई रिक्तता नहीं है कि परमात्मा प्रवेश कर सके। तुम्हारे द्वार-दरवाजे बन्द हैं—बस इतना भर न हो।

तुम कोशिश मत करना परमात्मा को खोजने की। खोजोगे भी कैसे? तुम्हें उसका कुछ पता भी तो नहीं है, तुम उसे खोजोगे कहां? तुम उसे वहीं खोजोगे, जो रास्ते तुम्हें पता हैं। और उन रास्तों पर तो तुमने उसे पा ही लिया होता, अगर वह होता। तुम अपने से अतिरिक्त करोगे भी क्या? और तुम जो भी करोगे, वह तुम्हारी ही सीमा मे बन्द होगा, वह असीम से संबंध स्थापित न करा पायेगा।

शाश्वत ही तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे सौंदर्य को आकृष्ट करे, क्योंकि शाश्वत के आकर्षण से तो तुम पविभवा के साथ आगे बढ़ोगे, पनपोगे, किन्तु व्यक्तिगत उन्नति

की बलवती कामना तुमको केवल जड़ और कठोर बना देगी।

तो तुम परमात्मा को मुट्ठी में लेने की कोशिश मत करना, तुम्हारी मुट्ठी बहुत छोटी है, तुम्हारी मुट्ठी में वह न समायेगा। तुम जितनी मुट्ठी बांधोगे, तुम पाओगे वह उतना ही बाहर हो गया है। तुम्हारी मुट्ठी खाली ही रह जायेगी। तुम्हारी मुट्ठी में तुम पाओगे कि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं समाता है।

तो विकास के दो उपाय हैं।

एक उपाय है चेष्टा, संकल्प, प्रयास, प्रयत्न, श्रम। तुम उसके मालिक होते हो। तुम जो भी करते हो, तुम ही उसकी योजना बनाते हो। तुम फिर जो भी पाते हो, वह तुम्हारा ही खेल होता है। निश्चित ही बहुत कुछ पाया जाता है प्रयास से, श्रम से, संकल्प से। लेकिन तुम जो भी पाते हो, वह तुमसे छोटा होता है। और वह जो तुम पा लेते हो, उसी का नाम संसार है।

संकल्प से जो पाया जाता है, श्रम से जो पाया जाता है, उसी का नाम संसार है। उसमें तुम्हारा अहंकार बलवती होता है, वह तुम्हारे अहंकार की खोज है।

एक और पाने का उपाय है, जो पाया जाता है समर्पण में, छोड़ने में, प्रतीक्षा में, प्रार्थना में। श्रम से नहीं—विश्राम से। तुम जब विश्राम में होते हो, तब वह घटित होता है। तुम जब प्रार्थना में होते हो, तब वह घटित होता है। तुम जब अपने को छोड़ देते हो चरणों में, समर्पित कर देते हो, तब घटित होता है। तुम जब तैरते नहीं, बहते हो नदी की धार में, तब घटित होता है। तुमसे घटित नहीं होता, तुम केवल अपने को खुला रखते हो, और उससे घटित होता है। तुमसे विराट् उसे घटाता है, तुम केवल बाधा नहीं डालते हो।

अध्यात्म की खोज मौलिक रूप से प्रयत्न नहीं है, अप्रयत्न है।

झेन फकीरों ने कहा है, एफर्टलेस एफर्ट, प्रयासरहित प्रयास—ठीक कहा है। अभ्यास नहीं है वह—अपने को छोड़ना है उसके हाथों में, फिर वह जहां ले जाये, फिर वह जो करे, फिर वह चाहे मिटाए, चाहे बचाए, फिर हम राजी हैं उसके साथ। हम सिर्फ आतुर हैं कि वह मिले। आतुरता हमारी तैयारी है। हम रोकेंगे न, हम उसके प्रयास में बाधा न डालेंगे। हम एक लोहे के टुकड़े की तरह हो जायेंगे, ताकि उसका चुम्बक खींच ले। लोहे का टुकड़ा चुम्बक की तरफ जाता नहीं, जा नहीं सकता; चुम्बक खींचता है। लोहे का टुकड़ा सिर्फ बाधा न डाले, बस इतना काफी है। खिंचने को राजी हो, बस इतना ही काफी है। बुलाया जाये तो दौड़ पड़े, इतना काफी है। अपनी तरफ से दौड़ने का कोई उपाय भी कहां है लोहे के टुकड़े के पास!

परमात्मा है जागतिक चुम्बक, कॉस्मिक मैग्नेट—तुम लोहे के टुकड़े की भांति हो जाओ।

यह सूत्र कह रहा है : तुम आकांक्षा मत करो उन्नति की, तुम सिर्फ अभीप्सा करो।

तुम मांगो मत, चीखो-चिल्लाओ मत, योजना मत बनाओ, तुम अपनी वासना का फैलाव मत करो, तुम उसे मत बताओ कि वह क्या करे? तुम सिर्फ इतना करो कि उससे कह दो कि तू जो भी करे, कर, हम राजी हैं। तुम्हारा राजीपन ही तुम्हारी साधना है, और उन्नति घटित होगी। वस्तुतः तभी उन्नति घटित होगी, ऐसी उन्नति जो तुमसे ज्यादा होगी।

संसार में हम जो भी पा लें, वह हमसे छोटा होता ह। अध्यात्म में जब भी कुछ पाया जाता है, वह हमेशा बड़ा होता है। और उस समय भक्त कहते हैं कि उसके प्रसाद से मिला, हमारे प्रयास से नहीं। उसका कारण इतना ही है, क्योंकि हमारे प्रयास से तो कुछ बड़ा मिल नहीं सकता, क्षुद्र ही मिलेगा। हम क्षुद्र हैं—उसके प्रसाद से मिला, उसकी कृपा से मिला, उसकी अनुकम्पा से मिला।

यह जो भक्त कहते हैं, इसमें सार है! वे असल में यह कह रहे हैं कि हमारे प्रयास से क्या होने वाला था। वह हमारे प्रयास से नहीं मिला। पर उन्होंने भी एक प्रयास किया है। आप यह मत सोचना कि फिर आपको भी जब मिलना होगा, मिल जायेगा। मिल जायेगा—पर आपने भी कोई प्रयास कहा किये हैं? इस बात से आप यह मत समझ लेना कि आपको कुछ भी नहीं करना है, क्योंकि वह अप्रयास भी एक तरह का करना है, वह अपने को छोड़ना भी एक कृत्य है, वह समर्पित होना भी एक साधना है। आप यह मत सोचना कि फिर ठीक है। कई लोग हैं, जो ऐसा सोच लेते हैं—जो सोच लेते हैं कि जब हमारे प्रयास से मिलेगा ही नहीं, तो जब मिलना होगा, मिल जायेगा—तो फिर हम बैठे ही हैं। इस सूत्र का यह मतलब नहीं है।

इस सूत्र का मतलब यह है कि तुम्हारे प्रयास से तो नहीं मिलेगा, लेकिन इतना प्रयास तुम्हें करना पड़ेगा, इतना प्रयास कि तुम कोई बाधा न डालो। अभी तो तुम बाधा डाल रहे हो, अभी तो तुम पीठ किये खड़े हो। अभी हालत ऐसी है कि सूरज निकला हुआ है और तुम सब तरफ से खिड़की-दरवाजे बंद करके कमरे के भीतर बैठे हुए हो। सूरज तुम्हारे प्रयास से नहीं निकलेगा और न तुम्हारे प्रयास से तुम सूरज को घर के भीतर ला सकते हो, लेकिन दरवाजा बंद कर सकते हो, घर के बाहर रोक सकते हो। परमात्मा को भीतर लाने का तुम्हारे हाथ में कोई बल नहीं है, लेकिन उसे बाहर रोकने में तुम समर्थ हो, तुम दरवाजा बंद रख सकते हो।

और परमात्मा आक्रमक नहीं है कि तुम्हारे दरवाजे तोड़कर भीतर आ जाये। वह प्रतीक्षा करेगा, बाहर सीढ़ियों पर बैठा रहेगा कि जब तुम दरवाजा खोलोगे, तब ठीक है। और तुम जन्मों तक बैठे रह सकते हो भीतर। तो दरवाजा खुला रखना। तुम्हारे दरवाजा खोलने से ही वह भीतर आ जायेगा, ऐसा नहीं है, लेकिन तुम्हारा दरवाजा खुला हो तो भीतर आने की संभावना है। लेकिन दरवाजा खोल कर यह मत

कहना कि दरवाजा खोल दिया है, अभी तक वह नहीं आया है। सिर्फ संभावना है कि दरवाजा खुला हो तो वह वापस न लौटेगा, जब घड़ी पक जायेगी।

और बिना पके कुछ भी नहीं होता। जब क्षण आ जायेगा, तुम्हारा दरवाजा खुला होगा और वह तुम्हारे दरवाजे पर होगा और तुम उन्मुख, उत्सुक, आतुर, प्रतीक्षा कर रहे होओगे—जब तुम्हारी प्रतीक्षा पूरी होगी, दरवाजा पूरा खुला होगा, घटना घट जायेगी। अगर तुम्हारा दरवाजा भी खुला हो और तुम सोचते हो कि दरवाजा खुला है, परमात्मा नहीं आ रहा है, तो समझना कि या तो दरवाजा खुला नहीं है, या तुम सपना देख रहे हो कि दरवाजा खुला है, और या फिर दरवाजा भी थोड़ा-बहुत तुमने खोला है, तो भी तुम आतुर नहीं हो कि वह आ जाये। या तुम शायद भीतर डरे हुए हो कि कहीं वह आ ही न जाये। हम डरते हैं, क्योंकि वह अगर आ जाये जीवन में, तो तुम्हारी जिंदगी वही नहीं हो पायेगी, जो वह है, वह बिलकुल बदल जायेगी।

लंका में ऐसा हुआ कि एक बौद्ध भिक्षु पचास वर्ष तक बोलता रहा लोगों से। वह ज्ञान को उपलब्ध था। उसकी मृत्यु का दिन करीब आ गया, तो उसने कहा कि मैं तुम्हें इतने दिनों से समझाता हूँ, अब मेरी मृत्यु का दिन भी करीब आ गया और मैंने तुम्हें समझाया है कि क्या करो, क्या करो, क्या करो। पर तुम कुछ करते नहीं हो। तो मरने के पहले मैं तुम्हे एक आखिरी मौका देता हूँ, अब मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम क्या करो, जिससे निर्वाण उपलब्ध हो जाये—अब मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुममें से कोई निर्वाण लेने को उत्सुक है, तो मैं देता हूँ, वह खड़ा हो जाये। वहां हजारों लोग जो उसके शिष्य थे, इकट्ठ हुए थे, मरता था उनका गुरु—सब एक दूसरे की तरफ देखने लगे कि कौन खड़ा हो! उन्होंने कभी सोचा न था कि निर्वाण ऐसे बिना सोचे-समझे, अचानक, दुर्घटना की तरह दरवाजे पर खड़ा हो जायेगा। एक आदमी ने सिर्फ हाथ उठाया, उसने कहा कि लेकिन मैं पहले ही बता दूँ कि अभी नहीं, आज नहीं, सिर्फ रास्ता बता दें, कभी जरूरत हो। चाहिये निर्वाण जरूर, एक दिन जरूर चाहिए, लेकिन अभी नहीं। बहुत काम पड़े हैं, अभी अधूरे हैं और अभी बहुत काम निबटा लेने हैं। बहुत से आश्वासन हैं, वह पूरे करने हैं, बच्चे की शादी करनी है, पत्नी बीमार है—तो अभी नहीं, इतनी कृपा करना। मगर इतना मैं कहे देता हूँ कि एक दिन चाहिये जरूर निर्वाण, तो रास्ता बता दें।

अगर आपको परमात्मा आज ही मिलता हो—अभी और यहीं, तो आप बड़ी चिन्ता में पड़ जाएंगे। इसके क्षण भर पहले आप इस चिन्ता में थे कि परमात्मा कैसे मिले, क्योंकि वह इतनी आसानी से मिलता नहीं। आप मजे से चिन्ता करने का मजा ले सकते हैं। लेकिन अगर अभी, यहीं मिलता हो, तो आप दूसरी चिन्ता में पड़ जायेंगे कि फंसे—अब घर कैसे वापिस लौटें? अगर परमात्मा मिल जाये तो वह जो पीछे छोड़ आये हैं जाल, वह फिर कौन पूरा करेगा? और वह जाल आपको बड़ा

मालूम पड़ता है परमात्मा से। आप उसको ही चुनेंगे। आप परमात्मा से कहेंगे कि तुम्हारे आने की जल्दी भी क्या है ! ये तो शाश्वत का है मामला, और जन्मों-जन्म पड़े हैं, कभी भी पा लेंगे—इतनी जल्दी भी क्या है ! लेकिन वे सब काम तो शाश्वत के नहीं हैं। वक्त पर हो जायें, तो हो जायें, नहीं तो चूक गये तो चूक गये। उसके लिए तो समय की दुनिया है और तुम तो सनातन हो, तुम्हें फिर भी मिल लेंगे।

तो तुम्हारे प्रयास की इतनी तो जरूरत है—एक निषेध की, एक निगेटिव, नकार की, कि तुम बाधा खड़ी मत करना।

ये हम जो यहां ध्यान के प्रयोग कर रहे हैं, ये सब बाधाएं तोड़ने के प्रयोग हैं।

सारी विधियां बाधाएं तोड़ने की हैं, कोई विधि परमात्मा को पाने की नहीं है।

परमात्मा किसी भी विधि से पाया नहीं जा सकता, क्योंकि जो विधि से पा लिया जाये, वह क्या खाक परमात्मा होगा !

किसी विधि से परमात्मा नहीं पाया जा सकता—वह तो अविधि में है, अविधि में फलित होता है।

लेकिन विधियों से तुम्हारी बाधाएं तोड़ी जा सकती हैं। द्वार-दरवाजे के ताले तोड़े जा सकते हैं। जंग खा गई चाबियां खो गई हैं, क्योंकि उन्हें बन्द किये न मालूम कितने जन्म हो गये। अब तो वे दीवालों जैसी मालूम पड़ती हैं; दरवाजा है, उसका भी पता नहीं चलता, क्योंकि उनको कभी खोला ही नहीं है। उसकी चाबियां तुम फेंक आए हो ऐसी जगह कि तुम भी खोजो, तो न मिलें, क्योंकि तुम्हें भी डर है कि कहीं चाबी मिल जाये और भूल-चूक से दरवाजा खोल लें !

सारी विधियां नकारात्मक हैं, वे तोड़ने की हैं।

लोग मुझसे पूछते हैं कि ऐसे क्या होगा—कि अगर कोई दस मिनट गहरी सांस भी ले ले, नाच भी ले पागल की तरह, 'हू' 'हू' भी चिल्ला ले, क्या इससे परमात्मा मिल जायेगा !

नहीं इससे परमात्मा नहीं मिलेगा, लेकिन इससे तुम टूटोगे और तुम टूटो, यह उसके घटने की पहली अनिवार्यता है।

इससे तुम टूटोगे—यह तुम्हें मिटाने का उपाय है, उसे पाने का नहीं।

हालांकि तुम मिटो तो ही वह पाया जाता है, यह अनिवार्य है।

तुम्हें जो ये मैं पागल की तरह विधियां करवा रहा हूँ, ये तुम्हें मिटाने के लिए हैं—तुम्हारी बुद्धिमत्ता मिटे, तुम्हारी समझदारी मिटे, तुम्हारा अहंकार मिटे, तुम्हारी जड़ता मिटे। तुमने जो अपने को बना रखा है, वह टूटे, पिघल जाये, तुम खो जाओ, तुम सरल हो जाओ—तुम्हारे दरवाजे खुले हों, तो किसी दिन, ठीक घड़ी में उसका आगमन हो जाता है।

अप्राप्य की इच्छा

प्रवचन : ५ अप्रैल ८, १९७२, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

७. जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।

क्योंकि तुम्हारे भीतर समस्त संसार का प्रकाश है, वही प्रकाश जो साधना-पथ क प्रकाशित कर सकता है। यदि तुम उसे अपने भीतर नहीं देख सकते, तो उसे कई और ढूंढ़ना व्यर्थ है।

८. जो तुमसे परे है, केवल उसी की इच्छा करो।

वह तुमसे परे है, क्योंकि जब तुम उसे प्राप्त कर लेते हो, तो तुम्हारा अहंकार न हो चुका होता है।

९. जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो।

वह अप्राप्य है, क्योंकि पास पहुंचने पर वह बराबर दूर हटता जाता है। तुम प्रका में प्रवेश करोगे, किन्तु तुम ज्योति को स्पर्श कदापि न कर सकोगे।

इन सूत्रों के साथ यात्रा गहरी होती है। धर्म की भाषा थोड़ी बेबूझ है। होना अनिवार्य है, क्योंकि धर्म का सम्बन्ध तथ्य से कम, रहस्य से ज्यादा है।

तथ्य तो उसे कहते हैं जो समझ में आ जाता है।

रहस्य उसे कहते हैं जो समझ में आता भी है और नहीं भी आता है। इतना ही समझ में आता है कि समझ में आ सकेगा।

तथ्य तो वह है जो बुद्धि के नीचे है।

रहस्य वह है, जिसके नीचे स्वयं बुद्धि है।

तथ्य की गहराई को बुद्धि नाप पाती है; रहस्य की गहराई को खोजने जाती है, तो खुद खो जाती है।

रामकृष्ण कहते थे जैसे कोई नमक का पुतला सागर की गहराई खोजने जाये, तो न पायेगा। शुरू तो करेगा, लेकिन मंजिल का कभी अन्त न आयेगा, क्योंकि नमक का पुतला ठहरा, जैसे-जैसे सागर में गहरे उतरेगा, वैसे-वैसे गलेगा भी, खोयेगा भी—गहराई में पहुंचते-पहुंचते स्वयं मिट चुका होगा। खबर देने को भी नहीं बचेगा कि लौटकर कह सके कि सागर कितना गहरा है। लेकिन नमक का पुतला ही सागर की गहराई को जान सकता है—पत्थर को डाल दें तो गहराई तक पहुंच जायेगा, लेकिन सागर के प्राणों से अस्पर्शित। जो गलेगा ही नहीं, वह सागर के प्राणों को छुएगा कैसे! जो मिटेगा ही नहीं, जो लीन ही नहीं होगा—वह सागर की वास्तविक गहराई को कैसे माप पायेगा!

सागर की एक गहराई तो वह है जो गजों से नापी जा सकती है। और एक सागर के अस्तित्व की गहराई है, जिसे गजों से नापने का कोई उपाय नहीं है—नमक का पुतला ही नाप पायेगा, क्योंकि वह मिटने को राजी है, डूबने को राजी है, खोने

को राजी है, वह सागर के साथ एक हो जायेगा, सागर के साथ तल्लीन हो जायेगा। उस तल्लीनता में ही जान पायेगा, लेकिन तब लौटके कहने का कोई भी उपाय नहीं।

रहस्य का अर्थ है कि जिसे खोजने तो आप निकलेंगे, लेकिन जिस दिन आप उसे खोज लेंगे, उस दिन आपका कोई पता न होगा।

तथ्यों को हम अपनी मुट्ठी में रख लेते हैं, रहस्य हमें अपनी मुट्ठी में रख लेगा।

ये सूत्र गहरे हैं अब, अब नदी थोड़ी गहरी होगी, थोड़ा ध्यान से समझेंगे तो ही समझ में आ सकेगा।

सातवां सूत्र : जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।

बड़ा उलटा है। दो अर्थों में उलटा है।

एक तो, हम सदा उसकी इच्छा करते हैं। इच्छा ही उसकी होती है, जो हमारे भीतर नहीं है। इच्छा का अर्थ यही होता है कि जो हमारे पास नहीं है, जिसका अभाव है, उसकी ही इच्छा होती है। इच्छा का अर्थ ही यह हुआ कि अभी हमारे पास नहीं है, कल हो सकेगा। कल हो सकेगा, इसकी वासना ही तो इच्छा है।

यह सूत्र कहता है : जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।

तो पहली तो बात कि जो तुम्हारे भीतर नहीं है, उसकी इच्छा मत करना। और हमारी सारी इच्छाएं तो उसी की है, जो हमारे भीतर नहीं है। हम तो उसी को मांग रहे हैं, जो हमारे पास नहीं है। और यह तर्कयुक्त भी है कि हम उसी को मांगें, जो हमारे पास नहीं है। जो पास है ही, उसे मांगने का क्या अर्थ? इसलिए पहली तो बात यह है कि इच्छा, जो भीतर है, उसकी होती ही नहीं। इसलिए सूत्र बड़ा उलटा है।

और दूसरा इसलिए भी यह सूत्र बड़ा गहरा और उलटा है कि जीवन में मिलता केवल वही है, जो हमारे पास था। वह तो कभी मिलता ही नहीं, जो हमारे भीतर था ही नहीं। कुछ भी हम पा लें, वह बाहर ही रह जायेगा और जो बाहर ही रह जायेगा, वह हमें मिला कहां! वह हमसे छीना जा सकता है। कितना ही कोई धन इकट्ठा कर ले—उसकी चोरी हो सकती है, उस पर डाका पड़ सकता है। और न चोरी हो, न डाका पड़े, न राज्य समाजवादी हो, कुछ भी न हो, तो भी मौत छीन लेगी। मौत के क्षण में, जो भी आपने चाहा था, इकट्ठा किया था, वह आपके हाथ से गिर जायेगा। वह आपके पास था, लेकिन आपका नहीं हुआ था। आपका हो जाता, तो कोई भी उसे छीन न सकता था।

इसलिए धर्म की दृष्टि में सम्पदा का अर्थ है, वह जो आपसे छीनी न जा सके।

जो आपसे छीनी जा सके, उसका नाम विपदा है, क्योंकि उसको बचाओ, उसका कष्ट भोगो बचाने का, उसे दूसरों से छीनो, झपटो, उसका कष्ट भोगो। और सारा कर लेने के बाद भी डरे रहो। चौबीस घण्टे कंपते रहो कि वह छिन न जाये और फिर

आखिर में वह छिनेगी। तो धर्म कहता है कि इसको सम्पत्ति नासमझ कहते होंगे, यह विपत्ति है।

सम्पत्ति तो वही है जो तुम्हारे पास से छीनी न जा सके। तो ही अपनी है, तो ही अपनी कहने का कोई अर्थ है। लेकिन ऐसी क्या सम्पत्ति होगी जो आपसे न छीनी जा सके? अगर ऐसी कोई सम्पत्ति है, तो आपके भीतर मौजूद ही होगी, तो ही। जो भी हम बाहर से डालेंगे, वह वापिस लिया जा सकता है।

जो हमारे स्वभाव के साथ ही उपलब्ध हुआ है, वही हमसे नहीं छीना जा सकता। जो हमा आत्मारी में ही बसा है, वही हमसे नहीं छीना जा सकता।

जो तुमसे छीनी न जा सके, उस सत्ता का नाम ही आत्मा है।

बहुत लोगों के पास आत्मा होती नहीं। जब मैं ऐसा कहता हूँ, तो आप बहुत चौकेंगे, क्योंकि हम तो मानके चलते हैं कि सभी के पास आत्मा होती है। वह ठीक है, सभी के पास आत्मा हो सकती है, एक अर्थ में होती है। लेकिन सभी के पास होती नहीं। अगर आप हिसाब लगायें कि आपके पास जो कुछ भी है, क्या उसमें कुछ भी ऐसा है, जो न छीना जा सके—तो आपको पता चल जायेगा कि आत्मा आपके पास है या नहीं। आप जरा एक फेहरिस्त बनायें अपनी सम्पत्ति की, जो भी आपके पास है और एक लाल स्याही की कलम लेकर बैठ जायें निशान लगाने को कि इसमें क्या-क्या है, जो छीना जा सकता है, तो आप पायेंगे कि पूरी फेहरिस्त लाल हो गई। उसमें एक भी चीज बचती नहीं, जो छीनी न जा सके—तो फिर आपके पास आत्मा नहीं है। अगर ऐसी कोई चीज आपके अनुभव में आये, कि आपके पास है, जिसे कोई भी छीन न सकेगा, मृत्यु भी नहीं, तो ही समझना कि आपके पास आत्मा है।

शास्त्र में पढ़ लेने से सभी को यह भ्रम हो जाता है कि आत्मा तो है ही। निश्चित है, लेकिन जिसका आपको पता ही नहीं है, उसके होने, न होने का क्या प्रयोजन? और जिसका आपको कोई अनुभव ही नहीं है, वह हो भी तो उसका करियेगा क्या? वह ऐसा हीरा है जो कहीं आपके घर में गड़ा है, आपको पता नहीं, वह हो या न हो, उसकी बाजार में क्या कीमत है? और आप यह कहें कि मेरे घर में हीरा गड़ा है—और मुझे पता नहीं! इसलिए मैं सम्राट हूँ—लेकिन फिर भी आपको भीख तो मांगनी ही पड़ेगी, क्योंकि वह हीरा किसी भी काम का नहीं। और जब तक वह मिल न जाये, तब तक भरोसा क्या आपका, कि सच में गड़ा है। यह भी कहना कि गड़ा है मेरे घर में, जब तक उखाड़ न लिया जाये, तब तक क्या अर्थ रखता है? क्या आप कहेंगे कि शास्त्रों में लिखा है इसलिए। लेकिन शास्त्रों का क्या भरोसा? आपको कुछ भी तो पता नहीं, नक्शा आपके पास नहीं, शक्ल-सूरत उसकी कुछ पता नहीं, नाम-धाम

कुछ पता नहीं, बस आप सुनते हैं कि आत्मा है। ऐसी आत्मा के होने न होने का कोई भी अर्थ नहीं है।

यह सूत्र कहता है : जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।

क्यों इधर-उधर की इच्छा में समय और जीवन-ऊर्जा को नष्ट किया जाये ? क्योंकि पा भी लिया जाये, तब भी खो जाता है। तो सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है। पानी पर खींची गई लकीरों की तरह हम खींच भी नहीं पाते और वे मिट जाती हैं। ठीक वैसी ही हमारी सारी सम्पदा है। हम उपलब्ध भी नहीं कर पाते कि सब खोना शुरू हो जाता है।

इच्छा ही करनी है तो उसकी इच्छा करो, जो पानी पर खींची लकीर सिद्ध न हो।

और वह सम्पत्ति तुम्हारे भीतर है। उस सम्पत्ति को व्यक्ति पैदा ही होता है लेकर। इस अस्तित्व में कोई भी दरिद्र नहीं हैं।

अस्तित्व सभी को सम्राट की तरह पैदा करता है।

दरिद्र हम अपने हाथों से हो जाते हैं, दरिद्रता अर्जित है, बड़ी मेहनत से हम दरिद्रता को कमाते हैं।

सम्पदा लेकर पैदा होते हैं, साम्राज्य हमारे भाग्य में ही लिखा होता है, वह हमारे भीतर ही छिपा होता है। लेकिन जो हमारे भीतर छिपा है, उसे भी पाना पड़ता है। क्योंकि उसका विस्मरण है, क्योंकि हमें उसकी कोई याददास्त नही है। जानकर हम अपने मन को ऐसे रास्तों पर ले गये हैं, जहां उसकी विस्मृति हो गई है। हमारा ध्यान बाहर चला गया है और भीतर ध्यान को लाने का हम मार्ग भूल गये है।

और बाहर जाने का कारण है। किसी पाप के कारण ऐसा नहीं हो गया है कि ध्यान बाहर चला गया है। ध्यान बाहर जाने का प्राकृतिक कारण है, क्योंकि जीवन की सुरक्षा के लिए ध्यान का बाहर जाना जरूरी है। अगर बच्चा ध्यान भीतर लिए हुए पैदा हो, तो जिन्दा न रह सकेगा। बच्चे का ध्यान बाहर जाना जरूरी है, क्योंकि शरीर के लिए, अस्तित्व के लिए, बचाव के लिए, सुरक्षा के लिए, उसे चौकन्ना होना जरूरी है। भूख लगेगी तो भोजन भीतर नहीं मिलेगा, भोजन बाहर मिलेगा। तो भूख लगेगी तो बच्चे का ध्यान बाहर जायेगा, जहां से भोजन मिलेगा।

इसीलिए आपको ख्याल हो, न हो, स्त्री जाति के स्तन पुरुषों को, बूढ़े भी हो जायें, तो भी आकर्षक मालूम होंगे। वह बचपन की पहली अनुभूति है, जो छूटती नहीं। बच्चे ने पहला जो सम्बन्ध बनाया है जगत से, वह स्तन से बनाया है। जीवन की सुरक्षा का पहला आधार स्तन में मिला है। स्तन ही जगत था बच्चे के लिए पहला। और जो पहला संस्पर्श है बाहर की दुनिया से और जो प्रीतिकर संस्पर्श है, जिससे जीवन बढ़ा, विकसित हुआ, बचा—वह स्तन है। इसलिए बूढ़ा भी हो जाये पुरुष तो

भी स्त्री के स्तन से लगाव नहीं छूटता। फिल्में हों, चित्र हों, मूर्तियां हों—पुरुष स्त्री के स्तन को बड़े ध्यानपूर्वक निर्मित करता है। वह बचपन की याद है, जो छूटती नहीं है। और जिस दिन छूट जाये, समझ लेना, उस दिन ही आप संसार से मुक्त हुए। वह आपका पहला संसार है। वहां से संसार शुरू हुआ है, वह संसार का पहला आधार है। तो बच्चे को भूख लगेगी तो ध्यान बाहर जायेगा। प्यास लगेगी तो ध्यान बाहर जायेगा। जरूरतें पूरी होंगी बाहर से। आत्मा कोई जरूरत नहीं है और आत्मा को बाहर से मांगना भी नहीं है, वह भीतर है। चूंकि उसकी कोई जरूरत नहीं है, इसलिए उसका स्मरण खो जाता है। जिसकी जरूरत है, उसकी याद बनी रहती है।

आपको ख्याल होगा कि अगर पैर में कांटा गड़ जाये तो पता चलता है कि पैर है। सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। जब आपके सिर में दर्द नहीं होता, तब आपको पता चलता है कि सिर है। अगर चले तो आप समझना कि दर्द है। बिना दर्द के सिर का कोई पता नहीं चलता। शरीर का पता ही बीमार आदमी को चलता है, स्वास्थ्य आदमी को पता नहीं चलता। स्वास्थ्य की परिभाषा ही यही है।

विदेह—स्वास्थ्य की परिभाषा है, जहां देह का पता न चलता हो।

तो ही आप स्वस्थ हैं। अगर देह का पता चलता हो तो उसका मतलब है कि देह रूग्ण है। रोग में ही पता चलता है, क्योंकि रोग में जरूरत पैदा हो जाती है और ध्यान का जाना जरूरी हो जाता है। जब पैर में कांटा गड़ा है, तो पूरे शरीर की जरूरत हट गई एक तरफ—कांटे को अलग करना पहली जरूरत हो गई। तो सारा ध्यान कांटे की तरफ जायेगा, तभी तो कांटा हटेगा। अगर ध्यान न जाये तो कांटा लगा ही रहेगा, जहर हो जायेगा। सिर में दर्द है तो सारा ध्यान सिर की तरफ जायेगा। इसीलिए तो चिकित्सा-शास्त्र ने ऐसी तरकीबें निकाली हैं कि आपके सिर में दर्द भी हो, तो आपको एक गोली दे देने से दर्द नहीं मिटता, लेकिन दर्द तक ध्यान जाने की जो व्यवस्था थी, वह टूट जाती है। तो फिर आपको दर्द का पता नहीं चलता। दर्द गोली से नहीं मिटता—गोली तो सिर्फ भुलावा है और दर्द तक आपके ध्यान जाने की जो प्रक्रिया है, उसको तोड़ देती है, बीच के स्नायुओं को शिथिल कर देती है, कि वहां से खबर नहीं आ सकती। तो फिर ऑपरेशन में आपका पैर भी काट डाला जायेगा तो आपको पता नहीं चलता। एक इन्जेक्शन दे दिया, तो इन्जेक्शन आपके दर्द को नहीं रोकता—दर्द तो होगा ही, लेकिन दर्द तक ध्यान को नहीं जाने देता। इसलिए दर्द का कोई पता नहीं चलता। आपके पूरे शरीर को काटा जा सकता है और आपको पता भी न चले। बस पता चलने का एक ही उपाय है कि ध्यान जाना चाहिये। और ध्यान जायेगा।

जहां भी पीड़ा होगी, वहां ध्यान जायेगा।

आत्मा में कोई पीड़ा नहीं है, इसलिए ध्यान जाने का कोई उपाय नहीं है। आत्मा में सदा आनन्द है, इसलिए ध्यान को बुलाने की कोई जरूरत नहीं है।

शरीर में सदा उपद्रव है, कहीं न कहीं कोई मुसीबत है—शरीर बड़ा यन्त्र है, जटिल है बहुत। पृथ्वी पर अब तक हम कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना पाये जो शरीर से ज्यादा जटिल हो। और वैज्ञानिक कहते हैं कि एक आदमी के साधारण शरीर में जो घटना घट रही है, अगर उतनी घटना हमे घटानी हो, तो कम से कम दस वर्गमील की फैक्टरी बनानी पड़े। और इतना उपद्रव और शोर-गुल मचे उस फैक्टरी में जिसकी सीमा नहीं। आदमी के भीतर यह सब चुपचाप हो रहा है!

आदमी एक बहुत बड़ी घटना है। उसके शरीर में, एक आदमी के शरीर में, कोई सात अरब जीवाणु हैं। उन सात अरब जीवाणुओं की भीड़ है आपका शरीर। उन सात अरब जीवाणुओं का समाज है, उनकी व्यवस्था है। और उनकी व्यवस्था बड़ी अनूठी है। अब तक आदमी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बना पाया। हमारे बड़े से बड़े राज्य भी उतने व्यवस्थित नहीं हैं, जितने कि व्यवस्थित भीतर के सात अरब जीवाणु हैं। आपको ख्याल नहीं है उनके काम का, अगर आप शरीर की पूरी काम-प्रक्रिया को समझें, तो चकित हो जायेंगे। जरा सी चोट लगती है तो काम शुरू हो जाता है। भोजन आप जरा-सा पेट में डाल लेते हैं तो काम शुरू हो जाता है। आप कुछ भी नहीं करते, तो भी आपके भीतर का बड़ा यन्त्र कार्य में लगा हुआ है। जरूरी है इस जटिल यन्त्र की तरफ जहां भी, जरा-सी भी उलझन हो, फौरन ध्यान जाये। अगर ध्यान नहीं जायेगा तो आप मर जायेंगे।

तो बच्चा अगर भीतर का ध्यानी हो पैदा, तो बच नहीं सकता। इसलिए तो हम कहते हैं जो परम-ध्यान को उपलब्ध हो जाते हैं, उनका फिर जन्म नहीं हो सकता। उसका कारण भी है, जन्म हो भी नहीं सकता, क्योंकि जो परम-ध्यान को उपलब्ध हो जाता है, उसकी लीनता भीतर हो जाती है। भीतर लीनता होने से नये शरीर से सम्बन्ध ही निर्मित नहीं होता। सम्बन्ध भी निर्मित हो जाये तो बच्चा जी नहीं सकता। क्योंकि बाहर की जरूरत, मांग, वह पूरी न कर पायेगा; बाहर की चुनौती का वह मुकाबला नहीं कर पायेगा। शरीर की जरूरत है, जीवन की जरूरत है कि ध्यान बाहर जाये। और शरीर में इतनी पीड़ायें हैं, इतनी जटिलतायें हैं कि ध्यान की पुकार निरन्तर वहां बनी रहती है। इसलिए हमें शरीर का तो पता चलता है, इन्द्रियों का पता चलता है, संसार का पता चलता है, सिर्फ एक का पता नहीं चलता—वह जो हम हैं! क्योंकि एक तो वहां कोई पीड़ा नहीं है। वहां कभी कोई पीड़ा नहीं हुई और कभी कोई पीड़ा वहां हो नहीं सकती। इससे आप समझें—आदमी का आत्म-विस्मरण क्यों है?

आत्म-विस्मरण इसलिए है कि आत्म-स्मरण की कोई जरूरत नहीं मालूम होती।

जिनको जरूरत मालूम होती है आत्म-स्मरण की, वे तत्काल आत्म-स्मरण को उपलब्ध हो जाते हैं।

जिनको जरूरत मालूम होती है? यह भी थोड़ा ख्याल में ले लें। किन व्यक्तियों के जीवन में जरूरत पैदा होती है आत्म-स्मरण की? शरीर के स्मरण की जरूरत सबके जीवन में है। लेकिन वे थोड़े से ही लोग हैं, जिनके जीवन में आत्म-स्मरण की जरूरत पैदा होती है। वह कब पैदा होती है?

वह तब पैदा होती है, जब शरीर के सारे अनुभव से गुजरने के बाद यह ख्याल में आता है कि चाहे कैसी भी करो व्यवस्था; शरीर में दुःख बना ही रहेगा। चाहे उपाय कुछ भी करो बाहर, सुख के पाने की सुविधा नहीं है। कितना ही आयोजन करो संसार में बहिर्दृष्टि होकर, किसी तरह के आनन्द की कोई किरण, कोई सुर सुनाई नहीं पड़ता। जब ऐसी प्रतीति किसी को होती है और बाहर का सारा का सारा जीवन दुःख हो जाता है।

ध्यान रखना कि एक दुःख होगा, तो फर्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि दूसरे सुख की आशा बनी रहेगी। दस दुःख हो जायेंगे, तो दस सुखों की आशा साथ खड़ी रहेगी, तो हम बाहर दौड़ते रहेंगे। एक सुख को छोड़ सकते हैं, क्योंकि दुःख हो गया—दूसरे सुख की तलाश करने लगेंगे। लेकिन जब बाहर का पूरा जीवन ही दुःख अनुभव हो जायेगा ...इसलिए बुद्ध ने कहा है कि जीवन दुःख है—जब पूरा जीवन ही दुःख मालूम होगा—तब अचानक ख्याल आयेगा कि बाहर तो सब दुःख है—तो मैं भीतर की खोज कर देख लूं कि वहां क्या है। बाहर जब सब व्यर्थ हो जाता है, तो व्यक्ति भीतर की तरफ उन्मुख होता है। बच्चा तो पैदा होता है बाहर की तरफ उन्मुख—कभी-कभी कोई जीवन के गहन अनुभव से गुजरकर भीतर की तरफ उन्मुख होता है। भीतर की उन्मुखता के लिए ही यह सूत्र है।

जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो—तो ही परम आनन्द है, तो ही परम मुक्ति है, सम्भावना है।

जो तुम्हारे भीतर है, उसकी इच्छा करो।

लेकिन हम तो अगर भीतर की भी इच्छा करते हैं, तो वह भी नाममात्र को ही भीतर की होती है, वह भी बाहर की ही होती है।

मेरे पास लोग आते हैं, वह कहते हैं कि अगर हम ध्यान करें, तो क्या सुख-सम्पदा बढ़ेगी? मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कि अगर हम ध्यान करें तो क्या सफलता संसार में मिलेगी? उन्हें पता ही नहीं कि वे क्या कह रहे हैं!

ध्यान का मतलब ही है कि संसार अब विफल हो गया, वहां कोई सफलता है ही नहीं—इस बात की प्रतीति, तो ध्यान की शुरूआत है। ध्यान की शुरूआत तो होती

ही तब है, जब बाहर पता चल जाता है कि बाहर सम्पदा है ही नहीं। मिलने का और न मिलने का कोई सवाल नहीं है—वहां सम्पदा है ही नहीं, वहां केवल सम्पदा का भ्रम है। जब किसी का भ्रम टूट जाता है, तो ध्यान का सवाल उठता है। लेकिन भ्रम नहीं टूटा है। बाहर सब तरह की कोशिश कर ली है और सम्पदा नहीं मिली है, लेकिन बाहर सम्पदा है, यह पक्का है। अब सोचते हैं कि शायद ध्यान से बाहर सम्पदा मिल जाये, तो चलो ध्यान कर लें। लेकिन ध्यान से कोई प्रयोजन नहीं है—प्रयोजन सम्पदा से है।

जब तक प्रयोजन बाहर है, जब तक इच्छा बाहर है, तब तक कोई अध्यात्म की यात्रा में बढ़ नहीं सकता।

इसलिए इस सूत्र को बहुत खयाल में रख लेना।

जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।

क्योंकि तुम्हारे भीतर समस्त संसार का प्रकाश है, वही प्रकाश जो साधना पथ को प्रकाशित करता है। यदि तुम उसे अपने भीतर नहीं देख सकते, तो उसे कहीं और ढूढ़ना व्यर्थ है।

जो भी पाने योग्य है, तुम्हारे भीतर है। चाहे उसे कहो प्रकाश, चाहे उसे कहो आनन्द, चाहे उसे कहो परमात्मा, चाहे उसे कहो मुक्ति, चाहे कहो निर्वाण, वह जो भी पाने योग्य है—वह तुम्हारे भीतर है। बुद्धों ने, महावीरों ने, कृष्णों ने, क्राइस्टों ने जो पाया है—वह तुम्हारे भीतर है।

लेकिन हम उसे भी बाहर ही खोजते हैं! जो हमारे भीतर है, उसे भी हम बाहर ही खोजते हैं! हमारी खोज ही बाहर की तरफ दौड़ती है। हम जानते ही हैं एक ढंग खोजने का—बाहर। जीवन की जरूरत से यह ढग पैदा हो गया है। इस ढंग को तोड़ेंगे नहीं, तो आप बाहर ही दौड़ते रहेंगे।

और बाहर की दौड़ में आपको बहुत बार लगेगा कि सुख करीब है। बहुत करीब है—अब मिला, अब मिला। और हर बार जब पहुंचेंगे वहां, तो पायेंगे कि इन्द्रधनुष की तरह खो गया। इन्द्रधनुष दिखते बहुत प्यारे हैं, लेकिन दूर से ही उसमें रंग होते हैं। अगर आप पास पहुंच जायें तो वह खो जाते हैं। उनको देखने के लिए फासला चाहिये। वह फासले से पैदा हुआ भ्रम है। पास पहुंच गये, भ्रम टूट जाता है।

सब सुख इन्द्रधनुष ही हैं—दूर हैं।

अगर आप सड़कों पर भीख मांग रहे हैं, तो आपको लगता है कि महलों में सुख है—क्योंकि महल बहुत दूर है। वह जो महल में बैठा है, उसे सुख का बिलकुल पता नहीं चल रहा है। वह हो सकता है कि इस भिखमंगे से भी ज्यादा दुःखी हो, क्योंकि भिखमंगे को कम से कम आशा तो है कि महल में सुख है। वह कभी न कभी महल में

पहुंच ही जायेगा। इस आशा के भरोसे भी जी तो लेता ही है। लेकिन वह जो महल में पहुंच गया है, उसकी यह आशा भी तिरोहित हो गई है। महल में कोई सुख मालूम नहीं पड़ता। लेकिन वह भी सोचता है कि किसी और बड़े महल में सुख जरूर है।

जहां हम नहीं हैं, वहां सुख दिखाई पड़ता है।

और ऐसा नहीं है कि यह बात महलों के सम्बन्ध में ही सच हो, यह भी हो जाता है कि महलों में रहकर ऊब गया आदमी कभी-कभी सोचने लगता है कि झोपड़ों में रहने वाले लोग बड़े सुखी हैं। शहरों में रहने वाले लोग सोचते हैं, गांवों में रहने वाले लोग बड़े सुखी हैं। गांवों में रहने वाले लोग शहर की तरफ दौड़ रहे हैं! गांव के किसी आदमी को कहो कि परम-आनन्द में हो, तो वह भरोसा नहीं करता आपका कि कहां का आनन्द? मगर शहरों में लोग हैं कि वे सोचते हैं कि गांवों में आनन्द बरस रहा है! कविताएं लिखते हैं, किताबें लिखते हैं कि गांवों में बड़ा आनन्द है! हालांकि गांवों में वे भी जाते नहीं। रहते हैं वे भी शहरों में, जाएं तो उन्हें पता चलता है कि भारी दुःख है। जो जाते हैं, वे फौरन वापस लौट आते हैं।

यह बड़े मजे का मामला है। जहां हम नहीं हैं, वहां सुख दिखाई पड़ता है। और जहां हम हैं, वहाँ दुःख दिखाई पड़ता है। लेकिन जिन जगहों पर हम नहीं हैं, वहां भी कोई है। उससे हम पूछने का भी कष्ट नहीं उठाते, कि वहां तुझे क्या मिल रहा है! वह भी वहां तृप्त नहीं है।

खोजते हैं हम बाहर—और बाहर वह कभी भी नहीं मिलेगा। क्योंकि बाहर वह है ही नहीं, मिलने का कोई कारण ही नहीं है। जिसकी हम तलाश कर रहे हैं, वह हमने भीतर खो दिया है। और भीतर खो दिया है इस जीवन की जरूरत के कारण। ध्यान चला गया बाहर और ध्यान चौबीस घण्टे बाहर व्यस्त है, भीतर हम बे-ध्यान हो गये हैं। भीतर बे-भान हो गये हैं और सारा भान बाहर चला गया है। अगर यह ख्याल में आ जाये, तो हम भान को भीतर ले जा सकते हैं।

इसलिए ध्यान के आखरी चरण में मैं आपसे कहता हूँ कि आप जैसे हैं, मुर्दे की भांति हो जायें। कुछ भी हो रहा हो, मुर्दे की भांति हो जायें। नहीं तो ध्यान की जो शक्ति जगती है, उसको भी आप बाहर ले जायेंगे, वह तत्क्षण चली जायेगी। अगर आपकी आंखें खुली रखने का मौका दिया जाये तो वह ध्यान की जो शक्ति जगी है, आपकी आंखों से तत्क्षण बाहर घूमने लगेगी। आप किसी व्यर्थ चीज पर उसको नष्ट कर देंगे। पास में खड़ी कोई स्त्री दिखाई पड़ जायेगी, कोई आदमी नाचता हुआ दिखाई पड़ जायेगा, कोई व्यक्ति पागल-सा मालूम पड़ेगा। आपको पता नहीं कि आप क्या कर रहे हैं? लेकिन आपकी आंखें अभी ताजी हैं—भीतर ध्यान पैदा हुआ है। आप उस ध्यान को नष्ट किये दे रहे हैं—एक क्षण में।

कष्टों में जो पैदा होता है, वह एक क्षण में खोया जा सकता है।

इसलिए कहता हूँ, आंखें बांधकर रखें, ताकि वह जो ध्यान पैदा हुआ है, वह आंख से बाहर न बहे। इसलिए कहता हूँ, शरीर को मुर्दे की भांति छोड़ दें, जरा भी हिलाएं-डुलाएं न। क्योंकि आपको अपनी ही बेईमानियों का कोई पता नहीं है। कहीं लगेगा कि पैर में दर्द हो रहा है, कहीं लगेगा कि हाथ जरा ठीक कर लें, कहीं लगेगा सिर में खुजलाहट आ रही है। अगर आ भी रही है सिर में खुजलाहट, तो दस मिनट में क्या बिगड़ने वाला है? जिन्दगी पड़ी है, खुजला लेना और अगर दस मिनट पैर में थोड़ी तकलीफ भी हो रही है, तो क्या बिगड़ा जा रहा है? कोई मौत नहीं आ जायेगी। और अगर एक चींटी पैर पर चढ़नी शुरू हो गई, तो क्या बिगाड़ लेगी? काट ही सकती है। कोई साँप भी नहीं चढ़ गया है, चींटी ही चढ़ रही है! मगर चींटी आपको बेचैन कर देती है। चींटी नहीं कर रही, चींटी बहाना है। आपके भीतर जो ध्यान की शक्ति पैदा हुई है, वह कोई भी बहाने बाहर बहना चाहती है। आप हाथ से चींटी को हटा लेंगे—आपको पता नहीं कि उस हाथ की उस छोटी सी हरकत में आपने ध्यान बाहर फेंक दिया।

इसलिए कहता हूँ कि जब ध्यान की ऊर्जा जगती है, तो सब तरफ से रुक जायें। बस पत्थर की तरह हो जायें। इस दस मिनट में बाहर की दुनिया रही ही नहीं—तो ही किसी दिन, किसी क्षण, मौका आयेगा कि ध्यान धक्का मारेगा—बाहर जाने का उपाय नहीं होगा। तो धक्का मारेगा और भीतर की एक झलक मिल जायेगी। एक झलक मिल जाये, तो फिर आपको रस और स्वाद आ गया। तो फिर आप भीतर की तरफ जा सकते हैं। लेकिन आप छोटी चीजों में खोने को तैयार हैं, बहुत क्षुद्र चीजों में। अगर सोचेंगे तो आपको भी लगेगा क्या क्षुद्र बात थी? इसमें खोने जैसा क्या था? खड़े थे, थक गये थे, तो इसमें क्या अड़चन आ रही थी? लेकिन मैं देखता हूँ कि आप अपने को कैसा धोखा दे लेते हैं? जल्दी से बैठ जाते हैं। मैं कहता हूँ - रुक जायें, आप जल्दी से बैठ जाते हैं! मैं कह रहा हूँ—रुक जायें, जैसे हैं वैसे ही; आप जल्दी से बैठके ठीक आसन लगा लेते हैं! आपको पता नहीं कि आप कर क्या रहे हैं, किसको धोखा दे रहे हैं? मुझे धोका दे रहे हैं? मुझे धोका देने का क्या सार है? आपने ही तीस मिनट इतना श्रम लिया और आप एक सेकेन्ड में उसको खो रहे हैं, क्योंकि आप ध्यान बाहर दे रहे हैं।

शक्तियां जरा से छिद्र से बह जाती हैं। और आप यह मत सोचना कि नाव में केवल एक छेद है, इसलिए क्या हर्ज है—पार हो जायेंगे। एक छेद का सवाल नहीं है—छेद है, इतना काफी है। एक छेद नाव को डुबा देगा। और ये बेईमानियां छेद बन जाती हैं।

जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।

और अगर तुम उसे भीतर नहीं पा सकते हो, तो बाहर ढूंढना व्यर्थ है, क्योंकि वह बाहर नहीं है।

आठवां सूत्र : जो तुमसे परे हैं, केवल उसी की इच्छा करो।

यह भी बहुत सोचने जैसा है—जो तुमसे परे हैं, केवल उसी की इच्छा करो।

हम हमेशा जो हमारे हाथ के भीतर है, उसी की इच्छा करते हैं। जिसमें हम पाते हैं कि सफल हो ही जायेंगे, उसकी ही इच्छा करते हैं। जिसमें हमें पक्का भरोसा है कि हम कुशल हैं, उसी की इच्छा करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आप अपने से बड़े कभी भी न हो पाएंगे। आप जैसे हैं, जो हैं—वहीं रुक जायेंगे। सदा अपने से पार की इच्छा करनी चाहिये—तो ही होती है गति, तो ही होता है विकास। क्योंकि वह जो पार है अपने से, उसको पाने मे ही आप बड़े होते हैं।

लेकिन क्या है पार आपके?

जगत मे ऐसी कोई भी चीज नही, जो मनुष्य के पार हो। सभी कुछ मनुष्य पा लेता है, आप भी पा सकते है। माना कि सिकन्दर बहुत पा लेता है। आप थोड़े छोटे सिकन्दर हैं, उतना नही पा सकते। वह अगर बड़ा साम्राज्य बना लेता है, तो आप एक छोटा सा बनाते हैं, लेकिन असम्भव कुछ भी नहीं है। अगर आप भी वैसे ही पागल और जिद्दी हों, जैसा सिकन्दर है; अगर आपको भी मद का वैसा ही नशा चढ़ जाये, तो आप भी पा लेंगे। एक बात तय है कि सिकन्दर जो पाता है, वह कोई भी आदमी पा सकता है। उसमें आदमी के पार कुछ भी नहीं है। हो सकता है कि कोई एन्ड्रू कार्नेगी, कोई रॉकफेलर अरबों रुपये कमा लेता है, तो आप भी कमा सकते हैं—पार कुछ भी नही है। अगर आप एक पैसा कमा सकते हैं तो अरब रुपये भी कमा सकते हैं, क्योंकि अरब रुपये और एक पैसे में अन्तर परिमाण का है, गुण का नहीं।

जो एक पैसा कमा सकता है, वह दो क्यों नहीं कमा सकता? और एक पैसा, और एक पैसा, और एक पैसा जुड़ते-जुड़ते अरब हो जाते हैं। तो जो फर्क है, वह कोई गुणात्मक नही है, क्वालिटेटिव नहीं हैं, क्वान्टिटी का है। तो अगर मैंने एक पैसा कमा लिया, तो मैंने दुनिया की सब सम्पत्ति कमा ली। मैं कमा सकता हूं, क्योंकि एक पैसा, मौलिक सीढ़ी मेरे हाथ में आ गई। अब व्यर्थ है कि अरब कमाऊं, कि दो अरब कमाऊं। एक पैसा कमाने में रास्ता साफ हो गया। वह मैं कमा सकता हूं, वह परे नहीं है।

यह सूत्र कहता है, जो तुमसे परे है, केवल उसी की इच्छा करो।

क्या है तुमसे परे?

तुम ही—वह तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वही तुमसे परे है। बाकी सब तुम्हारे हाथ के भीतर है। बाकी सब आसान है। कितना ही कठिन मालूम पड़ता हो, आसान है।

बाकी सब क्षुद्र है। एक तुम्हारे भीतर जो छिपी सम्पदा है, वही एक तुमसे पार
पड़ती है। उस तरफ जाने का न कोई उपाय सूझता है, न कोई मार्ग दिखाई पड़
न उस तरफ हाथ फैला सकते हो, क्योंकि हाथ बाहर जाते हैं। न उस तरफ
खोल सकते हो, क्योंकि आंख बाहर खुलती है। न उस तरफ कान दे सकते हो,
कान बाहर सुनते हैं। सारी इन्द्रियां बाहर जाती हैं और उसकी तलाश भीतर
है। मन बाहर जाता है और उसकी तलाश भीतर करनी है। वह तुमसे परे है

तुमसे परे है, तुम्हारा होना।

इसका अर्थ हुआ कि तुम दो तरह के हो। एक तो तुम्हारा बाहर जाने वा
है—तुम्हारी इन्द्रियां, तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, तुम्हारा अहंकार। इन सबके
का नाम है अहंकार। यह बाहर जाने वाला है। इस अहंकार के परे है
वास्तविक स्वरूप, तुम्हारी आत्मा।

अगर इच्छा ही करनी है तो केवल उसकी इच्छा करो, जो तुमसे परे है।

वह तुमसे परे है, क्योंकि जब तुम उसे प्राप्त कर लेते हो तो तुम्हारा अहंक
हो चुका होता है। वह तुमसे परे इसलिए है कि तुम उसे पाने मे नष्ट हो जाओ

इस सूत्र को समझ लें।

जिसको पाने में तुम नष्ट नहीं होते, वह तुमसे परे नहीं है। जिसको पाने म
अपना अहंकार नहीं चुकाना पड़ता, वह तुमसे परे नहीं है। जिसकी कीमत में तु
को देना पड़ता है, वही तुमसे परे है। और जिस दिन कोई व्यक्ति आत्मा को उ
होता है, उस दिन उसका वह पुराना रूप, जो यात्रा पर निकला था, वैसे ही छू
होता है, जैसे साँप की केंचुली छूट जाती है। जिस दिन कोई अपने को पाता
दिन बड़ी हैरानी मे पड़ता है कि मैं—वह तो बचा ही नही, जो खोजने निकला

कबीर ने कहा है: 'हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराय!' खोजते-खोजते
खो गया, तब हुआ मिलन। तब हुआ मिलन! लेकिन जो खोजने निकला था
बचा नहीं—तब हुआ मिलन! कबीर ने बड़ी मीठी बात कही है। खोजनें निकला
सोचता था पा लूंगा उसे। जब तक वह नही था, तब तक मैं था। और जब उसे
तो देखा कि जो खोजने निकला था, वह तिरोहित हो गया। और मजे की बात
कि जब मैं खो गया, तब देखा कि 'हरि लागे पाछे फिरे, कहत कबीर कबीर!'
बचा नहीं, तब खुद भगवान मेरे पीछे चिल्लाने लगे, ढूंढने लगे मुझे और कहं
कबीर-कबीर! 'हरि लागे पाछे फिरे, कहत कबीर कबीर।' जब तक मैं था और
रहा था जोर से कि मैं हूं—तब तक उसकी कोई झलक न मिली! और अब
खो गया, तो वे मेरे पीछे लगे फिरते हैं—मुझे पूछते हैं कि कबीर कबीर! वह
गया, उसकी इतनी पूछ हो रही है! और वह जब था तो उसकी कोई भी पूछ न

तुम्हें तुम्हारा पूरा सम्मान उस दिन मिलेगा, जिस दिन तुम मिट जाओगे।
तुम्हारा पूरा गौरव उस दिन खिलेगा, जिस दिन तुम नहीं होओगे।
बीज जब टूट जाता है, तो जन्म होता है पौधे का।
नदी जब खो जाती है, तो सागर बन जाती है।
यह जो क्षुद्र है अहंकार—इसके परे है वह विराट, जो तुम्हारे भीतर ही छिपा है।

नौवां सूत्र : जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो।

जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो।

जो मिल सकता है, उसकी भी क्या इच्छा करनी? उसे भी क्या मांगना, जो मिल ही जायेगा?

मांग ही करनी हो, इच्छा ही करनी हो तो उसकी करना, जो मिल नहीं सकता।

बड़ी अजीब बात है, क्योंकि अगर वह मिल ही नहीं सकता, तो मांग करने से भी क्या होगा? अगर निश्चित ही वह अप्राप्य है, मिल नहीं सकता, तो उसकी इच्छा करने से भी क्या होगा? और अगर इच्छा करने से वह मिल सकता है, तो फिर उसको अप्राप्य कहने का क्या प्रयोजन? वह प्राप्त ही था, इच्छा करने से मिल गया।

तो इस सूत्र को समझना पड़ेगा—क्या है अप्राप्य? जो मिल सकता है, वह तो अप्राप्य नहीं है। फिर कौनसी चीज अप्राप्य है?

एक ऐसी चीज भी है, जो अप्राप्य इसलिए है, कि वह तुम्हें मिली ही हुई है, उसे पाने का कोई सवाल नहीं है। उसे प्राप्त करने का कोई सवाल नहीं है। पाया तो उसे जाता है, जो मिला न हो। तुम्हारा आन्तरिक अस्तित्व तो तुम्हें मिला ही हुआ है। वह अप्राप्य नहीं हैं, वह प्राप्य ही है, इसलिए उसे अप्राप्य कहा है। उसे पाने का कोई उपाय नहीं है, उसे सिर्फ उघाड़ने का उपाय है। उसे पाने की कोई जरूरत नहीं है, उसे केवल पहचानने की जरूरत है; प्रतिभिज्ञा, पहचान, स्मृति—बस इतना काफी है। उसे पाने के लिए कुछ और करना नहीं है, सिर्फ एक पर्दा सरकाना है और वह मौजूद है। वह सदा से मौजूद है अपनी पूरी सत्ता में तुम्हारे भीतर।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तब किसी ने पूछा—क्या मिला है आपको, हमें भी बताएं? तो बुद्ध ने कहा है कि मिला कुछ भी नहीं, खोया जरूर बहुत। मिला कुछ भी नहीं! इसलिए कि जो मिला, वह पहले से ही मिला हुआ था। हम नासमझ थे कि हमें पता ही नहीं था। खोया बहुत, अपने को खोया, अज्ञान को खोया—सारे सपने, सारी वासनाएं, सारी इच्छायें, वह खोयीं। लेकिन जो पाया है, उसे कहा नहीं जा सकता कि पाया, क्योंकि वह तो पाया ही हुआ था। जो प्राप्य ही था, उसी को पाया है।

इसलिए सूत्र कहता है : अप्राप्य—जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो।

वह अप्राप्य है, क्योंकि पास पहुंचने पर वह बराबर दूर हटता चला जाता है।

एक और अर्थ में भी वह अप्राप्य है, क्योंकि पास पहुंचने पर वह बराबर दूर हटता जाता है। तुम प्रकाश में प्रवेश करोगे, किन्तु तुम ज्योति को स्पर्श कदापि न कर सकोगे।

इस अर्थ में भी वह अप्राप्य है कि तुम कभी उस पर अपनी मुट्ठी न बांध सकोगे, क्योंकि जैसे-जैसे तुम भीतर जाओगे, तुम मिटने लगोगे। वह तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। उसके मिलने के पहले तुम मिट चुके होओगे।

'हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराय'—उसे पाने के पहले तुम मिट चुके होओगे। इसलिए तुम्हें वह कभी नहीं मिलेगा। तुम्हारे लिए वह अप्राप्य है। तुम उसके प्रकाश में तो प्रवेश करोगे, लेकिन उसकी ज्योति को कभी न पा सकोगे। जैसे पतिंगा दौड़ता है दीये की तरफ। प्रकाश में तो प्रवेश करता है, दीये के प्रकाश मे आ जाता है, और जैसे-जैसे करीब आने लगता है, वैसे-वैसे मिटने की घड़ी भी करीब आने लगती है। और जब ज्योति के बिलकुल पास आ जाता है और ज्योति को छू लेता है, तो मर जाता है। ज्योति को कभी नहीं पाता। ज्योति को पाने के पहले ही मिट जाता है।

(तो अगर हम इस प्रतीक को थोड़ा आगे खींच लें, तो पतिंगे का शरीर तो गिर जाता है—उसकी आत्मा ज्योति से मिल जाती होगी। हम जब भीतर जाते हैं तो हमारा अहंकार तो पतिंगे की तरह गिर जाता है।

लेकिन, जैसे हम जानते हैं अपने को अभी—अभी जो हमारा रूप है, अभी जो हमने समझा है कि मेरा यह नाम, ठिकाना पता—यह जो मैं हूँ अभी, जो हमारा तादात्म्य है, यह तादात्म्य कभी-कभी उसे उपलब्ध नहीं कर पाता। यह प्रकाश में प्रवेश जरूर करता है, यह मन्दिर की सीढ़ियों पर जरूर चढ़ता है यह अहंकार, लेकिन मन्दिर के द्वार के बाहर ही गिर जाता है। और भीतर जो प्रवेश करता है, वह अहंकार नहीं है। जैसे तुम जूते मन्दिर के बाहर उतार देते हो, ऐसे ही तुम भी उतर जाओगे असली मन्दिर के बाहर—वह भी खोल है, आवरण है। तुम्हारा होना, जो तुमने जाना है अभी कि मैं यह हूँ, यह हूँ, यहहूँ—वह भी खोल है। वह भी मन्दिर के बाहर ही गिर जायेगा। तुम जरूर मन्दिर में कभी प्रवेश करोगे, लेकिन उस 'तुम' का तुम्हें कोई पता नहीं है। और तुम मन्दिर मे कभी प्रवेश नहीं करोगे, जिस 'तुम' का तुम्हें पता है। तुम जो जानते हो अपने को—वह बाहर गिर जायेगा। और जिसे तुम जानते ही नहीं हो, वह भीतर प्रवेश करेगा। वह ज्योति के साथ एक हो जायेगा। इसलिए भी सूत्र कहता है, यह अप्राप्य है।

जो अप्राप्य है, केवल उसी इच्छा करो।)

स्वामित्व की अभीप्सा

प्रवचन : ६ अप्रैल ९, १९७२, सुबह

ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

१०. शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो।

और जिस शक्ति की कामना शिष्य करेगा, वह शक्ति ऐसी होगी जो उसे लोगों की दृष्टि में न-कुछ जैसा बना देगी।

११. शान्ति की अदम्य अभीप्सा करो।

जिस शान्ति की कामना तुमको होगी, वह ऐसी पवित्र शान्ति है, जिसमे कोई विघ्न न डाल सकेगा और जिस शान्ति के वातावरण में आत्मा उसी प्रकार विकसित होगी जैसे शान्त सरोवर में पवित्र कमल विकसित होता है।

१२. स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो।

परन्तु ये सम्पत्तियां केवल शुद्ध आत्मा की हों और इसलिए सभी शुद्ध आत्मा इसके समानरूप से स्वामी हो और इस प्रकार ये सभी की (जब वे सयुक्त हों) सम्पत्ति हों।

शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो।

इस शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो, बाकी शेष शक्तियों पर से ध्यान हटा लो। क्योंकि उन पर ध्यान देने का अर्थ है कि इस शक्ति का विकास न हो सकेगा और जब तक तुम निर्भर रहोगे दूसरों पर, तब तक तुम पाओगे कि तुम रोज-रोज कमजोर होते गये हो। सभी निर्भर लोग कमजोर हो जाते हैं।

निर्भरता कैसी भी हो, कमजोरी लाती है।

और हम सब निर्भर हैं। और हमने अनेक तरह के उपाय कर रखे हैं, जिनमें निर्भरता से हम शक्तिशाली होने के भ्रम में होते हैं। निर्भरता धोखा है, उससे शक्ति का आभास होता है, लेकिन शक्ति कभी उपलब्ध नहीं होती। शक्ति तो एक ही है, जिसके तुम ही मालिक हो और जिसे कोई भी बाहरी साधन न तो घटा सकता है और न बढ़ा सकता है। जिसे न तो तुमसे कोई छीन सकता है, न मिटा सकता है। शरीर भी समाप्त हो जाये, तो भी तुम्हारी शक्ति मे रत्तमात्र भेद नहीं पड़ेगा। तुम्हारी अन्तर्ज्योति वैसी ही जलती रहेगी। तुम्हारे भीतर का प्रकाश वैसा प्रज्ज्वलित होगा। तुम्हारे भीतर की जीवन धारा में जरा सी भी क्षीणता न आयेगी, उस जीवन धारा को कोई सुखा न सकेगा। वह जीवन की धारा अनादि और अनन्त है। उस सनातन स्रोत की खोज का अर्थ है, शक्ति की उत्कट अभीप्सा।

और एक बहुत मजे की बात है। बाहर से जो शक्ति मिलती है, स्वभावतः उसका दिखावा बाहर होता है। तुम भीतर कमजोर होते हो, लेकिन बाहर लोगों की आंखें चौंधिया जाती हैं। जब तुम राष्ट्रपति हो जाते हो, तो सारे लोग तुम्हारे चरणों में झुकने लगते हैं। सारे लोग तुम्हारा जय-जयकार करने लगते हैं। सारे लोग मान लेते हैं कि हां, तुम्हारे पास शक्ति है। तुम भीतर बिलकुल निर्बल और कमजोर होते हो।

तुम भीतर जानते हो कि कोई शक्ति नहीं है, लेकिन सारा जगत देखता है कि शक्ति घटित हो रही है। जो शक्ति बाहर से मिलती है, बाहर के लोग उस शक्ति का अनुभव भी कर पाते हैं, क्योंकि वह उन्हीं की दी गई है। तुम सिर्फ दर्पण हो, जिसमें उन्हीं की शक्ति प्रतिबिम्बित हो रही है और उन्हीं पर वापिस लौट रही है। जो उन्होंने दिया है, वह उन्हें दिखाई भी नहीं पड़ता है।

लेकिन जो शक्ति भीतर से पैदा होती है, साधारणतः बाहर के लोगों को वह दिखाई नहीं पड़ती। वह केवल उनको ही दिखाई पड़ सकती है, जिनको भीतर का कोई अनुभव हो, अन्यथा बाकी लोगों को दिखाई नहीं पड़ती। महावीर तुम्हारे पास से निकल जायें, तो तुम यह मत सोच लेना कि तुम पहचान लोगे। गामा निकलेगा, तुम बिलकुल पहचान लोगे। एक सम्राट निकलेगा, तुम बिलकुल पहचान लोगे; एक बुद्ध निकलेगा, तुम नहीं पहचान पाओगे। क्योंकि बुद्ध की शक्ति किसी ऐसे स्रोत से से आ रही है, जिसको देखने की तुम्हारे पास आंख भी नहीं है। उल्टा होगा, जब बुद्ध तुम्हारे पास से निकलेंगे, तुमको लगेगा कि यह कुछ भी नहीं हैं, ना-कुछ हैं। बड़ी कठिनाई होगी तुम्हें पहचानने मे। और पहचानने का अर्थ होगा कि तुम्हारा जीवन रूपान्तरित होगा, तो ही तुम पहचान पाओगे।

इसलिए बुद्ध को पहचानना सस्ता नहीं है। बुद्ध को पहचानने मे तुमको बदलना पड़ेगा। इसके पहले कि तुम पहचान सको, तुम्हें नया होना पड़ेगा, तब तुम पहचान पाओगे। लेकिन कौन इतनी झंझट करता है? कि बुद्ध को पहचानने की जरूरत भी क्या है, जिसमें हमको बदलना पड़े? हम जैसे हैं, वैसे ही बुद्ध हमारी पहचान मे नहीं आयेंगे, हम चूक जायेंगे। हाँ, लेकिन राजनेताओं को, धनपतियो को, सेनापतियो को हम पहचान लेंगे। हम जैसे हैं, वैसे मे ही वे पहचान मे आ जायेंगे। क्योंकि हम और उनके बीच कोई भी फर्क नहीं है, हम एक ही जगत के अंग है। हमारी उनकी भाषा एक है, हमारा उनका अस्तित्व एक है। और जो भी उनके पास है, वह हमारा दिया हुआ है। इसलिए हम उसे भली-भाति पहचान लेंगे, वह हमारी ही सपदा है।

तो यह सूत्र कहता है कि शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो। और जिस शक्ति की कामना शिष्य करेगा, वह शक्ति ऐसी होगी, जो उसे लोगो की दृष्टि मे ना-कुछ जैसा बना देगी।

यह बहुत ठीक से समझ लेने की जरूरत है।

अगर आपको ऐसा लगता हो कि आप अध्यात्म की आकाक्षा कर रहे हैं, लेकिन उस आकांक्षा के भीतर यह रस है कि जब लोग आपको पहचानेंगे, तो चरणों में झुक जायेंगे, तो आप गलती पर हैं। अगर यह रस है भीतर, तो आप साधु के भेष मे राजनेता हैं। आपकी वृत्ति राजनीति की ही है। अगर आप यह भी सोचते है, कि जिस

दिन मैं आत्मवान् बन जाऊंगा, ज्ञानी बन जाऊंगा, उस दिन लोग देखेंगे मेरा चमत्कार—अगर लोगों को चमत्कार दिखाने का ख्याल कहीं भी छिपा है, तो आप गलती से धर्म में चल रहे हैं। उचित हो कि आप राजनीति में चलें। तब चीजें साफ और ईमानदार होंगी। इधर मैं देखता हूँ—साधुओं को देखता हूँ, संन्यासियों को देखता हूँ, उनकी खोज भी मौलिक रूप से राजनैतिक है। रस उनका भी यही है कि लोगों को शक्ति का पता चले। रस उनका यह नहीं है कि शक्ति उपलब्ध हो, रस यह है कि लोगों को पता चले! न भी हो शक्ति, तो भी पता चल जाए—तो भी तृप्ति हो जायेगी।

वास्तविक शक्ति का जब जन्म होता है, तो बहुत थोड़े लोग ही उसे पहचान पायेंगे। वे पहचानें या न पहचानें—यह आत्म-खोजी की आकांक्षा का हिस्सा नहीं है। वे पहचान लें उनका हित, वे न पहचान लें उनका अहित, लेकिन आत्म-खोजी के लिए इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उसकी खोज तो इस बात की है कि मैं शक्तिशाली हो जाऊं। दूसरे की आंख में मेरा क्या प्रतिबिम्ब बनता है, यह दूसरे की आंख समझे। यह उनकी समस्या है, यह मेरी समस्या नहीं है। और अगर यह ख्याल रहे तो आत्म-खोजी शून्यवत् हो जायेगा। बाहर से लोग उसे पहचान ही न सकेंगे, क्योंकि बाहर के लोग जिन बातों को पहचान सकते हैं, वे उसके भीतर नही होंगी।

बाहर के लोग क्या पहचान सकते हैं? बाहर के लोग या तो आपके हाथ से धन चलता हो, तो पहचान सकते हैं। मेरे पास लोग आते हैं और वे कहते हैं कि फलां साधु के यहा, धन की कमी भी कमी नहीं होती, हजारों लोग भी आ जायें, तो भी भोजन चलता है; लाखों लोग भी आ जायें तो भी भोजन चलता है। यह व्यक्ति साधु से प्रभावित होकर नही लौटा है, धन की महिमा से प्रभावित होकर लौटा है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि फलां साधु के पास जाते हैं, तो हाथ में तावीज प्रकट हो जाता है, भस्म प्रकट हो जाती है। वे मदारी से प्रभावित होकर लौटे हैं, अध्यात्म से प्रभावित होकर नहीं लौटे हैं। यह जो शक्ति है, यह जो तावीज या भस्में प्रकट कर रहा है, उसकी भी जो गहरे में आकांक्षा है, वह अध्यात्म नहीं है। जो प्रभावित हो रहा है, उसका भी जो प्रभावित होने में कारण है, वह अध्यात्म नही है। वे सब शक्ति के प्रदर्शन से प्रभावित हो रहे हैं। कि किसी साधु के छूने से कोई बीमार ठीक हो जाता है, तो भी हम जो प्रभावित हो रहे हैं, वह अध्यात्म नहीं है। वह कुछ और है। बाहर की भाषा हमारी समझ में आती है।

लेकिन हम बुद्ध जैसे व्यक्ति को न पहचान पायेंगे। न तो उनके छूने से कोई ठीक हो रहा है, न वह किसी बीमार को ठीक कर रहे हैं छूकर—और कभी अगर ऐसा हो भी जाता है, तो भी बुद्ध यह नहीं कहते कि ऐसा मैंने किया है। वे यही कहते हैं कि

संयोग ही होगी बात—तुम्हारे कर्मफल ऐसे होंगे कि यह बात होने के करीब होगी। वे यह नहीं कहते मैंने किया है, वे यही कहते हैं, ऐसा हो गया है, इस पर ज्यादा ध्यान मत दो। न धन है, न पद है, न चमत्कार है, तो बुद्ध को आप पहचानेंगे कैसे? आपके पहचानने के सारे रास्ते ही समाप्त हो गये।

मैं एक यात्रा में था, मेरे कम्पार्टमेन्ट मे एक सज्जन और थे। हम दोनों ही थे। स्वभावतः उन्हें चुप रहना मुश्किल हो गया, कुछ बात चलानी चाही। मैंने हाँ-ना में उत्तर दिये, तो बात ज्यादा चली नहीं। तो फिर उन्होंने पान निकाला कि आप पान लें, मैंने कहा कि पान मैं खाता नहीं। तो फिर उन्होंने सिगरेट निकाली कि आप सिगरेट लें, मैंने कहा कि सिगरेट मैं पीता नहीं। तो फिर उन्होंने कहा, यह बताइये कि आपसे मैत्री बनाने का कोई उपाय है या नहीं? क्योंकि अगर मै पान लेता तो मैत्री बनती, सिगरेट लेता तो मैत्री बनती। मैंने उनसे पूछा कि पान और सिगरेट के अतिरिक्त आपको मैत्री बनाने का कोई और उपाय मता है कि नही? उनकी भाषा खत्म हो गई थी। वे जो उपाय कर सकते थे, वह समाप्त हो गया, तो लगा अब कोई सम्बन्ध निर्मित नहीं हो सकता।

बुद्ध से आप कैसे सम्बन्ध निर्मित करेंगे?

क्योंकि शक्ति की सारी भाषा व्यर्थ है। अगर आप शून्य को भी शक्ति मानते हो—जानते हों कि किसी का शून्य हो जाना इस जगत मे सबसे बड़ा चमत्कार है। ना-कुछ हो जाना इस जगत में सबसे बड़ी घटना है। क्योंकि क्षुद्रतम आदमी भी मानता हैं कि मैं कुछ हूँ। जब क्षुद्रतम आदमी भी मानता है कि मै कुछ हूँ, तो इस जगत में मैं कुछ हूँ, यह मानना तो सामान्य बात है। लेकिन यह अनुभव कर लेना कि मैं ना-कुछ हूँ, शून्यवत हूँ—बड़े से बड़ा चमत्कार है।

यहूदी फकीर, हसीद-रहस्य का जन्मदाता था बालसेम। तो बालसेम के सम्बन्ध में किसी ने आकर उसके गाव मे पूछा कि हमारे गांव में भी एक रबी है, वह बड़ा चमत्कारी है और तुम बालसेम को इतना पूजते हो—बालसेम का चमत्कार क्या है? उस गांव के लोगों ने कहा कि पहले तो हम व्याख्या कर लें चमत्कार की। क्या तुम इस बात को चमत्कार कहोगे कि अगर हमारा बालसेम, हमारा फकीर परमात्मा से जो कुछ कहे और परमात्मा को उसी वक्त करना पड़े, और परमात्मा उसी वक्त करे, तो तुम उसको चमत्कार मानोगे? उन्होंने कहा कि निश्चित ही, यही तो चमत्कार है। यही तो हमारा फकीर, जो भी कहता है, कहे भर, कि परमात्मा पूरा करता है। तो उस गांव के लोगों ने कहा कि हमारा बालसेम भी चमत्कारी है, लेकिन चमत्कार जरा उल्टा है—परमात्मा जो भी कहे, बालसेम करता है। बालसेम कहता ही नहीं। अगर तुम इसको भी चमत्कार समझ सकते हो, तो हमारा बालसेम चमत्कारी है।

परमात्मा जो भी कहे, जिस क्षण भी कहे, वह करता है।

और उसने अब तक परमात्मा से कुछ भी नहीं कहा है, इसलिए दूसरी बात का हमें कुछ पता नहीं। और हम उससे कहते भी हैं, तो वह कहता है—मैं परमात्मा को आज्ञा देने वाला कौन? मैं ना-कुछ हूँ। बस उसकी आज्ञा पूरी हो जाये तो पर्याप्त है।

अध्यात्म का खोजी जिस शक्ति को खोज रहा है, वह शून्यता की शक्ति है।

आप जिस शक्ति को खोज रहे हैं बाहर के जगत में, वह शून्यता की शक्ति नहीं है। वह पदार्थ की, वस्तु की, धन की, पद की, किसी साधन के ऊपर निर्भर शक्ति की खोज है। और जब कोई व्यक्ति ना-कुछ होने को तैयार हो जाता है, तो उसके भीतर इस ना-कुछ की भाव-दशा में जो बीज टूटता है खुद की आत्मा का, और जो अंकुरण होता है—उस शक्ति की उत्कट अभीप्सा करें।

ग्यारहवां सूत्र है : शान्ति की अदम्य अभीप्सा करो।

ठीक शक्ति के बाद शान्ति की अभीप्सा को जोड़ा है। क्योंकि बाहर से जो भी शक्ति मिलती है, वह अशान्ति लाती है। धन से शक्ति मिलती है, लेकिन साथ में अशान्ति मिलती है। धनी आदमी और शान्त—पाना बड़ा मुश्किल है। गरीब आदमी कभी-कभी शान्त मिल सकता है, लेकिन धनी आदमी कभी शान्त नहीं मिलता। और जिनको शान्त होना पड़ा है, वे धन छोड़ कर गरीब हो गये हैं। राजनैतिक पद पर जो आदमी है, वह कभी भी शान्त नहीं होता। हो नहीं सकता। शक्ति जब भी बाहर से आती है, तो साथ में अशान्ति की छाया लाती है। और अगर आप शान्त रहना चाहते हैं, तो बाहर की शक्ति से आपका सम्बन्ध नहीं जुड़ पायेगा।

एक मेरे मित्र हैं। एक राज्य के मिनिस्टर हैं, अब चीफ मिनिस्टर होना चाहते हैं। तो मुझसे हमेशा आकर कहते हैं, कि शान्ति का कोई उपाय बताइए। तो मैं उनको कहता हूँ कि तुम पहले चीफ मिनिस्टर हो लो। अभी तो तुम अशान्ति का उपाय पूछो, अभी तुम शान्ति का उपाय ही मत पूछो। नहीं तो शान्ति का उपाय तुमने किया तो एक बात पक्की है कि चीफ मिनिस्टर तुम न हो पाओगे। यह तुम पहले पक्का कर लो कि तुम्हें चीफ मिनिस्टर नहीं होना, तो मैं तुम्हें शान्ति का उपाय बता दूँ, अन्यथा तुम पीछे मुझसे मत कहना कि चुका दिया, कि खराब कर दी जिन्दगी—तुम पहले चीफ मिनिस्टर हो ही लो। और तुम जब अच्छी तरह अशान्त हो जाओगे, तो शान्ति की प्यास भी पैदा होगी। जब कोई आदमी ठीक से मेहनत करता है तो भूख लगती है। ऐसे ही जब कोई ठीक से अशान्त होता है तो शान्ति की भूख लगती है। अभी, मैंने कहा, तुम्हारी भूख भी असली नहीं है। अभी भूख भी तुमने किताबों से पढ़ ली है, अभी तुम शान्ति के भी लोलुप हो, अभी शान्ति भी तुम्हारा लोभ है। अभी तुम चाहते हो कि चीफ मिनिस्टर भी हो जाओ, और शान्त भी हो जाओ।

और मैंने पूछा कि तुम अगर ठीक से गहरे में खोज करोगे, तो तुम्हें लगेगा कि तुम अभी शान्ति भी इसलिए चाहते हो, ताकि सुविधा से चीफ मिनिस्टर हो जाओ। उन्होंने मुझसे कहा कि आपने यह कैसे पहचाना! यही है बात। क्योंकि इतनी दौड़-भाग करनी पड़ रही है कि चित्त थोड़ा शान्त रहे तो मैं सफल हो सकता हूँ। और चित्त इतना अशान्त हो जाता है कि रात मुझे नींद भी नहीं आती, परेशान हो जाता हूँ, बीमार भी पड़ जाता हूँ। तो दूसरे मुझसे आगे निकले जा रहे हैं—न उनको नींद की तकलीफ है, न वे बीमार होते हैं; सुबह से फिर ताजे हैं, फिर दौड़-धूप मे लगे हैं, मैं झख मारता हूँ—इसलिए तो आपके पास आया हूँ कि कोई ऐसी विधि बताए कि मैं भी शान्त हो सकूं, तो टक्कर ठीक से ले पाऊँ।

अब शान्ति को भी हम अशान्ति की सेवा मे नियोजित करना चाहते हैं!

हम शान्ति भी इसलिए चाहते हैं ताकि ठीक से अशान्त हो सकें, ताकि हमारी अशान्ति ज्यादा कुशल हो जाय। हम शान्ति भी इसलिए चाहते है ताकि उससे शक्ति मिल सके। लेकिन शक्ति से मिलती है अशान्ति। तो इसको लक्षण समझना।

जिस शक्ति से अशान्ति मिले, समझ लेना कि वह बाहर की है और अभीप्सा के योग्य नहीं है।

जिस शक्ति से शान्ति जन्मती हो, वही भीतर की है और वही अभीप्सा के योग्य है।

बाहर की शक्ति अर्थात् अशान्ति, भीतर की शक्ति अर्थात् शक्ति।

इसलिए सूत्र ठीक शक्ति के बाद है : शान्ति की अदम्य अभीप्सा करो।

सिर्फ शक्ति की अभीप्सा करोगे, तो खतरा है। अपने को धोखा दे सकते हो, सोच सकते हो कि यह मैं भीतर की शक्ति की अभीप्सा कर रहा हूँ। लेकिन वह भीतर की शक्ति की अभीप्सा भी हो सकती है, बाहर की शक्ति की ही अभीप्सा हो—वह भी दौड़ हो, वह भी शायद प्रतियोगिता हो, वह भी शायद किसी दूसरे ने आत्म-ज्ञान पा लिया है, तो उसको नीचे दिखाना हो, कि ऐसा कैसे हो सकता है कि मेरे रहते... और कोई दूसरा आत्म-ज्ञानी हो गया तो मैं आत्म-ज्ञानी होकर बता दूंगा।

महावीर के पास एक बहुत बड़ा धनिक आया, एक नगर सेठ, और उसने आकर महावीर को कहा कि मुझे सामायिक खरीदनी है, मुझे ध्यान खरीदना है और जो भी आप मूल्य कहें, मैं चुकाने को तैयार हूँ। महावीर ने कहा, यह असम्भव है, ध्यान खरीदा नहीं जा सकता। खरीदने वाली वृत्ति वाला व्यक्ति ध्यान को समझ भी नहीं सकता, मिलना तो बहुत दूर है। तुम्हारा सब धन भी नहीं खरीदा सकेगा। उस धनी ने कहा कि शायद तुम्हें पता भी नहीं कि कितना धन मेरे पास है...तुम बोलो उससे दुगुना भी दूंगा। तुम सिर्फ बोलो भर कि इतना लगेगा। वह आदमी एक ही भाषा

जानता होगा—धन की। और उसने जीवन में सब धन से खरीदा था, तो उसकी कुछ गलती नहीं है, क्षमा योग्य है। उसने सब खरीद लिया था। सुन्दर स्त्री चाहिये तो धन से मिल गई। बड़ा महल चाहिये तो धन से मिल गया था। बड़ा चिकित्सक चाहिये तो धन से मिल गया था। धन से क्या नहीं खरीदा जा सकता? उसने सब खरीद लिया था। तो उसने सोचा होगा कि ध्यान भी ऐसी क्या बला है, जो धन से न मिल जाये। जब सब धन से मिलता है, तो यह भी मिल जायेगा।

लेकिन तकलीफ असल में ध्यान पाने की थी ही नहीं।

गांव का एक गरीब आदमी ध्यानी हो गया था, उसी के गांव का। और महावीर ने कहा था कि ये उपलब्ध हो गया ध्यान को—इससे अड़चन थी। महावीर को पता चला गया था कि धनी को अड़चन क्या हो रही है। तो महावीर ने कहा कि तू ऐसा कर, तेरे गांव में ही एक गरीब आदमी है, उसको ध्यान उपलब्ध हो गया है, तू उसी से खरीद ले, तू उसी के पास चला जा। और वह गरीब आदमी है, शायद पैसे के लोभ में आ जाये; तू उससे खरीद ले, शायद बेच दे। तो उसने कहा कि इसमें क्या दिक्कत है, यह तो बिलकुल आसान है। अगर वह ध्यान न बेचे, तो उस गरीब आदमी को पूरा का पूरा ही खरीद सकता हूँ। इसमें कोई अड़चन ही नहीं। अब उसकी भाषा बिलकुल ठीक है, क्योंकि जब हम पूरे गरीब आदमी को ही खरीद सकते हैं, तो ध्यान में क्या रखा है। मगर गरीब आदमी खरीद लिया जाये तो भी ध्यान नहीं खरीदा जा सकता। वह गरीब आदमी उठाकर, जंजीरों में डालकर घर में भी पटक दिया जाये, तो भी ध्यान जंजीरों में नहीं पड़ जायेगा। भाषा की मुश्किल है, वह धन की भाषा ही समझता है। वह गया उस गरीब आदमी के पास, और उसने कहा, जो तुझे चाहिये तू बोल, मैं सब देने को तैयार हूँ, लेकिन तू ध्यान मुझे दे दे। और अगर तूने ध्यान न दिया, तो मैं सैनिक लेकर आया हूँ, तुझे उठा लेंगे। उस गरीब आदमी ने कहा कि तुम मुझे उठा लो, वही आसान है, ध्यान मैं तुम्हें कैसे दूं? ध्यान कोई वस्तु है, जो मैं तुम्हें दे दूं! ध्यान तो अनुभव है। तुम मुझे ले चलो, लेकिन मेरे अनुभव को कैसे मैं तुम्हें दे दूं? अनुभव तो तुम्हें तुम्हारा ही करना पड़ेगा।

एक शक्ति है, जो दूसरे से मिल सकती है। और एक शक्ति है, जो स्वयं के अनुभव से ही मिल सकती है। जो दूसरों से मिलती है, उसके साथ अशान्ति रहेगी, क्योंकि उसके साथ भय रहेगा। जो दूसरों ने दी है, वह दूसरा छीन सकता है। और जो दूसरे ने दी है, वह मेरी है ही नहीं—चाहे मैंने चुराई हो, चाहे मैंने फुसलाकर मांगी हो, चाहे दान में प्राप्त की हो, चाहे शक्ति के दबाव से ली हो, किंतु वह मेरी नहीं है, वह किसी दूसरे की है। और जो दूसरे की है, वह दूसरे की ही रहती है, इसलिए भय लगा रहता है। भय पीछे-पीछे सरकता रहता है।

भय से अशान्ति पैदा होती है।

जो छिन सकता है, उससे चिन्ता पैदा होती है। फिर जितनी बाहर की शक्ति इकट्ठी होती जाती है, उतनी ही उसके अनुपात में भीतर की निर्बलता दिखाई पड़ती है—उससे अशान्ति पैदा होती है। इसलिए कोई गरीब आदमी इतनी गरीबी का अनुभव नहीं करता, जितना अमीर आदमी कर सकता है, अगर उसमे अक्ल न हो। नालायक हो, बे-अक्कल हो तो उसे पता ही नहीं चलता। थोड़ी सी भी बुद्धि हो तो अमीर को जिस तरह की गरीबी का पता चलता है, उस तरह की गरीबी का पता गरीब आदमी को कभी नहीं चल सकता, क्योंकि कन्ट्रास्ट नही है, तुलना नही है। अमीर आदमी के पास धन का ढेर लग जाता है और भीतर वह देखता है, हृदय भिखारी का पात्र है, वहां कुछ भी नहीं है। गरीब आदमी के हाथ में भी भिक्षा का पात्र है, भीतर भी भिक्षा का पात्र है। तुलना में विरोध नहीं है, उसे पता नही चलता कि वह कितना गरीब है। कितना गरीब है आदमी, यह अमीर होकर ही पता चलता है।

महावीर जब साम्राज्य को छोड़कर गरीब होते हैं, बुद्ध जब सम्राट के सिहासन से उतरकर रास्ते के भिखारी बनते हैं, तो उन्हें जिस गरीबी का अनुभव हुआ है, वह किसी दूसरे भिखारी को नहीं हो सकता है। उनकी गरीबी मे अमीरी का बड़ा हाथ है, उनकी गरीबी शाही है, उसमें सम्राट होने का अनुभव छिपा है। और उन्होंने सम्राट होकर जान लिया कि उससे भी भीतर की गरीबी नहीं मिटती, बल्कि प्रकट होकर दिखाई पड़ती है।

तो जितनी बाहर की शक्ति इकट्ठी होगी, उतनी भीतर की निर्बलता प्रकट होकर दिखाई पड़ेगी। उससे चिन्ता पैदा होगी। इसलिए ध्यान रहे, गरीब आदमी उतना चिन्तित नहीं होता, जितना अमीर आदमी चिन्तित होता है।

और अगर आज अमेरिका में सबसे ज्यादा चिन्ता है, तो उसका कारण यह नहीं कि अमेरिका में कोई नैतिक पतन हो गया है। उसका कुल कारण यह है कि अमेरिका आज सबसे ज्यादा धनी है। अमेरिका मे चिन्ता स्वाभाविक है। और आप सब भी कोशिश में लगे हैं कि मुल्क हमारा धनी हो, होना ही चाहिये—तो आप ध्यान रखना कि वह सारी चिन्ता आपकी भी हो जायेगी। धन के साथ चिन्ता आयेगी ही। गरीबी में एक निश्चिन्तता है, क्योंकि गरीबी का कोई पता नही है। मैं कोई यह नहीं कह रहा हूँ कि आप गरीब बने रहे। मैं तो कह रहा हूँ कि अच्छा है, आपको गरीबी का पता चले, तो अध्यात्म का जन्म हो। तो मैं तो कहता हूँ कि अमीर होना धर्म के लिए अनिवार्य है।

जितना समाज समृद्ध होगा, उतने ही विराट् धर्म के जन्म की सम्भावना है।

गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। गरीब आदमी के धर्म

में भी जो वासना होती है, वह बाहर की शक्ति की ही होती है। वह प्रार्थना भी करता है तो धन के लिए, वह पूजा भी करता है तो धन के लिए। गरीब की पूजा और प्रार्थना में मांग पदार्थ की ही बनी रहती है। अमीर को पदार्थ तो उपलब्ध होता है, उसकी मांग का कोई सवाल नहीं है, वह उसके पास है। अब उसमें और जोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है। और उससे एक महत् चिन्ता पैदा होती है, एक गहन चिन्ता पैदा होती है, कि अब क्या? इसलिए आज अमेरिका जितना विक्षिप्त है, जमीन पर कोई राष्ट्र नहीं है। मगर यह सौभाग्य है। क्योंकि इस विक्षिप्तता का अर्थ ही यह हुआ, कि धन गरीबी को प्रकट करता है, शक्ति निर्बलता को प्रकट करती है, शिक्षा भीतर के अज्ञान को उघाड़ती है।

बाहर हम जो पाते हैं, उसके विपरीत भीतर अनुभव में आता है, तो तनाव पैदा होता है, संताप पैदा होता है। बाहर जो भी हम उपलब्ध कर लेंगे, वह अशान्ति को जन्म देगा। इसलिए शक्ति की अभीप्सा के साथ-साथ शान्ति की अदम्य अभीप्सा जारी रहनी चाहिये। तो ही तुम्हारी शक्ति बन पायेगी।

शक्ति, धन, शान्ति यह तुम्हारी खोज रहे हैं। और जहां भी तुम पाओ कि तुम्हारी शक्ति शान्ति के विपरीत जाती है, समझना कि वह गलत शक्ति है। उसे तुम छोड़ देना। शान्ति को आधार रखना। जहां तुम्हारी शक्ति शान्ति को खण्डित करने लगे, शक्ति को छोड़ देना और शान्ति को पकड़ लेना। शान्ति को सूत्र बना लेना, कसौटी बना लेना, निकट उस पर तौल लेना! जो शक्ति शान्ति की कसौटी पर सही उतरे, समझना, वही सोना है। और जो शक्ति शान्ति की कसौटी पर खरी न उतरे, मिट्टी समझकर छोड़ देना। उसे क्षण भर भी पास मत रखना। अगर यह शान्ति का बोध बना रहे, तो हम कभी भी न भटकेंगे।

शान्ति दिशा-सूचक यन्त्र का काम करती है—जिस तरफ शान्ति बताए समझना कि वहीं दिशा है और जिस तरफ शान्ति की सुई इशारा न करती हो, वह गंतव्य नहीं है, वहा से अपने को हटा लेना। शक्ति धोखे में न डाल दे, इसलिए शान्ति का स्मरण रखना जरूरी है।

जिस शक्ति की कामना तुमको होगी, वह ऐसी पवित्र शान्ति है, जिसमें कोई विघ्न न डाल सकेगा। और उस शान्ति के वातावरण में आत्मा उसी प्रकार विकसित होगी, जैसे शान्त सरोवर में पवित्र कमल विकसित होता है।

जिस शान्ति की कामना तुमको होगी, वह ऐसी पवित्र शान्ति होगी, जिसमें कोई विघ्न न डाल सकेगा।

ध्यान रहे, जिसमें कोई विघ्न डाल सके, वह शान्ति नहीं है—इसे समझ लेना जरूरी है।

अक्सर लोग कहते हैं, हमारी शान्ति में विघ्न डाल दिया। लेकिन अगर दूसरा आपकी शान्ति में विघ्न डाल सकता है, तो वह शान्ति दूसरे की दी हुई है। क्योंकि हम उसी में विघ्न डाल सकते हैं, जो दी हुई है, अन्यथा विघ्न नहीं डाल सकते। अगर आप शान्त बैठे हैं, और एक बच्चा वहां शोर-गुल मचा रहा है, और आप कहते हैं कि वह विघ्न डाल रहा है, तो इसका अर्थ हुआ यह कि बच्चा अगर चुप बैठे तो वह आपको शान्ति देता है, ऊधम करे तो शान्ति छीन लेता है। वह शान्ति आपकी नहीं है, बच्चे की है। आप कहते हैं, बाजार मे शोरगुल होता है तो मेरा ध्यान भ्रष्ट हो जाता है। तो ध्यान है ही नहीं, क्योंकि जिस ध्यान को बाजार भ्रष्ट कर देता है, उस ध्यान की क्या कीमत है। दो कौड़ी का भी नही है, वह बाजार का ही दिया हुआ है। आप कहते है, जंगल में जाकर बड़ा ध्यान लगता है, वह ध्यान आपका नही है, जगल का दान है, जगल की देन हैं। जंगल ने जो दिया है, वह आपका नहीं है। बाजार जो छीन लेता है, वह आपका नही है। तो आप वर्षों बैठे रहें जंगल में, पहाड़ पर, आप भ्रम मे हैं, जैसे ही उतरेंगे बाहर, पायेंगे फिर अशान्त हो गये। और ज्यादा अशान्त हो जायेंगे, जितने पहले कभी भी नही हुए थे। विघ्न जिसमें कोई डाल सके, उसका अर्थ ही हुआ कि वह आपका नही है।

(उस शान्ति को खोजना, जिसमें कोई विघ्न न डाल सके।

इसका यह अर्थ हुआ कि विघ्न से बचकर मत खोजना, विघ्न के बीच ही खोजना। बच्चा शोर न भी मचा रहा हो, तो और मोहल्ले के बच्चों को इकट्ठा कर लेना और कहना कि तुम सब शोर मचाओ—मैं ध्यान कर रहा हूँ। और जिस दिन तुम पाओ कि बच्चे शोर कर रहे हैं और तुम्हारा ध्यान चल रहा है, उस दिन तुम समझना कि यह तुम्हारा है। पहाड़, हिमालय मत खोजना, ठीक बीच बाजार मे बैठकर ध्यान करना, क्योंकि पहाड़ धोखा दे सकता है। पहाड़ शान्ति देता है, इसलिए धोखा दे सकता है। पहाड़ से बचना, बाजार मे ही शान्ति खोजना। जिस दिन बाजार में ही तुम शान्ति को पा लोगे, उस दिन तुमसे कोई भी छीन न सकेगा। क्योंकि जो छीन सकता था, उसी के बीच तुमने पा लिया है।)

इसलिए घर छोड़ कर मत भागना। गृहस्थ होते हुए सन्यासी हो गये अगर तुम, तो ही सन्यास सच्चा है। अगर घर छोड़ा, पत्नी छोड़ी, बच्चे छोड़े, धन छोड़ा और फिर तुम संन्यासी हुए तो संन्यास जो है, आरोपित है, झूठा है, कन्डीशनल है। अगर पत्नी फिर वापस दे दी जाये, तो वह एक रात में फिर से तुम्हारे संन्यास को छीन लेगी।

कहीं स्त्री न छू जाये, डरा हुआ है—क्यों डरा हुआ है इतना? इतना भयभीत संन्यास कहां ले जायेगा? इतना निर्बल संन्यास क्या परिणाम लायेगा? इससे आत्मा सबल हुई या निर्बल हुई, यह हम कभी सोचते ही नही! एक आदमी स्त्री को छूने से

डर रहा है, हम सोचते हैं, बड़ा आत्मवान है। और स्त्री को छूने से डर रहा है! स्त्री छू जाये तो उनका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है! यह तो हद की निर्बल आत्मा हो गई। इस निर्बल आत्मा की क्या उपलब्धि है? ऐसे कहता रहता है कि स्त्री तो हड्डी-मास का ढेर है, और छूने से डरता भी है! तो ये जो ऊपर-ऊपर कह रहा है, यह आयोजन है अपने को समझाने का, भीतर रस मौजूद है। छू ले तो रस का जन्म हो जायेगा। रस का जन्म हो जाये तो उसे लगेगा कि भीतर पतन हो गया है।

लेकिन कोई स्त्री किसी पुरुष में रस पैदा नहीं करती और न कोई पुरुष किसी स्त्री में रस पैदा करता है। रस होता है, तो उसे बाहर खींच लेती है—यह रास्ता है आत्म-दर्शन का। अगर आपके भीतर वासना है, तो स्त्री की मौजूदगी उस वासना को बाहर ले आती है—तो स्त्री सिर्फ दर्पण का काम कर रही है, स्त्री सिर्फ निदान कर रही है, वह एक डायगनोसिस कर रही है कि आपके भीतर क्या छिपा है। उससे भागना क्या, उसे सदा पास रखना अच्छा है, क्योंकि पता चलता रहे कि भीतर क्या है। और उसके पास रहते अगर वासना खो जाये, ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ, तो शक्ति उपलब्ध हुई, जो आन्तरिक है।

जीवन को विपरीत से भागकर, अगर आप सम्भालते हैं, तो वह सम्भाला हुआ होगा, वह हाट-हाउस प्लांट होगा। तो आप एक कांच का घर बना सकते हैं, उसमें वातानुकूलित व्यवस्था कर सकते हैं, कोई भी पौधा उसमें सम्भला रह सकता है। लेकिन भूलकर भी इस पौधे को धूप में, रोशनी में, हवा मे मत निकाल देना, यह मर जायेगा। तो आपके सन्यासी हाट-हाउस प्लांट हैं। उनकी व्यवस्था है, उस व्यवस्था के भीतर वह संन्यासी है। उनकी व्यवस्था से जरा ही उनको बाहर लाओ प्रकृति की दुनिया मे, वे मिट्टी साबित होंगे। मिट्टी के शेर हैं, जरा सा पानी पड़ा कि बह जायेंगे। पानी से इतने डरे हुए हैं, असली शेर हो नहीं सकते। असली शेर तो पानी का आनन्द ले लेगा और शक्तिशाली हो जायेगा।

विपरीत से समृद्ध होने की कला आनी चाहिये, विपरीत से बचना कमजोरी है।

तो जिस शान्ति मे कोई विघ्न डाल सके, उस शान्ति की कामना ही मत करना, वह काम की भी नहीं है, वह तो और मुसीबत है। सच तो यह है कि वह और भी अशान्ति का कारण है।

इसलिए किसी-किसी घर में अगर कोई आदमी दुर्भाग्य से धार्मिक हो जाये, तो वह पूरी घर की भी अशान्ति का कारण हो जाता है और खुद भी बहुत अशान्ति, उपद्रव करवाता है। अगर आप ध्यान करने लगें, एक मुसीबत पूरे परिवार की हो गई, क्योंकि आप अपने ध्यान का उपयोग अब पूरे परिवार की निन्दा के लिए करेंगे। अब जरा सी बात आपको अशान्त करेगी और अशान्ति का गुस्सा आप दूसरे पर

डालेंगे कि बर्तन क्यों इतनी जोर से गिरा, कि बच्चे ने आवाज क्यों लगाई, कि कोई रोया क्यों, कि किसी ने रेडियो क्यों खोल दिया? आप शान्त होने चले थे कि आप दुनिया भर की अशान्त होने की व्यवस्था आपने ही इकट्ठी कर दी?

रेडियो चलते रहेंगे, बच्चे रोयेंगे भी, हंसेंगे भी, बर्तन छूटकर गिरेगा भी—इस सबकी गहन स्वीकृति होनी चाहिये। और इसकी मौजूदगी में आपको शान्त होना चाहिये। विघ्न से घबड़ायें न, विघ्न को साधना का क्षेत्र समझें। तो जो शान्ति उपलब्ध होगी, वह आपकी है, उस पर भरोसा किया जा सकता है। अगर आप सच में ही धार्मिक आदमी बनेंगे तो घर में आपके कारण शान्ति बढ़ेगी। अगर आप झूठे धार्मिक आदमी बन गये, जैसे कि मुल्क भर में हैं, तो घर भर अशान्त हो जायेगा। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाये तो घर भर को पागल कर सकता है।

एक महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि कोई भी तरह बचाओ, मेरे पति-धार्मिक हो गये हैं। हम घर भर मुसीबत मे पड गये है। फिर वे साधारण पति भी न थे, सरदार थे। मैंने कहा कि क्या कर रहे हैं वे, ऐसी क्या तकलीफ आ गई? तो वह कहने लगी कि दो बजे रात से उठकर कीर्तन करते हैं, तो कोई सो ही नहीं पा रहा है। बच्चों की परीक्षा करीब आ रही है, बच्चे सिर पीट रहे हैं, मगर वे है धार्मिक और वे दो बजे रात से कीर्तन करते है। तो मैंने उनके पति को बुलाया। मैंने कहा कि यह क्या कर रहे हैं? वे कहने लगे कि ब्रह्म-मुहूर्त में कीर्तन करता हूँ। दो बजे रात ब्रह्म-मुहूर्त! वे कहने लगे कि ब्रह्म-मुहूर्त में सबको उठना ही चाहिये, इसमें बाधा का क्या सवाल है? मुझसे बोले कि आप उन लोगों की बातों में मत पड़ना, सब अधार्मिक हैं, दुष्ट हैं—कीर्तन में बाधा डालते है, धार्मिक कार्य में अड़चन खड़ी करते हैं। अब वे सारे घर की निन्दा में है। और जिससे भी कहेंगे कि ब्रह्म-मुहूर्त में कीर्तन करो, तो किसी की हिम्मत नहीं है उनसे कहने की कि आप बन्द करो, क्योंकि कौन अधार्मिक बनेगा। तो मैंने उनसे कहा कि ऐसा करो, बन्द न करो, ब्रह्म-मुहूर्त थोड़ा नीचे सरकाओ, दो बजे जरा ज्यादा ब्रह्म-मुहूर्त है, थोड़ा तीन बजे करो, फिर और सरकाकर चार बजे करना, फिर पांच बजे करना। कहने लगे कि आप क्या कहते हैं? कहां तक इसको सरकना है?

मैंने कहा, मैं ब्रह्म-मुहूर्त उसको कहता हूँ, जब तुम्हारे भीतर छिपे हुए ब्रह्म की आंख खुले और किसी उपाय को मैं ब्रह्म-मुहूर्त नही कहता—तुम सोये रहना, जब नींद अपने आप खुले। अभी तुम अलार्म भर कर उठते हो, वह ब्रह्म-मुहूर्त नहीं है, अलार्म-मुहूर्त है। तुम उसको बन्द करो। जब तुम्हारे भीतर जो ब्रह्म छिपा है, उसकी जब नींद खुले, तब तुम ब्रह्म-मुहूर्त समझना। वे कहने लगे, आप मुझे भ्रष्ट कर देंगे, मैं तो फिर नौ बजे के पहले उठ ही नहीं सकता। तो मैंने कहा, जब तुम नहीं उठ सकते, तो

बच्चों का भी थोड़ा ध्यान करो। और तुम्हें अध्यात्म की खोज पैदा हो गई, उनको अभी पैदा नहीं हुई, उनको क्यों परेशान कर रहे हो? और तुम्हारी वजह से ये बच्चे, अध्यात्म से सदा के लिए सचेत हो जायेंगे। ये बच्चे कभी भूल कर धर्म की तरफ न जायेंगे, तुम इसके जिम्मेवार रहोगे। क्योंकि तुम उनकी जिन्दगी खराब किये दे रहे हो। जब भी कोई धर्म की बात करेगा, ये समझेंगे कि दो बजे रात का ब्रह्म-मुहूर्त है। इस पाप में पड़ना ही नहीं। और तुम इनको निन्दित कर रहे हो और पागल तुम हो। और तुम कह रहे हो, ये तुम्हें अशान्त करते हैं, बाधा डालते हैं; अशान्त तुम इन्हें कर रहे हो।

यह जो धर्म है—करीब करीब विक्षिप्त लोग इसमें बड़े आकर्षित होते हैं, क्योंकि धार्मिकता की आड़ में विक्षिप्तता को छिपाना इतना आसान है कि जिसका हिसाब नहीं। हजार तरह के रोग, लोग धर्म की आड़ में छिपा लेते हैं। अगर आपको गन्दा रहने में रस है और मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसे कुछ लोग हैं, जो शरीर की गन्दगी को साधना मानते हैं, तो फिर आप कोई ऐसा मार्ग चुन लेंगे। कोई जैनों के साधु हो जाये, जिसमें नहाने वगैरह की मनाही है। तो फिर आप गन्दगी में जो मजा लेंगे और आपके पास अगर कोई भी थोड़ा स्वच्छ आदमी आ गया, तो आप उसको निन्दा से देख सकते है। नहाया-धोया तो वासनातुर है, क्योंकि शरीर की इतनी सजावट कर रहा है। नहाना-धोना शरीर की सजावट है। गन्दे होना, दातुन न करना, मुंह से वास निकल रही हो, ये पुण्य-कर्म हैं! पागल, इस तरह के लोग हैं। पश्चिम मे उनका इलाज होता है, यहां वे कोई तरकीब खोजकर धार्मिक हो जाते हैं।

पश्चिम मे कोई आदमी अगर ऐसी हरकत करे, तो उसका इलाज होने के लिए फौरन वे चिकित्सक के पास ले जायेंगे, मनोवैज्ञानिक के पास ले जायेंगे, कि इसमें कुछ गड़बड़ हो गई। लेकिन यहां कोई गड़बड़ नहीं हुई, यहां उसको हम स्वीकार कर लेंगे।

जुंग ने कहा है कि हिन्दुस्तान में पागल आदमी कम हैं, कारण यह है कि हिन्दुस्तान में पागलों को और ढंग के उपाय भी हैं, वे पागल भी रह सकते हैं और बिना जाहिर हुए। अब अगर कोई आदमी खाना खा रहा है और साथ में पाखाना भी कर रहा है तो हम उसे परमहंस कहते हैं। दुनिया में कहीं भी उसका फौरन जेलखाने में डालेंगे। हम कहते हैं, इसको तो अभेद उपलब्ध हो गया, अद्वैत उपलब्ध हो गया, यह परमहंस है, इसको कोई भेद ही नहीं है। दुनिया के अन्य लोग कहेंगे, यह आदमी विक्षिप्त है, यह आदमी पागल है, इसकी चिकित्सा की जरूरत है। इसने बुद्धि खो दी है, यह बुद्धि के पार नहीं गया, बुद्धि से नीचे गिर गया। लेकिन हम उसको सम्मानित करेंगे!

ध्यान रहे, झूठा धर्म आपके भीतर की अशान्ति को बढ़ावा देगा, विक्षिप्तता को बढ़ावा देगा। और झूठा धर्म सदा ही दूसरों को दोषी ठहरायेगा। आप सदा ठीक हैं, दूसरे

सदा दोषी है। लेकिन सच्चा धर्म किसी को दोषी नहीं ठहराता। दूसरे जैसे हैं—वैसे हैं। उनको वैसा होने का हक है, वैसे होने की स्वतन्त्रता है।

एक बच्चे को हक है कि वह गीत गाये, नाचे। यह बच्चा होने का अधिकार है। आपकी जरूरत है कि आप ध्यान कर रहे हैं, लेकिन बच्चे की जरूरत है कि नाचे-कूदे, चिल्लाये। आप मजे से ध्यान करिये, बच्चा तो आपसे नहीं कहता कि आप ध्यान करके मुझे बाधा दे रहे हैं। और आपके ध्यान में बैठने से मेरे खेलने में बाधा पड़ती है। तो आप क्यों कह रहे हैं कि तेरे खेलने से हमारे ध्यान में बाधा पड़ती है। बच्चे को खेलने दें, आप ध्यान करें। आप यह ख्याल ही छोड़ दें कि कोई आपके ध्यान में बाधा डाल सकता है। यह ख्याल के छूटते ही आप ध्यान की ठीक दिशा में गति करने लगेंगे। और जब भी कोई आपको लगे कि विघ्न डाल रहा है, तब तत्क्षण आप समझना कि आप ही कोई भूल कर रहे हैं, नहीं तो विघ्न नहीं पड़ सकता।

इसलिए यह सूत्र कहता है : जिस शान्ति की कामना तुमको होगी, वह ऐसी पवित्र शान्ति है, जिसमें कोई विघ्न न डाल सकेगा और उस शान्ति के वातावरण में आत्मा उसी प्रकार विकसित होगी, जैसे शान्त सरोवर में पवित्र कमल विकसित होता है।

शान्त ध्यान की अवस्था में ही तुम्हारी आत्मा का कमल खिलेगा, जैसे शान्त झील में कमल खिलता है। फिर तुम्हें उसे खिलाने की कोशिश न करनी पड़ेगी, वह खिलना शुरू हो जायेगा। बाहर से मुक्त शान्ति, बाहर से मुक्त शक्ति, बस दो अनिवार्यताएं हैं, और तुम्हारे जीवन का कमल खिलना शुरू हो जायेगा।

बारहवां सूत्र : स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो।

परन्तु ये सम्पत्तियां केवल शुद्ध आत्मा की हों और इसलिए सभी शुद्ध आत्माएं इसके समान रूप से स्वामी हों और इस प्रकार ये सभी की जब वे सब सयुंक्त हो, सम्पत्ति हों।

स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो।

इसलिए हिन्दु सन्यासियों ने सन्यासी का नाम स्वामी चुना है। लेकिन कैसा स्वामित्व ? मकान का, धन का, दुकान का स्वामित्व—नहीं, क्योंकि वह तो सिर्फ धोखा है। तुम बनते हो गुलाम और स्वामी होने का ख्याल रखते हो! तुम बनते हो दास और सोचते हो कि सम्राट हो गये!

सुना है मैंने, मुसलमान फकीर फरीद एक गांव से गुजरता था और एक आदमी एक गाय को रस्सी से बांधकर घर की तरफ ले जाता था। तो फरीद रुक गया, उसकी ऐसी आदत थी, उसने अपने शिष्यों से कहा—घेर लो इस आदमी को और इस गाय को—और तुम्हें, मुझे कुछ शिक्षा देनी है। तो वह आदमी जरा चौंका, उसने कहा कि मुझे घेरने की क्या जरूरत है ? उसने कहा कि तुम चुप रहो, तुमसे हमें कुछ करना

नहीं, सिर्फ मेरे शिष्यों को शिक्षा देनी है। और फरीद ने कहा, शिष्यो, मैं पूछता हूँ, इन दोनों में मालिक कौन है? गाय या यह आदमी? शिष्यों ने कहा कि आप भी क्या पूछते हैं? जाहिर है कि आदमी मालिक है, क्योंकि गाय उसकी सम्पत्ति है और गले में उसके उसने फंदा डाल रखा है। फरीद ने कहा कि मैं तुमसे दूसरा सवाल पूछता हूँ: अगर हम बीच की रस्सी काट दें, और गाय भाग खड़ी हो, तो गाय के पीछे यह आदमी दौड़ेगा, कि गाय आदमी के पीछे दौड़ेगी? उन्होंने कहा, निश्चित ही यह आदमी गाय के पीछे दौड़ेगा। तो गाय इस आदमी को नहीं खोजेगी, यह आदमी गाय को खोजेगा? तो फिर मालिक कौन है? तो फरीद ने कहा कि यह रस्सी तुम्हें दिखाई पड़ती है गाय के गले में, यह इस आदमी के गले में है।

वस्तुएं हमारे गले में फंदा कस लेती हैं, जिनके हम मालिक होते हैं, उनके हम गुलाम हो जाते हैं। जिसके आप मालिक होंगे, उसके गुलाम हो जायेंगे। जरा ख्याल करें, हमारे मुल्क में पति अपने को स्वामी कहते हैं। उससे बड़ा गुलाम खोज सकते हैं आप? स्वामी हैं वे। पत्नी जब उनको पत्र लिखती हैं तो उसमें स्वामी लिखती है और नीचे दस्तखत करती है आपकी दासी—और सब भली-भांति जानते हैं कि कौन दास है और कौन मालिक है। किसी को जरा भी सन्देह नहीं है उस मामले में। स्त्रियां होशियार हैं, वे राजी हैं, कि ठीक, दस्तखत ही करते हैं दासी के—चलेगा। लेकिन असलियत में कौन मालिक है? पति तब तक गुलाम रहेंगे, जब तक वे मालिक होने का ख्याल रखेंगे। जब तक उन्हें ख्याल है कि पत्नी के स्वामी होना है, तब तक वे भले ही शब्दों में स्वामी बने रहें, वास्तव में वे गुलाम रहेंगे। जो भी मालिक बनने की दूसरे के ऊपर कोशिश करेगा, वह गुलाम हो जायेगा।

सब तरह की मालकियत बाहर की दुनिया में गुलामी लाती है।

तो ये किस स्वामित्व की तरफ इशारा है?

यह भीतर की मालकियत की तरफ इशारा है। तुम सिर्फ केवल अपने ही मालिक हो सकते हो। किसी दूसरे के तुम मालिक हो नहीं सकते—उस भूल में पड़ना भी मत। बाहर की मालकियत असम्भव है, वहां सिर्फ प्रवंचना है। तुम जब भी उस प्रवंचना में पड़ोगे, आखिर में पाओगे कि गुलाम हो गये। मालिक नहीं हुए। आखिर में पाओगे कि तुमने जो बनाया था मालकियत का मकान—वह कारागृह हो गया गुलामी का और तुम उसके भीतर घिर गये और फंस गये।

सिर्फ एक ही मालकियत हो सकती है—वह है अपनी।

और ध्यान रहे, जो अपना ही मालिक नहीं है, वह किसका मालिक हो सकता है? कैसे हो सकता है? जो खुद का मालिक नहीं है, वह कैसे किसी और का मालिक हो सकता है?

सिर्फ अपने ही मालिक होने का उपाय है। और जो अपना मालिक होना चाहता है, वह दूसरे की मालकियत छोड़ देता है।

यह जो सूत्र है : स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो—यह सूत्र इसीलिए है कि तुम धोखे से राजी मत होना। अपूर्व अभीप्सा करो स्वामित्व की, असली स्वामित्व की अभीप्सा करो, धोखे से मत राजी होना—नकली चीजों से मत सोच लेना कि मैं मालिक हो गया। जब तक कि तुम अपने ही मालिक न हो जाओ, तब तक तुम अभीप्सा जारी रखना।

उलटा लगता है। जिन्होंने सब छोड़कर भिक्षुक का वेष बना लिया, उनको हमने स्वामी कहा है। सिर्फ बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को स्वामी नहीं कहा—भिक्षु कहा, सोचकर कहा। दोनों बातें बड़ी मजेदार हैं।

हिन्दुओं ने संन्यासियों को स्वामी कहा—इस कारण कि उसने सारा स्वामित्व छोड़ दिया और अब एक ही जगह उसने अपने स्वामित्व को बनाने की चेष्टा की है, वह उसकी स्वयं की आत्मा है। वह अपना मालिक है। इसलिए हिन्दुओं ने अपने संन्यासियों को स्वामी कहा है।

बुद्ध ने अपने संन्यासियों को भिक्षु कहा है। उलटा लगता है। लेकिन बुद्ध ने इसलिए अपने संन्यासी को भिक्षु कहा, क्योंकि इस दुनिया में सभी को स्वामी होने का ख्याल है। यहां सभी स्वामी हैं, कोई इसका, कोई उसका। यह शब्द गन्दा हो गया —तो मैं तुम्हें भिक्षु कहूंगा। भिक्षु तो मैं इसलिए कहूंगा कि इस दुनिया मे हालत उलटी है—यहां सब भिखारी अपने को स्वामी कह रहे हैं, इसलिए मैं स्वामी को भिखारी कहूंगा।

बुद्ध ने कहा कि इस दुनिया में जब सब मामला ही उलटा है और लोग शीर्षासन कर रहे हैं, तो तुम्हें मुझे पैर के बल खड़े करना पड़ेगा। यहां सब भिखारी अपने को स्वामी मान रहे हैं, तब तुमको स्वामी कहने से बड़ी भ्रान्ति पैदा होगी—इसलिए मैं तुम्हें भिक्षु कहूंगा। क्योंकि तुम अपने हो। और भिक्षु अपने को स्वामी कह रहे हैं, इसलिए उचित है कि स्वामी अपने को भिक्षु कहें।

पर बात एक ही है, इरादा एक ही है, कि आन्तरिक मालकियत उपलब्ध हो।

स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो।

मार्ग की शोध

प्रवचन : ७ अप्रैल ९, १९७२, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

१३. मार्ग की शोध करो।

टिप्पणी : थोड़ा रुको और विचार करो। तुम मार्ग पाना चाहते हो, या तुम्हारे मन में ऊंची स्थिति प्राप्त करने, ऊंचे चढ़ने और एक विशाल भविष्य निर्माण करने के स्वप्न हैं, सावधान! मार्ग के लिए ही मार्ग को प्राप्त करना है—तुम्हारे ही चरण उस पर चलेंगे, इसलिए नहीं।

१४. अपने भीतर लौटकर मार्ग का शोध करो।

१५. बाह्य जीवन में हिम्मत से आगे बढ़कर मार्ग की शोध करो।

जो मनुष्य साधन-पथ मे प्रविष्ट होना चाहता है, उसको अपने समस्त स्वभाव को बुद्धिमत्ता के साथ उपयोग में लाना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य पूर्णरूपेण स्वयं अपना मार्ग, अपना सत्य, और अपना जीवन है।

..और इस प्रकार उस मार्ग को ढूंढो। उस मार्ग को जीवन और अस्तित्व के नियमों, प्रकृति के नियमों एव पराप्राकृतिक नियमो के अध्ययन के द्वारा ढूंढो। ज्यों-ज्यो तुम उसकी उपासना और उसका निरीक्षण करते जाओगे, उसका प्रकाश स्थिर गति से बढ़ता जाएगा। तब तुम्हें पता चलेगा कि तुमने मार्ग का प्रारम्भिक छोर पा लिया है। और जब तुम मार्ग का अन्तिम छोर पा लोगे, तो उसका प्रकाश एकाएक अनन्त प्रकाश का रूप धारण कर लेगा।

...उस भीतर के दृश्य से न भयभीत होओ और न आश्चर्य करो। उस धीमे प्रकाश पर अपनी दृष्टि रखो। तब वह प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ेगा। लेकिन अपने भीतर के अंधकार से सहायता लो और समझो कि जिन्होंने प्रकाश देखा ही नहीं है, वे कितने असहाय हैं और उनकी आत्मा कितने गहन अंधकार मे है।

तेरहवां सूत्र : मार्ग की शोध करो।

थोड़ा रुको और विचार करो। तुम मार्ग पाना चाहते हो, या तुम्हारे मन में ऊंची स्थिति प्राप्त करने, ऊंचे चढ़ने और एक विशाल भविष्य निर्माण करने के स्वप्न है, सावधान! मार्ग के लिए ही मार्ग को प्राप्त करना है—तुम्हारे ही चरण उस पर चलेंगे, इसलिए नहीं।

इस सूत्र में बहुत सी बातें समझ लेने जैसी हैं।

मार्ग मिला हुआ नहीं है, उसकी खोज करनी है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति इस भ्रान्ति में है कि मार्ग मिला हुआ है। और सारी दुनिया में धर्म को नष्ट करने में अगर किसी बात ने सबसे ज्यादा सहायना पहुंचाई है, तो वह इस भ्रान्ति में हैं कि मार्ग मिला हुआ है।

जन्म के साथ मार्ग नहीं मिलता, लेकिन सभी धर्मों ने ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि जन्म के साथ वे धर्म भी आपको दे देते हैं। मां के दूध के साथ धर्म भी दे दिया जाता है। बच्चा जब होता है अबोध, और उसे कुछ न चिन्तना होती है, न कोई मनन होता है, न कोई समझ होती है, तभी गहरे अचेतन में हम मार्ग को डाल देते हैं। मां-बाप अपने मार्ग को डाल देते हैं। उनका भी वह मार्ग नहीं है। वह भी उनके मां-बाप ने उनमें डाल दिया है। तो आप हिन्दू की तरह पैदा होते हैं, मुसलमान की तरह, जैन की तरह, ईसाई की तरह। आप जन्म के साथ किसी मार्ग से जुड़ जाते हैं, जोड़ दिये जाते हैं।

कोई व्यक्ति न हिन्दू पैदा होता है, न मुसलमान—न हो सकता है। हिन्दू घर में पैदा हो सकता है, लेकिन हिन्दू कोई भी पैदा नहीं हो सकता। मुसलमान घर में पैदा हो सकता है, लेकिन मुसलमान पैदा नहीं हो सकता। आदमी पैदा होता है, तब उसके पास कोई धर्म, कोई मार्ग नहीं होता है। मार्ग मां-बाप, परिवार, समाज, जाति,

बच्चे के ऊपर थोप देते हैं और वे थोपने में जल्दी करते है, क्योंकि अगर बच्चे को होश आ जाये, तो वह थोपने में बाधा डाले। इसलिए बेहोशी में थोपा जाता है।

सभी धर्म बच्चों की गर्दन पकड़ने में बड़ी जल्दी करते हैं। जरा सी देर—और भूल हो जायेगी। और एक बार बच्चा अगर अचेतन की अवस्था से चेतन मे आ गया, होश सम्भाल लिया, तो फिर आप धर्म को थोप ही न पायेंगे। फिर तो बच्चा अपनी ही खोज करेगा। और हो सकता है कि हिन्दू घर के बच्चे को लगे कि ईसाई मार्ग उसके लिए है। और ईसाई घर के बच्चे को लगे कि हिन्दू मार्ग उसके लिए है, बड़ी अस्त-व्यस्तता हो जायेगी। वैसी अस्त-व्यस्तता न हो जाये, मेरा बेटा मेरे धर्म को छोड़कर न चला जाये, तो अचेतन में हम अपराध करते हैं, हम बच्चे की गर्दन को जकड़ देते हैं संस्कारों में। मनुष्य ने अब तक जो बड़े से बड़े पाप किये हैं, उसमे यह सबसे बड़ा पाप है। इसे मैं क्यों सबसे बड़ा पाप कहता हूँ, क्योंकि इसका यह अर्थ हुआ कि हमने बच्चे को एक झूठा धर्म दे दिया है, जो उसका चुनाव नहीं है।

और धर्म कुछ ऐसी बात है कि जब तक आप न चुनें, तब तक सार्थक नहीं होगा। जब आप ही चुनते हैं, अपने प्राणों की खोज से, पीड़ा से, प्यास से, तो ही आप धार्मिक होते हैं। यह दूसरे का दिया हुआ धर्म ऊपर-ऊपर रह जाता है। और इसके कारण आपकी अपनी खोज में बाधा पड़ती है।

इसलिए देखें, जब बुद्ध जीवित होते हैं, या महावीर जीवित होते है, या मुहम्मद जीवित होते हैं या ईसा—तो उस समय जो धर्म का प्रकाश होता है और जो लोग उनके पास आते हैं, उनके जीवन में जैसी क्रान्ति घटित होती है, फिर बाद में वह ज्योति मद्धिम होती चली जाती है। क्योंकि बुद्ध के पास जो लोग आकर दीक्षित होते हैं, वह उनका खुद का चुनाव है कि वे बौद्ध हो रहे हैं। सोच-विचार से, अनुभव से, चिन्तन से, साधना से, उन्हें लगा है कि बुद्ध का मार्ग ठीक है, तो वे बुद्ध के पीछे आ रहे हैं। यह उनका निजी चुनाव है, यह उनका अपना समर्पण है। यह प्रतिबद्धता किसी और ने नहीं दी है, यह उन्होंने खुद ही ली है। तब मजा ही और है। तब वे अपने पूरे जीवन को दाव पर लगा देते हैं, क्योंकि जो उन्हें ठीक लगता है, उस पर जीवन दांव पर लगाया जा सकता है। लेकिन उनके बच्चे पैदायशी बौद्ध होंगे—उनका चुनाव नहीं होगा। उन्होंने खुद निर्णय न लिया होगा, उन्होने खुद सोचा भी न होगा—बुद्ध घर में उनकी छाती पर बिठा दिये जायेंगे।

ध्यान रहे, जो आप अपनी मर्जी से चुनते है—अगर नर्क भी चुनें अपनी मर्जी से तो वह स्वर्ग होगा। और अगर स्वर्ग भी जबरदस्ती आपके ऊपर रख दिया जाये, तो वह नर्क हो जायेगा। जबरदस्ती में नर्क है। अगर ऊपर से कोई चीज थोप दी जाये, तो वह आनन्द भी अगर हो, तो भी दुःख हो जायेगा। थोपने में दुःख हो जाता है।

और जो भी चीज थोपी जाती है, वह कारागृह बन जाती है। न तो आज जमीन पर हिन्दू हैं, न मुसलमान, न बौद्ध—आज कैदी हैं। कोई हिन्दू कैदखाने में है, कोई मुसलमान कैदखाने में है, कोई जैन कैदखाने में है।

कैदखाना इसलिए कहता हूँ, कि आपने कभी सोचा ही नहीं कि आपको जैन होना है, कि हिन्दू होना है, कि मुसलमान होना है। आपने चुना नहीं है। यह आपकी गुलामी है, लेकिन गुलामी इतनी सूक्ष्म है कि आपको पता ही नहीं चलता, क्योंकि आपके होश में नहीं डाली गई। जब आप बेहोश थे, तब यह गुलामी, यह जंजीर आपके हाथ में पहना दी गई। जब आपको होश आया तो आपने जंजीर अपने हाथ में ही पाई। और इसे जंजीर भी नहीं कहा जाता है, इसे आपके मां-बाप ने, परिवार ने, समाज ने समझाया है कि यह आभूषण है। आप इसको सम्भालते हैं, कोई तोड़ न दे—यह आभूषण है और बड़ा कीमती है, आप इसके लिए अपनी जान लगा देंगे।

एक बड़े मजे की घटना घटी है। अगर हिन्दू धर्म पर खतरा हो तो आप अपनी जान लगा देंगे। आप हिन्दू धर्म, मुसलमान या ईसाई, किसी भी धर्म के लिए मर सकते हैं, लेकिन जी नहीं सकते। अगर आपसे कहा जाये कि जीवन हिन्दू की तरह जियो, तो आप जीने को राजी नहीं है। मुसलमान की तरह जियो, जीने को राजी नहीं हैं। लेकिन अगर झगड़ा-फसाद हो तो मरने के लिए राजी हैं। वे ही आदमी हिन्दू धर्म के लिए मरने को राजी हैं, जो हिन्दू धर्म के लिए जीने को कभी राजी न थे। क्या मामला है?

कहीं कोई रोग है, कहीं कोई बीमारी है। जीने के लिए हमारी कोई उत्सुकता नहीं है। मार-काट के लिए उत्सुक हो जाते हैं, क्योंकि जैसे ही कोई हमारे धर्म पर हमला करता है, हमें होश ही नहीं रह जाता। वह हमारा बेहोश हिस्सा है, जिस पर हमला किया जा रहा है। इसलिए जब भी हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं, तो आप यह मत समझना कि वे होश में लड़ते रहे हैं, वे बेहोशी में लड़ते रहे हैं। बेहोशी में वे हिन्दू-मुसलमान हैं, होश में नही हैं। इसलिए कोई भी उनके अचेतन मन को चोट कर दे, तो बस वे पागल हो जायेंगे। न कोई हिन्दू लड़ते हैं, न कोई मुसलमान लड़ते हैं—पागल लड़ते हैं।

कोई हिन्दू मारता—पागल है। कोई मुसलमान मारता—पागल है। यह मार्कों का फर्क है, लेकिन पागल हैं। और आपके भीतर धर्म उस समय डाला जाता है, जब तर्क की कोई क्षमता नहीं होती। इसलिए मैं कहता हूँ कि यह सबसे बड़ा पाप है। और जब तक वह पाप बन्द नहीं होता, जब तक हम प्रत्येक व्यक्ति को अपने मार्ग की खोज की स्वतंत्रता नहीं देते, तब तक दुनिया धार्मिक नहीं हो सकेगी, क्योंकि धार्मिक होने के लिए स्वयं का निर्णय चाहिये।

इसे हम ऐसा समझें तो आसान आयेगा।

पुराने दिनों में, हमारे मुल्क में तो अभी भी, थोड़े दिन पहले तक हम बाल-विवाह कर देते थे—न तो पति को कोई प्रयोजन था, कि किससे विवाह हो रहा है—न पत्नी को कोई प्रयोजन था कि किससे विवाह हो रहा है। बच्चे इतने छोटे थे कि उन्हें अभी पता भी नहीं था कि क्या हो रहा है? पति-पत्नी हम उन्हें बना देते थे उनकी अचेतना में, उनको होश नहीं होता था, बेहोशी में। जैसे जन्म के साथ बहन, मां-बाप मिलते हैं, ऐसे ही बेहोशी में पत्नी और पति भी मिल जाते थे। एक सुविधा थी बाल विवाह में, कि उसको तोड़ना बहुत मुश्किल था, क्योंकि अचेतन जुड़ जाता था, होश की बात ही नहीं थी चुनाव का कोई सवाल ही नहीं था, तो तोड़ने का सवाल कहां था? बाल विवाह जिन्होंने खोजा होगा, वे बहुत कुशल लोग थे। उसका मतलब यह था कि विवाह अब टूटेगा नहीं, क्योंकि जो कभी सचेतन रूप से जोड़ा ही नहीं गया, वह सचेतन रूप से तोड़ा भी नहीं जा सकता, तो विवाह चलेगा, स्थायी होगा, लेकिन उस विवाह में प्रेम की घटना कभी नहीं घटेगी। ध्यान रहे, पास रहके, समीप रहके, साथ रहके, एक तरह का मैत्रीभाव बन जाता है, लेकिन वह प्रेम नहीं है।

प्रेम तो एक पागलपन है, प्रेम तो एक उन्माद है।

बाल-विवाह में प्रेम घटता ही नहीं। असल में बाल-विवाह की तरकीब ही इसीलिए हैं कि प्रेम घटे न, क्योंकि प्रेम खतरनाक है, वह घटे ही न। विवाह सुरक्षित है, प्रेम खतरनाक है। प्रेम इतनी ऊंचाई लेता है कि खतरा है—अगर वहां से गिरे तो उतनी ही गहराईयों में गिर जाना है। विवाह में कभी आप गिर नहीं सकते, क्योंकि उसकी कोई ऊंचाई नहीं होती, समतल जमीन पर यात्रा है। न कोई शिखर होता है, न कोई खाई होती है—सुरक्षित, स्थायी है।

तो विवाह एक संस्था है, प्रेम एक घटना है। घटना अनजान होती है, संस्था को आयोजित किया जाता है।

प्रेम खतरनाक हो सकता है, होगा ही। क्योंकि इतनी ऊंचाई पर सदा जीना बहुत मुश्किल है, नीचे उतरना पड़ेगा। प्रेम इतनी ऊंचाई पर ले जाता है कल्पना की, ऐसे स्वप्न निर्मित कर देता है कि उन स्वप्नों के साथ जीना थोड़े से स्वप्नदर्शियों के लिए संभव है—बाकी लोग तो जमीन पर गिर जायेंगे, उस शिखर पर जीना मुश्किल है। और जब गिरेंगे तो बड़ी पीड़ा होगी। ध्यान रहे, जितना बड़ा सुख चाहिये, तो उतने बड़े दुख की खाई सदा पास में होती है।

तो बाल-विवाह करने वाले लोगों ने बड़ी कुशल व्यवस्था की है। प्रेम का खतरा अलग कर दिया, गिरने का भय नहीं रहा। और जब आपने विवाह किया ही नहीं था, तो तलाक करने का कोई सवाल ही नहीं था। जो आपने किया ही नहीं है, उसको आप

तोड़ भी नहीं सकते। आप अपनी बहन से कहीं तलाक ले सकते हैं, कि अपनी मां से तलाक ले सकते हैं? यह तो प्राकृतिक घटना है, इसमें आप छोड़कर जाइयेगा कहां? क्या उपाय है कि आप कह दें, कि अब मेरा बहन से तलाक हो गया है, यह मेरी बहन न रही। इसका कोई उपाय नहीं है, चाहे दुश्मन हो जायें, चाहे कुछ भी करें—बहन बहन रहेगी, बाप बाप रहेगा, मां मां रहेगी। हमने पत्नी को भी ठीक इसी ढांचे में ढाल दिया है।

चुनाव का एक ही मौका है जीवन में—सम्बन्ध।

बाप तो जन्म से मिलता है, मां जन्म से मिलती है, बहन-भाई जन्म से मिलते हैं। सिर्फ एक पति और पत्नी का सम्बन्ध है, जिसमें स्वतन्त्रता है, बाकी तो सब परतन्त्रता है। तो वह एक स्वतन्त्रता की घटना खतरनाक हो सकती है, क्योंकि स्वतन्त्रता खतरनाक है। हमने उसे भी काट दिया है। हमने विवाह को एक संस्था बनाकर अचेतन के साथ जोड़ दिया है। खतरा तो मिट गया था, लेकिन प्रेम की वह जो रोमानी उड़ान थी, वह भी मिट गई थी। खतरे के साथ उसका जो रस था, वह भी मिट गया।

जैसा हमने बाल-विवाह के साथ किया था, वैसा ही हमने धर्म के साथ किया है। हम उसे भी जोड़ देते हैं। बच्चा जब बड़ा होता है, तो वह पाता है कि वह हिन्दू है। उसे होश ही नहीं है कि जब वह पैदा हुआ था तो हिंदू नहीं था। जब उसे होश आता है, तो वह पाता है कि वह हिन्दू है, मुसलमान है। उसे यह भी ख्याल नहीं आता कि यह संस्कार भी उधार है, यह किसी ने डाल दिया है उसकी चेतना में, इन्जेक्ट किया गया है—इसे लेकर वह पैदा नहीं हुआ है। अब जीवन भर वह यही मानकर चलेगा कि मैं हिन्दू हूँ। और जो इसने नहीं चुना है, उसमें उसे कोई ज्यादा रस नहीं हो सकता है, क्योंकि उससे उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है, अगर ठीक से हम सोचेंगे तो। आरोपण है—उसे ढो लेगा, एक औपचारिकता की तरह। कभी मन्दिर जरूरी होगा, तो हो आयेगा, चर्च रविवार को पहुँच जायेगा। कभी कोई उत्सव हो तो उसकी औपचारिकता को निभा लेगा। धर्म तब एक सामाजिक व्यवस्था का अंग हो जाता है। और धर्म सामाजिक व्यवस्था का अंग नहीं है।

जैसे प्रेम खतरनाक है, धर्म उससे भी ज्यादा खतरनाक है।

जैसे प्रेम खतरनाक है, क्योंकि उसके रास्ते का कुछ भी पता नहीं है, कोई पूर्व घोषणा नहीं हो सकती कि क्या होगा? धर्म उससे भी ज्यादा खतरनाक है। प्रेम भी अनजान मार्ग पर ले जाता है, धर्म तो और भी अनजाने मार्गों पर ले जाता है।

धर्म तो आत्म-क्रान्ति है।

हमने धर्म को बना दिया है सामाजिक संस्था, तो आत्म-क्रान्ति का कोई उपाय न रहा। फिर जो चीज हम पर थोप दी गई है, उसके प्रति मन में एक विरोध होता है,

होगा ही। और जो चीज हम पर थोप दी गई है, उसको तोड़ने में रस आता है। क्यों? क्योंकि जब हम उसे तोड़ते हैं तो हमें लगता है कि हम मुक्त हो रहे हैं।

फ्रायड ने लिखा है कि मैं अपनी पत्नी और बच्चे के साथ एक बगीचे में घूमने गया था। जब हम लौटने लगे और दरवाजा बन्द होने लगा, तो बच्चा नदारत था। तो मैंने पत्नी को पूछा कि कहां है बच्चा? पत्नी घबड़ा गई, दरवाजा बन्द हो रहा है, बड़ा बगीचा है मीलों लम्बा—कहां होगा बच्चा? तो फ्रायड ने कहा कि तू घबड़ा मत, तूने उसे कहीं जाने को मना तो नहीं किया है? अगर मना किया हो तो पहले हम वहीं खोज लें। अगर उसमें थोड़ी सी बुद्धि हो, तो वहीं होना चाहिये। पत्नी ने कहा, मैंने कहा था कि फव्वारे पर मत जाना। फ्रायड ने कहा, बस भागकर फव्वारे की तरफ चलें। फव्वारे पर बेटा पैर लटकाये पानी में बैठा था। फ्रायड की पत्नी कहने लगी, तुमने कैसे अन्दाज लगाया कि लड़का वहां होगा? फ्रायड ने कहा कि इसमें भी अन्दाज लगाने की क्या बात है! अगर लड़का बिलकुल बुद्धू हो तो भूल हो सकती है। अगर लड़के में थोड़ी भी बुद्धि है, तो जहां इन्कार है, वहां रस है; जहां निषेध है; वहां निमन्त्रण है।

कह दो किसी से ऐसा मत करना—तुमने रस पैदा कर दिया करने का।

आज जो समाज में इतनी अनीति दिखाई पड़ती है। यह नैतिक उपदेशों का परिणाम है, जो आपके गुरु बन कर बैठे हैं। साधु हैं, संन्यासी हैं, महात्मा हैं, नब्बे प्रतिशत अनीति के लिए ये जिम्मेवार हैं, क्योंकि ये रस पैदा करवाते हैं—ये कहते हैं, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। जहां-जहां ये कहते हैं, यह मत करो—वहां-वहां लगता है कि जरूर कोई रहस्य का खजाना छिपा है। जब इतने महात्मा लगे हैं समझाने में, तो जरूर कुछ बात होगी। कुछ न कुछ होगा—नहीं तो क्यों इतने महात्मा समय नष्ट करेंगे अपना! यह मत करो...मन होता है कि खोजो, पता लगाओ और एक रूण रस पैदा हो जाता है।

देखिए, किसी फिल्म पर लगा दिया जाये, 'ओनली फार अडल्ट', 'सिर्फ वयस्कों के लिये'—फिर देखिए छोटे बच्चे भी दो आने की मूंछ खरीदकर और लगाकर वहां होंगे, खड़े हो जाते हैं कतार में कि जरूर कोई मामला है, कुछ न कुछ रसपूर्ण वहां हो रहा है। बहुत मुश्किल है निषेध से बचना। तो जो भी चीजें थोपी जाती हैं जबर-दस्ती, उनको तोड़ने में रस आने लगता है।

इतनी अधार्मिकता का कारण यह है कि धर्म आरोपण है, वह आपका चुनाव नहीं है, वह आपका निजी संकल्प नहीं है।

अच्छा है अधार्मिक होना—लेकिन दूसरे का धर्म सिर पर ढोना अच्छा नहीं है। क्योंकि तब आप कभी भी धार्मिक न हो पायेंगे, तब आप झूठे ही रहेंगे। अच्छा है

फेंक दें उधार को। कुछ दिन बिना धर्म के जी लिये तो हर्जा नहीं है। लेकिन बिना धर्म के कोई भी आदमी ज्यादा दिन जी नहीं सकता। क्योंकि बिना धर्म के आनन्द को पाने का कोई उपाय ही नहीं है। इसलिए मैं भयभीत नहीं हूँ, मैं कहता हूँ, बेहतर है कि बिना धर्म के हों, लेकिन थोपा हुआ धर्म खतरनाक है, क्योंकि उस थोपे हुए धर्म के कारण आपके मन में धर्म के प्रति ही विरोध पैदा हो जाता है। गहरे में विरोध रहता है, ऊपर-ऊपर धर्म रहता है और आप दो हिस्सों में बंट जाते हैं। तो फिर आप खोज के लिए भी नहीं जाते। फिर जब भी कहीं धर्म की बात उठती है तो आपको लगता है कि ठीक है, धर्म तो हमें पता ही है, धर्म तो हमें मालूम ही है। यह जो उधार, आरोपित, संस्कारित धर्म है, यह आपका मार्ग नहीं है। इसमें और भी खतरे हैं।

एक तो धर्म, सस्ता नहीं बनना चाहिए—धर्म क्रान्ति है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनना चाहिये, अपना मार्ग चुनना चाहिये। क्योंकि जिससे मोक्ष मिलने वाला है, वह दूसरे का दिया हुआ कैसे मोक्ष तक ले जायेगा? थोड़ा सोचें, जिससे परम-मुक्ति मिलने वाली है, उसका प्रारम्भिक चरण ही गुलामी है, तो उससे परम-मुक्ति कैसे मिलेगी? कोई आपसे कह रहा हो कि परम-मुक्ति मिलेगी, पहले आपके हाथ में हथकड़ी डालने दें—परम-मुक्ति मिलेगी! पहले कारागृह में आपको कैद करने दें, परम-मुक्ति मिलेगी! छाती से पत्थर लटका देने दें! तो आप राजी होंगे कि ये परम-मुक्ति की तरफ ले जा रहे हैं आपको? तो अभी ही मैं काफी मुक्त हूँ—आप जो बता रहे हैं, वह और भी गुलामी हो जायेगी।

मुक्ति तो मुक्त होने से ही मिलेगी। मुक्ति का पहला चरण मुक्ति ही होगा। और पहली मुक्ति जरूरी है कि दूसरों द्वारा दिये गये धर्म से मुक्ति।

अपने मार्ग की शोध करो—यह सूत्र का अर्थ है।

डरो मत, भयभीत मत होओ। और जरूरी नहीं कि जिस धर्म में आप संयोग से पैदा हुए हैं और जो संस्कार आप पर डाल दिये गये हैं, वे आपके काम के हों। यह भी जरूरी नहीं है। काम के भी न हों, खतरनाक भी हों, बाधा भी हों—इसे थोड़ा सोचें।

मीरा है—नाचती है, गाती है—उसकी समाधि नृत्य बन गई है। क्या आप महावीर को नाचता हुआ सोच सकते हैं कि नाच रहे हैं महावीर? तो बहुत बेतुका लगेगा। सोचने में बेतुका लगेगा कि महावीर, और नाच रहे हैं। जंचेगी नहीं बात, कल्पना भी करनी मुश्किल है। अभी तक किसी ने सपना भी नहीं देखा कि महावीर नाच रहे हैं, मोर-मुकुट बांधे हुए हैं; वे बड़े बेतुके लगेंगे, बड़े हास्यास्पद मालूम होंगे। लेकिन मीरा अगर न नाचे, और बैठ जाये महावीर की तरह, पत्थर की मूर्ति बनकर वृक्ष के

नीचे, तो वह भी न जंचेगी। मीरा का व्यक्तित्व, महावीर के व्यक्तित्व से अलग है। उसका मोक्ष नृत्य के मार्ग से ही आयेगा। महावीर का मोक्ष मौन, शांत, स्थिर होकर ही आयेगा। और दोनों मोक्ष की तरफ जायेंगे, लेकिन अपने-अपने ढंग से जायेंगे।

कृष्ण और क्राइस्ट को साथ-साथ खड़ा करके सोचें तो बड़ी मुश्किल होगी। जीसस को मानने वाले कहते हैं, कि क्राइस्ट कभी हंसे नहीं हैं, क्योंकि जगत में इतनी पीड़ा है, इतना दुख है—कैसे हंसे? परम-ज्ञानी कैसे हसेगा? और इधर कृष्ण हैं—कि नाच रहे हैं, बांसुरी बजा रहे हैं, गोपियों के साथ रास चल रहा है। जीसस को मानने वाला कभी सोच नहीं सकता कि कृष्ण परम-ज्ञानी हो सकते हैं, क्योंकि इतनी प्रसन्नता परम-ज्ञानी को शोभा नहीं देती। और कृष्ण को मानने वाला सोच नहीं सकता कि यह उदास, लम्बे चेहरे वाला आदमी जीसस—यह परम-ज्ञानी हो सकता है! ऐसी उदासी, मुर्दगी, यह परम-ज्ञानी को शोभा नही देती। परम-ज्ञानी तो आनन्द से भरपूर होते है।

लेकिन क्राइस्ट भी पहुंचते हैं अपने रास्ते से। जगत की पीड़ा के साथ जो अपने को तादात्म्य कर लेता है, सारे जगत की पीड़ा को जो अपने ऊपर ले लेता है, जो अपने को मल ही जाता है और सारी जगत की पीड़ा से एक हो जाता है, वह भी पहुंचता है। वह भी एक मार्ग है।

और जो सारी पीड़ा को भूल ही जाता है, आनन्द में इतना लीन हो जाता है कि इस जगत में पीड़ा है, इसका जिसे पता भी नहीं चलता है, जो इस अस्तित्व के उत्सव के साथ एक रस हो जाता है, जो रास मे डूब जाता है, वह भी पहुंच जाता है। लेकिन पहुंचने के रास्ते अलग-अलग हैं।

अब यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि अगर आपका रास्ता नृत्य का हो और आप महावीर के मानने वालों के घर में पैदा हो गये, तो आप मुश्किल में पड़ेंगे, क्योंकि आपका कहीं ताल-मेल नहीं बैठेगा। मीरा के घर पैदा हो गये, तब तो ठीक, नही तो आपका कोई ताल-मेल नहीं बैठेगा। आप हमेशा पायेंगे कि कही न कहीं, कोई मेल ही नहीं बैठ रहा है। और चेतन मन मे आप समझेंगे कि आप जैन हैं, और आपके पूरे व्यक्तित्व का ढांचा जो है, वह किसी भक्त का है, तो आप अड़चन में पड़ेंगे। अगर आप महावीर जैसे व्यक्तित्व के आदमी हैं और कही कृष्ण को मानने वालों के घर में पैदा हो गये, तो ऊपर से आपको लगेगा कि ठीक है और भीतर से लगेगा सब गलत है...तो आप पाखण्डी हो जायेंगे। जो आप करेंगे, वह आपके व्यक्तित्व से मेल नहीं खायेगा, इसलिए वास्तविक, प्रामाणिक नहीं होगा। और जो आप करना चाहेंगे, वह आप कर न सकेंगे, क्योंकि वह आपका संस्कार है, उससे विपरीत पड़ जायेगा। अगर हमने सारी मनुष्यता को आज इतनी उलझन में डाल दिया है, उसका

कारण यह है। सभी धर्मों का अध्ययन करना जरूरी है, लेकिन चुनाव स्वयं होना चाहिये, कोई दूसरा चुनाव न करे।

अच्छी दुनिया पैदा हो सकती है। सब खुला छोड़ दिया जाये व्यक्ति को, कि वह अपनी खोज कर ले और जो भी खोज ले, उसका स्वागत हो। इसके गहरे परिणाम होंगे। इससे एक तो धर्म के प्रति जो बगावत पैदा हो जाती है, वह पैदा नहीं होगी। दुनिया से नास्तिक कम हो जायेंगे।

नास्तिकता पैदा होती है जबरदस्ती थोपी गई आस्तिकता की प्रतिक्रिया में।

दुनिया से नास्तिकता कम हो जायेगी। दुनिया से ताल-मेल न बैठने वाली व्यवस्था क्षीण हो जायेगी। जिससे ताल-मेल बैठेगा, वही हम चुनेंगे। एक रस पैदा होगा, एक प्रेम पैदा होगा; जो हमने चुना है, वह हमारी निजी खोज होगी। जो मेरी खोज है, उसमें मुझे रस होता है; जो मेरा अविष्कार है, उसमें मुझे आनन्द होता है—उसके लिए मैं सब कुछ दांव पर लगा सकता हूँ। और जब तक हम सब दांव पर लगा न सकें अपने धर्म के लिए, तब तक हमारे जीवन में कोई क्रान्ति घटित नहीं हो सकती।

तीसरा, एक-एक घर में अनेक धर्मों के लोग हो जायेंगे। दुनिया से दंगे-फसाद समाप्त हो सकते हैं—एक ही उपाय है कि एक घर में कई धर्मों के लोग हों, बस। और कोई उपाय नहीं है। कि बाप ईसाई हो, कि बेटा जैन हो, कि पत्नी मुसलमान हो, कि एक बहू बौद्ध हो, कि एक बहू कन्फ्यूसी हो—एक घर में अनेक धर्म के लोग हों, तो दंगा नहीं हो सकता? किससे लड़ने जाइयेगा? अगर हिन्दू-मुसलमान दंगा हो जाये तो क्या करियेगा फिर? आपकी पत्नी मुसलमान है, वह मुसलमान के साथ खड़ी होगी, आपका बेटा बौद्ध है, वह बौद्ध के साथ खड़ा होगा, आपका एक भाई जैन है, वह जैन के साथ खड़ा होगा—घर में कैसे पाकिस्तान काटियेगा? बहुत मुश्किल हो जायेगा।

जब तक पूरा का पूरा घर एक धर्म में है, तब तक दुनिया से झगड़े-फसाद बन्द नहीं हो सकते, क्योंकि आप बच सकते हैं आसानी से।

जिनसे आपका लगाव है, ये सब आपके धर्म के हैं। जिनसे आपके सम्बन्ध हैं, प्रेम है, वे सब आपके धर्म के हैं। लेकिन अगर एक घर में दस धर्मों के लोग हैं—तो आपका अपनी पत्नी से प्रेम है और वह मुसलमान है, तो आप मुसलमान से लड़ नहीं सकते। चाहे कोई कितना चिल्लाए—हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई, कोई कितना ही कहे—ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम—सब व्यर्थ है, इन बातों से कुछ होने वाला नहीं है। जब तक कि एक-एक घर की व्यवस्था में अनेक धर्म प्रविष्ट न हो जायें—तब कहने की जरूरत न होगी कि हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई—वे होंगे। यह तो कहना पड़ता है इसलिए, कि वे नहीं हैं।

यह झूठ है, यह सरासर व्यर्थ है। और चालबाजी है, और राजनीति के सिवाय कुछ भी नहीं है।

यह जो सूत्र है—बहुत क्रांतिकारी है : मार्ग की शोध करो। मार्ग तुम्हारे पास है नहीं। जन्म से मिलता नहीं, संस्कार से उपलब्ध नहीं होता। तुम्हें अपना मार्ग खोजना ही पड़ेगा। भूल होगी, चूक होगी—होने दो, भटकोगे—भटको।

मुर्दा सुरक्षा से जीवित असुरक्षा बेहतर है।

भटकना अच्छा है, क्योंकि भटक कर ही खोजा जा सकता है। बिना भटके, मुफ्त, किसी और से जो मिल जाता है, वह कहीं भी नहीं ले जाता है। अपने मार्ग की शोध में कई बाधाएं खड़ी होंगी।

आप यहां बैठे हैं, जब भी मैं कुछ बोलता हूं, तो आप भीतर पूरे वक्त तौलते रहते हैं कि अपने धर्म से मेल खाता है कि नहीं—शोध नहीं हो सकती। आप की खोपड़ी में चलता ही रहता है कि गीता में यह, ऐसा लिखा है कि नहीं, कि कुरान में ऐसा आता है कि नहीं, कि महावीर स्वामी ने ऐसा कहा कि नहीं? अगर कहा, तो ठीक। अगर नहीं कहा, तो गलत। तो आप क्या खाक शोध करियेगा! आप पहले से मानकर ही बैठे हैं कि क्या ठीक है, क्या गलत है! यह आप तय ही किये हुए हैं। जब तय ही किये हैं, तो क्या शोध होगी?

खोज वही कर सकता है, जिसने तय नहीं किया है। अगर मैं कुछ कह रहा हूं, या कोई भी कुछ कह रहा है, तो उसके प्रति बड़ा निष्पक्ष भाव होना चाहिये। पहले उसे समझने की चेष्टा करनी चाहिये और अपनी पूर्व धारणाएं एक तरफ रख देनी चाहिये। कि तुम बीच में मत आना—क्योंकि उनके आने पर तो समझना असंभव है। उनको एक तरफ रख देने का मतलब यह नहीं कि जो कहा जाये, वह मान लेना। मानने की कोई जरूरत नहीं है, समझना और जब पूरी तरह से समझ लो, तब दोनों को तौलना। और दोनों को जब तौलो, तो दोनों से दूर खड़े होकर तौलना। यह मत कहना कि एक मेरी मान्यता और एक आपकी। तो फिर आप तौल नहीं पाओगे, क्योंकि जो आपकी मान्यता है, उसको आप जिता लोगे। इसमें तो आप बेईमानी करोगे। फिर आप जज नहीं हो, फिर तो एक पक्ष से आपका सम्बन्ध है, आप सम्बन्धी हो, तो आप न्याययुक्त न हो पाओगे।

जिस व्यक्ति को मार्ग की खोज करनी है, उसको सभी मार्गों से निष्पक्ष अपने को रखना जरूरी है।

अगर जैन हो, तो जैन होने को एक तरफ रख देना है। मुसलमान हो, तो एक तरफ रख देना है। तब जो भी खोज रहे हो, उसको पूरा समझना, अनुभव में देखना और फिर दोनों को तौलना। और दोनों को तौलते वक्त किसी पक्ष में खुद खड़े मत होना,

दोनों से दूर खड़े होकर तौलना। तब अगर ठीक लगे कि मुसलमान जो कहता है, वही ठीक है, तो फिर उसका अनुगमन करना। और ध्यान रहे, तब यह भी आपकी शोध हो गई। जरूरी नहीं है कि मुसलमान घर में जो पैदा हुआ है, उसे अनिवार्य रूप से यह पता चले कि मुसलमान होना ठीक नहीं है। पता चल सकता है कि मुसलमान होना ठीक है।

हिंदू घर में पैदा हुए आदमी को जरूरी नहीं है कि हिंदू धर्म छोड़ना ही पड़े। हो सकता है कि हिंदू धर्म ही उसका मार्ग हो। लेकिन जब इतनी निष्पक्षता से खोजेगा, तो वह जो दिया हुआ है, वह भी अपना हो गया। फिर वह दिया हुआ नहीं रहा, हमने पुनः खोज कर ली और पाया, कि नहीं—हिंदू धर्म ही मेरे लिए मार्ग है।

यह जो पुनः आविष्कार है, इससे सारा गुण बदल जाता है। तब यह मां-बाप का दिया हुआ धर्म नहीं है, मैंने खुद भी खोज लिया। पर इसमें बड़ा ईमानदार होने की जरूरत है। जल्दी की जरूरत नहीं है कि मन में तो पता ही है कि हिंदू धर्म ठीक है। ऐसे तो हम मानते ही हैं। थोड़ा बहुत, जरा कुरान वगैरह देखकर कहा कि नहीं धर्म तो हिंदू ही ठीक है—इतनी जल्दबाजी से नहीं होगा।

अपने को बेईमानी से बचाना, शोध का अनिवार्य हिस्सा है।

लेकिन हम कुशल हैं। और जिनको हम बहुत अच्छे लोग कहते हैं, वे भी हद के कुशल हैं। जैसे कि बहुत सी किताबें लिखी गई हैं। डा० भगवानदास ने एक किताब लिखी है सब धर्मों के समन्वय पर—सब धर्मों की बुनियादी एकता पर—"एसेन्शियल युनिटी आफ आल रिलीजन्स"। भगवानदास बड़े पंडित थे और उन्होंने किताब बहुत खोजकर लिखी है। और हिंदुस्थान में सर्व धर्मों के समन्वय की जो धारा चली, उसमें बड़ी कीमती किताब है। सभी उस किताब से प्रभावित हुए, ऐनी बीसेंट से लेकर महात्मा गांधी तक।

मगर किताब बेईमान है। बेईमान इसलिए है कि डा० भगवानदास कुरान में से कुछ खोजते हैं; लेकिन वे खोजते वही हैं, जो गीता में लिखा है। गीता ठीक है, यह तो भीतर गहरा भाव है। फिर कुरान में भी अगर वही बात कही है, जो गीता में कही है, तो कुरान भी ठीक है। बाइबिल में भी अगर वही बात कही है, जो गीता में कही है, तो बाइबिल भी ठीक है। लेकिन खोजते वही हैं, जो गीता की ही झलक है। गीता ही ठीक है। कुरान भी ठीक हो सकता है। अगर उसने वही कहा हो, जो गीता में कहा है, तो इसका कोई अर्थ नहीं रहा। यह बुनियादी एकता नहीं खोजी जा रही है, क्योंकि कुरान में बहुत कुछ ऐसा भी कहा है, जो गीता में नहीं है। उसको वह बिलकुल छोड़ जाते हैं। और कुरान में ऐसा भी बहुत कुछ कहा है, जो गीता के विपरीत है; उसको तो बिलकुल ही छोड़ जाते हैं।

अगर एक मुसलमान उसी किताब को लिखे, तो वह किताब बिलकुल दूसरी होगी, क्योंकि वह आधार में कुरान को रखेगा। और जो कुरान में है, वह अगर गीता में है, तो गीता ठीक होगी—उसका चुनाव बिलकुल अलग होगा। कुरान में और गीता में तो बड़ा फासला है। यहां जैनों और गीता में चुनाव करवाकर देखें, तो ख्याल में आ जायेगा। जैन गीता में से वे सब हिस्से निकाल देंगे, जो मूल्यवान हैं, क्योंकि वे सभी हिस्से अहिंसा पर चोट करते हैं। क्योंकि गीता का मौलिक सन्देश यह है कि तू लड़ और डर मत, क्योंकि मृत्यु तो होती ही नहीं—इसलिए हिंसा का भय क्या है? "न हन्यते हन्यमाने शरीरे", कुछ मरता नहीं, कुछ कटता नहीं। शरीर भी काटा नहीं जा सकता। कट भी जाये, तो वह जो भीतर है, वह अकटा रह जाता है—तो तू डर मत। तो जैन की बड़ी कठिनाई हो जायेगी। जैन गीता में से वे हिस्सा चुन ले सकते हैं, जिनका महावीर की वाणी से मेल खाता हो; लेकिन बुनियादी गीता छूट जायेगी। क्योंकि यह सब तो उपद्रव है, यह महावीर के साथ मेल नही खा सकता।

यह जो चुनाव हैं, इनको मैं कहता हूँ बेईमान, क्योंकि भीतर आप अपने धर्म को तो ठीक मानकर चलते ही हैं, दूसरे पर थोड़ी दया करते है। आप सहिष्णु हैं, तो दूसरे पर थोड़ी दया दिखाते हैं और उसमें भी थोड़ा कुछ ठीक होगा, इसलिए इसको निकालकर बता देते हैं, कि इसमें भी ठीक है। ऐसे तो ठीक हम ही है आखिर में, लेकिन दूसरा भी बिलकुल गलत नहीं है। इसकी बात मे भी थोड़ा-थोड़ा सार है, वह सार हम बता देते हैं, लेकिन वह सार वही है, जो हमारी बात में है। तो फिर आप मार्ग की शोध नहीं कर सकते।

मार्ग की शोध तो तभी हो सकती है, जब आप अपने भीतर एक तटस्थता पैदा करें, एक साक्षीभाव पैदा करें और सभी चीजों को दूर खड़े होकर देख सकें। और अन्तिम निर्णय यही हो कि जो सत्य हो, उसको मैं चुनूंगा। जो मेरा है, उसको नहीं —जो सत्य है, उसका मैं चुनूंगा। हम जो मेरा है, उसको सत्य मानते हैं। वास्तविक खोजी—जो सत्य है, उसको अपना मानता है। इस भेद को ध्यान में रखें तो यह सूत्र साधक के लिए बहुत गहरे काम का है।

मार्ग की शोध करो।

चौदहवां सूत्र : अपने भीतर लौटकर मार्ग की शोध करो।

पहला सूत्र : मार्ग की शोध करो।

दूसरा : अपने भीतर लौटकर मार्ग की शोध करो।

बाहर भी तुमने शोध लिया कि यह मार्ग ठीक है—अभी भी पक्का मत कर लेना। अभी भीतर इस पर प्रयोग भी करना। भीतर लौटना और इस मार्ग पर प्रयोग करना और जब तक तुम्हारे जीवन में फल न आ जाये, जब तक तुम्हारी अनुभूति गवाही न

बन जाये, और जब तक तुम्हारा हृदय न कह दे कि ठीक, मेरे अनुभव से सिद्ध हुआ, तब तक अभी मार्ग की शोध पूरी नहीं हुई।

इधर मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कि यह ध्यान तो, देख कर हमें डर लगता है। कोई आता है, वह कहता है, यह ध्यान तो बिलकुल पागलपन है, यह ठीक नहीं हो रहा है। मैं उनको कहता हूँ कि तुम करके देखो और उसके पहले कोई निर्णय न लो। हो सकता है पागलपन ही हो, लेकिन तुम करके देख लो। अगर तुम्हारा पागलपन बढ़ने लगे भीतर, तभी कहना। अगर घटने लगे तो फिर मत कहना। क्योंकि मेरे अनुभव में तो यह आया है कि अगर पागल भी इस प्रयोग को करे, तो उसका पागलपन घटने लगता है।

अभी पश्चिम में तो बहुत इस तरह के प्रयोगों पर काम चल रहा है। और वे कहते हैं कि अगर पागल को उसका पागलपन निकालने का मौका दिया जाये, तो वह घट जायेगा। समाज उसको निकालने नहीं देता, सब तरह से रुकावट डाल देता है, वह उसके भीतर इकट्ठा होता चला जाता है। फिर वह इतना इकट्ठा हो जाता है कि वह 'एक्सप्लोड' होता है, विस्फोट हो जाता है। फिर हम उसको पागलखाने में रख देते हैं। अभी पश्चिम के बहुत से मनसुविद् कहते हैं कि पागलों के साथ हम दुर्व्यवहार कर रहे हैं। हम ही उनको पागल करते हैं और फिर उनको पागलखाने में बंद करते हैं। और हम ही उनके पागलपन को निकालने नहीं देते। और वे निकालें तो मुश्किल है और न निकालें तो आखिर में वे पागल हो जाते हैं, तब हम उनको दण्ड देना शुरू कर देते हैं। हजार तरह की तरकीबों से उनको सताने लगते हैं। सारा जाल अद्‌भुत है।

पर लोग हैं, दूर से खड़े होकर कह देंगे कि यह ठीक नहीं है। चुप रहना—न कहना कि ठीक, न कहना कि गैर ठीक—जब तक कि भीतर प्रयोग न कर लो। क्योंकि जीवन इतना आसान नहीं है कि दूर से खड़े होकर परखा जा सकता है। जिसको प्रेम का कोई अनुभव नहीं है, वह अगर प्रेम के सम्बन्ध में कुछ कहे, उसका मूल्य क्या?

और अक्सर ऐसा होता है, जिनके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव नहीं, वे प्रेम के सम्बन्ध में काफी चर्चा करते हैं। कारण है उसका—क्योंकि चर्चा से ही वे मन को भरते हैं। प्रेम तो है नहीं जीवन में—प्रेम की चर्चा करके ही थोड़ा बहुत रस ले लेते हैं।

अक्सर प्रेम की कविताएं लिखने वाले वे ही लोग होते हैं, जिनके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव नहीं होता। सब्स्टीट्यूट है—वह कविता जो है। वह जो प्रेम उन्होंने किया होता, वह नहीं कर पाये हैं, वह शब्दों में कर रहे हैं। इसलिए आप प्रेम की कविता पढ़कर उस कविता के लिखने वाले कवि से मिलने मत चले जाना, नहीं तो निराशा होगी। वहां बिलकुल दूसरे आदमी को आप पायेंगे।

जीवन सिर्फ बुद्धि से समझ में आने वाला होता—दूर खड़े होकर, फिर तो दर्शक भी जीवन को जान लेते, फिर भोक्ता होने की कोई जरूरत न थी। फिर तो राहगीर भी किनारे से गुजरकर जिन्दगी को पहचान लेते, फिर तो जिन्दगी में डुबकी लगाने की और एकरस होने की कोई जरूरत न होती। लेकिन राहगीर कुछ भी नहीं जान पाते। वे जो किनारे खड़े हुए लोग हैं, उनको ऊपर-ऊपर की चीजें दिखाई पड़ती हैं—भीतर जो घट रहा है, वह आंखों से चूक जाता है। तो एक बार ख्याल में आ जाये, बुद्धि समझ ले कि यह मार्ग ठीक है, तटस्थ बुद्धि समझ ले कि यह मार्ग ठीक है; तब भी अभी पर्याप्त नहीं है—अपने भीतर लौटकर मार्ग की शोध करना। तत्क्षण जो तुमने ठीक पाया ह, उसे अपने भीतर लौटाना, उसे जीवन बनाना, उसे अन्तस् यात्रा में परिवर्तित करना। और जब तक वहां तुम्हें अनुभव न मिलना शुरू हो जायें, तब तक चुप रहना, कोई निर्णय मत लेना।

दुनिया में बहुत नासमझी कम हो सकती है, अगर लोग बिना जाने निर्णय लेना बन्द कर दें।

बिना जाने लोग इतना निर्णय लेते हैं, लेकिन उनको खयाल ही नहीं कि वे कुछ कसूर कर रहे हैं, कि कोई अपराध कर रहे हैं। बिना जाने लोग निर्णय लेते रहते हैं। बिना जाने जो निर्णय लेता है, वह आदमी नितान्त मूढ है। और न खुद मूढ़ है, बल्कि और लोगों को भी मूढ़ता में डालने का उपाय कर रहा है।

अनुभव के सिवाय कोई कसौटी नहीं है। आखिरी कसौटी आपका अपना अनुभव है। और जब तक उस कसौटी पर न कस लें, तब तक चुप रहना और मत कहना कि यह मार्ग सत्य है।

पन्द्रहवां सूत्र है : बाह्य जीवन में हिम्मत से आगे बढ़कर मार्ग की शोध करो।

और भीतर अनुभव में जिसको लिया है, अब उसे आचरण में भी जाने दो। अब बाह्य जीवन में भी उसकी शोध करो, क्योंकि जो भीतर ही सच है—हो सकता है सपना हो। क्योंकि भीतर के सच, काल्पनिक हो सकते हैं। भीतर जो सच मालूम पड़ा है, वह हो सकता है, व्यक्तिगत भ्रान्ति हो, क्योंकि वहां कोई दूसरा तो है नहीं, जिससे पूछ लो; तीसरा तो है नहीं, जिससे सहारा ले लो। वहा कोई और कसौटी तो नहीं है, आप अकेले हो।

मान लो कि आपको भीतर प्रकाश दिखाई पड़ता है, ध्यान का आप प्रयोग करते हैं। आपके भीतर प्रकाश दिखाई पड़ता है, कि बड़ा आनन्द अनुभव आता है, लेकिन यह भी हो सकता है कि यह प्रकाश सिर्फ कल्पना हो, प्रोजेक्शन हो, मन का ही प्रक्षेपण हो कि आप अपने मन में खुद ही भ्रान्ति पैदा कर रहे हों, क्योंकि आपने शास्त्रों में पढ़ा है कि प्रकाश अनुभव होता है—वह भाव बीज रूप में पड़ा है, कहीं वही प्रकट न हो रहा हो।

क्योंकि मजे की बात है, कृष्ण का भक्त अगर ध्यान करे तो उसको कृष्ण के दर्शन होते हैं, क्राइस्ट के कभी नहीं होते। जीसस का भक्त ध्यान करे तो उसे तत्काल क्राइस्ट के दर्शन होते हैं, कृष्ण के कभी नहीं होते। तो वह जो दर्शन हो रहा है, वह कहीं उसके ही अचेतन में पड़े हुए किसी भाव की पुनरावृत्ति तो नहीं है? भीतर कैसे जांच करियेगा? भीतर जो हो रहा है, वह कोई आत्म-विमूढ़ता, कोई आत्म-सम्मोहन, कहीं सेल्फ-हिप्नोसिस तो नहीं है?

खुद को ही कहीं हमने अपने आपमें धोखा देने का उपाय तो नहीं कर लिया है? तो फिर अभी भी मार्ग की शोध पूरी नही हुई। अभी जो भीतर जाना है, जो भीतर ठीक पाया है, वह सब्जेक्टिव है, निजी है। निजी में एक खतरा है। सभी सपने निजी होते हैं। सपने की खूबी उसका निजी होना है। आप अपने निकटतम मित्र के सपने में भी प्रवेश नहीं कर सकते। सपने निजी हैं, प्राइवेट हैं। उनको बाहर लाने का भी कोई उपाय नहीं है। दूसरे के साथ साझेदारी करवाने का भी कोई उपाय नहीं है। तो आप जो भी अनुभव कर रहे हैं—कहीं वह सपना तो नहीं है?

तो उसकी आखिरी कसौटी यही है, कि आपके भीतर जो घट रहा है—अगर शान्ति आपके भीतर घट रही है, तो वह शान्ति आपके आचरण में—बाहर की यात्रा पर जानी शुरू होनी चाहिये। कि आप कहें कि भीतर तो मुझे बड़ी शान्ति आती है और बाहर आप क्रोधी हैं, तो फिर आपकी शान्ति कल्पना होगी। कि आप भीतर कहें—कि भीतर तो मेरे जीवन में बड़ा आनन्द आ रहा है और बाहर के जीवन में वासना भरी हो, तो वह खबर नहीं दे रही; क्योंकि आनन्द से भरे आदमी की वासना नहीं होती, वासना तो दुःख भरे आदमी की ही होती है।

वासना का तो मतलब है, मैं दुःखी हूँ, मुझे सुख चाहिये। मैं आनन्दित हूँ तो मुझे सुख का कोई सवाल नहीं? यह तो ऐसा ही हुआ कि जिसके पास कोहिनूर हीरा है, वह कंकड़-पत्थर मांग रहा है। वह मांगेगा क्यों?

तो आपके भीतर जो घटित हुआ है, सूत्र कहता है: बाह्य जीवन में हिम्मत से आगे बढ़कर मार्ग की शोध करो। जो भीतर जान लिया है, अब बाहर हिम्मत से आगे बढ़ो। बहुत हिम्मत की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि जो भीतर जाना है, अगर उसको आप बाहर लायेंगे, तो बाहर का सारा सम्बन्ध बदलेगा।

एक महिला मेरे पास आई। उसने मुझे कहा कि मैं पढ़ती हूँ, सुनती हूँ आपको और अब ऐसी मेरे भीतर प्रेरणा घनीभूत होने लगी, कि आप जो कहते हैं, वह मैं प्रयोग भी करूं। मैं बहुत बड़े परिवार की महिला हूँ—वह मैं प्रयोग भी करूं, लेकिन एक ही डर है कि इस प्रयोग से कोई ऐसी बुराई और हानि तो नहीं होगी कि मेरे घर, परिवार और दाम्पत्य के जीवन में कोई बाधा पड़ जाये? तो मैंने उससे कहा कि बुराई

तो इससे कुछ भी न होगी, लेकिन अनेक भलाईयां होंगी, और उनसे भी बाधा पड़ेगी यह ख्याल छोड़ देना कि बुराई से बाधा पड़ती है, भलाई से भी बाधा पड़ती है उसने कहा कि मैं समझी नहीं, भलाई से क्यों बाधा पड़ेगी ? तो मैंने कहा कि तू प्रयो करके देख, तब तुझे पता चलेगा कि भलाई से किस तरह बाधा पड़ती है।

अगर आपकी पत्नी दुष्ट प्रकृति की है, झगड़ालू है, तो आप उससे धीरे-धीरे राज हो गये हैं, अडजस्टमेन्ट हो गया है। अगर वह कल ध्यान करने लगे और उसक झगड़ालूपन चला जाये, तो आपका समझिये दूसरा विवाह हुआ, पुनर्विवाह, अब आपक फिर अडजस्ट करना पड़ेगा। फिर से शुरू हुई बात, और आपको फिर से बेचैन होगी। क्योंकि जैसे कि नये मकान में जाने से होती है, नया फर्नीचर घर में लगाने होती है, नई कार खरीद लें, तो ड्रायवर को तकलीफ होती है—नये अडजस्टमेन फिर करने पड़ेंगे। और नयी ही पत्नी होती तो इतनी दिक्कत नहीं होती, क्योंकि आ मानते कि ठीक है, नयी पत्नी है, थोड़ी फिर देर लगेगी, थोड़ी फिर खट-पट होगी फिर अंग जरा घिसेंगे-पिटेंगे, तो मशीनरी फिर ठीक होगी—नयी है। लेकिन पुरान हो और नयी की तरह व्यवहार करने लगे—तो ज्यादा बेचैनी होगी।

फिर हम सबके भीतर व्यवस्था की भी सीढ़ियां हैं। अगर पत्नी दुष्ट है और प शान्त है या पति दुष्ट है और पत्नी शान्त है, तो पत्नी अपने को श्रेष्ठ मानती है अगर वह शान्त है, और पति को मानती है निकृष्ट। अगर पति शान्त हो जाये, त यह स्थिति बदलती है। और पति श्रेष्ठ हो जाये—और दुष्ट पति को सहना आसा है, श्रेष्ठ पति को सहना और भी कठिन है। क्योंकि अहंकार को चोट दुष्ट पति से नह लगती, श्रेष्ठ पति से लगती है। अगर पति शराब पीता है तो उतनी अड़चन नह होती। क्यों ? क्योंकि शराबी पति डरता है, भयभीत होता है और पत्नी को मानता कि देवी है। सब शराबी पति, पत्नी को देवी मानते हैं—ध्यान रखना; नहीं तो को मानने का कारण नहीं है। वह डरा हुआ पति है—कि तू देवी है, तेरी पवित्रता क क्या कहना, हम पापी हैं। लेकिन यह पति शराब छोड़ दे और यह पति ध्या करने लगे, और यह प्रार्थना में लीन होने लगे, तो फिर यह पत्नी और इसके बी जो नाता था सदा का, वह सब अस्त-व्यस्त हो गया। अब पत्नी को इसे देवत मानना पड़ेगा, जो कि बहुत कठिन होगा, बड़ी अड़चन होगी। अचेतन मन पत्नी क कहेगा कि इससे तो तुम पहले ही बेहतर थे—अचेतन मन। ऊपर से वह कहेगी, ब खुशी जाहिर करेगी कि बिलकुल ठीक है, बिलकुल उचित है, कितना अच्छा हो गय है, लेकिन भीतर कष्ट और दंश होगा।

तो मैंने उस महिला से कहा कि तू फिर से सोच कर आ, भलाई से भी बाध पड़ती है, और कभी-कभी तो बुराई से भी ज्यादा बाधा पड़ती है।

इसलिए यह सूत्र कहता है : साहसपूर्वक बाहर के जीवन में प्रयोग करो। वह जो भीतर के अनुभव में आना शुरू हुआ है, उसे बाहर प्रयोग करो—तो सारी व्यवस्था बदलेगी। बाहर का सारा ढांचा जो तुमने गैर-ध्यान की अवस्था में बनाया था, वह काम में नहीं आयेगा—अब तुम्हें सब बदलना पड़ेगा।

मैं एक मकान में रहता था, एक मित्र के परिवार में। मैं थोड़ा हैरान हुआ, वे मित्र न तो अपने बच्चों से बात करते, न कभी अपने नौकर से, न कभी अपनी पत्नी से। वे घर भी आते, तो तेजी से आते। अगर बच्चे सामने खड़े हों तो बिलकुल बिना देखे, सीधी नजर किये मकान में प्रवेश कर जाते। मैं थोड़ा हैरान हुआ। और मुझसे जब मिलते थे तो बड़े प्रेम से मिलते थे—मैं उनका मेहमान ही था। मैंने उनसे कहा कि मैं थोड़ा हैरान हूं कि आप ऐसा कैसे करते हैं? बच्चे खड़े हैं तो आप उनकी तरफ देखते नहीं, नौकर खड़े हैं तो देखते नहीं। तो वह बोले कि बड़ा खतरनाक है, अगर जरा बच्चों की तरफ प्रेम से देखो—वे फौरन पैसा मांगते हैं। अगर नौकर की तरफ प्रेम से देखो—तो वह कहता है तनख्वाह बढ़ाओ। पत्नी की तरफ जरा ही प्रेम से देखो, वह कहती है नई साड़ी बाजार में आ गई है। तो आखिर में मैंने यही तय किया है कि किसी की तरफ प्रेम से देखो ही मत, अकड़े ही रहो। चाहे अकड़ का कोई कारण भी न हो, लेकिन अकड़े रहो। न बच्चे अपनी तरफ आते, न नौकर आते, न पत्नी आती—सब शान्ति से चलते हैं।

अब यह आदमी अगर ध्यान करे तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जायेगी। यह प्रेम पूर्ण हो जाये, यह अकड़ गिर जाये; अकड़ गिर जाये तो यह सारा का सारा जाल जो उसने बना कर रखा है, वह सब उलटा हो जाये। तब बड़ी मुश्किल होगी।

जिंदगी एक व्यवस्था है रोज—और जो आदमी जितना भीतर जाता है, उतनी उसकी व्यवस्था रोज बदलती है। जो जितना मुर्दा होता है, उसकी व्यवस्था स्थिर होती है। जो जितना जीवित होता है, नदी की धार की तरह होता है, उसकी व्यवस्था रोज बदलती है, इसलिए सब अस्त-व्यस्त हो जायेगा।

इसलिए सूत्र कहता है : साहसपूर्वक हिम्मत से आगे बढ़कर बाह्य जीवन में भी मार्ग की शोध करो। जो मनुष्य साधन पथ में प्रविष्ट होना चाहता है, उसको अपने समस्त स्वभाव को बुद्धिमत्ता के साथ उपयोग में लाना चाहिये।

समझना, बहुत गहरा है—जो मनुष्य साधना-पथ में प्रविष्ट होना चाहता है, उसको अपने समस्त स्वभाव को बुद्धिमत्ता के साथ उपयोग में लाना चाहिये—समस्त स्वभाव को! जो भी तुम्हारा स्वभाव है, उसमें से कुछ भी काटने का अर्थ है कि तुम बुद्धिमान नहीं हो। जो भी तुम्हें मिला है निसर्ग से—उसमें से कुछ भी छोड़ने का अर्थ है कि तुम अधूरे रहोगे, पूरे भी न हो पाओगे। अगर तुम्हारे भीतर क्रोध है,

अगर तुम्हारे भीतर काम-वासना है, तुम्हारे भीतर लोभ है—है, वह प्रकृति ने दिया है, उसमें कुछ शर्म की बात नहीं है, उसमें कुछ चिंतित होने की बात नहीं है—वह है, वह प्रकृति ने दिया है।

बुद्धिमान वह आदमी है, जो अपने क्रोध को भी संलग्न कर लेता है साधना में। वह काटता नहीं। जो अपनी काम-वासना को भी साधना में संलग्न कर लेता है, जो उसका भी उपयोग कर लेता है, जो उस विष को भी मोड़ लेता अमृत में—वही आदमी बुद्धिमान है। जो कुछ भी काटके नहीं फेंकता।

जो अपने समस्त निसर्ग स्वभाव को पूरा का पूरा नियोजित कर लेता है साधना पथ में, वही आदमी पूर्णता को उपलब्ध होगा।

अगर तुमने कुछ भी काटा, तो उतना हिस्सा तुम्हारा सदा के लिए कटा रह जायेगा। इसलिए काटना मत। क्रोध ही तो करुणा बनती है। अगर तुमने क्रोध काट दिया तो तुम करुणा से सदा वंचित रह जाओगे। काम ही तो ब्रह्मचर्य बनता है—अगर तुमने काम को बिलकुल दरवाजे बन्द करके रोक दिया, तो तुम कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न हो पाओगे। ये बड़ी जटिल बातें हैं और बड़ी मुश्किल मे डालती हैं। क्योंकि हम सोचते हैं, ब्रह्मचर्य का अर्थ है, काम को काट डालो, जला डालो, भस्म कर दो—तब ब्रह्मचर्य उपलब्ध होगा। कभी ऐसा ब्रह्मचर्य न उपलब्ध हुआ है, न हो सकता है। क्योंकि काम की ऊर्जा ही तो ब्रह्मचर्य बनेगी।

नपुंसकता का नाम अगर ब्रह्मचर्य होता, तो काम को बिलकुल काट देने से ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो जाता। तब तो साधना की जरूरत ही नहीं है, फिर छोटे-मोटे ऑपरेशन ही इस काम को कर देंगे। तब तो डाक्टर को जाकर कहना चाहिये कि मेरे काम-संस्थान को काट डालो बिल्कुल, लेकिन तब जो आदमी आप होंगे—वह ब्रह्मचर्य नहीं होगा।

वह फर्क देख ले एक बैल में और सांड़ में। वही हालत हो जायेगी। बैल को जोता जा सकता है, इसलिए क्योंकि अब वह नपुंसक है। सांड़ को जोता नहीं जा सकता, क्योंकि काम-ऊर्जा बलवती है। लेकिन सांड़ में जीवन है, सौंदर्य है। और बैल निश्चिन्त है, न कोई सौन्दर्य है, न कोई जीवन है। तुम्हारे तथा-कथित साधु-संन्यासी बैलों की हालत में हैं। काटके तो यही होगा, नष्ट करके तो यही होगा।

रूपान्तरण चाहिये—ऊर्जा नष्ट नहीं करनी है, ऊर्ध्वगामी बनानी है, ऊपर की ओर ले जानी है। वह जो नीचे की ओर प्रवाह है वासना का, वह ऊपर की तरफ हो जाये। लेकिन शक्ति तो वही होगी। तो जो कामवासना से लड़ेगा, वह कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होगा—वह सदा ही काम-वासना से ग्रस्त रहेगा और उसका एक अंग सदा ही बोझ की तरह अटका रह जायेगा। उसके जीवन में प्रफुल्लता नहीं होगी, भय होगा। और जहां भय है, वहां फूल कभी खिलता नहीं। फूल तो प्रफुल्लता चाहता है।

सब कुछ स्वीकार हो, तभी फूल खिलता है।

और जब पूरे जीवन का फूल खिलता है, तो उसमें तुम्हारी काम-ऊर्जा ब्रह्मचर्य बन गई होती है, तुम्हारा क्रोध करुणा बन गया होता है, तुम्हारी कठोरता दया बन गई होती है, तुम्हारी घृणा ही प्रेम बन गई होती है। घृणा और प्रेम में जो फर्क है, वह दिशा का फर्क है—शक्ति एक है।

यह सूत्र कहता है, कि बुद्धिमत्ता इस बात में है कि तुम अपने स्वभाव की समस्त शक्तियों का उपयोग कर लेना।

प्रत्येक मनुष्य पूर्ण-रूपेण स्वयं अपना मार्ग है, अपना सत्य और अपना जीवन है।

तुम्हारे भीतर ही छिपा है मार्ग, सत्य, जीवन—तुम पूरे हो।

लेकिन तुम्हारे जीवन में स्वर तो सब मौजूद हैं, संगीत नहीं है, स्वरों को बिठाना है, बस उतनी ही साधना है। जैसे कि वीणा पड़ी हो, सब तार पड़े हों, लेकिन तारों को बांधना है, कसना है। तारों को तौलना है एक संतुलन में, वीणा तैयार हो जायेगी।

प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है—अव्यवस्थित।

जैसे छोटे बच्चों की पहेलियां होती हैं—लकड़ी के टुकड़े, उनको जमाओ तो एक सुन्दर मूर्ति बन जाये, एक महल बन जाये, कि एक नाव बन जाये। लेकिन जब टुकड़े अस्त-व्यस्त कर देते हैं, तो बच्चे उनको जमाते रहते हैं। सब मौजूद है, नाव पूरी मौजूद है, मूर्ति पूरी मौजूद है—लेकिन टुकड़े हैं अलग-अलग, और टुकड़ों को जमाना है, और टुकड़ों को ऐसी व्यवस्था में लाना है कि वह जो अराजकता थी, वह विलीन हो जाये और आकार निर्मित हो जाये।

हर आदमी एक पहेली है, जब तक जमा नहीं है।

जिस दिन जम गया—पहेली विसर्जित हो जाती है और परमात्मा प्रकट हो जाता है।

और इस प्रकार उस मार्ग को ढूंढो। उस मार्ग को जीवन और अस्तित्व के नियमों, प्रकृति के नियमों एवं परा प्राकृतिक नियमों के अध्ययन द्वारा ढूंढो। ज्यों-ज्यों तुम उसकी उपासना और उसका निरीक्षण करते जाओगे, उसका प्रकाश स्थिर गति से बढ़ता जायेगा। तब तुम्हें पता चलेगा कि तुमने मार्ग का प्रारम्भिक छोर पा लिया। और जब तुम मार्ग का अन्तिम छोर पा लोगे, तो उसका प्रकाश एकाएक अनन्त प्रकाश का रूप धारण कर लेगा। ...उस भीतर के दृश्य से न तो भयभीत होना, न आश्चर्य करना। उस धीमे प्रकाश पर अपनी दृष्टि रखो, तब वह प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ेगा। लेकिन अपने भीतर के अन्धकार से सहायता लो। अन्धकार से भी सहायता लो और समझो कि जिन्होंने प्रकाश देखा ही नहीं है, वे कितने असहाय हैं और उनकी आत्मा कितने गहन अन्धकार में है।

अगर अपना पथ खोजा जाये, अपने पथ को अनुभव में उतारा जाये, अपने

अनुभव को आचरण में लाया जाये, तो तुम्हारे भीतर वह प्रकाश की किरण पैदा हो जायेगी। वह दीया जल जायेगा, जो फिर और आगे महा-प्रकाश बन जाता है।

लेकिन बैठे-बैठे यह न होगा। बिना कुछ किये यह न होगा। और यात्रा की शुरूआत से ही शुरूआत करनी उचित है। उधार मार्ग से मत चलना, क्योंकि पहला कदम गलत पड़ जाये, तो अन्तिम कदम सही नहीं पड़ सकता। और जो पहले कदम पर ही भूल जाये, उसके पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए पहले कदम को बहुत ध्यान से रखना। क्योंकि पहला कदम आधी मंजिल है। अगर पहला बिलकुल ठीक पड़ा, तो मंजिल बहुत दूर नहीं है, क्योंकि पहला कदम ही मंजिल की शुरूआत है, उसी में मंजिल से तुम जुड़ गये। थोड़ी देर लगेगी, लेकिन यात्रा शुरू हो गई।

पर हम पहले कदम के सम्बन्ध में बहुत गाफिल हैं और अन्तिम मंजिल के सम्बन्ध में बहुत उत्सुक हैं। आनन्द मिले, परमात्मा मिले, मोक्ष मिले—बड़ी उत्सुकता है। लेकिन वह पहला कदम हम गलत न रख लें—वहां हमारी उत्सुकता बिलकुल नहीं है। वहां हम बिलकुल जड़ता से मजबूत हैं कि पहला कदम तो हमारे पास है ही, रास्ता हमारे पास है, सब मार्ग साफ है—सिर्फ अन्तिम मंजिल की बात है।

शोध मार्ग की करो। अनुभव से परीक्षण करो। आचरण से जांचो कि जो जाना है, वह स्वप्न तो नहीं है। फिर मंजिल बहुत दूर नहीं है।

मंजिल सदा पास है—ठीक पहले कदम की जरूरत है।

मार्ग की प्राप्ति

प्रवचन : ८ अप्रैल १०, १९७२, सुबह
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

भयंकर आंधी के पश्चात् जो निस्तब्धता छा जाती है, उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो, उससे पहले नहीं।

जब तक आंधी चलती रहेगी, जब तक युद्ध जारी रहेगा, तब तक वह उगेगा, बढ़ेगा, उसमें शाखाएं और कलियां फूटेंगी। परंतु जब तक मनुष्य का संपूर्ण देहभाव विघटित होकर घुल न जायगा, जब तक समस्त आतंरिक प्रकृति अपने उच्चात्मा से पूर्ण हार मानकर उसके अधिकार में न आ जाएगी, तब तक फूल नहीं खिल सकता।

...तब एक ऐसी शांति का उदय होगा, जैसी गरम प्रदेश में भारी वर्षा के पश्चात् छा जाती है...और उस गहन और नीरव शांति में वह रहस्यपूर्ण घटना घटित होगी, जो सिद्ध कर देगी कि मार्ग की प्राप्ति हो गयी है।

टिप्पणी : फूल खिलने का क्षण बड़े महत्त्व का है, यह वह क्षण है जब ग्रहणशक्ति जागृत होती है। इस जागृति के साथ-साथ विश्वास, बोध और निश्चय भी प्राप्त होते हैं।

...जब शिष्य सीखने के योग्य हो जाता है, तो वह स्वीकृत हो जाता है, शिष्य मान लिया जाता है और गुरुदेव उसे ग्रहण कर लेते हैं। ऐसा होना अवश्यंभावी है, क्योंकि उसने अपना दीप जला लिया है और दीपक की यह ज्योति छिपी नहीं रह सकती।

...ऊपर लिखे गये नियम उन नियमों में से आरम्भ के हैं, जो नियम परम-प्रज्ञा के मंदिर की दीवारों पर लिखे हैं।

जो मांगेंगे, उन्हे मिलेगा, जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे; जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे।

तुम्हें शान्ति प्राप्त हो।

पूछते हैं लोग कि यदि परमात्मा सभी का स्वभाव है तो संसार की जरूरत क्या है? और आत्मा अगर सभी को मिली ही हुई है तो इस अज्ञान में पड़ जाने का कारण क्या है? क्या है प्रयोजन इतने उलझाव का? अगर भीतर सब सहज और सत्य ही है, तो बाहर इतना उपद्रव क्यों है? और अगर हम उसे पा ही लेंगे, जो हमें मिला ही हुआ है, तो यह बीच का इतना भटकाव, यह बीच की इतनी यात्रा —सार्थक नहीं मालूम होती।

अगर ब्रह्म ही सबका स्वभाव है, स्वरूप है—तो संसार क्यों है? और इस प्रश्न का उत्तर देने के बहुत प्रयास किये गये है, लेकिन सभी प्रयास करीब-करीब असफल हैं। क्योंकि किसी भी भांति समझाने की कोशिश की जाये, मूल प्रश्न अछूता रह जाता है। कोई कहता है कि तुम्हारे पिछले जन्मों के कारण तुम भटक रहे हो, लेकिन यह उत्तर बहुत बचकाना है। क्योंकि पिछले जन्मों के कारण यह जीवन भटकाव हो सकता है, लेकिन पहला जीवन किस कारण भटका होगा? तो कुछ हैं, जो इस उत्तर में जो भूल है, उससे बचने के लिए कहते हैं कि पहला कोई जन्म ही नहीं है, तुम अनन्त से भटक रहे हो।

जैनों की दृष्टि यही है कि तुम अनन्त से भटक रहे हो, अनादि से! लेकिन तब भी बात वहीं की वहीं खड़ी रह जाती है, आत्मा क्यों अनादि से भटक रही है? आत्मा क्यों निगोद में पड़ती है? कारण क्या है अनादि से भटकने का? अगर कहो कि अकारण भटक रही है, तो फिर मोक्ष का कोई उपाय नहीं है। अगर अकारण भटक रही है, तो किसी कारण को काट के आप मुक्ति पायेंगे? अगर कोई कारण ही नहीं है, भटकाव का, तो छुटकारे का कोई उपाय ही नहीं है। अगर कोई कारण है भटकाव का, तो कारण को तोड़ा जा सकता है, तो छुट्टी है, स्वतंत्रता है, मुक्ति हो सकती है।

कुछ हैं, जो कहते हैं, परमात्मा की लीला है। लेकिन लीला बड़ी कठोर मालूम पड़ती है, और लीला बहुत बेहूदा मजाक मालूम पड़ती है। ऐसी कैसी लीला है कि आदमी व्यर्थ, अकारण जन्मों-जन्मों तक कष्ट पाये? ऐसा परमात्मा 'सेडिस्ट' मालूम पड़ता है, उसे सताने में कुछ रस होगा; अन्यथा इतने-इतने जीव को इतनी-इतनी आत्माओं को इतने लम्बे भटकाव और सताने की यात्रा पर फिर भेजने का प्रयोजन क्या है? और फिर अगर वह सर्व-शक्तिशाली है तो ऐसे ही मुक्ति दे सकता है—इतना लम्बा और इतने दुःख का मार्ग—जरूर उसे रस आता होगा कि लोग पीड़ित और परेशान हो। यह लीला तो ऐसी ही हुई जैसे कि छोटे बच्चे मेंढक को पकड़कर सता रहे हों। तो आदमी की गर्दन को इस तरह पकड़कर सताने का प्रयोजन क्या है?

कुछ हैं, जो कहते हैं कि यह सब जो दिखाई पड़ रहा है, स्वप्नवत् है, माया है। लेकिन वे जो कहते हैं, कि माया है, वे भी इससे छूटने का बड़ा उपाय करते हैं! अगर यह सच में ही स्वप्नवत् है, तो छूटने की जरूरत क्या है? जो स्वप्नवत् ही है, उससे छूटने का प्रयोजन क्या है? उससे डर क्या है? लेकिन वे जो माया कहते हैं, वे भी ससार से भागते हैं! जरूर उनको भी यह यथार्थ मालूम होता है, नहीं तो भागेंगे नहीं। जो है ही नहीं, उससे भागकर जाइयेगा कहां? उससे भागने का अर्थ क्या है? और अगर संसार माया है, तो त्याग व्यर्थ है। क्योंकि त्याग करियेगा क्या? झूठ का भी कोई त्याग हो सकता है, स्वप्न का भी कोई त्याग हो सकता है, जो है ही नहीं, उसका त्याग क्या करियेगा?

अगर ससार माया है तो संन्यास व्यर्थ है, क्योंकि फिर क्या अर्थ रहा। ससार वास्तविक हो, तो ही संन्यास का कोई मूल्य है। और अगर ससार माया है, तो मोक्ष भी माया हो गया। क्योंकि जब बधन ही माया है, तो मुक्ति कैसे सार्थक और सच्ची होगी। अगर मेरा जेलखाना भी झूठ है, तो मेरा छुटकारा कैसे सच होगा। क्योंकि छुटकारा तो जेलखाने के सच होने पर ही निर्भर है। अगर जेलखाना झूठ है, तो मेरी मुक्ति भी झूठ होगी।

ऐसे बहुत-बहुत उत्तर दिये गये हैं, लेकिन कोई उत्तर छूता नहीं है और हर उत्तर के साथ अड़चन हो जाती है। और हर उत्तर कहीं बुनियाद में लगता है कि समझाने का उपाय है, सत्य नहीं है। और यही बात है।

यह सूत्र एक उत्तर देता है, जो मेरी दृष्टि से सर्वाधिक सत्य के करीब पहुंचता है। यह सूत्र एक वैज्ञानिक उत्तर देता है, दार्शनिक नहीं।

यह सूत्र यह कहता है कि जीवन की सारी अनुभूतियां विपरीत पर निर्भर हैं।

यह सूत्र किसी ईश्वर को बीच में नहीं लाता, किसी माया को बीच में लाता, किसी दार्शनिक सिद्धान्त की आड़ नही लेता।

यह सूत्र कहता है कि जीवन के सभी अनुभव विपरीत पर निर्भर हैं। अगर शान्ति का अनुभव चाहिये तो अशान्ति से गुजरना वैज्ञानिक रूप से जरूरी है, नहीं तो शान्ति की कोई प्रतीति न होगी। आप शान्त भी हो सकते हैं, तो भी आपको शान्ति की प्रतीति तभी होगी, जब आप अशान्ति से गुजर जायेंगे। अगर आपने जीवन में अशान्ति नहीं जानी, तो आप शान्ति को कैसे जानियेगा। कोई उपाय जानने का नहीं है।

अशान्ति की पृष्ठभूमि चाहिये, तो शान्ति उभरती है। अगर जीवन का अनुभव लेना है तो मृत्यु अनिवार्य है। किसी परमात्मा की लीला के कारण नहीं। मृत्यु इसलिए अनिवार्य है कि जीवन उभर ही नहीं सकता, मृत्यु की भूमि के बिना। वह मृत्यु जो है, भूमि है। और जीवन अंकुरित होता है, मृत्यु की भूमि में। मृत्यु जीवन को नष्ट करने वाली नहीं है, जीवन को जन्म देने वाली है। वह जो विपरीत है, उसके बिना कोई भी अनुभव नहीं हो सकता। अगर शब्द न हो, तो मौन का कैसे अनुभव करियेगा?

यह सूत्र कहता है कि अगर संसार न हो, तो परमात्मा का कोई अनुभव नहीं हो सकता। तो संसार कोई लीला नहीं है, परमात्मा के अनुभव की प्रक्रिया है। और अनिवार्य प्रक्रिया है। आप परमात्मा में भी हो सकते हैं। आप थे, अभी भी हैं; आप कभी परमात्मा के बाहर नहीं हो सकते। लेकिन संसार में फिंकना जरूरी है, ताकि आपको यह पता चल सके कि आप परमात्मा में हैं।

इसे ऐसा समझिये कि आप एक मछली हैं सागर की, एक बार आपको सागर से निकालकर तट पर फेंका जाना जरूरी है, तभी आपको सागर का पता चलेगा। आप सागर में ही हैं, सागर में ही पैदा हुए हैं—मछली हैं। सागर के बाहर कभी झांका नहीं, बाहर कभी गये नहीं—आपको सागर का कोई पता न चलेगा। सागर इतना निकट होगा, इतना जुड़ा होगा आपसे कि एक श्वास भी उसके बिना नहीं ली है, तो उसका पता नहीं चलेगा। सागर का पता—उलटा सुनाई पड़ता है, समझ में आता है। लेकिन जब मछली पहली दफा रेत के किनारे पर पड़ती है, तभी पता चलता है कि सागर है। वह जो तड़पन मालूम होती है रेत के किनारे पर, वह जो सागर से छूटने की पीड़ा है, वही फिर सागर से मिलने का रस बनती है। और जो मछली एक बार मछुए के जाल में फंसकर बाहर आ गई, दुबारा सागर में आती है—वह वही मछली नहीं है, जो सागर में पहले थी। अब सागर एक आनन्द है। अब उसे पता है कि वह सागर उसका जीवन है। अब उसे पता है कि यह सागर कैसा रहस्य है। अब उसे पता है कि यह सागर क्या है? इसकी अर्थवत्ता अब उसके अनुभव में है।

तो परमात्मा कोई दुःखवादी नहीं है, कि आपको सता रहा है। परमात्मा कुछ कर ही नहीं रहा है।

लेकिन जीवन की अनिवार्यता यह है, जीवन का नियम यह है, कि विपरीत से गुजरे बिना कोई अनुभव नहीं होता।

मोक्ष और संसार एक दूसरे के विपरीत हैं। मोक्ष की अनुभूति संसार से गुजरके होती है। आप वहीं पहुंचते हैं, जहाँ आप थे, लेकिन आप भिन्न होकर पहुंचते हैं। आप वही पाते हैं, जो मिला ही हुआ था, लेकिन खोकर पाते हैं। और वह जो खोना है बीच में, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके बिना कोई अनुभूति नहीं हो सकती।

इसलिए संसार प्रशिक्षण है और अनिवार्य प्रशिक्षण है।

और यह वैसा ही नियम है, जैसे कि वैज्ञानिक नियम होते हैं। वैज्ञानिक कहता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बनता है। और हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन का एक अणु मिल जायें, तो पानी निर्मित हो जाता है। आप उससे पूछें—लेकिन ऐसा क्यों? तीन हाइड्रोजन के अणु हों और एक आक्सीजन का हो तो पानी क्यों नहीं बनता? तो वैज्ञानिक कहेगा, क्यों का कोई सवाल नहीं—हम उतना ही कहते हैं, जो होता है। बस ऐसा होता है कि दो हाइड्रोजन और एक आक्सीजन का अणु मिलके पानी बनाते हैं। क्यों का कोई सवाल नहीं है, ऐसा है।

विज्ञान 'क्यों' का उत्तर नहीं देता, 'क्या' का उत्तर देता है।

वह यह नहीं कहता कि ऐसा क्यों है, इतना ही कहता है कि ऐसा है। इसलिए विज्ञान तथ्य से कभी नहीं हटता। और दर्शन अक्सर 'क्यों' के उत्तर में विलीन हो जाता है। क्यों!

ये सूत्र बड़े वैज्ञानिक हैं और इन सूत्रों की पकड़ 'क्या' पर है, 'क्यों' पर नहीं है। यह सूत्र यह नहीं कहता कि ऐसा क्यों है। यह सूत्र यह कहता है, ऐसा है।

विपरीत के अनुभव के बिना कोई अनुभव नहीं होता।

इसको ख्याल में लें और विपरीत के इस महान नियम को ठीक से समझ लें, तो आपके जीवन की पूरी दृष्टि बदल जायेगी। और तब आप दुःख में भी सुखी हो सकेंगे क्योंकि आप जानते हैं, दुःख के बिना कोई सुख की प्रतीति नहीं हो सकती। और आप अशान्ति में भी शान्त हो सकेंगे, क्योंकि तब आप जानते हैं कि अशान्ति, शान्ति का प्रशिक्षण है। और तब आप मृत्यु को भी आनन्द से स्वीकार कर सकेंगे, क्योंकि तब आप जानते हैं कि जीवन का फूल मृत्यु की भूमि में ही खिलता है। तब आप अवसाद को भी झेल लेंगे—धन्यवाद से; क्योंकि उसके बिना कोई अहोभाग्य नहीं है। तब आप अपमान को भी स्वीकार कर लेंगे हंसते हुए, क्योंकि आप जानते हैं कि सम्मान का भी वही द्वार है। तब आप अज्ञान से भागेंगे नहीं, घबड़ायेंगे नहीं, बल्कि अज्ञान में पूरी आंख खोल के खड़े हो जायेंगे, क्योंकि अज्ञान में आंख खोल के खड़े हो जाना ही ज्ञान के मन्दिर में प्रवेश है, कुंजी है। तब जीवन की विपरीतता

से आप विक्षुब्ध न होंगे। तब जीवन की सारी विपरीतता भी आपको किसी सार्थक अन्त की ओर ले जाती हुई मालूम पड़ेगी।

कुछ भी व्यर्थ नहीं है। कुछ भी व्यर्थ नहीं हो सकता है। आपको भले ही सार्थकता का पता न हो, यह बात दूसरी है; लेकिन जो भी है, उसकी सार्थकता है। और उसकी सार्थकता यही है कि वह अपने से विपरीत की तरफ ले जाता है।

अब हम इस सूत्र को समझें।

भयंकर आंधी के पश्चात् जो निस्तब्धता छा जाती है, उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो, उससे पहले नहीं।

आंधी जरूरी है निस्तब्धता के लिए। और जो चाहता है कि आंधी न हो, सिर्फ निस्तब्धता हो, उसकी निस्तब्धता मृत होगी, उसमें कोई जीवन न होगा।

यह बड़े मजे की बात है, कि निस्तब्धता का जीवन भी आंधी में है। निस्तब्धता अपने आप में व्यर्थ है, जब तक उसके चारों ओर आंधी न हो। आंधी ही प्राण डालती है, आंधी ही निस्तब्धता को सजीव करती है, आंधी ही निस्तब्धता में आनन्द उपस्थित करती है। आंधी—जो विपरीत मालूम पड़ती है, अगर आपने बोध-पूर्वक आंधी को अनुभव किया है, तो आंधी के बाद जो निस्तब्धता आती है, उसकी कोई तुलना नहीं है। लेकिन यह भी हो सकता है कि आप आंधी से इतने परेशान हो जायें, कि वह जो निस्तब्धता आती है; चूक ही जायें, आपको पता ही न चले। आप आंधी से इतने परेशान हो सकते हैं कि जब निस्तब्धता आये, तब भी आप परेशान बने रहें। वह आंधी का सिलसिला जारी रहे और आप चूक ही जायें।

दुःख के बाद जो सुख की ताजी अनुभूति होती है, वह आप चूक जाते हैं। बीमारी के बाद जो स्वास्थ्य की हवा बहती है, वह आपके ख्याल में नहीं आ पाती। आप पुरानी बीमारी से ही, जो जा चुकी है, उससे इतने आच्छन्न होते हैं, कि वह जो अब घट रहा है, वह चूक जाता है। दुःख के बाद सुख का जो स्वाद है, वह किसी और तरह नहीं मिलता। लेकिन हम दुःख से ऐसे भर जाते हैं, और दुःख से इतने परेशान हो जाते हैं, कि दुःख जब जा चुका होता है, तब भी हम उसी की चिन्ता में लीन होते हैं। और वह जो बारीक क्षण है, दुःख के बाद का—जबकि सुख का स्वाद मिल सकता था, जबकि सुख के स्वर्ग का द्वार क्षण भर को खुलता है—वह हम चूक ही जाते हैं। हमारी आंखें पुराने दुःख में ही उलझी रहती हैं।

हर घटना के पीछे, उससे विपरीत क्षण आता है। हर घटना के पीछे, उससे विपरीत मौजूद रहता है, क्योंकि इस जगत में बिना विपरीत के कुछ भी नहीं है। इसकी प्रतीक्षा करना। जब दुःख तुम्हें घेर ले, तो तुम दुःख से बहुत उद्विग्न मत हो जाना। दुःखी होना, लेकिन उद्विग्न मत होना। उद्विग्नता का अर्थ समझ लेना।

दुःख काफी दुःख है, हम दुःख से तो दुःखी होते ही हैं, फिर दुःख के कारण दुःखी होते हैं। ये दोनों भिन्न बातें हैं। दुःख से दुःखी होना शुद्ध है। फिर हम इसलिए दुःखी होते हैं कि हम क्यों दुःखी हुए! कि जगत में दुःख क्यों है, हम इससे दुःखी होते हैं! कि दुःख नहीं होना चाहिए, इससे दुःखी होते हैं! यह दूसरा दुःख दार्शनिक है और खतरनाक है। इस दूसरे दुःख से बचना, यह सत्य नहीं है। क्योंकि यह दूसरा दुःख पहले वाले दुःख के पीछे जो सुख की किरण आती है, उसको डुबा लेगा।

अब यह बड़े मजे का मामला है कि आदमी कैसे उलझता है?

आप परेशान हैं—कुछ बुरा नहीं है। लेकिन फिर परेशानी से परेशान हैं, वह बहुत बुरा है। आप अशान्त हैं, कुछ बुरा नहीं है, शिक्षण का हिस्सा है। फिर आप अशान्ति से अशान्त हैं, तब आप खतरे में पड़ गये, तब आप एक ऐसे चक्कर में पड़ गये हैं, जिसका कोई अन्त नहीं है। वह अन्तहीन है। इसलिए कहता हूँ कि अन्तहीन है, कि अब आप कितने ही अशान्त हो सकते हैं और इस अशान्ति से शान्ति का कभी भी कोई अनुभव नहीं होगा।

समझिये ऐसा, कि अशान्त हूँ, फिर इसलिए अशान्त हूँ कि क्यों अशान्त हूँ। मैं और भी अशान्त हो सकता हूँ कि अब मैं क्यों अशान्त हूँ। जैसा मैंने कहा कि अशान्ति से अशान्त मत होइये। आप पुराना तो जारी रख सकते हैं, मेरी शिक्षा और जोड़ ले सकते हैं। आप अशान्त हो रहे हैं, फिर उससे अशान्त हो रहे हैं, अपनी आदत की वजह से; फिर मुझे सुन लिया, अब आप तीसरी अशान्ति पैदा कर रहे हैं कि अशान्ति से अशान्त नहीं होना चाहिये—अब यह तीसरी अशान्ति है, यह इन्‌फिनिट है, अब आप इसमें जा सकते हैं अन्तहीन और कोई सुख का, शान्ति का क्षण इसमें से न आयेगा।

वास्तविक अशान्ति के पीछे शान्ति का क्षण है। काल्पनिक अशान्ति के पीछे कोई शान्ति का क्षण नहीं है, क्योंकि कल्पना तथ्य नही है, उस पर जगत के नियम लागू नहीं होते; वह आपके मन का ही खेल है। इसलिए ध्यान रखना, वास्तविक दुःख बुरा नहीं है, काल्पनिक सुख भी बुरा है, क्योंकि आप अपने मे घूम रहे हैं। वास्तविक दुःख की एक मौज है, क्योंकि उसके पीछे वास्तविक सुख का क्षण आयेगा ही; अनिवार्य है, इससे अन्यथा नहीं हो सकता। मगर आप अगर दूसरे-तीसरे दुःख में पड़ गये, झूठे दुःख में पड़ गये, दुःख के कारण आपने और नये मानसिक दुःख खड़े कर लिए, तो उनमें आप इतने ज्यादा डूब जायेंगे, इतने बादलों से घिर जायेंगे, कि वह जो किरण सुख की पैदा होती है, जो होती ही है—उससे आप चूक जायेंगे। अंधेरी रात के बाद सुबह है। लेकिन रात से अगर आप इतने भयभीत, और अंधेरे से इतने पीड़ित

हो गये हों, कि आंख ही बन्द करके बैठे रहें, कि अंधेरा इतना ज्यादा है कि क्या फायदा आँख खोलने का, तो आप सुबह को चूक जायेंगे, जोकि रात के बाद है।

निस्तब्धता के अनुभव में आंधी की पृष्ठभूमि है।

भयंकर आंधी के पश्चात् जो निस्तब्धता छा जाती है, उसी में फूल खिलने की प्रतीक्षा करो, उसके पहले नहीं।

हम दो तरह की शान्ति उपलब्ध कर सकते हैं। एक जो आंधी के बाद सहज फलित होती है। दूसरी, जो चेष्टा से आंधी के बिना आरोपित होती है।

मुझसे लोग निरन्तर पूछते हैं, कि आप जैसा ध्यान हमने कभी नहीं देखा! लोग ध्यान करते हैं, तो आंखें बन्द करके, पद्मासन में शान्त होके बैठते हैं। ये कैसा ध्यान है कि लोग नाचते हैं, कूदते हैं, पागल हो जाते हैं? मैं उनको कहता हूँ कि यह निस्तब्धता आंधी के बाद की है। और वे जो पलथी मार के, आंख बन्द करके बैठ गये हैं—वे आंधी से बच रहे हैं। और आंधी के बिना कोई निस्तब्धता का अनुभव नहीं है। और वे जो आंधी से बच रहे हैं, वे अगर निस्तब्धता का अनुभव भी कर लेंगे, तो वह निस्तब्धता थोथी है, कोरी है, निर्जीव है—ऊपर-ऊपर होगी। उनके भीतर तो आंधी उबलती ही रहेगी। आंधी को निकाल डालो, आंधी में कूद पड़ो, आंधी बन जाओ; घबराहट क्या है? आंधी को जी लो, आंधी चली जायेगी, उसके पीछे एक क्षण होगा। उस क्षण में हम जाग जायें, तो वह द्वार खुल जायेगा, जो शाश्वत का है।

तो शान्ति दो तरह की हो सकती है।

कल्टीवेटेड, आरोपित—आप बैठ सकते है पत्थर की मूर्ति की तरह, अभ्यास कर सकते हैं।

ध्यान रहे, आप बुद्ध को बैठे देखते हैं बोधि वृक्ष के नीचे। लेकिन आपको पता नहीं कि इससे पहले छः साल की भयंकर आंधी हैं। उसका कोई चित्र हमारे पास नहीं है, क्योंकि नासमझों ने मूर्तियां बनायी हैं। नहीं तो पहली मूर्ति वह होनी चाहिये, जो बुद्ध की आंधी का क्षण है। छः साल तक भयंकर आंधी में बुद्ध जिये हैं—वह हम बात ही छोड़ दिये हैं! बस हमने पकड़ ली है मूर्ति, आखिरी क्षण में—जब बुद्ध शान्त हो गये हैं। हम क्या करेंगे?

हम शुरू से ही बुद्ध की तरह एक वृक्ष के नीचे बैठ जायेंगे!

हमारा बुद्धत्व बिलकुल झूठा और नकली है, सफेद वाला है; वह असली नहीं हो सकता। क्योंकि उसका असली क्षण, कीमती क्षण, उसका प्रारम्भिक हिस्सा मौजूद ही नहीं है। जिसके पीछे यह बुद्ध का जन्म हुआ है, इस बोधि वृक्ष के नीचे, यह जो शान्त चेतना जन्मी है, यह जो निष्कम्प दिये की लौ है; यह जो मौन है, महा-मौन

है, वह जो प्रकाश का महा-अवतरण है—इसके पहले की आंधी कहां है? वह छः साल जो विक्षिप्त की तरह बुद्ध का भटकना है, एक-एक द्वार दरवाजे को ठोकना है। एक-एक गुरु के चरण में सिर रखना है, अनेक-अनेक मार्गों का उपाय करना है, सब तरह का विषाद, सब तरह का सन्ताप झेलना है—वह कहां है? आप बैठ गये सीधे ही बोधि वृक्ष के नीचे—कुछ भी नहीं होगा। आप थोथे बुद्ध हैं। आप बैठ भी सकते हैं, अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? आप अभ्यास कर सकते हैं बैठने का, और बिलकुल शान्त बैठ सकते हैं, लेकिन भीतर—भीतर कोई शान्ति न होगी।

यह भी हो सकता है, कि भीतर भी आप इतना अभ्यास करें, तो एक तरह की निद्रा घटित हो जायेगी, जो शान्ति नहीं है। एक तरह का आत्म-सम्मोहन हो जायेगा, आटो-हिप्नोटाइज्ड हो जायेंगे; लेकिन नींद में खो जायेंगे। वह नींद सुखद भी हो सकती है, क्योंकि विश्राम तो मिलेगा ही, लेकिन वह आध्यात्मिक शान्ति नहीं है। उस निद्रा में कोई जीवन नहीं है। वह केवल विश्राम है, और वह भी आरोपित है, अभ्यास-जन्य है। वह स्फुरणा नहीं, भीतर से आई हुई शान्ति नहीं, बाहर से थोपी हुई शान्ति है। ऐसी झूठी शान्ति हम पैदा कर ले सकते हैं। लेकिन तब हमारे जीवन में कोई आनन्द न होगा, तब हमारे जीवन में कोई नृत्य न होगा, कोई सौंदर्य न होगा। तब हमारे जीवन में वह ताजगी न होगी, जो सुबह की ओस में होती है, और हमारे जीवन में वह मौन न होगा, जो रात के तारों में होता है। और हमारी आंखों में वैसे फूल न खिलेंगे, जैसे वृक्ष में तत्पर खिल जाते हैं—वह नहीं होगा।

हम एक जड़वत् हो जायेंगे, पत्थर की मूर्ति जैसे हो जायेंगे, हिलेंगे-डुलेंगे नहीं, अशान्त भी नहीं होंगे, लेकिन शान्त भी नहीं होंगे।

ध्यान रहे, इस जीवन की अनिवार्य प्रक्रिया में से कुछ भी छोड़ा नहीं जा सकता। जीवन के अनुभव में आप कुछ भी छोड़ के नहीं निकल सकते। और जो अनुभव आप छोड़ देंगे, वह अनुभव आपको लौट के करना ही पड़ेगा। यहां कोई शार्ट-कट, कोई छोटे रास्ते नहीं हैं, जिनसे आप कुछ चीजें छोड़ के आगे निकल जायें। आंधी को छोड़ेंगे, तो वह जो निस्तब्धता आंधी के बाद आती है, वह आपको कभी भी उपलब्ध न होगी।

यह सूत्र कहता है ..उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो, उससे पहले नहीं। क्योंकि उससे पहले अगर कोई फूल तुमने खिला भी लिया, तो वह कागज का होगा—वह आत्मा का नहीं होगा, यथार्थ नहीं होगा। तुम खिला भी सकते हो कोई फूल—कागज का मिल सकता है, बाजार में उपलब्ध है। अब तो प्लास्टिक के उपलब्ध हैं, और भी ज्यादा टिकेंगे। एक दफा खरीद लिया तो सदा के लिए हो गया। शास्त्रों से जो फूल मिल जाते हैं, वे कागजी हैं—उनको तुम चिपका भी सकते हो अपनी छाती

पर, और किसी वृक्ष के नीचे बुद्ध बनकर बैठ भी सकते हो। लेकिन तुम्हारे भीतर कोई फूल नहीं खिला है। वह फूल खिलता ही नहीं आंधी के बिना। आंधी ही, अन्धड़ ही उस फूल को जन्माता है। अन्धड़ की शक्ति में ही उस फूल की ऊर्जा आती है। और जब अन्धड़ चला जाता है, आंधी चली जाती है, तो आंधी से पैदा हुई ऊर्जा शेष रह जाती है— वही ऊर्जा असली फूल बनती है।

तो जल्दी मत करना, और तूफान से बचना मत, संसार से भागना मत—तो ही मोक्ष का वास्तविक फूल खिल सकेगा।

यह उलटा मालूम पड़ता है। इसलिए मेरी शिक्षा को गलत ढंग से समझना बहुत ही आसान है। पर मैं कहता हूँ कि यह उलटा नहीं है। यही है जीवन का सार-नियम।

संसार से भागना मत, अगर तुम्हें वास्तविक मोक्ष की तलाश हो।

कारागृह से भागना मत, कारागृह के अनुभव से गुजरना, क्योंकि कारागृह में जो बन्धन तुम्हें पीड़ा देंगे—जितनी गहरी वह पीड़ा होगी, उतना ही उन बन्धनों के गिरने पर तुम्हें आनन्द का अनुभव होगा। कारागृह का पूरा दुःख भोग लेना, वह दुःख निखारता है, वह दुःख मांजता है, वह दुःख स्नान करा देगा। उस दुःख से गुजर के तुम कुन्दन बन जाओगे, कचरा जल जायेगा और खालिस सोना रह जायेगा। कारा-गृह के बाहर जब तुम आओगे तो मुक्ति का तुम्हें जो संस्पर्श होगा, वह कारागृह से भागे हुए व्यक्ति को नहीं हो सकता, क्योंकि वह कारागृह से बच गया। बाहर आ सकता है, निर्बन्ध हो सकता है, लेकिन मुक्ति का अनुभव नहीं कर सकता; उसे कारागृह में वापस जाना ही पड़ेगा।

जो लोग संसार से भाग-भाग के मोक्ष पाने की कोशिश करते हैं, उन्हें बार-बार संसार में आना पड़ता है। तुम्हारे संसार में बार-बार आने के बुनियादी कारणों में यही कारण है कि तुम बार-बार बचने की कोशिश करते हो अनुभव से। तुम उन बच्चों की भांति हो, जो गणित की प्रक्रिया से बचने की कोशिश करते हैं और पुस्तक के पीछे जो उत्तर लिखा है, उसे याद कर लेते हैं। वह उत्तर बिलकुल सही है, लेकिन तुम्हारे लिए बिलकुल गलत है। उत्तर में कोई गलती नहीं है, वह जानकारों ने ही लिखा है, गणित का सवाल हल करके ही लिखा है। लेकिन जिस गणित की प्रक्रिया से तुम नहीं गुजरे—तुम्हारा सच्चा उत्तर भी झूठा ही है, कागजी है। प्रक्रिया से गुजर के ही जो उत्तर आता है, आंधी से गुजर के जो शांति आती है, संसार से गुजर के जो मुक्ति आती है, जो संन्यास आता है, वही वास्तविक है। लेकिन चोर बच्चों की तरह हम भी यही कर रहे हैं—शास्त्रों से उत्तर चुरा लेते हैं, सोच लेते हैं हमारे उत्तर हैं। और यह सच है कि वे उत्तर सही हैं, लेकिन फिर भी तुम्हारे लिए सही नहीं हैं।

तुम्हारा उत्तर तो तुम्हारे ही अनुभव से आयेगा, तभी सही होगा। यह मैं नहीं कह रहा हूँ कि शास्त्र गलत है। वे जो गणित की किताब के पीछे उत्तर लिखे हैं, वे बिलकुल सही हैं—बस, शास्त्र भी उतने ही सही हैं। लेकिन वे सही उसके लिए हैं, जो उत्तर से सीधा संबंध नहीं जोड़ता; सीधा संबंध प्रक्रिया से जोड़ता है, विधि से जोड़ता है—गणित की प्रक्रिया से गुजरता है, और फिर उत्तर को लाता है। जिस दिन तुम्हें अपना उत्तर मिल जाता है, उस दिन किताब उलटके देखना बड़ा महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि किताब उलटके देखने में तुम्हें आश्वासन मिलता है, कि तुमने जो खोजा है, वही सत्य है—शास्त्र साक्षी है। जब तुम अपना अनुभव कर लोगे, तब शास्त्र को पढ़ोगे, तो तुम्हें लगेगा कि ठीक है। जहा मैं चल रहा हूँ, ठीक है—औरों ने भी ऐसा ही पाया है, शास्त्र गवाही हैं। लेकिन तुम चोरी मत करना शास्त्रों की, उनको कंठस्थ मत करना, अन्यथा सारी बात ही व्यर्थ हो जाती है।

विपरीत से मत बचना।

इसका यह मतलब नहीं है कि तुम विपरीत में सदा ही पड़े रहना। यह कहा ही इसलिए जा रहा है, ताकि तुम विपरीत के पार जा सको।

भयंकर आंधी के पश्चात् जो निस्तब्धता छा जाती है, उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो।

प्रतीक्षा—तुम्हें कुछ करना नहीं है, तुम्हें आंधी से गुजरना है ठीक से और फिर जब आंधी जा चुकी हो, तब आंधी की चिंता छोड़ देनी है—वह जो अतीत हो गया, जा चुका। और फिर तुम्हें कुछ करना नहीं है। आंधी के बाद जो सन्नाटा छा जाता है, उस सन्नाटे में सिर्फ प्रतीक्षा काफी है, और फूल खिल जायेगा।

इसलिए यहां मैं जो ध्यान की प्रक्रिया दे रहा हूँ, वह इस सूत्र में है। तीस मिनिट आंधी से गुजरना है—जितना भी तुम पागल हो सको, हो जाना। और तीस मिनिट के बाद तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, तुम्हें बिलकुल मौन प्रतीक्षा करनी है। अगर तीस मिनिट तुमने सच में ही तूफान पैदा कर लिया, तो तीस मिनिट के बाद जो शान्ति आयेगी, वह अपूर्व होगी। अगर तुम्हारा तूफान ही नपुंसक और कमजोर रहा, तो जो शान्ति आयेगी, वह भी उसी कोटि की होगी। अगर तुम्हारा तूफान झूठा रहा, बे-मन से रहा, तो जो शान्ति आयेगी, वह भी झूठी और बे-मन से आयेगी। तुम्हारे तीस मिनिट के तूफान पर ही निर्भर करेगा कि तीस मिनिट के बाद जो निस्तब्धता आती है, वह कैसी है!

एक मित्र ने मुझे खबर दी है किसी के सम्बन्ध में, कि कोई दर्शक की तरह आया होगा; तो उसने बाकी तीस मिनिट का हिस्सा तो छोड़ दिया, चुपचाप खड़ा रहा, देखता रहा—लोग तूफान में थे। फिर जब सबने आंखें बन्द कर ली, तो उसने भी

आंखें बन्द कर लीं। फिर खबर भेजी मुझे कि दस मिनिट आंखें बन्द किये रहा, लेकिन कुछ हुआ नहीं। कहा किसने है कि दस मिनिट आंख बन्द करने से कुछ होगा? वह जो तूफान था, वह छोड़ दिया, दस मिनिट आंख बन्द कर ली—सोचा कि सबको ऐसा कुछ हो रहा है, अपने को भी हो जायेगा।

आंख बन्द करने से कुछ नहीं होता। जो हो रहा है, वह तीस मिनिट के तूफान में है। कितनी ऑथेन्टिक, कितनी प्रामाणिक आंधी है भीतर, उतनी ही गहन शान्ति हो जायेगी। कितने शिखर पर उठते हैं आप तूफान के, उतने ही गहन निस्तब्धता की खाई में प्रवेश कर जायेंगे। यह अनुपात सदा बराबर रहेगा।

इसलिए आप पर निर्भर है। वह, तीस मिनिट में जरा सी भी कंजूसी—सब खराब कर देगी। इसलिए मैं देखता हूँ कि आप हिल-डुल तो रहे हैं। लेकिन ऐसे कि न हिले-डुले होते तो अच्छा था। अगर मैं आज्ञा दे देता कि बिलकुल हिलो-डुलो मत, तो आपका तब कहीं खांसने का मन, कहीं हिलने का मन, कहीं कुछ करने का मन होता है। वह भी इसलिए होता है कि तीस मिनिट में आंधी नहीं निकल पायी पूरी, अभी बाकी है। उसको जब निकालने का वक्त है, तब रोकते हैं। जब नहीं निकालना है, तब फिर वह निकलना शुरू हो जाती है।

कैसी दुविधा आप अपने लिए खुद ही पैदा कर लेते हैं। जब मैं कह रहा हूँ कि तीस मिनिट कूद लें, उछल लें, जो भी करना है, कर लें—तो कर ही डालें, उसे फिर रोकें मत। एक-एक रोआं नाच ले आपके शरीर का, और एक-एक कण विक्षिप्त हो जाने दें। इसके बाद जो निस्तब्धता आयेगी, वह आपको लाना नहीं है; वह तो तूफान का अनिवार्य परिणाम है, वह उसकी छाया है। और उस निस्तब्धता में सिर्फ प्रतीक्षा करनी है, "जस्ट अवेटिंग"—उस प्रतीक्षा में वह फूल खिलता है, उससे पहले नहीं।

जब तक आंधी चलती रहेगी, जब तक युद्ध जारी रहेगा; तब तक वह उगेगा, बढ़ेगा, उसमें शाखायें और कलियां फूटेंगी।

जब आप आंधी में से गुजर रहे हैं, तब आप ऐसा मत समझना कि यह आंधी दुश्मन है उस फूल की।

जब तक आंधी चलती रहेगी, तब तक युद्ध जारी रहेगा, तब तक वह उगेगा।

तब बीज अंकुरित हो रहा है शान्ति का, क्योंकि वह भी कोई आकस्मिक थोड़े ही हो जायेगी। इस तूफान के क्षण में भी वह बीज बढ़ रहा है।

तब तक वह उगेगा, वह बढ़ेगा, उसमें शाखाएं और कलियां फूटेंगी। परन्तु जब तक मनुष्य का सम्पूर्ण देह-भाव विघटित होकर धुल न जायेगा, जब तक समस्त आन्तरिक प्रकृति अपने उन्चात्मा से पूर्ण हार मानकर उसके अधिकार में न आ जायेगी, तब तक वह फूल नहीं खिल सकता।

आंधी में भी उसका बीज तरक रहा है। अंधेरे में दबा है, जमीन के गर्भ में है—फिर भी फूट रहा है, अंकुरित हो रहा है, आकाश की तरफ उठ रहा है, पत्ते निकल रहे हैं, शाखाएं बढ़ रही हैं। लेकिन फूल तो तभी खिलेगा, जब आंधी ने सम्पूर्ण रूप से आपको मथ डाला है। आंधी ने आपको सम्पूर्ण रूप से हिला डाला है। आंधी—आपके भीतर जो भी रोग था, जो भी विषाद था, जो भी क्रोध था, हिंसा थी—सब आंधी ले गई अपने साथ। आपकी सारी धूल को झाड़-पोंछ डाला। आपके भीतर जो भी रुग्ण था, वह आंधी में गल गया और नष्ट हो गया। तब अन्तिम क्षण में वह फूल खिलेगा। इस आंधी में आप नष्ट नहीं होते, सिर्फ आपका जो निम्न अस्तित्व है, वही झड़ जाता है और नष्ट हो जाता है। इस आंधी में आपकी आत्मा नहीं नष्ट होती, आपका अहंकार नष्ट हो जाता है और अहंकार ही बाधा डालता है आंधी में।

ख्याल करें, जब आप सोचते हैं कि मैं विश्वविद्यालय का अध्यापक, या मैं किसी राज्य का मन्त्री, या मैं एक बड़ा डाक्टर, या मैं एक बड़ा उद्योगपति—कैसे नाच सकता हूँ? मेरी प्रतिष्ठा है, मैं कैसे चीख-पुकार कर रो सकता हूँ? यह बच्चों जैसा काम, मेरा जैसा बुद्धिमान आदमी कैसे कर सकता है? यह पागलों जैसी हरकतें, मेरे जैसा सम्मानित व्यक्ति नहीं कर सकता। कौन बाधा डाल रहा है इस सब में?

अहंकार बाधा डालता है आंधी के आने में।

क्यों?

क्योंकि अहंकार भयभीत है, आंधी उसे ही जला जायेगी। आप तो नहीं मिटेंगे, अहंकार मिट जायेगा—प्रतिष्ठा, सम्मान, पद; आपके पद्मभूषण, आपकी उपाधियाँ; वह सब आंधी में झड़ जायेंगी।

वह भयभीत है—वह जो आपका निम्न अस्तित्व है, वह डरा हुआ है आंधी से। वह निम्न अस्तित्व कहता है—ऐसे ही बैठ जाओ, सांझ तक फूल को खिला लो। वह निम्न अस्तित्व जानता है कि फूल ऐसे कभी खिलता नहीं, कितने ही बैठे रहो। कितने ही बैठे रहो, ऐसे वह फूल कभी खिलता नहीं। उस फूल के लिए निम्न अस्तित्व को दांव पर लगाना जरूरी है, क्योंकि वही बाधा है।

आंधी—आपमें जो-जो गलत है, उसे अपने साथ ले जायेगी। और आंधी के बाद आपमें जो-जो श्रेष्ठ है, जो-जो शाश्वत है, वही बच रहेगा। उसका बचना ही फूल का खिलना है।

६...तब एक ऐसी शान्ति का उदय होगा, जैसे गर्म प्रदेश मे भारी वर्षा के पश्चात् छा जाती है...और उस गहन और नीरव शान्ति में वह रहस्यपूर्ण घटना घटित होगी, जो सिद्ध कर देगी कि मार्ग की प्राप्ति हो गई है।

जैसे गर्म प्रदेश में भारी वर्षा के पश्चात् छा जाती है, ऐसी शान्ति का उदय होगा,

और उस गहन और नीरव शान्ति में वह रहस्यपूर्ण घटना घटित होगी, जो सिद्ध कर देगी कि मार्ग की प्राप्ति हो गई है।

उस घटना को सिद्ध करने का और कोई उपाय नहीं है—जब तक कि वह घट ही न जाये।

मुझसे लोग आकर पूछते हैं, कि हमें यदि अनुभव हो जायेगा, तो कैसे पता चलेगा कि अनुभव हो गया है? अगर सिद्धि हो जायेगी, साधना फलित हो जायेगी, पूर्ण हो जायेगी, आत्म-ज्ञान भी हो जायेगा—हमें पता चलेगा कि हो गया है?

तो मैं उनसे कहता हूँ कि जब आपके पैर में कांटा गड़ता है, तो आपको कैसे पता चलता है कि कांटा गड़ गया? वे कहते हैं, पीड़ा होती है। फिर आप किसी से पूछने जाते हैं कि मेरे पैर में कांटा गड़ा या नहीं? आपकी पीड़ा ही गवाही होती है। जैसे पैर में कांटा गड़ने से पीड़ा होती है और पैर में से कांटा खींच लेने से पीड़ा से मुक्ति होती है। लेकिन दोनों अनुभव आपके निजी हैं, आपको होते हैं। ठीक ऐसे ही जब भीतर वह घटना घटती है, तो जीवन की सारी पीड़ा तिरोहित हो जाती है, सारा बोझ विनष्ट हो जाता है—पंख लग जाते हैं, निर्भार हो जाते हैं; न कोई अतीत रह जाता है, न कोई भविष्य, न कोई चिन्ता, न कोई पीड़ा—शुद्ध अस्तित्व। उसकी प्रतीति आपको किसी से पूछने न जाना पड़ेगी—कि मुझे हुई या नहीं। वह जब होगी, तब आपको फौरन प्रतीति हो जायेगी कि हो गई। फिर सारी दुनिया भी आपसे कहे कि नहीं हुई, तो भी आप सारी दुनिया पर हँस सकते हैं।

रामकृष्ण के पास केशवचन्द्र मिलने आये थे। तो केशवचन्द्र ईश्वर के खिलाफ बहुत से तर्क देने लगे, बुद्धिमान थे, तर्कनिष्ठ थे। रामकृष्ण हंसते रहे, और रामकृष्ण ने कहा कि तुम जो कहते हो, तर्कपूर्ण है, लेकिन मैं क्या करूं? मुझे उसका अनुभव हो गया है। तुम जो कहते हो, अगर मुझे अनुभव न हुआ होता, तो मैं भी कहता कि ठीक है। और अब भी कहता हूँ कि जहाँ तक तर्क है, वहाँ तक बिल्कुल ठीक है। लेकिन मेरी बड़ी मुसीबत है, क्योंकि मुझे उसका अनुभव हो गया है। और मैं गैर-पढ़ा-लिखा आदमी, मैं तुम्हारे तर्क का खण्डन भी नहीं कर सकता। तुम जहां खड़े हो, वहां एक दिन मैं भी खड़ा था। एक दिन मुझे भी शक था कि वह है या नहीं। और उस दिन तुम्हारे सभी तर्क मुझे ठीक मालूम पड़े होते, लेकिन मेरी बड़ी मुसीबत है केशवचन्द्र। रामकृष्ण ने कहा था, मेरी बड़ी मुसीबत है, क्योंकि मुझे उसका अनुभव हो गया है, अब मैं क्या करूं? अब तुम कितना ही कहो, सारी दुनिया कहे, तो भी मैं अपने अनुभव को नहीं झुठला सकता, वह मुझे हो गया है—वह है। अब तो एक ही उपाय है, तुम भी उसके अनुभव में लगो। चलते वक्त जब केशव विदा होने लगे, तो रामकृष्ण ने कहा था, एक बात पक्की है, आज नहीं कल, तुम

उसके अनुभव में जरूर लगोगे। क्योंकि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी कब तक शब्दों और तर्कों में उलझा रहेगा?

केशवचन्द्र ने लिखा है अपने संस्मरणों में, कि फिर मैं इस शब्द को कभी भूल न पाया—रामकृष्ण का यह कहना कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी कब तक तर्कों में उलझा रहेगा! तुम जरूर उसका अनुभव करोगे। उनका यह कहना, केशव ने लिखा है कि मेरे सब तर्कों को खराब कर गया। उन्होंने न मेरा खण्डन किया, न मुझे इन्कार किया; मुझे पूरे हृदय से स्वीकार किया, और साथ मे यह भी कहा कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी...। और यह भी कहा कि तुम्हें देखकर मुझे ईश्वर पर और भी भरोसा आ गया, क्योंकि उसके बिना ऐसी बुद्धि कैसे पैदा हो सकती है। यह जो आदमी ईश्वर के खिलाफ बोल रहा था—तुम्हें देखकर मुझे और भरोसा आ गया, उसके बिना ऐसी बुद्धि का फूल कैसे खिल सकता है!

जिसको अनुभव है, उसको पूछने नहीं जाना पड़ता है।

अनुभव स्वयं-सिद्ध है, वह स्वतः ही प्रकट कर जाता है।

जिस दिन इस तरह की नीरव शान्ति की घटना घटती है, उसी दिन वह परम-रहस्य का द्वार खुल जाता है, और सिद्ध हो जाता है, कि मार्ग की प्राप्ति हो गई।

फूल खिलने का क्षण बड़े महत्व का है। यह वह क्षण है, जब ग्रहण-शक्ति जागृत होती है। इस जागृति के साथ-साथ विश्वास, बोध और निश्चय भी प्राप्त होते हैं।

फूल खिलने का अर्थ है: एक ट्रस्ट।

फूल को देखें—सूरज सुबह निकला और फूल खिला। किसलिए खिलता है फूल सुबह? ताकि सूरज को पी सके पूरा—कली बन्द है, न पी सकेगी—ताकि सूरज को आत्मसात् कर सके पूरा, ताकि अपने हृदय का द्वार सूरज के लिए खुला कर सके।

फूल खिलता है सूरज को अपने भीतर लेने के लिए।

कली तो है बन्द, फूल है खुला। वह जो कली के भीतर हृदय है, मर्मस्थल है, उसे वह उघाड़ देता है सूरज के लिए। उसका खुलना एक गहरी आस्था है, एक भरोसा, एक विश्वास, कि तुम जीवन्त हो, कि तुम मेरे भीतर आये, तो परम-जीवन आया, कि तुम्हारे बिना मेरा हृदय अंधेरा है, कि तुम्हारे बिना मैं बन्द हूँ, मृत हूँ—तुम्हीं बनोगे नृत्य, तुम्हीं बनोगे मेरी सुगन्ध, तुम्हीं मुझे मुझसे दूर और पार ले जाओगे। तुम्हीं में मैं लीन हो जाऊंगा; मेरी जो पार्थिव देह है, वह खो जायेगी, लेकिन अपार्थिव सुगन्ध जो है, वह हवाओं में विस्तीर्ण हो जायेगी, वह अनन्त को छू लेगी—ठीक भीतर भी।

इसीलिए फूल की उपमा को चुना है बार-बार हमने, भीतर भी जब शान्ति की अपूर्व घटना घटती है, तूफान के बाद आने वाली शान्ति प्रकट होती है, तो हृदय का

फूल खिलता है—उस परमात्मा के प्रति, उस महासूर्य के प्रति—एक भरोसे के साथ कि अब तुम मेरे भीतर आ जाओ। एक भरोसे के साथ—कि अब मुझे बन्द होने की कोई जरूरत नहीं, अब मैं तुम्हें ग्रहण करूंगा, अब मैं तुम्हारे लिये गर्भ बन जाऊंगा। अब तुम मुझमें आ जाओ, अब मैं हृदय के किसी भी कोने को तुमसे खाली न रखूंगा।

बहुत रह लिया अन्धेरे में, बहुत रह लिया बन्द। और बन्द इसी डर से था कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाये। भीतर का वह मर्मस्थल खुला छोड़ दिया जाये, तो कोई नुकसान न पहुंचा दे, कोई नष्ट न कर दे, कुछ गलत भीतर प्रवेश न कर जाये, तो सब तरफ से द्वार-दरवाजे बन्द रखे थे, दीवालें खड़ी की थीं और अपने को भीतर रख छोड़ा था।

लेकिन अब वह क्षण आ गया है, जब मैं अपने को पूरा खोल सकता हूँ। ग्रहण, ग्राहकता, रिसेप्टीविटी—अर्थ है उस खुलने का, कि अब मैं अपने को जरा भी बचाऊंगा नहीं, अब मैं पूरा तुम्हारे सामने नग्न हूँ। मेरे हृदय की इस नग्नता में तुम प्रवेश कर जाओ। अब मेरे अन्तरगृह में आ जाओ, अब मैं तुम्हारे लिए मन्दिर बनने को उत्सुक हूँ।

...जब शिष्य सीखने के योग्य हो जाता है, तो वह स्वीकृत हो जाता है। शिष्य मान लिया जाता है और गुरुदेव उसे ग्रहण कर लेते हैं। ऐसा होना अवश्यंभावी है, क्योंकि उसने अपना दीप जला लिया है और दीपक की यह ज्योति छिपी नहीं रह सकती।

जब शिष्य सीखने के योग्य हो जाता है...

और यही है सीखने की क्षमता—आत्यान्तिक अर्थों में। सम्पूर्ण रूप से अपने हृदय के सब द्वार-दरवाजे तोड़कर खुलापन स्वीकार कर लेने का यह राजी भाव—शिष्यत्व है।

और जिस दिन ऐसा होता है, जिस दिन आप एक फूल की तरह खिलते हैं, उस दिन वह परम-गुरु आपको स्वीकार कर लेता है।

परमात्मा ही परम-गुरु है।

इसलिए जिन्होंने गुरु में परमात्मा को देखा है, उनके देखने में सार्थकता है। गुरु में परमात्मा को देखने की सार्थकता है, क्योंकि अन्ततः परमात्मा ही गुरु है। शुरुआत तो करनी पड़ती है गुरु में परमात्मा देखने से, और एक दिन अन्त होता है परमात्मा में गुरु खोज लेने से। उसी क्षण वह परम गुरु स्वीकार कर लेता है।

ऐसा होना अवश्यंभावी है...

इससे अन्यथा नहीं होता, क्योंकि जिस दिन आप खुले हैं और राजी हैं, उस दिन परमात्मा देने को तैयार है। जब तक आप बन्द हैं, तभी तक उसके हाथ भी देने में असमर्थ हैं। उसके हाथ सदा देना चाहते हैं, लेकिन आपके बन्द होने के कारण देने का कोई उपाय नहीं है। जिस दिन आप खुले हैं, उसी दिन उसका दान शुरू हो जाता है।

गुरु स्वीकार कर लेता है, क्योंकि शिष्य ने अपना दीप जला लिया, और दीपक की वह ज्योति छिपी नहीं रह सकती।

आप चकित होंगे जानकर—अध्यात्म के गुह्य शास्त्र में 'एसोटेरिक' विद्या में इसके बहुत अर्थ हैं। अगर सच में ही आप गुरु के प्रति समर्पित हैं, ग्रहणशील हैं, तो आपका पूरा आभा मण्डल बदल जाता है, उसी क्षण बदल जाता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं दीक्षा दे दें, संन्यास में प्रवेश करा दें। पर उन लोगों में बहुत थोड़े से ही लोग होते हैं, जो सच में ग्रहणशील होते हैं। तब उनके चेहरे के आसपास की आभा अलग होती है। तब उनकी आँखों की ज्योति अलग होती है, जैसे भीतर कोई दिया जल रहा है। कुछ लोग हैं, जो आ जाते हैं किन्हीं और कारणों से दीक्षा लेने, उनके भीतर कोई रोशनी नहीं होती, कोई उजाला नहीं होता। उनके आस-पास कोई आभा-मण्डल नहीं होता। तब उन्हें दीक्षा भी दे दी जाये, तो व्यर्थ है, क्योंकि उनके हाथ खुले ही नहीं होते लेने को, उन्हें भी मैं दीक्षा दे देता हूँ, कि चलो कोई हर्ज नहीं। दीक्षा लेने का मन उठा है, कारण अभी गलत हैं, पर निराश करना उचित नहीं। शायद समझ आ जाये कल, गलत कारण छूट जाये और दीक्षा वास्तविक हो जाये। और हर्ज तो वैसे भी कुछ नहीं है। क्योंकि अगर आदमी गलत है, तो दीक्षा के बाद भी गलत ही रहेगा। ज्यादा गलत नहीं हो जायेगा, जितना गलत था, उतना ही गलत रहेगा। हर्ज कुछ भी नहीं है, लेकिन सम्भावना खुलती है कि शायद ठीक हो जाये, शायद रूपान्तरित हो जाये। पर जो व्यक्ति सच में ही ग्रहण करने के भाव से भरा हुआ आता है—वह दीक्षित हो ही चुका; उसे दीक्षा देना अब सिर्फ एक औपचारिक बात है, सिर्फ एक स्वीकृति है, जो उसे आल्हादित करेगी; एक स्वीकृति है, जो उसे दृढ़ करेगी; एक स्वीकृति है, जो उसकी आस्था को प्रगाढ़ करेगी, उसका आत्मविश्वास बढ़ायेगी; लेकिन दीक्षित वह हो ही चुका।

ग्रहणशीलता ही दीक्षा है।

और जैसे ही कोई ग्रहणशील होता है, वैसे ही उसके आसपास प्रकाश फैलाना शुरू हो जाता है। वह प्रकाश वस्तुतः देखा जा सकता। अगर आप भी ग्रहणशील व्यक्ति के पास शान्त होकर बैठें, तो आपको उसके प्रकाश की प्रतीति हो सकती है। गुरु को तो सहज ही हो जाती है। वह दिखाई ही पड़ जाता है। आता हुआ आदमी ही अपने साथ अपनी ज्योति या अपना अंधेरा लेके आता है। बन्द आदमी है, जिसकी कली बिलकुल बन्द है, झुकने को जो बिलकुल राजी नहीं—उसके आस-पास अन्धेरे का एक वर्तुल चलता है। खुला आदमी है, जिसकी ज्योति प्रकट हुई है, उसके आस-पास एक प्रकाश का आल्हाद का वातावरण चलता है। और जब आपके आस-पास अंधेरा होता है, तो आपके सिर पर बोझ होगा। जब आपके आस-पास

प्रकाश होता है, तो आपका सिर निर्भार होता है।

...ऊपर लिखे गये नियम उन नियमों में से आरंभ के हैं, जो नियम परम-प्रज्ञा के मंदिर की दीवारों पर लिखे हैं।

जो मांगेंगे, उन्हें मिलेगा। जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे। जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे।

तुम्हें शांति प्राप्त हो।

जो मांगेंगे उन्हें मिलेगा : इस सूत्र को हृदय में गहरे से खोद लेना।

जो मांगेंगे उन्हें मिलेगा। जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे। जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे।

जीसस ने कहा है : नॉक, एन्ड दी डोर्स शैल बि ओपन अनटु यू, खटखटाओ, और द्वार तुम्हारे लिए खोल दिये जायेंगे। आस्क एन्ड इट शैल बि गिवन अनटु यू, मांगो और मिलेगा।

पर हम इतने दीन हैं कि द्वार भी नहीं खटखटाते! हम इतने दीन हैं कि हम मांगते भी हैं, तो क्षुद्र ही मांगते हैं—विराट का संस्पर्श नहीं! हम परमात्मा के द्वार पर भी जाते हैं तो न मालूम क्या क्षुद्र मांगें लेकर जाते हैं! कुछ ऐसा मांगने जाते हैं, जो संसार में ही मिल सकता था, उसके लिए परमात्मा के द्वार तक आने की कोई जरूरत न थी। और जो संसार की ही चीजें मांगता हुआ परमात्मा के द्वार पर जाता है, वह परमात्मा के द्वार पर पहुंचता ही नहीं, उसके लिए मंदिर भी बाजार है, मंदिर भी दुकान है, मंदिर भी संसार है। नाममात्र को ही वह मंदिर में जाता है, वह रहता अपने संसार में ही है।

लेकिन अगर कोई परमात्मा को ही मांगे, तो तत्क्षण मिल जाता है।

पर मांगने के लिए तैयारी चाहिये। और मांगने के लिए हृदय में स्थान चाहिये कि हम जिसे मांग रहे हैं, वह अगर आ ही जाये, तो जगह है भीतर!

ग्रहणशीलता चाहिये। इसलिए इन सूत्रों के बाद ही यह सूत्र है, कि जो फूल की तरह खिल रहा है—उस निस्तब्धता में, जो आंधी के बाद आती है—वह मांग सकता है। वह जो भी मांगेगा, उसे वह मिल जायेगा। और जो का मतलब ही एक है अब उसके लिए—मांग। वह मांगेगा परम-प्रज्ञा, वह मांगेगा परम-मुक्ति, वह मांगेगा परम-प्रभु। वह जो जीवन का आत्यंतिक है, अंतिम है, आखिरी है, जिसके पार कुछ मांगने को नहीं बचता, वही मांग लेना।

उस मांग को शब्द में बनाने की जरूरत भी नहीं है। उसका हृदय ही खुलते क्षण में वह मांग होगा। उसका फूल खिलते हुए ही वही मांग रहा है, कि आ जाओ तुम मेरे भीतर। इसके लिए शब्द देने की कोई जरूरत नहीं है। शब्द तो गिर गये आंधी के साथ, यह तो मौन प्यास होगी। यह तो पूरे प्राणों की अभीप्सा होगी। यह तो

पढ़ना चाहेगा जो जीवन के परम मन्दिर पर, वह जो जीवन का आत्यान्तिक शिखर है, जहां जीवन के सारे रहस्य-सूत्र लिखे हैं। यह तो सिर्फ एक उपमा है। अगर वह पढ़ना चाहेगा तो पढ़ लेगा। अगर वह सीखना चाहेगा जीवन के अन्तिम रहस्यों को —तो सीख लेगा।

इस क्षण, फूल के खिलते हुए क्षण में जो भी हृदय की प्यास होगी, वह पूरी हो जायेगी। इस फूल के खिलने के क्षण में आप कल्पवृक्ष के नीचे हैं, और जो भी भाव होगा, वह तत्क्षण यथार्थ हो जायेगा, साकार हो जायेगा।

मगर तूफान निकल जाने के बाद अगर तूफान का थोड़ा-सा भी हिस्सा भीतर रह गया, तो आपकी मांगें क्षुद्र की होंगी, वे पूरी हो जायेंगी। आपकी मांगें व्यर्थ की होंगी, वे पूरी हो जायेंगी।

टॉलस्टाय ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। टालस्टाय ने लिखा है कि एक आदमी ने एक प्रेत को प्रसन्न कर लिया, बड़े साल लगे प्रसन्न उसे करने में, जब प्रसन्न हो गया प्रेत, तो उसने कहा, तू तीन वरदान मांग ले। तो उस आदमी ने कहा कि अभी एकदम तो मेरी समझ में नही आता, लेकिन आप तीन वरदान मेरे पूरे करेंगे, तो मैं पीछे जैसा समय जरूरी होगा, उस वक्त मांग लूंगा। तो प्रेत ने कहा कि ठीक, लेकिन ध्यान रखना चौथा नहीं, बस तीन! पर उस आदमी ने सोचा कि तीन भी पर्याप्त हैं। तीन में तो सारा संसार पाया जा सकता है, तीनों लोक पाये जा सकते हैं।

वह घर आया, सोचता हुआ कि क्या मांग लूं तीन मे, कि कुछ चूक न जाये! घर आते से ही पत्नी से झगड़ा हुआ तो उसने पहला वरदान मांग लिया कि खत्म करो इसको। वह पत्नी खत्म हो गई। खत्म होते ही वह घबड़ाया कि बच्चों का क्या होगा? पास-पड़ोस में खबर लग जायेगी। और यह पत्नी मर गई। फिर उसे ख्याल आया कि वह प्रेम भी करती थी, झगड़ती तो थी ही। फिर उसे याद आया कि अब दूसरी शादी करनी इस उम्र में; झंझट-बखेड़ा होगा। उम्र भी ज्यादा हो गई, साठ के पार हो गई, अब कोई लड़की भी कहा मिलेगी? तो उसने सोचा कि यह गलती हो गई। उसने कहा कि, हे प्रेत! मेरी पत्नी को जिन्दा कर दे। तो वह पत्नी जिन्दा हो गई। दो वरदान खत्म हो गये। अब उसकी बड़ी मुश्किल हो गई, एक ही बचा। तो इतना चिन्तातुर हो गया कि क्या मांगूं, कि रात नींद न आए, उसका दिमाग पागल होने लगा—यह मांगूं, कि वह मांगूं, और एक ही बचा है? और अब यह डर भी पैदा हो गया कि किसी उपद्रव के क्षण में कहीं फिर कुछ न कर बैठूं कि पत्नी मर जाये, या यह हो जाये, तो अब दुबारा जिन्दा का भी उपाय नहीं है। तीन दिन के भीतर वह इतना व्यथित हो गया, इतना मुश्किल में पड़ गया, कि उसने प्रेत से कहा

कि हे प्रेत! वह तीसरा वरदान वापस ले ले; कि वह मैं न मांगूं, ऐसा कर दे। क्योंकि मैं मर जाऊंगा, मुझे कुछ सूझता नहीं है। वह तीसरा वापस हो गया।

क्षुद्र शेष हो भीतर, तो आपको वरदान भी मिल जायें, तो आप करियेगा क्या?

वह जो क्षुद्रता है, वही बाहर आ जायेगी।

तूफान निकल ही जाना चाहिये। अभागे हैं वे लोग, जो थोड़ा-बहुत तूफान लेकर उस क्षण में पहुंच जायें—जब जो मांगो, वह पूरा हो जाये। खतरा है। इसलिए मेरा बहुत जोर है कि तूफान को सब भांति निकाल दें, तब एक ही मांग रह जायेगी।

वह मांग कहना ठीक नहीं है : प्यास है। प्यास भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसका कोई बोध भी नहीं होगा। ऐसा नहीं होगा कि आप प्यासे हैं, और आपको प्यास का पता चला रहा है, कुछ ऐसा होगा कि आप प्यास हो गये हैं। अलग नहीं हैं, आप अभीप्सा बन गये हैं। तब जो मांगेंगे, उन्हें मिलेगा। जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे; जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे।

तुम्हें शान्ति प्राप्त हो।

लेकिन इन सबका आधार है, तुम्हें शान्ति प्राप्त हो। उसके पहले यह सब किसी अर्थ का नहीं है। सब कल्पना जाल है फिर। और शान्ति प्राप्त न हो, तो उस दिशा में कोई भी यात्रा असम्भव है।

एकमात्र पथ-निर्देश

प्रवचन : ९ अप्रैल १०, १९७२, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

नीरवता (साइलेन्स) में से, जो स्वयं शान्ति है, एक गूंजती हुई वाणी प्रकट होगी। और वह वाणी कहेगी : "यह अच्छा नहीं है, काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिए।" यह वाणी स्वयं नीरवता ही है, यह जानकर तुम उसके आदेश का पालन करोगे।

तुम जो अब शिष्य हो, अपने पैरों पर खड़े रह सकते हो, सुन सकते हो, देख सकते हो, बोल सकते हो। तुम जिसने वासनाओं को जीत लिया है और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसने अपनी आत्मा को विकसित अवस्था में देख लिया है और पहिचान लिया है, और नीरवता के नाद को सुन लिया है, तुम अब उस ज्ञान-मन्दिर में जाओ, जो परम-प्रज्ञा का मन्दिर है और जो कुछ तुम्हारे लिए वहा लिखा है, उसे पढ़ो।

...नीरवता की वाणी सुनने का अर्थ है यह समझ जाना कि एकमात्र पथ-निर्देश अपने भीतर से ही प्राप्त होता है। प्रज्ञा के मन्दिर में जाने का अर्थ है, उस अवस्था में प्रविष्ट होना, जहां ज्ञान प्राप्ति संभव होती है। तब तुम्हारे लिए वहां बहुत से शब्द लिखे होंगे और वे ज्वलन्त अक्षरों में लिखे होंगे, जिससे तुम उन्हें सरलता से पढ़ सको, क्योंकि जब शिष्य तैयार हो जाता है, तो श्री गुरुदेव भी तैयार ही हैं।

सत्य की खोज के लिए दो अध्याय हैं।
एक—जब साधक खोजता है।
और दूसरा—जब साधक बांटता है।

आनन्द तब तक पूरा न समझना, जब तक तुम उसे बांटने में भी सफल न हो जाओ। आनन्द की खोज तो लोभ का ही हिस्सा है। आनन्द की चाह तो अस्मिता केन्द्रित ही है मेरे लिए। मेरे लिए वह भी खोज है। और जब तक मेरा इतना भी बाकी है कि मैं आनन्द अपने लिये ही चाहूं, तब तक आनन्द मेरा अधूरा ही रहेगा। और उस आनन्द के साथ-साथ अंधेरे की एक रेखा भी चलेगी, और उस आनन्द के साथ-साथ दुःख की एक छाया भी मौजूद रहेगी। क्योंकि जब तक मैं मौजूद हूँ, तब तक दुःख से पूर्ण छुटकारा असम्भव है। मुझे आनन्द की झलक भी मिल सकती है, लेकिन वह झलक ही होगी। और पीड़ा किसी न किसी रूप से सदा मेरे साथ सम्बद्ध रहेगी, क्योंकि मैं ही पीड़ा हूँ।

जिस दिन दूसरी घटना भी घटती है आनन्द को बांटने की—उस दिन मैं महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता, दूसरा महत्त्वपूर्ण हो जाता है, तुम महत्त्वपूर्ण हो जाते हो। उस दिन आनन्द मांगता नहीं है साधक, उस दिन आनन्द देता है, उस दिन आनन्द बांटता है। और जब तक आनन्द बंटने न लगे, तब तक पूरा नहीं होता। आनन्द मिलता है जब, तब अधूरा होता है और आनन्द जब बंटता है, तब पूरा होता है।

ऐसा समझें, कि एक भीतर आती हुई श्वांस है, और एक बाहर जाती हुई श्वांस है। भीतर आती हुई श्वांस आधी है और तुम अकेली भीतर आती हुई श्वांस से जी न सकोगे। और अगर तुमने चाहा कि भीतर जो श्वांस आती है, उसे मैं भीतर ही रोक लूं, तो श्वांस जोकि जीवन का आधार है, वही श्वांस मृत्यु का कारण बन जायेगी।

श्वांस भीतर आती है, तो उसे बाहर छोड़ना भी होगा। और जब श्वांस बाहर भी छूटती है, तब ही वर्तुल पूरा होता है।

भीतर आती श्वांस आधी है, बाहर जाती श्वांस आधी है। दोनों मिलकर पूरी होती हैं। और वे दो कदम हैं, जिनसे जीवन चलता है। आनन्द जब तुम्हारे भीतर आता है, तो आधी श्वांस है, जब आनन्द तुमसे बाहर जाता है, और बंटता है, बिखरता है, फैलता है, विस्तीर्ण होता है, लोक-लोकान्तर में; तब आधी श्वांस और भी पूरी हो गई।

ध्यान रहे, तुम जितने जोर से श्वांस को बाहर फेंकने में समर्थ हो जाते हो, उतनी ही गहरी श्वांस भीतर लेने में भी समर्थ हो जाते हो। अगर कोई ठीक से श्वांस को बाहर फेंके, तो जितनी श्वांस बाहर फेंकेगा, उतनी ही गहरी सामर्थ्य भीतर श्वांस लेने की हो जाती है। जो लुटाएगा, वह और भी ज्यादा पा लेता है। फिर और ज्यादा पाकर और ज्यादा लुटाता है तो और ज्यादा पा लेता है। फिर वह श्रृंखला अनन्त हो जाती है।

इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिये कि जो तुम्हारे पास है, वह तब ही तुम्हारे पास है, जब तुम उसे देने में समर्थ हो। और जब तक तुम देने मे असमर्थ हो, तब तक समझना कि वह तुम्हें मिला ही नहीं है। मिलते ही बटना शुरू हो जाता है।

एक बात समझ लेने जैसी है कि अगर जीवन मे दुःख हो तो आदमी सिकुड़ता है, बन्द होता है; चाहता है कोई मिले ना, कोई सगी-साथी पास न आए, कहीं एकान्त, दूर किसी गुफा में बैठ जाऊं, अपने द्वार-दरवाजे बन्द कर लूं। दुःखी आदमी अपने को सब तरफ से घेरके बन्द कर लेना चाहता है। दुःख संकोच है, सिकुड़न है। दुःख में तुम नहीं चाहते कि कोई बोले भी, कोई कुछ कहे भी। कोई सहानुभूति भी प्रकट करता है, तो अड़चन मालूम होती है। जब तुम सचमुच दुःख में हो, तो सहानुभूति प्रकट करने वाला भी खटकता है। तुम्हारा कोई प्रियजन चल बसा है, गहन दुःख की बदलियों ने तुम्हें घेर लिया है, कोई समझाने आता है, सान्त्वना देने आता है—उसकी सान्त्वना, उसका समझाना, सब थोथा मालूम पड़ता है। उसकी ज्ञान की बातें भी—कि आत्मा अमर है, घबड़ाओ मत, कोई मरता नहीं; दुश्मन की बातें मालूम पड़ती हैं। दुःख सब तरफ से अपने को बन्द कर लेना चाहता है बीज की तरह, और सिकुड़ जाना चाहता है।

ठीक इसके विपरीत घटना आंनन्द की है। जब आनन्द फलित होता है, जैसे दुख में सिकुड़ता है आदमी, वैसा आनन्द में फैलता है। तब वह चाहता है कि जायें और दूर-दिगन्त में, हवाएं जहां तक जाती हैं, आकाश जहां तक फैलता है—वहां तक जो उसने पाया है, उसे फैला दे। जैसे फूल जब खिलता है तो सुगन्ध दूर-दूर तक फैल

जाती है। और दिया जब जलता है तो प्रकाश की किरणें दूर-दूर तक फैल जाती हैं। ऐसे ही जब आनन्द की घटना घटती है, तब बंटना शुरू हो जाता है। अगर तुम्हारा आनन्द तुम्हारे ही भीतर सिकुड़कर ही रह जाता हो, तो समझना कि आनन्द नहीं है, क्योंकि आनन्द का स्वभाव ही बंटना है, विस्तीर्ण होना है। इसलिए हमने पर-मात्मा के परम-रूप को ब्रह्म कहा है।

ब्रह्म का अर्थ है: जो विस्तीर्ण होता चला जाता है।

ब्रह्म शब्द में वही आधार है, जो विस्तार में है, विस्तीर्ण में है। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता ही चला जाता है, जिसके फैलाव का कहीं कोई अन्त नहीं है। ऐसी कोई जगह नहीं आती, जहां उसकी सीमा आती हो, वह फैलता ही चला जाता है।

अभी फिजिक्स ने और ज्योतिष शास्त्र ने, अन्तरिक्ष के खोजियों ने तो अभी ही यह बात आके इसी सदी में कही है, कि जो विश्व है, वह एक्सपेन्डिंग है, विस्तीर्ण होता हुआ है। पश्चिम में तो यह ख्याल नहीं था। पश्चिम में तो यह ख्याल था कि यह विश्व जो है, वह चाहे कितना ही बड़ा हो—उसकी सीमा है, वह फैल नहीं रहा है। लेकिन आइन्स्टीन के बाद एक नई धारणा का जन्म हुआ है। और वह धारणा बड़ी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वह धारणा ब्रह्म के बहुत करीब पहुंचाती है। आइ-न्स्टीन ने कहा कि यह जगत सीमित नहीं है, यह फैल रहा है। जैसे जब आप श्वांस भीतर लेते हैं, तो आपकी छाती फैलती है, ऐसा यह जगत फैलता चला जा रहा है। इसके फैलाव का कोई अन्त नहीं मालूम होता। बड़ी तीव्र गति से जगत बड़ा होता चला जा रहा है।

मगर भारत में यह धारणा बड़ी प्राचीन है। हमने तो परम-सत्य के लिए ब्रह्म नाम ही दिया है। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता ही चला जाता है—इन्फिनिटली एक्सपेंडिंग। जिसका कहीं अन्त नहीं आता, जहां वह रुक जाये, जहां उसका विकास ठहर जाये। और ब्रह्म के स्वभाव को हमने आनन्द कहा है। आनन्द विस्तीर्ण होती हुई घटना है।

आनन्द ही ब्रह्म है।

तो जिस दिन तुम्हारे जीवन में आनन्द की घटना घटेगी, उस दिन तुम कृपण न रह जाओगे। कृपण तो सिर्फ दुःखी लोग होते हैं। इसे थोड़ा समझ लेना, यह सभी अर्थों में सही है।

दुःखी आदमी कृपण होता है, वह दे नहीं सकता। वह सभी चीजों को पकड़ लेता है, जकड़ लेता है। सभी चीजों को रोक लेता है छाती के भीतर। वह कुछ भी नहीं छोड़ सकता। जानके आप चकित होंगे—मनस्विद कहते हैं कि कृपण आदमी गहरी श्वांस भी नहीं लेता। क्योंकि गहरी श्वांस लेने के लिए गहरी श्वांस छोड़नी पड़ती है।

छोड़ वह सकता ही नहीं। मनसविद कहते हैं कि कृपण आदमी अनिवार्य रूप से, कब्जियत का शिकार हो जाता है—मल भी नहीं त्याग कर सकता, उसे भी रोक लेता है। मनसविद तो कहते हैं कि कब्जियत हो ही नहीं सकती, अगर किसी न किसी गहरे अर्थों में मन के अचेतन में कृपणता न हो। क्योंकि मल को रोकने का कोई कारण नहीं है, शरीर तो उसे छोड़ता ही है, शरीर का छोड़ना तो स्वाभाविक है, नैसर्गिक है। लेकिन मन उसे रोकता है।

ध्यान रहे, बहुत से लोग ब्रह्मचर्य में इसीलिए उत्सुक हो जाते हैं कि वे कृपण हैं। उनकी ब्रह्मचर्य की उत्सुकता वास्तविक रूप में कोई परम-सत्य की खोज नहीं है—उनकी ब्रह्मचर्य की उत्सुकता वीर्य की शक्ति बाहर न चली जाये, उस कृपणता का हिस्सा है। बहुत थोड़े से लोग ही ब्रह्मचर्य मे समझ-बूझ कर उत्सुक होते है। अधिकतर तो कृपणता के कारण ही—जो भी है, वह भीतर ही रुका रहे, बाहर कुछ न चला जाये। इसलिए कृपण व्यक्ति प्रेम नहीं कर पाता। आप कंजूस आदमी को प्रेम करते नहीं पा सकते, क्योंकि प्रेम में दान समाविष्ट है। प्रेम स्वयं दान है, वह देना है। और जो दे नहीं सकता, वह प्रेम कैसे करेगा? इसलिए जो भी आदमी कंजूस है, प्रेमी नहीं हो सकता। इससे उलटा भी सही है। जो आदमी प्रेमी है, वह कृपण नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम में अपना हृदय जो दे रहा है, वह अब सब कुछ दे सकेगा। आनन्द के साथ कृपणता का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, दुःख के साथ है।

तो जिस दिन तुम्हें सच में ही आनन्द की घटना घटेगी, उस दिन तुम दाता हो जाओगे। उस दिन तुम्हारा भिखारीपन गया। उस दिन पहली दफा तुम बांटने मे समर्थ हुए। और तुम्हें एक ऐसा स्रोत मिल गया है, जो बांटने से बढ़ता है, घटता नहीं।

धन बाटें, तो घट जाता है—घटेगा ही, क्योंकि धन का आधार दुःख है, आनन्द नहीं है। धन किसी न किसी रूप में, किसी न किसी के दुःख पर ही खड़ा है। धन में कहीं न कहीं मनुष्य की पीड़ा समाविष्ट है। तो धन को इकट्ठा करो, तो भी दुःख ही इकट्ठा किया जा रहा है। धन को अगर बाटने जाओ तो बांटने से घटेगा। क्योंकि धन कोई अन्तर-अवस्था नहीं है, वस्तुओं का सग्रह है। वस्तुएं बांटी जायेंगी, तो घट जायेंगी।

सुना है मैंने, एक फकीर एक गृहिणी से भिक्षा माग रहा था। उस गृहिणी ने उसे भरपूर दिया— उसका भिक्षापात्र भर दिया। ऊपर से कुछ कपड़े और कुछ रुपये भी दिये। वह फकीर, वह भिखमंगा बड़ा सुन्दर था। और ऐसा लगता था किसी अच्छे खानदान का होगा। कपड़े तो उसके पास फटे-पुराने थे, लेकिन आँखों में जो चमक थी, चेहरे पर जो रौनक थी, चेहरे का जो ढग था, जो आकृति थी, शरीर में जो लावण्य था—तो गृहिणी पूछने से रुक न सकी, उसने पूछा, तुम्हें देखने से लगता है कि तुम बड़े परिवार के हो, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? तो उस फकीर ने कहा, जो

तुम कर रही हो, वही मैं करता रहा—देता था। जो हालत मेरी है, थोड़े दिन में तुम्हारी भी हो जायेगी।

धन की सीमा है—बंटेगा, तो कम होगा।

आनन्द की कोई सीमा नहीं है—बंटेगा तो बढ़ेगा।

और आनन्द का स्रोत भीतर है। तो जितना तुम उलीचते हो, उतने नये झरने आ जाते हैं।

इसे ऐसा भी समझ लें।

हम एक कुआ खोदते हैं, तो पानी को उलीचते हैं, तो झरने पानी को भरते जाते हैं। कभी आपने सोचा कि ये झरने कहां से आते हैं! ये दूर सागर से जुड़े हैं, ये कभी रिक्त होने वाले नहीं हैं। कुआ सड़ सकता है, अगर उलीचा न जाये; लेकिन अगर उलीचा जाये, तो रोज ताजा और नया होगा। और सागर अनन्त है, जिससे झरने जुड़े हैं।

ध्यान रहे, हमारे भीतर जब आनन्द की घटना घटती है, हम उसे उलीचना शुरू करते हैं, तभी हमें पता चलता है कि आनन्द के झरने ब्रह्म से जुड़े हैं। हम कितना ही उलीचें, वे समाप्त नहीं होते। हम सिर्फ एक कुआ हैं और उसके झरने दूर सागर से जुड़े हैं। वह सागर ही ब्रह्म है। आनन्द बंटने से इसीलिए बढ़ता है, और आनन्द बंटने से ही पूर्ण होता है।

अब हम सूत्र को समझें।

नीरवता में से, जो स्वयं शान्ति है, एक गूंजती हुई वाणी प्रकट होगी। और वह वाणी कहेगी : यह अच्छा नहीं है, काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिये!

बड़ा उलटा है। लोग पहले बोते हैं, फिर काटते हैं।

यह सूत्र कहता है : काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिये।

संसार में हम बोते हैं पहले, काटते हैं बाद में।

अध्यात्म में हम काटते हैं पहले, बोते हैं बाद में।

संसार और अध्यात्म का सम्बन्ध बिलकुल उलटा है। जो यहां जैसा नियम है, ठीक उससे विपरीत वहां नियम है। संसार के सारे नियम अगर हम विपरीत कर लें, तो वे अध्यात्म के नियम हो जाते हैं।

ऐसा समझें—कि कोई आदमी झील के किनारे खड़ा है। झील में मछलियां हैं। वे मछलियां झील में बनते हुए प्रतिबिम्ब को देखती हैं उस आदमी के, तो उनको उस आदमी के पैर ऊपर और सिर नीचे दिखाई पड़ेगा। क्योंकि झील में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वह उलटा बनेगा। लेकिन मछली अगर छलांग लगाके देखे, पानी के ऊपर आके आदमी को, तो बहुत चकित हो जायेगी। वह सोचेगी कि यह आदमी शायद

उलटा खड़ा है, चूंकि नीचे तो जल में, सिर नीचे दिखाई पड़ता है, पैर ऊपर दिखाई पड़ते हैं। छलांग लगाके देखे पानी के ऊपर तो ये आदमी के पैर नीचे दिखाई पड़ते हैं और सिर ऊपर दिखाई पड़ता है! मछलियां लौटके अपने साथी, संगीयों को कहेंगी कि जमीन पर आदमी उलटा खड़ा है।

संसार प्रतिबिम्ब है अध्यात्म का।

सत्य का प्रतिबिम्ब है यहां। यहां जो भी हमें सीधा मालूम पड़ता है, वह सीधा है नहीं। मगर हमारे जगत में सीधा है। जिस दिन हम उठते हैं विचारों के सरोवर से ऊपर, उस दिन हमें लगता है कि सब चीजें उलटी हैं। वे ही ठीक हैं, वे ही सीधी हैं —हमारे विचारों की छाया में। जो प्रतिफलित होता था विचारों के दर्पण में, जो दिखाई पड़ता था, वही उलटा था, वही प्रतिबिम्ब था। वहा तो हमें पहले काट लेना पड़ता है, फिर बोना पड़ता है।

क्यों? आनन्द तो पहले उपलब्ध हो जाता है—इसका अर्थ हुआ कि आपने फसल काट ली। श्वास तो आप पहले भीतर ले लेते हैं, फिर श्वांस छोड़नी पड़ती है। आपने फसल काट ली आनन्द की, दूसरा हिस्सा है कि अब आनन्द के बीज आप बो दें दूर-दिगन्त तक, ताकि और लोग उसकी फसल काट सके। किसी और ने बोया था, उसकी फसल आपने काट ली है।

बुद्ध बोते हैं, महावीर बोते हैं, कृष्ण बोते हैं, क्राईस्ट बोते हैं, मुहम्मद बोते हैं— वह जो भी आनन्द को पा लेता है, वह बोता ही है।

काट पहले लेता है, बोता बाद में है। क्योंकि बोएंगे तो आप तब ही, जब आप काट चुके होंगे। आपके पास होना भी चाहिये न बोने को। जो है ही नहीं, उसे आप बोएंगे कैसे? जो है, वही बोया जा सकता है। तो आनन्द ही जब पास न हो तो आप बोएंगे क्या?

हम सब इस तरह की भूल कर रहे हैं और जगत बड़ी दुविधा में पड़ा है। सब एक दूसरे को आनन्द देने की कोशिश करते हैं, बिना इसकी फिक्र किये कि आनन्द हमारे पास है। इसका परिणाम यह होता है कि हम सब आनन्द देना चाहते हैं और सब दुःख देने में सफल हो पाते हैं। कोई किसी को आनन्द दे नहीं पाता। पति बड़ी कोशिश कर रहा है कि पत्नी को आनन्द दे, और पत्नी दुःखी हो रही है! पत्नी बड़ी कोशिश कर रही है कि पति को आनन्द दे और पति सोच रहा है—कहां की झंझट में पड़ गया, कैसे छुटकारा हो! बाप बेटे को आनन्द देने की कोशिश कर रहा है और बेटा सोच रहा है कि कब मौका आये और मैं निकल भागूं, इस बाप के जाल से! बेटे बाप को आनन्द दे रहे हैं और बाप सिर पीट रहे हैं—कि कहां के कुपुत्र घर में पैदा हो गये हैं! हम सब एक दूसरे को आनन्द देने की कोशिश कर

रहे हैं! और ऐसा नहीं है कि हम सच में कोशिश नहीं करते हैं—हम सच में कोशिश करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है, इसमें कोई शक-शुबह नहीं है कि हम कोशिश नहीं करते। लेकिन हम यह बिना समझे कोशिश करते हैं कि जो हमारे पास नहीं है, उसे हम दूसरे को कैसे दे सकते हैं? पत्नी खुद दुःखी है, और पति को आनन्द देने की कोशिश कर रही है! पति खुद दुःखी है और पत्नी को आनन्द देने की कोशिश कर रहा है! बाप खुद दुःखी है और बेटे को आनन्दित करने की कोशिश कर रहा है! यह निहायत पागलपन है। यह कौन सा गणित है?

जो नहीं है मेरे पास, वह मैं आपको नहीं दे सकता। और यह भी इसके साथ जुड़ा हुआ हिस्सा है कि मेरे पास आनन्द नहीं है, तो मैं दूसरे से लेने की भी कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन जिनसे मैं लेने की कोशिश कर रहा हूँ, यह कभी नहीं देखता कि वे भी मुझ से आनन्द ही लेने की कोशिश कर रहे हैं। जब आप किसी से आनन्द लेने की कोशिश कर रहे हैं, और वह भी आपसे आनन्द लेने की कोशिश कर रहा है, तो आपकी हालत ऐसी है कि दो भिखारी एक दूसरे के सामने भिक्षापात्र रखे खड़े हैं, कुछ दान में मिल जाये। यह दान कैसे घटित होगा? दोनों दुःखी होने वाले हैं, क्योंकि दोनों ही असफल होंगे और दोनों समझेंगे कि दूसरे ने धोखा दिया—दे सकता था और नहीं दिया। जो दे सकता होता, तो देता ही।

आनन्द कुछ बात ऐसी है कि देने से बढ़ता है, इसलिए जो दे सकता है, वह देगा ही। वह रोक नहीं सकता, क्योंकि रोकने से सड़ता है, रोकने से कम होता ह, रोकने से खो जाता है। तो जब देने से कोई चीज बढ़ती है, तो कौन नहीं देगा? देना सभी चाहते हैं, लेकिन है नहीं। लेना सभी चाहते हैं, लेकिन जिनसे लेने गये हैं, वे खुद ही उनसे लेने आए हैं! तो भिखारियों का संसार—एक दूसरे को खूब दुःखी कर देता है। भारी दुःख है। सब जगह शुरू-शुरू में सुख मालूम पड़ता है, फिर धीरे-धीरे दुःख मालूम पड़ने लगता है। सुख तभी तक मालूम पड़ता है, जब तक आशा रहती है कि मिलेगा। जब आशा टूटने लगती है, और एक-एक आशा का कदम क्षीण होने लगता है, एक-एक जड़ कटने लगती है, तो दुःख व्याप्त हो जाता है।

आनन्द पहले काटना होगा, फिर उसके बीज बोने होंगे। फिर उसकी फसल कोई और काटेगा। हम भी जो फसल काटते हैं, वह भी किसी की बोई हुई है, इस अर्थ में। तो बुद्ध आज न हों, लेकिन वह जो बोते हैं, वह हम काटते हैं। जीसस आज न हों, लेकिन वह जो बोते हैं, वह हम काटते हैं। यह विस्तार अनन्त है, अनादि है। यहां सारी मनुष्यता एक ही प्रवाह है।

यह सूत्र कह रहा है : कि जब तुम शांत हो चुके होगे तूफान के बाद—जब तूफान जा चुका होगा, आंधी जा चुकी होगी और नीरवता, परम-शांति तुम्हारे भीतर

प्रकट होगी, और फूल खिलेगा जीवन का, तब उस शांति में से ही तुम्हें एक गूंजती हुई वाणी सुनाई पड़ेगी।

जैसे ही कोई व्यक्ति शांत होता है, तत्क्षण यह प्रतीति उसे होने लगती है। वह वाणी कहेगी, यह अच्छा नहीं है—काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिये। ले तो तुम चुके, अब बांटो। मिल तो तुम्हें गया, अब लुटाओ। मालिक तो तुम बन गये हो, लेकिन अभी मालकियत अधूरी है। अब इसे तुम दो और पूरे मालिक बन जाओ।

क्या आपने कभी सोचा कि जिस चीज को हम दे सकते हैं, उसके ही हम मालिक होते हैं।

यह उल्टा लगता है। जिस चीज को हम दे सकते हैं, उसके ही हम मालिक होते हैं। देने में ही पता चलता है कि हम मालिक थे। अगर आप नहीं दे पाते और चीज को पकड़ते हैं, सोचते हैं देना बहुत मुश्किल है—आप मालिक नहीं हैं, चीज मालिक है। आप जब दे पाते हैं, तो मालिक हैं। मालिक दे सकता है, गुलाम क्या देगा?

और जिस दिन हम आनन्द को दे पाते हैं, उस दिन हमारी आनन्द पर मालकियत हो जाती है।

दुःख तो हम देते ही हैं, बहुत देते हैं, बिना जाने। पता ही नहीं कि हम किस-किस तरह का दुःख किस-किस को देते हैं। किस शब्द से, किस इशारे से, किस आंख के ढंग से, किसको हम दुःख पहुंचा देते हैं, इसका हमें पता ही नहीं। हम तो दुःख देते ही रहते हैं चारों तरफ। हमारे उठने में, बैठने में, दुःख का जहर फैलता रहता है। वह हमारे भीतर भरा है, हम कुछ कर भी नहीं सकते। हम उसे रोकें भी, तो वह मिथ्या है। हम चाहके दीवालें भी बना लें, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वह दूसरा रास्ता खोजके बहेगा और कहीं न कहीं से निकलेगा। झरने रोके नही जा सकते। दुःख तो हम देते हैं। हमारा जीवन ही दुःख का बांटना है। लेकिन यह अगर हमें ख्याल आ जाये कि हम दुःख बांट रहे हैं—कोई मानता नहीं है यह, आप कितना ही किसी को दुःख दें, कोई आप से कहे तो आप कभी मानने को राजी नहीं होते कि आप दुःख देते हैं। आप तो कहेंगे कि यह गलत बात है, समझ की भूल है। मैं तो सुख ही दे रहा हूँ। हालांकि आप भी दूसरों से दुःख पाते हैं, वे भी यही कहते हैं कि हम तो सुख ही दे रहे हैं। आप दुःख पा रहे हैं, तो आपकी गलती है। सब सुख दे रहे हैं, और किसी को सुख नहीं मिल रहा है, फिर भी यह बोध नहीं आता है कि यहां कहीं जरूर कोई बुनियादी भूल हो रही है।

एक सूत्र स्मरण रख लें—कि जो आपके पास है, वही आप दे सकते हैं, अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

यह स्वाभाविक है कि हम दुःख दें और दुःख पायें। और इस तरह दुःख को बना करें। यह तब तक जारी रहेगा, जब तक तूफान आपके दुःख को न छीन ले। क्यों दे रहे हैं लोगों को? तूफान उठाएं और दुःख की सारी धाराओं को तूफान को ले जाने दें। यह तब तक जारी रहेगा, जब तक आप दुःख को आकाश में विसर्जित करने की कला न सीख जाएं, तब तक आप किसी न किसी पर दुःख विसर्जित करेंगे।

एक युवक मेरे पास आया। वह अमेरिका से भाग कर आया था और भागने का कारण था। मनस्-विश्लेषण में पाया गया कि वह अपने बाप की हत्या करने को आतुर है। और उसने भी समझ लिया कि वह बात सच है। उसके मन में एक ही कल्पना बार-बार पकड़ती है कि बाप को मार डालें—बाप ने उसको सताया है। फिर मां उसको छोड़ कर चली गई, फिर बाप ने दूसरी शादी कर ली। फिर सब तरह की पीड़ाएं उसने झेली हैं। और बाप के प्रति गहन घृणा उसके मन में है। जब मनस्विदों ने उसे कहा कि यह विचार तेरे मन को घेरे हुए है और कहीं यह प्रकट न हो जाये, तो वह खुद भी भयभीत हो गया। वह इसलिए हिन्दुस्तान चला आया है कि न रहेगा बाप के पास और न यह उपद्रव की सम्भावना होगी।

वह मेरे पास आया, मैंने कहा कि तू कहीं भी भाग, जिस दिन तुझे बाप की हत्या करनी है, उस दिन तू बाप के पास पहुंच जायेगा। भाग तू सकता नहीं ऐसे, क्योंकि अपने से कैसे भागेगा? बाप से भाग सकता है; लेकिन तेरा वह जो हत्या करने वाला मन है, वह तेरे भीतर है, वह तेरे साथ है, वह और सघन हो जायगा। उसने कहा, मैं क्या करूं? मैंने कहा, तू बाप की हत्या कर ही दे। उसने कहा कि आप क्या कहते हैं! आप होश में हैं? आप जैसा आदमी मैंने नहीं देखा! मैं आपके पास शान्त होने आया हूँ, आप कहते हैं बाप की हत्या ही कर दें!

तो मैंने उससे कहा कि जाकर सचमुच में बाप की हत्या करने की जरूरत नहीं है। मेरे कमरे में एक तकिया पड़ा था। मैंने उसको कहा कि यह तकिया तू ले जा, इसको तू अपना बाप समझ, इस पर तू बाप का नाम भी लिख दे, इस पर बाप की तस्वीर भी लगा दे, और बाजार से एक छुरा खरीद ला। उसने कहा कि आप भी क्या मजाक कर रहे हैं! पर देखा मैंने कि उसकी आंखों में चमक आ गई और प्रसन्नता आ गई। उसका उदास चेहरा प्रफुल्लित दिखाई पड़ा। मैंने कहा, तू बेफ़िक्री से रोज हत्या कर। एक दिन से भी क्या होगा? तू आधे घण्टे का उपक्रम ही बना ले—कि सुबह पहला कार्य बाप की हत्या करने का है। उसने कहा, लेकिन इसमें क्या रस आयेगा? मैंने कहा, तू इसे शुरू कर। सात दिन बाद मुझे तू आकर बताना।

सात दिन बाद वह आया, वह कहने लगा कि आपने क्या किया मुझे? आधा घण्टे में दिल नहीं मानता है, कभी-कभी तो घण्टे, डेढ़ घण्टे ऐसी पिटाई करता हूँ, छुरा

भी मारता हूँ; और चित्त ऐसी शान्ति अनुभव करता है उसके बाद...और उसने कहा कि इधर दो दिन से एक नई घटना घट रही है कि मुझे अपने बाप पर दया आने लगी है। घृणा विसर्जित हो गई है और मुझे दया का भाव आता है।

मैंने कहा कि तू जारी रख तीन सप्ताह। और तीसरे सप्ताह उसने आके मुझे कहा कि मुझे क्षमा कर दें, और मुझे आज्ञा दे कि मैं जाऊं और अपने बाप के चरणों में सिर रखके क्षमा मांग लूं। मेरे मन से सारी घृणा निकल गई है। और अब मुझे लगता है कि बाप का कोई कसूर नहीं था—परिस्थितिया ऐसी थीं। और अब मुझे सिर्फ दया का भाव है। और अब मुझे ऐसा भी पश्चात्ताप लगता है कि मैंने तीन सप्ताह अपने पिता के साथ कैसा व्यवहार किया! उससे मैं पूछता था, तो उसने कहा कि तीन दिन के बाद तकिया खो गया और मेरा पिता मौजूद हो गया—प्रोजेक्शन पूरा हो गया।

जो वह साल भर मनसूचिकित्सा से संभव न हो पाया, वह तीन सप्ताह तूफान पैदा करने से सम्भव हो गया।

वह युवक वापस लौट गया और उसके पिता का पत्र मेरे पास आया कि आपने मेरा बेटा मुझे वापस लौटा दिया—इसलिए जितना अनुग्रह मानूं थोड़ा है। और मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि इस बेटे में, और ऐसा सरल भाव आ जायेगा, कि यह कभी मेरे चरणों पर सिर रख देगा—यह तो कल्पना के बाहर था। मैं तो सोच ही चुका था कि बात समाप्त हो गयी, अब इस बेटे का आमना-सामना करना भी ठीक नहीं है।

जो भी आपके भीतर है, दुःख है, पीड़ा है, संताप है, उसे खुले आकाश में छोड़ने की सामर्थ्य चाहिये, तो आप दुःख से मुक्त होंगे।

व्यक्तियों पर निकालने की कोई जरूरत नहीं है। व्यक्तियों पर भी निकालके आप करते क्या हैं? व्यक्ति भी खूटियां हैं। जब आकाश जैसे बड़ी खूंटी उपलब्ध हो, तो क्या छोटे-छोटे व्यक्तियों को खोजना? और सब व्यक्ति वैसे ही दुःख से बहुत भरे हैं, उन पर और दुःख क्या लादना? पत्नी आपकी वैसे ही दबी और मरी जा रही है। पति आपका वैसे ही टूटा जा रहा है। अब उस पर और क्या दुःख फेंकना, और क्या क्रोध करना? यह खुला आकाश काफी बड़ा है—यह छाती इतनी बड़ी है कि आपके बोझ से थकेगी नहीं। इस खुले आकाश मे अपने दुःख को उड़ जाने दें। इस दुःख का कहीं कोई पता भी नहीं चलेगा, यह लीन हो जायेगा।

आकाश में सभी कुछ लीन हो जाता है—आप तक लीन हो जायेंगे, तो आपके दुःख की क्या बिसात है? कल आप नही थे, इसी आकाश से आपका आगमन हुआ था; कल आप फिर नहीं हो जायेंगे, इसी आकाश में फिर खो जायेंगे। पृथ्वियां बनती हैं और खो जाती हैं, सूरज जलते हैं और चुक जाते हैं, तारे बनते हैं और बिखर

जाते हैं, सदियां आती हैं और लीन हो जाती हैं—यह आकाश सबको पी लेता है। यह आपका दुःख ना-कुछ है, इसे आकाश को दें, यह उसे पी लेगा।

तूफान उठायें, और दुःख को बह जाने दें, और उसके बाद आपको आनन्द की झलक शुरू होगी। इस शून्यता में, इस नीरवता में जो तूफान के बाद आयेगी; आपको निरन्तर, सतत अनुभव होने लगेगा।

यह अच्छा नहीं है, काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिये। वह वाणी स्वयं नीरवता ही है, यह जानकर तुम उसके आदेश का पालन करोगे।

इस आदेश से बचा नहीं जा सकता, क्योंकि यह आदेश कहीं बाहर से नहीं आ रहा है—यह तुम्हारी अपनी अन्तर-आत्मा की आवाज है। यह तुम्हारा ही आदेश है—यह तुमने अपने लिए ही दिया है, इसलिए तुम इससे बच न सकोगे।

ध्यान रहे, दूसरे का आदेश बोझ हो जाता है। अगर हम उसे करते भी हैं तो कर्तव्य मानकर। कर्तव्य गन्दा शब्द है। इसका मतलब है—करना पड़ रहा है, वह आनन्द नहीं है। कोई मुझे आकर कहता है कि मां की सेवा कर रहा हूँ, क्योंकि यह कर्तव्य है। तो मैं उससे कहता हूँ कि तू सेवा मत कर, क्योंकि जब तू कह रहा है कि कर्तव्य है, तो उसका अर्थ है, मां के लिए तेरे मन में कोई प्रेम नहीं है। जो भी कर्तव्य शब्द का उपयोग करता है, वह कह रहा है कि प्रेम मेरा नहीं है।

जहां प्रेम होता है, वहां कर्तव्य नहीं होता, वहां आनन्द होता है।

यह कहना कि मेरी मां है, इसलिए सेवा कर रहा हूँ, क्योंकि मेरा प्रेम है। यहां कोई कर्तव्य का सवाल नहीं है। करना चाहिये, इसलिए कर रहा हूँ, तब तो बात ही व्यर्थ हो गई।

लेकिन फर्क है।

कर्तव्य का आदेश मिलता है बाहर से और प्रेम का आदेश मिलता है भीतर से। प्रेम का आदेश तुम्हारा ही आदेश होता है, इसलिए पूरा करने में प्रसन्नता होती है। कर्तव्य का आदेश किसी और का होता है—शास्त्र का, समाज का, गुरु का; किसी और का—परम्परा का, व्यवस्था का—कहीं और से आदेश आता है। और तुम्हें उसको पूरा करना पड़ता है। तुम पूरा करते हो, लेकिन मन-हृदय वहां होता नहीं है।

तुम निबटाते हो, तुम किसी तरह बोझ को ढोते हो। और तब तुम्हारे कर्तव्य से आई हुई सेवा में जहर हो जाता है। तब तुम समझते हो कि तुम बड़ी सेवा कर रहे हो, और जिसकी तुम कर रहो हो, उसको लगता है कि तुम कुछ नहीं कर रहे हो। क्योंकि तुम्हारा हृदय, तुम जो करते हो उसमें मौजूद न हो, तो दूसरे को समझ में आ जाता है। छोटे-छोटे बच्चे तक समझ लेते हैं, बाप कर्तव्यवश उनकी पीठ सहला रहा है, मुस्करा रहा है। छोटे बच्चे भी समझ जाते हैं कि मुस्कुराहट झूठी है और यह जो

पीठ ठोंकी; ठोंकी जरूर, लेकिन सिर्फ हाथ था वहां, हृदय नहीं था। छोटे बच्चे भी जान जाते हैं कि नहीं, यहां हृदय नहीं है। पहचान जाते हैं।

हम सब यहां एक दूसरे को पहचान जाते हैं। धोखा देना सम्भव नहीं है, क्योंकि हृदय जहां मौजूद होता है, उसका रस अनुभव में आ ही जाता है। हृदय जहां मौजूद नहीं होता, वहां सूखापन अनुभव में आ ही जाता है।

लेकिन तुम इस आदेश का पालन करोगे, क्योंकि यह तुम्हारी ही अन्तर-आत्मा का आदेश है।

तुम जो अब शिष्य हो···तुम जो अब सीखन में समर्थ हो गये हो, तुम—जिसने अपने हृदय को शून्य कर लिया है, पूरी तरह झुका दिया है—अपने पैरों पर खड़े रह सकते हो।

यह बड़े मजे की बात है। जो झुकने को राजी है, वह अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ हो जाता है। और जो झुकने को राजी नहीं है, वह सदा दूसरे पर निर्भर होता है। यह बड़ी उलटी बात है। लेकिन ऐसा ही है, क्योंकि जो झुकने में समर्थ है, इस जगत की सारी शक्ति उसकी तरफ बहनी शुरू हो जाती है। जो अकड़के खड़ा रहता है, वह *अपनी ही शक्ति को गवाता है, इस जगत की शक्ति उसे उपलब्ध नहीं होती।*

लाओत्से कहता था, कि तूफान आता है तो बड़े वृक्ष अकड़के खड़े रहते हैं और गिर जाते हैं। छोटे पौधे तूफान के साथ ही झुक जाते हैं; तूफान निकल जाता है। बड़े वृक्षों की जड़ें उखड़ जाती हैं, वे नीचे पड़े होते हैं; छोटे पौधे वापिस खड़े हो जाते हैं। तूफान छोटे पौधों को जीवन दे जाता है। अकड़े हुए, अहंकारी वृक्षों को नष्ट कर जाता है। एक ही तूफान है—और कमजोर बच जाता है, और ताकतवर टूट जाता है!

बड़ी अजीब बात है। वृक्ष बड़ा ताकतवर था, उसी अकड़ में तो वह खड़ा रहा था। और उसने कहा था, आने दो तूफान को—हम झुकने वाले नहीं हैं। टूट जायेंगे, पर झुकेंगे नहीं। छोटे-छोटे पौधे थे, उन्होंने न तो कोई अकड़ दिखाई, न उन्होंने तूफान से कोई संघर्ष लिया, बल्कि तूफान के साथ खेले और तूफान ने जब उन्हें झुकाया, तो वे झुक गये। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को झुकाए, कहीं कोई दुश्मनी न थी, यह प्रेम का ही एक अनुभव था। तूफान उन्हें नहला गया, उनकी धूल-धमास झाड़ गया, तूफान उन्हें ताजा कर गया, उनके पुराने सूखे पत्ते गिरा गया। और तूफान जा चुका और वे पौधे फिर खड़े हैं, पहले से भी ज्यादा हंसते, पहले से भी ज्यादा जीवन्त और प्रफुल्लित—आकाश में उनका सिर उठा है।

कमजोर थे वे, लेकिन किसी और भाषा में; जो मैं कह रहा हूँ, उस जगत की उलटी भाषा में—वे ताकतवर सिद्ध हुए। और जो ताकतवर थे इस जगत की भाषा में, वे कमजोर सिद्ध हुए और जमीन पर पड़े हैं। अब उठ नहीं सकते, उनकी जड़ें उखड़

गई हैं। अपने ही अहंकार ने उनको मिटा दिया है। तूफान ने नहीं मिटाया, क्योंकि तूफान मिटाता, तो इन छोटे पौधों को भी मिटा देता। तूफान ने कुछ भी न किया; तूफान तो गुजरा था। उन्होंने कुछ किया, जिससे वे मिटे। और इन छोटे पौधों ने कुछ किया, जिनसे वे बचे।

जिसको हम ताकत कहते हैं संसार की भाषा में—वह अध्यात्म की भाषा में कमजोरी है। और जिसको हम कमजोरी कहते है संसार की भाषा में—वह अध्यात्म की भाषा में ताकत है। झुकना कमजोरी है संसार में। मत झुको, चाहे कुछ भी हो; कहीं झुकना मत।

अध्यात्म की भाषा में झुकना—शक्ति को आमन्त्रण है।

और जो झुक जाता है, वह सब तरफ से भर जाता है। सारे जगत की शक्ति उसकी तरफ दौड़ने लगती है। वह गड्ढे की तरह हो जाता है। उसका निमन्त्रण चारों तरफ सुना जाता है। अकड़ा हुआ आदमी पहाड़ के शिखर की तरह हो जाता है। वर्षा होती है, शिखर पर भी होती है, लेकिन शिखर पर टिक नहीं सकती। शिखर बहुत अकड़ा हुआ है। वर्षा जाकर झीलों में समा जाती है। झीलें खाली हैं, झुकी हुई हैं। होती है वर्षा शिखर पर, लेकिन झील पानी को पी लेती है। क्योंकि झील खाली है, इसलिए भर जाती है। और शिखर पहले से ही भरा है, इसलिए खाली रह जाता है।

यह सूत्र कहता है कि तुम जो अब शिष्य हो—झुकने में समर्थ, विनम्र हो गये, समर्पित हो गये—अपने पैरों पर खड़े रह सकते हो।

अब तुम्हारे पैरों में बल आ गया है, क्योंकि यह बल अब अहंकार का नहीं है, यह बल विनम्रता का है। यह बल अब तुम्हारा नहीं है, यह बल अब समस्त शक्ति का है। यह समस्त अस्तित्व तुम्हें बल दे रहा है।

तुम सुन सकते हो...वह अहंकार गया, जो सुनने न देता था। वह अकड़ गई, जो सुनने में बाधा बनती थी।

मैं देखता हूँ, मेरे पास अक्सर पण्डित आ जाते हैं, वे सुन नहीं सकते। मैं बिलकुल प्रत्यक्ष देखता हूँ कि मैं बोल रहा हूँ, लेकिन वे सुन नहीं रहे। जब मैं बोल रहा हूँ, तब भी वे सोच रहे हैं कि उन्हें मेरे बोलने के बाद क्या कहना है? जब मैं बोल रहा हूँ, तब भी भीतर अपना गणित बिठा रहे हैं कि क्या सही कह रहा हूँ? शास्त्र के अनुकूल है, कि प्रतिकूल है? अपना मन्तव्य बैठेगा कि नहीं? वे बिठा रहे हैं! मैं उनके चेहरे को देखके साफ समझता हूँ कि वे सुन नहीं रहे हैं, वे तैयारी कर रहे हैं, वे बोलने के लिए तैयार हो रहे हैं। और जब मैं चुप होता हूँ, तो जहां से वे बोलना शुरू करते हैं, वह स्थान वह नहीं है, जहां से मैंने बोलना समाप्त किया। वहां

मैंने जो बोला है—जैसे उन्होंने सुना ही नहीं है। वह जो मैंने बोला है, जैसे उनके कान पर पड़ा ही नहीं है। वे किसी और ही लोक से बोलना शुरू करते हैं।

आप खुद ही ख्याल करना, जब आप किसी को सुनते हैं, तो सच में आप सुनते हैं? या आप भीतर बोले चले जाते हैं? अगर आप भीतर बोल रहे हैं, तो आप सुन नहीं रहे हैं, क्योंकि बोलना और सुनना साथ-साथ नहीं हो सकता। अगर भीतर बोल रहे हैं, तो आप सुन नहीं रहे। हां, कुछ-कुछ भनक पड़ जायेगी। उसी भनक के सहारे पर आप बोलना शुरू करेंगे, जब एक चुप हो जायेगा। लेकिन जो दूसरे ने कहा है, वह बड़ा चकित होगा, क्योंकि यह तो उसने कहा नहीं, जो आपने समझा है। और अगर वह भी, जब आप बोल रहे हैं, अपने भीतर बोल रहा हो; तो यह बातचीत दो पागलों के बीच हो रही है। इसमें से कुछ अर्थ नहीं निकल सकता। यह व्यर्थ का विवाद हो रहा है। यह व्यर्थ की आवाज एक दूसरे की तरफ फेंकी जा रही है। यह संवाद नहीं है।

यह सूत्र कहता है कि तुम अब सुन सकते हो, क्योंकि अब भीतर वह जो अहंकार की गूंज चलती रहती थी, बन्द हो गई है।

देख सकते हो, बोल सकते हो।

और जो सुन सकता है, वही बोल सकता है। और जो देख सकता है, वही बोल सकता है। बोलने के पहले सुनने की कला आ जानी चाहिये। क्योंकि तुम्हारे बोलने में तब ही अर्थ होगा, जब तुम शून्य होकर सुनने के योग्य हो गये होओ। क्योंकि बोलने योग्य बात शून्य में ही सुनी जाती है। तो जिन्होंने मौन को नहीं साधा, उनकी वाणी का कोई भी मूल्य नहीं है। जिन्होंने चुप्पी की कला नहीं सीखी, उनके शब्द व्यर्थ हैं।

दो तरह से बोलना हो सकता है। कोई आदमी शास्त्र को पढ़ ले और बोले। वह भी बोलना है। और कोई आदमी गहरे ध्यान में उतरे, मौन हो जाये, शून्य हो जाये और बोले। वह भी बोलना है। लेकिन दोनों के बोलने में जमीन-आसमान का फर्क है।

एक वाणी पण्डित की है, और एक वाणी ज्ञानी की है। पण्डित की वाणी कुशल हो सकती है, टेक्निकली सुन्दर हो सकती है, स्पष्ट हो सकती है, तर्कयुक्त हो सकती है, लेकिन सत्य नहीं हो सकती, क्योंकि सत्य उसका अनुभव नहीं है। अनुभव से जो वाणी आयेगी—और अनुभव आता है शून्य में, मौन में, नीरवता में। तूफान के बाद नीरवता आती है, उसमें अनुभव आता है, उस अनुभव की वाणी में—तब ही बोलने में कोई समर्थ है।

महावीर बारह वर्ष चुप रहे, मौन रहे। बहुतों ने कहा कि बोलें। पर नहीं बोले। बारह वर्ष के बाद बोलना शुरू किया। यह बारह वर्ष जब तक उनको स्पष्ट न हो गया

कि पूर्ण शून्यता, पूर्ण नीरवता आ गई है, तब तक बोलने का कोई अर्थ नहीं है। क्या बोलना है? किससे बोलना है? जब हम सुन भी नहीं सकते हैं उस अन्तरिक्ष की वाणी को—तो बोलेंगे क्या?

अब तुम बोल सकते हो। जिसने वासनाओं को जीत लिया, और आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया। जिसने अपनी आत्मा को विकसित अवस्था में देख लिया और नीरवता के नाद को सुन लिया है।

तुम अब उस ज्ञान-मन्दिर में जाओ, जो परम-प्रज्ञा का मन्दिर है, और जो कुछ तुम्हारे लिए वहां लिखा है, उसे पढ़ो।

यह तो प्रतीक है। लेकिन जो परिपूर्ण नीरव हो गया, शून्य हो गया, शान्त हो गया, उसके सामने जगत का रहस्य खुल जाता है—इस जगत का जो रहस्य-शास्त्र है, इस अस्तित्व के भीतर ही छिपी हुई जो ज्ञान की कुंजियां हैं। अगर इस अस्तित्व की कल्पना करें, एक प्रतीति कि इसके गहन अन्तस्तल में कहीं छिपा हुआ एक प्रज्ञा का मन्दिर है, तो उसके द्वार में प्रवेश मिल जाता है।

यह सूत्र कहता है : यह भीतर की अन्तर-वाणी ही तुमसे कहेगी, नीरवता तुमसे कहेगी कि अब तुम तैयार हो गये हो, और जाओ उस परम-प्रज्ञा के मन्दिर में। जो तुम्हारे लिए वहां लिखा है, उसे पढ़ो।

नीरवता की वाणी सुनने का अर्थ है यह समझ जाना—कि एक मात्र पथ-निर्देश अपने ही भीतर से प्राप्त होता है।

जब तक तुम मौन नहीं हो, तब तक तुम्हारी आत्मा तुम्हें पथ-निर्देश न दे सकेगी। तब तक तुम्हें किसी गुरु की शरण लेनी पड़ेगी। वह शरण इसलिए लेनी पड़ रही है कि तुम अपने ही भीतर छिपी हुई गुरु-वाणी को सुनने में असमर्थ हो। तुम इतने शोरगुल से भरे हो कि वह भीतर की जो बहुत धीमी, बहुत बारीक, बहुत सूक्ष्म आवाज है, वह खो जाती है तुम्हारे नाद में, तुम्हारे उपद्रव में, तुम्हारे शोरगुल में, तुम्हारे भीतर के मन की भीड़ में। वह कहीं सुनाई नहीं पड़ती, इसलिए जरूरत है कि बाहर से कोई गुरु तुम्हें आदेश दे, निर्देश दे, मार्ग बताए। अन्यथा कोई जरूरत नहीं है, तुम्हारे भीतर तुम्हारा गुरु छिपा है। लेकिन भीतर की आवाज तुम नहीं समझ सकते हो, इसलिए बाहर किसी गुरु की तलाश करनी पड़ती है। उपयोगी है वह तलाश। और तब तक जरूरी है, जब तक कि तुम भीतर के गुरु की आवाज सुनने में समर्थ न हो जाओ।

और जिस दिन भीतर के गुरु की आवाज तुम सुन लेते हो, बाहर के गुरु का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम बाहर के गुरु के प्रति उस दिन अवज्ञा से भर

जाते हो, बल्कि उस दिन ही तुम पूरा अनुग्रह अनुभव करते हो, क्योंकि उसने ही तुम्हें, तुम्हारे भीतर के गुरु से मिला दिया है।

कबीर ने कहा है : 'गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव'।

वह गुरु खड़ा है बाहर वाला और अब गोविन्द भी प्रकट हो गये हैं, भीतर का गुरु भी प्रकट हो गया है। कबीर पूछते हैं कि अब मैं बड़ी दुविधा में पड़ा हूँ, दोनों मेरे सामने खड़े हैं : 'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाव'। और तब कबीर कहते हैं कि मैंने गुरु के ही पैर छुए, क्योंकि 'बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो बताय'। बाहर का गुरु विदा हो जाता है भीतर के गुरु को बता कर। फिर यात्रा नितान्त अन्तस् की है। फिर स्वयं के अतिरिक्त वहां कोई भी नही है।

...नीरवता की वाणी सुनने का अर्थ है—यह समझ जाना कि एकमात्र पथ-निर्देश, अपने ही भीतर से प्राप्त होता है। प्रज्ञा के मंदिर में जाने का अर्थ है, उस अवस्था में प्रविष्ट होना, जहां ज्ञान-प्राप्ति सभव होती है। तब तुम्हारे लिए वहां बहुत से शब्द लिखे होंगे और वे ज्वलन्त अक्षरों में लिखे होंगे, जिससे तुम उन्हें सरलता से पढ़ सको। क्योंकि जब शिष्य तैयार हो जाता है, तो श्री गुरुदेव भी तैयार ही हैं।

वह जो भीतर का परम-गुरु है, तुम जिस दिन शिष्य बनने को पूरी तरह तैयार हो जाते हो, वह तुम्हें उपलब्ध हो जाता है। लेकिन वह शिष्यत्व की प्रक्रिया पहले तुम्हें किसी बाहर के गुरु के साथ सीखनी पड़ती है। एक बार तुम शिष्यत्व मे पूरी तरह निष्णात हो जाते हो, बाहर का गुरु विदा हो जाता है, भीतर का गुरु प्रकट हो जाता है। भीतर का गुरु सदा तैयार है, सिर्फ तुम्हारी तैयारी की प्रतीक्षा है। जिस दिन तुम तैयार हो, वह तैयार था ही। इस अन्तरवाणी को सुन लेने के बाद—फिर जीवन मे कोई भटकाव नहीं है। फिर जीवन मे कोई भूल-चूक नहीं होती। फिर होने का कोई उपाय न रहा, क्योंकि अब चलने वाला और चलाने वाला दोनों एक हैं।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

अब शिष्य और गुरु दोनों एक हैं। जब तक बाहर का गुरु था और आप शिष्य थे, तब तक फासला तो रहेगा ही। कितनी ही आत्मीयता हो, और कितनी ही गहरी श्रद्धा हो, और कितनी ही निकटता हो और कितनी ही आस्था हो—फासला तो रहेगा ही। क्योंकि बाहर फासले के ही सम्बन्ध होते हैं। निकटता भी फासला ही है। लेकिन इस फासले को तुम कम करते जाना, एक सीमा आयेगी उसके बाद और कुछ कम करने को नही बचेगा। जिस दिन ऐसा लगे कि बाहर के गुरु और मेरे भीतर, अब कम करने को कुछ भी नही बचा, उस दिन तुम पाओगे कि बाहर का गुरु विलीन हो गया—भीतर का गुरु प्रकट हो गया। जैसे सौ डिग्री पर अचानक पानी भाप बन जाता है, ऐसे ही गुरु के पास आने की एक डिग्री है। बाहर के गुरु के निकट आने

की एक सीमा है। एक ऐसा क्षण कि जहां बाहर का गुरु तुमसे कहे कि कूद पड़ो और मर जाओ, तो भी तुम्हारे भीतर से हाँ ही निकले। तो उसी क्षण बाहर का गुरु विलीन हो जायेगा, भीतर का गुरु प्रकट हो जायेगा। जब तक बाहर के गुरु को किसी भी अर्थ में 'नहीं' कह सकते हो, तब तक फासला कायम है और तब तक भीतर के गुरु की आवाज सुनाई नहीं पड़ सकती।

श्रद्धा का यही अर्थ है : सम्पूर्ण रूप से 'हाँ' का भाव।

जिस दिन यह हो जायेगा, उसी दिन बाहर के सहारे की जरूर समाप्त हो गई। अब तुम उस आस्था को उपलब्ध हो गये, जिस आस्था में भीतर का गुरु प्रकट हो सकता है।

जीवन-संग्राम में साक्षीभाव

प्रवचन : १० अप्रैल ११, १९७२, सुबह
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

१. भावी जीवन-संग्राम में साक्षीभाव रखो। और यद्यपि तुम युद्ध करोगे, पर तुम योद्धा मत बनना।

वह तुम्हीं हो, फिर भी तुम सीमित हो और भूल कर सकते हो। वह शाश्वत और निःसंशय है। वह शाश्वत सत्य है। जब वह एकबार तुममें प्रविष्ट हो चुका और तुम्हारा योद्धा बन गया, तो फिर वह तुम्हें कभी सर्वथा न त्याग देगा और महाशान्ति के दिन वह तुमसे एकात्म हो जायेगा।

२. सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो।

उसे खोजने में सतर्क रहो, नहीं तो लड़ाई के आवेश और उतावलेपन में तुम उसके पास से निकल जाओगे। और वह तुमको तब तक न पहचानेगा, जब तक तुम स्वयं उसे न जान लो। यदि उसके ध्यान से सुनने वाले कानों तक तुम्हारी पुकार पहुंचेगी, तो वह तुम्हारे भीतर से लड़ेगा और तुम्हारे भीतर के नीरस शून्य को भर देगा।

३. युद्ध के लिए उसका आदेश प्राप्त करो और उसका पालन करो।

सेनापति मानकर उसकी आज्ञाओं का पालन न करो, वरन् इस प्रकार करो मानो कि वह तुम्हारा ही स्वरूप है और उसके शब्दों में मानो तुम्हारी ही गुप्त इच्छाएं मुखरित हो रही हैं। क्योंकि वह स्वयं तुम्हीं हो, परन्तु वह तुमसे असीम रूप से अधिक ज्ञानी और शक्तिशाली है।

जीवन में विजय के दो मार्ग है।

एक : कि तुम लड़ो और जीतने की कोशिश करो। लेकिन वह मार्ग सिर्फ आभास-मार्ग है। लड़ाई तो बहुत होगी, लेकिन विजय हाथ न लगेगी। लड़ोगे तुम जरूर—और बहुत बार ऐसा लगेगा कि जीत बिल्कुल करीब है, फिर भी तुम पाओगे कि जीत कभी हाथ में नहीं आती। जीत चूकती ही चली जायेगी। सदा लगेगा कि भविष्य मे विजय हो सकेगी। तुम्हारा तर्क, तुम्हारी बुद्धि सच कहेंगे कि विजय सम्भव है, लेकिन विजय सम्भव नहीं होगी।

उसके कारण हैं, क्योंकि जिससे तुम लड़ रहे हो, वह तुम्हारा ही हिस्सा है। जैसे कोई अपने ही दोनों हाथों को लड़ाए—तो जीत क्या होगी? किसकी होगी? कैसे होगी? दोनों हाथों के भीतर मैं ही हूँ। यदि मैं चाहूँ तो बाएँ हाथ को दाएँ हाथ से लड़ा सकता हूँ। लेकिन इससे इस भ्रान्ति में मत पड़ना, कि दायाँ हाथ मैं हूँ, कि बायाँ हाथ मैं हूँ और दूसरा हाथ मैं नहीं हूँ। लड़ाई हो सकती है, लेकिन वह लड़ाई व्यर्थ होगी—न तो दायाँ जीत सकता है, न बायाँ। चाहूँ तो मैं किसी को जिताने के भ्रम में पड़ सकता हूँ, कि मैं दायें को ऊपर कर लूं और बाएँ को नीचे कर लूं, और सोचूं कि दायाँ जीत गया है। लेकिन यह जीत बिलकुल मिथ्या है, क्योंकि किसी भी क्षण मैं बाएँ को ऊपर कर सकता हूँ।

चूंकि दोनों के भीतर मैं ही लड़ रहा हूँ, इसलिए जीतने का कोई उपाय नहीं है, हारने का भी कोई उपाय नहीं है। न तो कभी पूरी हार होगी, न कभी पूरी जीत होगी। एक बात निश्चित है कि इस संघर्ष में, इन दोनों हाथों की लड़ाई में, जो मेरे हैं, मेरी शक्ति क्षीण होगी, व्यय होगी, और नष्ट होगी। इस मार्ग से जो चलेगा, वह सिर्फ चूकेगा। जीतेगा कभी नहीं, हार भी कभी पूरी न होगी और भ्रम बना ही रहेगा कि

जीत हो सकती हो।

इसे हम समझने की कोशिश करें...क्योंकि हमने इसी रास्ते को जन्मों-जन्मों से पार किया है। इसलिए न तो हम जीत गये हैं, न हम हार गये हैं। तुम जहां खड़े हो, वह जगह न तो जीत की है और न हार की है। तुम अगर हार भी गये होते तो, तुमने दूसरा रास्ता चुन लिया होता! हार भी पक्की न हो पायी, और आशा जीत की बनी हुई है। और जीत भी न हो पायी। क्रोध से तुम लड़ते हो। क्षण भर को लगता है कि जीत जाओगे, लेकिन दूसरे दिन ही पता चलता है कि जीत कल्पना है। क्रोध फिर पकड़ लेता है। तुम काम-वासना से लड़ते हो। क्षण भर को लगता है कि तुम विजेता हो गये, लेकिन फिर तुम हार जाते हो।

और जरा इस प्रक्रिया को ठीक से समझ लेना।

काम-वासना से तुम लड़ते कब हो?

जब काम-वासना का ज्वार उतार पर होता है, तब तुम्हें भ्रम होता है कि तुम जीत रहे हो। काम-कृत्य के बाद अपने आप ही काम-वासना उतार पर होती है। जैसे कि भोजन कर लेने के बाद भूख नष्ट हो गई होती है—उस वक्त तुम सोच सकते हो कि उपवास किया जा सकता है। वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भूख के बाद, भूख मिट जाने के बाद, भोजन के बाद तो आदमी उपवास करता ही है। लेकिन आठ-दस घण्टे के बाद यह निर्णय टिकेगा नहीं, क्योंकि भूख जब फिर वापस आ जायेगी, तो तुम पाओगे कि उपवास मुश्किल है। भरे पेट आदमी उपवास का निर्णय ले सकता है। न भी ले तो भी उपवास की प्रशंसा कर सकता है। भूखे पेट निर्णय टूट जाता है।

जब काम-वासना की शक्ति तुम में भरी होती है, तब तुम कामातुर हो जाते हो। और जब तुम सम्भोग कर चुके हो और काम-वासना की शक्ति विसर्जित हो गई है, वह भूख मिट गई है, तब तुम पश्चात्ताप करते हो। और तब तुम सोचते हो कि किस व्यर्थ के काम में मैं पड़ा हूँ? क्यों जीवन की शक्ति को नष्ट कर रहा हूँ? यह सब क्या है? यह तो पशुओं जैसा है। और तब तुम निर्णय लते हो ब्रह्मचर्य के, लेकिन वह निर्णय झूठे हैं। थोड़ी ही देर बाद जब काम-ऊर्जा पुनः इकट्ठी हो जायेगी, तुम पाओगे तुम्हारे निर्णय टूट गये। स्त्री पुनः सुन्दर मालूम पड़ने लगी है, पुरुष पुनः आकर्षक हो गया है—मन फिर वासना से भर गया है। तो तुम जब, तुम्हारा पेट भरा होता है, उपवास के पक्ष में हो जाते हो। जब तुम्हारा पेट भूखा होता है, तब तुम भोजन के स्वप्न देखने लगते हो। न तो तुम कभी जीतते हो, और न कभी तुम हारते हो। कभी तुम्हें जीत का भ्रम होता है, और कभी तुम्हें हार का भ्रम होता है, लेकिन पूरी कोई भी बात नहीं हो पाती।

इसका कारण क्या है?

क्योंकि जिससे तुम लड़ रहे हो, जो लड़ रहा है, और जिससे लड़ रहा है, वे दोनों एक ही शक्ति के हिस्से हैं। कौन लड़ रहा है काम-वासना से, कौन लड़ रहा है इन्द्रियों से? कौन लड़ रहा है पाप से? कौन लड़ रहा है क्रोध से?

इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना।

जो क्रोध कर रहा है, वही क्रोध से लड़ रहा है। सुबह क्रोध करता है, सांझ क्रोध से लड़ता है—जिसने किया था, वही! तुम अपने को दो में बांट लेते हो। तुममें से अगर कोई ताश खेलने के शौकीन हैं, वे जानते हैं कि ताश का एक खेल होता है, जिसमें अकेला ही खिलाड़ी होता है। वह दोनों तरफ से पत्ते बिछा देता है। एक दफा इस तरफ से चलता है, दूसरी दफा उस तरफ से चलता है! अकेला ही खेलता है और हार-जीत का मजा भी लेता है!

अब यह बहुत मजे की बात है—कौन जीतेगा, कौन हारेगा? वह अकेला ही है इस खेल में! अपने ही साथ लुका-छिपी चलती है।

इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि इस रास्ते पर जहां विजय की आशा रहती है और विजय कभी घटित नहीं होती है। हमने जन्मों-जन्मों की शक्ति नष्ट की है। अधिक लोग आज भी इसी तरह शक्ति नष्ट कर रहे हैं। उनकी भूल स्वाभाविक है, क्योंकि आशा तो बंधती है।

मैं एक घर में मेहमान था। एक बहुत बड़े करोड़पति के घर मेहमान था। वह बड़े वृद्ध थे, अब तो चल बसे। बड़े दानी थे, राजस्थान के ही थे। जब मैं उनके घर मेहमान था, तब उनकी उम्र कोई पैंसठ वर्ष से ऊपर रही होगी। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं जीवन में चार बार ब्रह्मचर्य का नियम ले चुका हूँ। मेरे साथ एक और मित्र थे, वे बड़े प्रभावित हुए। मैंने उनसे कहा कि तुम इतने प्रभावित मत होओ, पहले यह पूछो कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया। क्योंकि चार बार ब्रह्मचर्य के नियम को लेने का मतलब क्या होता है? मतलब होता है कि तीन बार तो टूटा। और जिसका तीन बार टूटा—जल्दी मत करो, उससे पूछो कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? वे वृद्ध रोने लगे और उन्होंने कहा कि आपने ठीक नस पकड़ ली। जिससे भी मैं कहता हूँ कि मैंने चार बार नियम लिया, तो किसी ने मुझसे अब तक नहीं पूछा कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? पांचवी बार इसलिए नहीं लिया कि चार बार हार चुका, तो पांचवीं बार लेने की हिम्मत नहीं पड़ी—समझ गया कि अपने से न हो सकेगा।

पर वह आदमी ईमानदार है। यह भी समझ काफी ईमानदारी की है। यही समझ अगर थोड़ी और गहरी हो—लेकिन वह इतनी गहरी नहीं हो पाई। उन्होंने समझा कि मैं कमजोर हूँ, इसलिए नहीं जीत पाया। लेकिन यह बात गलत है। आप कमजोर नहीं हैं, आप जिस ढंग से लड़ रहे हैं, वह ढंग ही ऐसा है, जिसमें जीत नहीं सकते।

इस फर्क को ठीक से समझ लें—नहीं तो सारी साधना पद्धतियां आपको अनजाने हीन-भाव, हीन-ग्रन्थि से भर देती हैं।

साधु हैं, संन्यासी हैं, वे आपको समझाते हैं कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेना। उनकी बात प्रभावित करती है आपको। क्योंकि काम-वासना के क्षण में आपको लगता है कि आप किसी चीज के गुलाम हो गये हैं। कोई चीज आपको चला रही है, आप अपने मालिक नहीं हैं। इसलिए काम-वासना में दंश है। काम-वासना की जो पीड़ा है, वह काम-वासना नहीं है, वह गुलामी का अनुभव है। ऐसा लगता है कि कोई खींच रहा है जबरदस्ती और मुझे खिंचना पड़ रहा है, और मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिए साधु-संन्यासियों की बात आकर्षक लगती है। सभी चाहते हैं कि हमारी मालकियत हो। हम ऐसे हों कि कोई हमें चला न सके। हम ऐसे हों कि जो हम करना चाहें, वही करें। ऐसी हालत न बने हमारी कि जो हम नहीं करना चाहते, वह भी हमें करना पड़े। वही तो गुलामी है।

तो काम-वासना के खिलाफ बातें सुननी हमें अच्छी लगती हैं। अच्छी लगती हैं इसलिए, क्योंकि उस काम-वासना की गुलामी का हमने अनुभव किया है। तो जब भी कोई कहता है तो हम प्रभावित होते हैं। उस प्रभाव के क्षण मे हम निर्णय भी ले लेते हैं कि ठीक है, अब हम ब्रह्मचर्य पर अपने को रोकेंगे, अब हम लड़ेंगे। लेकिन निर्णय से थोड़ी कोई जीत होती है। निर्णय काफी नहीं है। निर्णय जरूरी है, लेकिन अकेले निर्णय से जीत नहीं होती। क्या रास्ता आप चुनेंगे? कैसा रास्ता आप चुनेंगे? इस पर निर्भर करेगा। यह रास्ता अगर जीत तक जाता ही नहीं है, तो फिर आपका निर्णय सिर्फ भटकायेगा। और आपके निर्णय का एक ही परिणाम होगा, जो हुआ है। और वह यह होगा कि आप दीन-भाव से भर जायेंगे। बार-बार हारेंगे। पराजित होंगे। बार-बार निर्णय टूटेगा और आपको लगेगा मैं निर्बल, मैं कमजोर, मैं नपुंसक—यह मुझसे न होगा। यह तो महावीरों का काम है। यह महावीर वगैरह का कोई लेना-देना नही है।

फर्क आप में और महावीर में यह नहीं है कि आप कमजोर हैं और महावीर ताकतवर हैं। फर्क इतना है कि वे ठीक रास्ते पर हैं, और आप गलत रास्ते पर हैं। और गलत रास्ते पर कोई भी हो, परिणाम नहीं आएंगे। तो सारे धर्मों ने मनुष्य को हीन-ग्रन्थि से भर दिया है।

यह बड़ी हैरानी की बात है। सारे धर्म कहते हैं कि तुम हो परमात्मा, तुम हो मोक्ष, तुम हो ब्रह्म-स्वरूप, लेकिन परिणाम उल्टा दिखायी पड़ता है। जहां-जहां धर्म प्रभावी होता है, वहां लोग अनुभव करते हैं कि हम हैं पापी! धर्म कहते हैं कि तुम हो परमात्मा, लेकिन अनुभव में बैठता है लोगों के कि हम हैं पापी! अनुभव में

बैठता है कि हम हैं दीन-हीन, हमसे कुछ न होगा। क्या कारण होगा कि धर्म जोर तो देते हैं तुम्हारे परम-पुण्य का और परिणाम होता है अपराध का भाव। इनफिरिऑरिटि, गिल्ट, दीनता, हीनता, निर्बलता तुममें पैदा होती है, और तुम्हारे मन में अपने प्रति एक निन्दा गहन हो जाती है कि मैं बुरा हूँ। और ध्यान रहे जिस आदमी को यह भाव पैदा हो गया कि मैं बुरा हूँ, उस आदमी का परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ना बहुत कठिन है, अति कठिन है। इसलिए जितना धार्मिक होता है मनुष्य, उतना ही पाप की भावना से ग्रस्त होता है। होना उलटा चाहिये, लेकिन होता यह है।

और इसके पीछे यही कारण है कि आप जिस रास्ते पर चलते हैं, वह रास्ता सफलता तक जाता ही नहीं। सफलता का आभास तो है, नहीं तो आप चलते नहीं। ऐसा लगता तो है बार-बार कि जीत जायेंगे, लेकिन जीत कभी होती नहीं है।

जो महात्मा आपको समझाते रहते हैं, वे भी नहीं जीते। क्योंकि उन्हें भी मैं निकट से जानता हूँ, एकान्त में वे भी मुझसे वही पूछते हैं, जो आप पूछते हैं। इसलिए आपके महात्माओं में और आपमें रत्ती भर का फर्क नहीं है। फर्क है अगर तो इतना ही कि आप थोड़े ईमानदार हैं, वे ज्यादा बेईमान हैं। जहां वे नहीं जीतते, वहां भी जीत का आभास बनाए रहते हैं।

साधु-सन्त मेरे पास आते हैं। बड़े आचार्य हैं, सैकड़ों उनके शिष्य हैं, सैकड़ों उनके साथ साधु-संन्यासी हैं, वे भी एकान्त में मुझसे पूछते ह कि काम-वासना पर कैसे विजय प्राप्त हो। और ब्रह्मचर्य पर वे किताबें लिखते हैं। ब्रह्मचर्य का लोगों को नियम और व्रत दिलवाते हैं। बड़ा जाल है। मैं उनसे पूछता हूँ कि जब आपको ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं हुआ है, तो क्यों लोगों को ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवा रहे हैं? जिस झंझट में आप फंसे हैं, लोगों को क्यों फंसा रहे हैं? ईमानदारी से कहो कि यह मुझे नहीं हो सका, तो शायद रास्ता भी बने। हम सब मिलकर सोचें कि भूल कहां हो रही है? अड़चन कहां है?

भूल यहां हो रही है। आदमी गलत रास्ते से चले, तो परिणाम में सिर्फ विफलता ही आती है। ठीक रास्ता—ठीक रास्ता क्या है? अगर आप अपने से ही लड़ते हैं तो आप जीत नहीं सकेंगे। क्योंकि कौन जीतेगा, और कौन हारेगा? और ये सारी ऊर्जाएं आपकी ही हैं। काम है, क्रोध है, लोभ है—आपकी ऊर्जाएं हैं, आपकी ही शक्तियां हैं।

तब क्या किया जाये?

यह सूत्र आपको बतायेगा, कि क्या किया जाये।

आपके भीतर एक ऐसे बिन्दु को खोजना जरूरी है, जो इन दोनों के पार हो, तो जीत शुरू होगी। काम-वासना है, ब्रह्मचर्य का भी लोभ है—ये दोनों हैं। इन दोनों

में संघर्ष है। ये एक ही तल पर हैं, इनमें जीत नहीं हो सकती। ये समान शक्ति वाले हैं, इनमें जीत नहीं हो सकती। अगर इन दोनों के ऊपर, आपके भीतर एक ऐसा बिन्दु भी खोजा जा सके, जो न तो काम-वासना में आतुर है, न ब्रह्मचर्य में आतुर है।

फर्क समझ लें।

जो न तो कहता है कि मुझे काम-वासना में रस है, न जो कहता है कि मुझे ब्रह्मचर्य में रस है। आपके भीतर अगर एक ऐसा बिन्दु खोजा जा सके, तो वह विजय की तरफ ले जायेगा। उस बिन्दु को ही हमने साक्षी-भाव कहा है, 'विटनेस'। यह जो साक्षी मिल जाये आपके भीतर, जो दोनों के प्रति तटस्थ भाव से देख सके, तो आप जीत की यात्रा पर निकल जायेंगे। क्योंकि उस तीसरे की कोई भी लड़ाई नहीं है। वह किसी से लड़ ही नहीं रहा है। और यह साक्षी होकर देखेगा काम-वासना को भी और ब्रह्मचर्य-वासना को भी। मैं शब्द का प्रयोग करता हूँ—ब्रह्मचर्य-वासना। इसे ठीक से समझ लेना।

काम भी वासना है, ब्रह्मचर्य भी वासना है।

किसी ने कहा नहीं आपको कि ब्रह्मचर्य भी वासना है। लेकिन यह भी वासना है और काम-वासना के विपरीत वासना है। काम-वासना में जब हम परेशान होते हैं, तो हम ब्रह्मचर्य की वासना करते हैं।

क्रोध भी वासना है, और अक्रोध भी वासना है। जब हम क्रोध से थक जाते हैं, जल जाते हैं, घाव पड़ जाते हैं—तब हम अक्रोध की वासना करते हैं। लेकिन वह भी वासना है। क्रोध के जो विपरीत है, वह वासना ही होगी। काम के जो विपरीत है, वह वासना ही होगी। दोनों का तल समान है। विपरीत होने से कोई चीज वासना नही होती, ऐसा मत समझना।

संसार भी वासना है। और अगर ससार से घबड़ा कर आप सन्यास लेते हैं, तो संन्यास भी वासना है।

संसार से घबड़ाकर नहीं—ससार के साक्षी-भाव से जिस संन्यास का जन्म होता है, वह वासना नहीं, वह मुक्ति है।

थोड़ा जटिल है। लेकिन एक बात ख्याल मे रख लें कि विपरीत समान-धर्मा होते हैं। विपरीत असमान-धर्मा नहीं हो सकते।

अगर काम-वासना है तो उसके विपरीत जो ब्रह्मचर्य है, वह भी वासना है। फर्क इतना ही है कि जैसे आप सीधे खड़े हैं पैर के बल, और फिर आप शीर्षासन कर रहे हैं। दोनों आप ही हैं। सिर के बल खड़े भी आप हैं, पैर के बल खड़े भी आप हैं। काम-वासना पैर के बल खड़ी है, ब्रह्मचर्य सिर के बल खड़ा है। लेकिन वह उसी का ही उलटा रूप है। क्या आप इन दोनों वासनाओं के भीतर एक साक्षी-भाव को पकड़

सकते हैं—जो दोनों को देख रहा है, जो दोनों में से किसी के भी पक्ष में नहीं है। जो इसके खिलाफ उसको नहीं चुनता, जो उसके खिलाफ इसको नहीं चुनता। जो दोनों को देख रहा है, जो दोनों का द्रष्टा है। इस द्रष्टा-भाव की ही विजय हो सकती है। क्योंकि इस द्रष्टा को जीतना ही नहीं है, यह जीता ही हुआ है।

इस बात को ठीक से समझ लें।

यह द्रष्टा-भाव जितना गहरा होता चला जाये—यह जीता ही हुआ है। इसको जीतना ही नहीं है। जीतने को कुछ है नहीं इसको। यह लड़ाई के बाहर खड़ा हो गया—लड़ाई के भीतर रहा ही नहीं। और जैसे ही आप लड़ाई के बाहर खड़े होते हैं, वैसे ही आपको दिखायी पड़ता है कि आप किस पागलपन में पड़े थे।

काम से ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य से काम—आप घड़ी के पेण्डुलम की तरह घूम रहे थे। पहले पेण्डुलम बायीं तरफ गया, तब आप सोचते थे कि बायीं तरफ जा रहा है। लेकिन आपको पता नहीं, बायीं तरफ जाते समय पेण्डुलम दायीं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठा कर रहा है। वह बायीं तरफ जा इसलिए रहा है, ताकि दायीं तरफ जा सके—मोमेन्टम इकट्ठा कर रहा है। घड़ी की यन्त्र-व्यवस्था यह है कि बायीं तरफ पेण्डुलम जब जा रहा है, तो आपको दिखाई पड़ता है कि बायें जा रहा है, लेकिन आपको पता नहीं कि वह दायीं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा है। जितना वह बायां जायेगा, उतना ही दायां जा सकेगा अब। फिर वह दायें जा रहा है तो आप सोचते हैं विपरीत जा रहा है। लेकिन जब वह दायें जा रहा है, तो पुनः बायीं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा है।

इसका अर्थ : जब आप ब्रह्मचर्य के विचार से भरते हैं, तब आप कामातुर होने की शक्ति इकट्ठी कर रहे हैं। जब आप उपवास का विचार करते हैं, तब आप भोजन का रस पुनः पैदा कर रहे हैं। अगर आप भोजन ही करते जायें, भोजन ही करते जायें, तो भोजन का रस समाप्त हो जायेगा। बीच में उपवास जरूरी है। उससे भोजन का रस पुनः पुनः पैदा होता है। अगर आपको कोई भोजन करवाता ही चला जाये, तो आप घबड़ा उठेंगे, आप भोजन के दुश्मन हो जायेंगे। अगर कोई आपको काम-वासना में डाल दे ऐसा कि आपको काम-वासना में ही पड़ा रहना पड़े, तो आप ऐसे भागेंगे उस जगह से, कि लौटके रुकेंगे नहीं, लौटके देखेंगे नहीं। बीच में गैप चाहिये।

काम-कृत्य किया, फिर दो दिन का उपवास रहा, ब्रह्मचर्य रहा। उस ब्रह्मचर्य में आप फिर काम-कृत्य में उतरने का रस इकट्ठा कर लेंगे। इस अन्तर-यान्त्रिकता को आप नहीं समझेंगे, तो आप लड़ते रहेंगे, और कभी मुक्त न हो पायेंगे। आपकी ब्रह्मचर्य की बातें काम-रस को पैदा करने वाली हैं। उससे स्वाद पुनः जन्मता है। इसके विपरीत भी सच है। आपका काम-कृत्य में उतरना, पुनः ब्रह्मचर्य को महत्त्वपूर्ण बना देता है। काम-कृत्य में उतरके फिर आप पश्चात्ताप करते हैं। और फिर आपका मन

बड़ा साधु-महात्मा जैसा हो जाता है। क्रोध करके आप पश्चात्ताप करते हैं, और आप सोचते हैं कि आपका क्रोध पश्चात्ताप के विपरीत है। नहीं, आपका पश्चात्ताप आपको पुनः क्रोध करने की शक्ति देता है। इसलिए जो पश्चात्ताप करते हैं, वे क्रोध करते रहेंगे। वे कभी मुक्त नहीं हो सकते।

पश्चात्ताप क्रोध का दुश्मन नहीं है, क्रोध का मित्र है।

अगर आप पश्चाताप छोड़ दें, आपका क्रोध खत्म हो जाये। लेकिन आप पश्चात्ताप छोड़ेंगे नहीं। और क्रोध के बाद आप बड़ा मजा लेते हैं, कि पश्चात्ताप कर रहे हैं, अब अक्रोधी हुए जा रहे हैं। आपको पता नहीं कि वह क्रोध के कारण जो पेण्डुलम एक तरफ चला गया है, अब पश्चात्ताप में दूसरी तरफ जायेगा! और फिर से क्रोध की तरफ जाने की शक्ति अर्जित हो जायेगी।

विपरीत का सहारा है। विपरीत के कारण रस निर्मित होता है। जो लोग मन की खोज करते हैं, उनके निर्णय बड़े भिन्न हैं। आप सोचते हैं कि जब आप स्वाद बदलते हैं, तब आप पहले स्वाद के दुश्मन हो रहे हैं। नहीं, पहले स्वाद को पुनः अर्जित करने की कोशिश कर रहे हैं।

अभी पश्चिम के मनस्विद् ने एक प्रस्ताव दिया है। वह बहुत हैरान करने वाला है, लेकिन बहुत सही है। वह प्रस्ताव यह है कि पति-पत्नी इसलिए एक दूसरे से लड़ते हैं, क्योंकि बीच में स्वाद बदलने का मौका नहीं है। यह बहुत घबड़ाने वाला है—कम से कम पुरानी धारणा के लोगों को। लेकिन इसके पीछे सचाई है। और पश्चिम मे इस पर प्रयोग चल रहे हैं। और वह प्रयोग यह है कि अगर एक पति, एक पत्नी बीच-बीच में दूसरे स्त्री-पुरुषों से संबंध स्थापित कर लें, तो उनका पुराना संबंध फिर से रसपूर्ण हो जाता है, नष्ट नहीं होता है। हमारी अब तक की धारणा उलटी है। हमारी धारणा यह है कि अगर पति किसी और स्त्री मे उत्सुक हो जाये तो फिर पत्नी के लिए उसका रस समाप्त हो गया। यह बिलकुल गलत है। उसका दूसरी स्त्री में उत्सुक होना, थोड़ी ही देर के लिए पत्नी के प्रति उपवासा हो जाना, वापस पत्नी मे रस ले आयेगा। और अगर पत्नी जल्दी न करे, सिर्फ प्रतीक्षा करे तो वह वापस लौट आयेगा। और वह वापस फिर ताजी हो जायेगी। यह रस फिर नया हो जायेगा।

इसलिए स्त्रियां बदलने का प्रयोग अमरीका मे चलता है। छोटे-छोटे क्लब हैं, जहा लोग अपनी पत्नियां बदलते हैं। और जिन लोगों ने ये प्रयोग किये हैं, उन सबका वक्तव्य इसके अनुकूल है कि हमारा अपनी पत्नियों में रस बढ़ गया है। और हमारे संघर्ष कम हो गये हैं। यह कितना ही खतरनाक लगे पुरानी नैतिक धारणाओं के लोगों को, लेकिन भविष्य इसके साथ होने वाला है। पुरानी नैतिक धारणा बच नहीं सकती, क्योंकि उसने पति-पत्नियों को काफी कष्ट दे दिया है। स्वाभाविक है। नियम

यही है कि आपको एक ही भोजन रोज दिया जाये तो आप कितनी देर तक चल पायेंगे? सात दिन में आप घबड़ा जायेंगे और सोचने लगेंगे कि इससे तो उपवास ही बेहतर है। लेकिन रोज भोजन बदल देते हैं, रस कायम रहता है। चार-छः दिन के बाद फिर वही भोजन, और आपका रस कायम रहता है।

जीवन के सभी तलों पर यह बात गहरे रूप में सच है। तो आप जो विपरीत में डोलते रहते हैं, तो उसमें आप यह मत समझना कि कभी-कभी आप बहुत साधु हो जाते हैं, और बड़े ब्रह्मचर्य की धारणा हो जाती है और बड़ी ज्ञान की, आत्मज्ञान की बातें उसमें लगती हैं। वह कुछ भी नहीं है, आपके देह-भाव में लौटने का उपाय है। जब आप आत्मा वगैरह की बहुत बातें करने लगते हैं, उसका कुल मतलब इतना है कि देह से ऊब गये हैं, अब थोड़ी आत्मा की बातें करके देह में लौटने में रस आयेगा। पर इन दोनों से भिन्न भी एक बिन्दु आदमी के भीतर है, और वही विजय का सूत्र है—वह बिन्दु है साक्षी-भाव।

अब हम इन सूत्रों को लें।

पहला सूत्र : भावी जीवन-संग्राम में साक्षी-भाव रखो। और यद्यपि तुम युद्ध करोगे, परन्तु तुम योद्धा मत बनना।

युद्ध तो जारी रहेगा, लेकिन साक्षी-भाव के युद्ध में एक फर्क होगा। युद्ध तो तुम करोगे, लेकिन योद्धा मत बनना, तुम पार्टी मत बनना। तुम क्रोध के खिलाफ पश्चात्ताप मत बनना। तुम काम-वासना के विपरीत ब्रह्मचर्य मत बनना। तुम योद्धा मत बनना। युद्ध तो जारी रहेगा, लेकिन तुम साक्षी बनना। तुम दूर खड़े होकर दोनों को समान भाव से देखना।

तुम समभावी बनना।

तुम वासना समझना काम को भी, ब्रह्मचर्य को भी।

तुम संसार को भी वासना समझना और संन्यास को भी।

तुम बन्धन को भी बन्धन समझना और मोक्ष को भी।

और तुम दोनों के पार, विपरीत के पार अपने को ठहराना। तुम कहना कि मैं सिर्फ देखने वाला हूँ—करने वाला नहीं। मैं कर्त्ता नहीं हूँ, क्योंकि कर्त्ता योद्धा बन जाता है।

जैसे ही तुमने कुछ किया, कि तुम योद्धा बने।

और सिर्फ एक ही सूत्र है न-करने का—और वह है साक्षी।

नहीं तो सभी कुछ करना हो जाता है। हम जो भी करते हैं, उसमें कर्त्ता भाव आ जाता है। और कर्त्ता भाव जिस तल पर होता है, उस तल पर विजय नहीं होती। इसलिए हम एक पक्ष को चुन लेते हैं एक बार। जब हम एक पक्ष को चुनते हैं, दूसरा पक्ष मजबूत होता चला जाता है। एक दिन आता है कि हमें दूसरा पक्ष चुनना पड़ता

है। जब दूसरे को चुनते हैं तो पहला मजबूत होता चला जाता है। और ऐसे हम द्वन्द्व के बीच डोलते रहते हैं। इस द्वन्द्व का नाम संसार है।

इस द्वन्द्व के बाहर होने की एक ही विधि है कि तुम द्वन्द्व को चुनना ही मत, तुम सिर्फ द्वन्द्व को देखना।

क्या अर्थ हुआ इसका?

इसका अर्थ हुआ कि जब काम-वासना आये, तो तुम देखना कि काम-वासना आई। जब काम-वासना आये तो तुम अनुभव करना कि काम-वासना ने तुम्हें घेर लिया। लड़ना मत, सिर्फ जानना कि घेर लिया। काम-वासना जो भी करवाये, करना, लेकिन दूर खड़े होकर देखते रहना कि काम-वासना ये-ये करवा रही है। जैसे कि तुम एक दर्शक हो और तुम एक खेल देख रहे हो। तुम्हारी कोई लड़ाई नहीं है। जब काम-वासना पूरे शिखर पर पहुँचे, तब भी तुम देखते रहना कि काम-वासना में ये-ये हो रहा है। जब काम-वासना शिखर से वापस गिरने लगे, तब भी तुम देखना कि अब काम-वासना शिखर से गिरने लगी और पश्चात्ताप मन को पकड़ने लगा, उसे भी देखना। पश्चात्ताप घना होने लगे और ब्रह्मचर्य के भाव उठने लगें, उनको भी देखना, कि अब ब्रह्मचर्य के भाव उठ रहे हैं।

अगर यह पूरी बात साक्षी-भाव से देख लो, तो तुम समझ जाओगे कि काम-वासना और ब्रह्मचर्य दो चीजें नहीं हैं, एक ही लहर का उठना और गिरना है। और जिस दिन तुम्हें यह बात दिखाई पड़ गई कि काम-वासना और ब्रह्मचर्य दोनों ही वासना हैं—काम है उठती हुई लहर और ब्रह्मचर्य है गिरती हुई लहर। क्रोध है उठती हुई लहर और पश्चात्ताप है गिरती हुई लहर। संसार है उठती हुई लहर और संन्यास है गिरती हुई लहर। जिस दिन तुमने इन दोनों को एक साथ देख लिया जुड़ा हुआ, उसी दिन तुम पाओगे कि युद्ध में विजय शुरू हो गई, बिना योद्धा बने। चुनाव बन्द हो गया, अचुनाव पैदा हो गया। अब चुनना भी क्या है? अगर दोनों ही एक हैं, तो चुनने को कुछ बचा नहीं। और जब चुनने को कुछ भी नहीं बचता, द्वन्द्व के बाहर तुम सरकना शुरू हो गये।

चुनाव द्वन्द्व है, अचुनाव द्वन्द्वातीत है।

इस साक्षी को पकड़ना और धीरे-धीरे इसी साक्षी में लीन होते चले जाना। अचानक तुम पाओगे कि जो विजय लड़ के नहीं मिली थी, वह बिना लड़े मिलनी शुरू हो गई।

योद्धा मत बनना।

यह सूत्र बहुत गहरा है: योद्धा मत बनना।

कल हमने जो सूत्र लिया, वह था कि अब तुम प्रवेश कर सकोगे प्रज्ञा के मन्दिर

में। और उसकी दीवालों पर लिखे हैं ज्वलन्त अक्षर, वे तुम पढ़ सकोगे। यह पहला सूत्र प्रज्ञा के मन्दिर का है। यह ज्वलन्त अक्षरों में प्रज्ञा के मन्दिर पर लिखा है: भावी जीवन संग्राम में साक्षी-भाव रखो। और यद्यपि तुम युद्ध करोगे, पर तुम योद्धा मत बनना। वह तुम्हीं हो। वह साक्षी जो है, वह तुम्हीं हो। फिर भी तुम सीमित हो और भूल कर सकते हो। वह साक्षी तुम्हारा अन्तरतम है। वह साक्षी तुम्हारे जीवन का गहनतम रूप है और तुम अपनी परिधि पर खड़े हो अभी। तुम भूल कर सकते हो, वह साक्षी भूल नहीं कर सकता। वह साक्षी तुम्हारी श्रेष्ठतम् सत्ता है। तुम विकृत हो जीवन-अनुभवों में, रास्तों में, मार्गों में, संसार में। अनेक-अनेक जन्मों ने संस्कारों ने तुम्हें विकृत किया है। तुम परिधि पर धूल-धमास से भरे हो, तुम भूल कर सकते हो। तुम पर भरोसा नहीं किया जा सकता। तुम अपने पर भरोसा मत करना कर्त्ता की तरह, क्योंकि कर्त्ता परिधि पर खड़ा है। वह कर्म के निकट खड़ा है, वह कर्म से जुड़ा हुआ है। अगर भरोसा तुम अपने पर करोगे, तो तुम वही दोहराते जाओगे, जो तुमने हमेशा किया है। तुम एक वर्तुल हो, एक दुःख-चक्र हो। तुम घूमते रहोगे वैसे ही, जो तुमने बार-बार किया है।

इसे थोड़ा समझ लें।

आप कभी कुछ नया करते हैं?

पीछे जिन्दगी में लौटके देखें, आप पायेंगे कि एक वर्तुलाकार में घूमते रहते हैं। सुबह क्रोध किया, दोपहर पश्चात्ताप किया, सांझ प्रेमपूर्ण हो गये, रात क्रोध से भर गये, सुबह घृणा आ गई; यह घूमता रहता है। अगर आप एक डायरी रखें तीन महीने की, तो आप चकित हो जायेंगे कि आप मशीन हैं या आदमी? और अगर आप बहुत ईमानदारी से डायरी रखें तो आप अपनी घोषणा भी कर सकते हैं कि आने वाले तीन महीने में किस दिन क्या होगा? आप सुबह से ही घर में अपना कैलेण्डर लटका सकते हैं कि आज इतने बजे मैं क्रोध करूंगा, और इतने बजे शान्त रहूंगा, और इतने बजे विषाद से भर जाऊंगा। अगर घर से सब सदस्य अपना-अपना कैलेण्डर रोज सुबह लटका लें, तो बड़ी सुविधा हो जाये। क्योंकि पत्नी कह सकती है कि पांच बजे तुम दफ्तर से लौटोगे, तो मैं ठीक अवस्था में नहीं रहूंगी, तुम इसका ध्यान रखना। तो पति कैलेण्डर देख सकता है कि आज क्या-क्या होने वाला है, उस हिसाब से चल सकता है। पत्नी पति का कैलेण्डर देख सकती है। और दोनों किसी समझौते पर आ सकते हैं।

अभी हम अन्धे की तरह टकराते रहते हैं। और बड़ा मजा यह है कि जब हम टकराते हैं, तो हम सदा यह सोचते हैं कि कोई और हमें परेशान कर रहा है। जबकि आपका भीतर का वर्तुल ही चल रहा है, कोई और परेशान नहीं कर रहा है। जैसे स्त्रियों को मासिक-धर्म होता है, तो कोई उनका खून निकाल नहीं रहा है शरीर से

कोई चोट नहीं पहुंचा रहा उनको। वह उनका भीतर का वर्तुल है, जिससे मालिक-धर्म हो रहा है। ठीक वैसे ही आपके चौबीस घण्टे के वर्तुल चल रहे हैं, कोई आपको परेशान नहीं कर रहा है। लेकिन किसी क्षण में आप उदास होते हैं, किसी क्षण में खुश होते हैं। जब खुश होते हैं, तब आप सोचते हैं कि कोई खुश कर रहा है। और जब आप उदास होते हैं, तो सोचते हैं कि कोई उदास कर रहा है।

और बड़े मजे की बात है कि यह आपकी भीतरी दशा पर निर्भर करता है। वही चीज उदास कर सकती है, अगर आप भीतर उदास होने को हैं। वही चीज प्रसन्न कर सकती है, अगर आप भीतर प्रसन्न होने को हैं। इसका थोड़ा आत्मिक निरीक्षण करेंगे तो बहुत चकित हो जायेंगे, बहुत हैरान हो जायेंगे। तब आप दुनिया में किसी को दोष देने नहीं जायेंगे। आप कहेंगे कि भीतर के मौसम बदलते रहते हैं। कभी वर्षा है, कभी धूप है, कभी शीत है—भीतर के मौसम बदलते रहते हैं। और अपने भीतर के मौसम के अगर आप साक्षी हो जायें, तो आप मालिक हो जायेंगे। लेकिन आप कर्ता बन जाते हैं। जब क्रोध आता है, तो आप क्रोधी बन जाते हैं। जब काम-वासना आती है, तो आप कामी बन जाते हैं। जब ब्रह्मचर्य की वासना आती है, तो आप ब्रह्मचर्य का झंडा लेकर खड़े हो जाते हैं। बाकी आप तादात्म्य कर लेते हैं। दूर खड़े हों, जितने दूर खड़े हो सकेंगे अपनी इन वृत्तियों से, उतनी ही मालकियत है।

साक्षी-भाव में मालकियत है।
योद्धा बनने में पराजय है।

यह बहुत उलटा लगेगा, क्योंकि हम सोचते हैं कि बिना योद्धा बने हम जीतेंगे कैसे? इस संसार में योद्धा बनके जीता जाता है। अध्यात्म में योद्धा बनके सिवाय हारने के कुछ भी हाथ नहीं लगता। और हार भी पूरी नहीं लगती, नहीं तो आदमी ऊब जाये! हार भी अधूरी रहती है और आशा सदा बनी रहती है कि जीतूंगा—जीतूंगा। और जीत कभी हाथ में नहीं आती।

वह तुम्हीं हो—वह साक्षी भाव तुम्हारा ही अन्तरतम् है।

फिर भी तुम सीमित हो और भूल कर सकते हो। वह शाश्वत और निःसंशय है। वह शाश्वत सत्य है। जब वह एक बार तुममे प्रविष्ट हो चुका और तुम्हारा योद्धा बन गया, तो फिर तुम्हें वह कभी सर्वथा त्याग न देगा, और महाशान्ति के दिन वह तुमसे एकात्म हो जायेगा।

तुम्हारे दो रूप हैं : तुम्हारी परिधि पर खड़े हुए तुम और तुम्हारे केन्द्र पर छिपे हुए तुम। तुम्हारा जो केन्द्र है, वहां तुम परमात्मा हो, वहां तुम परम-शक्ति हो। तुम्हारी जो परिधि है, वहां तुम एक कमजोर आदमी हो। अगर तुम परिधि पर ही लड़ते रहे, तो तुम्हारी जितनी शक्ति है, उतनी ही काम आयेगी। अगर तुम केन्द्र की

तरफ सरके, तुम्हारी शक्ति बढ़ती चली जायेगी। ठीक केन्द्र पर खड़े हुए आदमी को लड़ना ही नहीं पड़ता। वह इतना महा-शक्तिवान होता है कि वृत्तियां उस महाशक्ति में जल जाती हैं और राख हो जाती हैं। बड़ा सवाल यह नहीं है कि कैसे लड़ें? बड़ा सवाल यह है कि महा-शक्तिवान हो जायें? उस महा-शक्तिमान के मौजूद होते ही परिधि नप जाती है, झुक जाती है। परिधि का वह जो उपद्रव था, सब शान्त हो जाता है। बिना लड़े कैसे तुम जीतो, इसका यह सूत्र है। और बिना लड़े ही जीत आती है।

दूसरा सूत्र : सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो।

तुम साक्षी रहो।

सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो।

उसे खोजने में सतर्क रहो, नहीं तो लड़ाई के आवेश और उतावलेपन में, तुम उसके पास से निकल जाओगे। और वह तुमको तब तक न पहचानेगा, जब तक तुम स्वयं उसे न जान लो। यदि उसके ध्यान से सुनने वाले कानों तक तुम्हारी पुकार पहुँचेगी, तो वह तुम्हारे भीतर से लड़ेगा, और तुम्हारे भीतर के नीरस शून्य को भर देगा।

यह जो साक्षी-भाव है, तुम इसे खोजो। इसकी खोज के साथ ही तुम्हें वह सैनिक मिल जायेगा, जो परिधि पर लड़ेगा। पर बड़ा फर्क है। तुम वह सैनिक नहीं बनोगे, तुम योद्धा नहीं बनोगे, तुम लड़ने नहीं जाओगे, तुम सिर्फ मौजूद रहोगे।

इसका क्या अर्थ है?

इसका यह अर्थ है कि अब तुम्हारे भीतर क्रोध उठता है, तब तुम्हारे भीतर पश्चात्ताप नहीं उठता है अभी। दोनों एक साथ उठें, तो एक दूसरे को काट दें और तुम शान्त हो जाओ। अभी तुम्हारे भीतर क्रोध जब उठता है, तब पश्चात्ताप नहीं उठता। और जब पश्चात्ताप उठता है, तब क्रोध नहीं उठता। एक-एक करके उठते हैं। अभी जब काम-वासना उठती है, तब ब्रह्मचर्य नहीं उठता और ब्रह्मचर्य उठता है, तब काम-वासना नहीं उठती। इन दोनों की कहीं मुलाकात नहीं होती। अगर मुलाकात हो जाये तो ये कट जायें। ये दोनों ही एक दूसरे को काट दें। जैसे ऋण और धन काट देते हैं एक दूसरे को, ऐसे ये एक दूसरे को काट दें, और तुम शान्त हो जाओ। लेकिन जब एक आता है, तब दूसरे का पता नहीं होता; जब दूसरा आता है, तब पहला जा चुका होता है। इनका कहीं मिलना ही नहीं होता।

इसे थोड़ा समझें।

क्योंकि यह जीवन की, विजय की अन्तरतम् घटना है। अगर ये दोनों एक साथ आ जायें तो क्या होगा? जब तुम क्रोध से भरते हो, तभी तुम पश्चात्ताप से भी भर जाओ, तो क्या होगा? पश्चात्ताप और क्रोध एक दूसरे को काट देंगे। जब तुम काम-वासना

से भरे हो, तभी ब्रह्मचर्य की वासना भी मौजूद हो जाये, तो एक दूसरे को काट देंगे। और जब एक दूसरे को काट देंगे, तो हिसाब में न तो ब्रह्मचर्य बचेगा और न काम-वासना।

इस फर्क को समझ लेना।

इसलिए जो परम-ब्रह्मचारी है, उसको ब्रह्मचर्य का भाव भी नहीं होता। जो सच में ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है, उसे ब्रह्मचर्य की कोई अस्मिता, कोई अहंकार नहीं होता। जिसको लगता है कि मैं ब्रह्मचारी हूँ और अपने ब्रह्मचर्य को साधता है, सम्भालता है; यह ब्रह्मचर्य काम-वासना के विपरीत चुना गया है। काम-वासना कटी नहीं है, वह रास्ता देख रही है। इस आदमी ने ब्रह्मचर्य से भाव अपना इकट्ठा कर लिया है, लेकिन काम-वासना प्रतीक्षा कर रही है। जल्दी ही भाव बदलेगा, मौसम बदलेगा। इस जगत में कुछ टिकता नहीं, सब बदल जाता है।

सिर्फ साक्षी को छोड़कर इस जगत में सभी परिवर्तनशील है।

सिर्फ एक बिन्दु इस जगत में शाश्वत, सनातन है, जहां कोई बदलाहट नहीं होती, बाकी सब बदल जाता है। परिधि पर तो घूमता ही रहता है चाक, सिर्फ बीच की कील जहां साक्षी-भाव है, वहां कुछ भी नहीं घूमता। वहां सब चीजें थिर हैं।

काम-वासना के खिलाफ ब्रह्मचर्य को चुन लिया, तो काम-वासना दबी है अचेतन में, प्रतीक्षा कर रही है। जब तुम थक जाओ ब्रह्मचर्य से, तब वह तुम्हारे सिर को पकड़ लेगी; छोड़ेगी नहीं। साधु-संन्यासी रात सोने तक से डरने लगते हैं, क्योंकि सपने में पकड़ लेगी काम-वासना! भयभीत इतने हो जाते हैं फिर, कि अगर कहीं स्त्री बैठी है तो शास्त्रों में लिखा है इस तरह के पागलों ने, कि उस जगह पर इतने मिनिट तक मत बैठना! अगर कहीं बैठ चुकी है स्त्री, वह जा भी चुकी है; तो भी वह जगह खतरनाक है, वहां मत बैठना! क्योंकि उस पर अगर बैठ गये तो काम-वासना उठेगी। स्त्री जिस जगह पर बैठी है, उस जगह पर बैठने से काम-वासना नहीं उठती। लेकिन अगर मन में काम-वासना बहुत दबायी है तो उठ सकती है। वह स्पर्श पृथ्वी का भी सुखद मालूम पड़ेगा, जहां स्त्री बैठी है! अब यह पागलपन का लक्षण है। यह ब्रह्मचर्य का लक्षण नहीं है, यह गहन वासना का लक्षण है।

ब्रह्मचर्य का लक्षण तो यह होगा कि स्त्री गले से भी आकर लग गई हो, तो भी काम-वासना न उठे। पागलपन का लक्षण यह होगा कि स्त्री जिस जमीन पर बैठी थी, वह जा भी चुकी है—अब आप उस जमीन पर बैठ गये और काम-वासना उठ रही है! यह आप ही उठा रहे हो, जमीन-वगैरह से कुछ नहीं हो गया है। यह चमत्कार सिर्फ महात्माओं को ही घटित हो सकता है। यह चमत्कार कि स्त्री जिस जगह बैठी

हो, वहां बैठके काम-वासना का उठना—सिर्फ महात्माओं को कठिन होगा। इसमें स्त्रियों का कोई हाथ नहीं है, महात्माओं की ही कारीगरी है। वह जो महात्मा अपने साथ कर रहा है, वह जो दबा रहा है, वह जो लड़ रहा है—वह इतना ज्यादा परेशान है भीतर से कि कोई भी बहाना काफी हो सकता है—कोई भी बहाना।

सुना होगा आपने, पढ़ा होगा कि सभी ऋषि-मुनि जब सिद्ध अवस्था में पहुंचने लगते हैं, तो स्वर्ग से अप्सराएं उतरके उन्हें सताने लगती हैं। अब यह स्वर्ग में कौनसा धन्धा है, किसने खोला है? और किसको प्रयोजन है इन ऋषि-मुनियों को भ्रष्ट करने में? किसकी उत्सुकता है? नहीं, कोई अप्सराएं कहीं से नहीं आ रही हैं—यह ऋषि-मुनियों का ही अचेतन मन है। स्त्रियों के विचार को इस बुरी तरह दबाया है उन्होंने भीतर कि आखिरी क्षण तक पीछा नहीं छोड़ता। और फिर ऋषि-मुनि भ्रष्ट हो जाते है! पूरा मनोवैज्ञानिक खेल है। कोई भ्रष्ट नहीं कर रहा उनको, लेकिन जो दबाया है, वह शक्तिशाली हो रहा है। और जब आखिरी क्षण आयेगा तो वह इतना शक्तिशाली हो जायेगा, कि उसी की वजह से वे हार जायेंगे। वह जो जीता हुआ हाथ था, वह हार जायेगा। वे दोनों हाथ उन्हीं के हैं। ब्रह्मचर्य आरोपित था, खींच-खींच कर उसको खड़ा कर लिया था। लेकिन वह भीतर जो दबी है वासना, वह रास्ता देख रही है। एक क्षण आयेगा, जब पेण्डुलम घूमना शुरू होगा। जब पैण्डुलम घूमेगा तो आपको वह रस नहीं आ सकता।

आपके पास अप्सराएं नहीं आ सकतीं। उसके लिए ऋषि होना जरूरी है। अगर अप्सराओं को बुलाना है, तो ऋषि की प्रक्रिया से गुजरना जरूरी है। पेण्डुलम इतना बाएं जाना चाहिये कि जब दाएं जाये तो स्वर्ग तक पहुंच जाये। उसके दाएं जाने के लिए इतनी ऊर्जा अर्जित होनी चाहिये। अगर अप्सराएं चाहिये हैं, तो ऋषि होना जरूरी है। जब से ऋषि खो गये, अप्सराएं खो गई! आजकल कोई अप्सराएं नहीं आतीं! उसका कारण यह नहीं है कि अप्सराएं बची नहीं। ऋषि नहीं बचे। ऋषि पैदा करिए, अप्सराएं आनी शुरू हो जायेंगी। वे ऋषियों के मस्तिष्क की विक्षिप्तता हैं। वह जो दबाया है, वह प्रकट होगा, पीछा करेगा। और अगर बहुत दबाया है, तो वह साकार हो जायेगा। इसमें ऋषियों की भूल नहीं है। उन्होंने रिपोर्ट तो बिलकुल ठीक दी है, कि अप्सराएं आईं। और अप्सराएं इतनी सुन्दर होंगी, जितनी कोई स्त्री कभी नहीं हो सकती।

वह सौन्दर्य जो है, दबी हुई वासना से आ रहा है। वह जो सौन्दर्य है, वह स्वयं का निर्माण है। जब आप वासना से भरे होते हैं, जितनी गहरी वासना से भरे होते हैं; उतनी ही स्त्रियां ज्यादा सुन्दर मालूम होंगी, या पुरुष ज्यादा सुन्दर मालूम होंगे। अगर वासना से बहुत भरे हों तो कुरूप स्त्री भी सुन्दर मालूम पड़ेगी। अगर वासना से

बहुत भरे हों और उपवास बहुत करना पड़ा हो तो वृद्ध स्त्री भी सुन्दर मालूम पड़ने लगेगी।

वह जो सौन्दर्य दिखाई देता है, वह आपका प्रक्षेपण है। वह ऐसे ही है, जैसे भूखे आदमी को रूखी-सूखी रोटी भी परम-भोग मालूम पड़ती है। वह कुछ रूखी-सूखी रोटी में नहीं है परम-भोग, वह परम-भोग उसकी भूख में है। अगर आप भरे पेट हों तो परम-भोग भी रखा हो, तो आपको ख्याल नहीं आयेगा कि यहां भोजन रखा है। किसी दिन उपवास करके सड़क से निकलें, उस दिन आप फिर होटल, रेस्टॉरेन्ट—इनके ही बोर्ड पढ़ेंगे। बाकी कोई दुकान दिखाई नहीं पड़ेगी! और बड़े रस से पढ़ेंगे और बोर्ड बड़े सुन्दर मालूम पड़ेंगे। और वे जो भोजन और मिठाइयां दिखाई पड़ रही हैं, वह आपको पहली दफे दिखाई पड़ेंगी। और उनमें जैसा रंग, और जैसी गन्ध और उनमें जैसा सौन्दर्य और परम-रहस्य प्रगट होगा, वैसा कभी नहीं हुआ था! वह वहां है नहीं, वह आपके भीतर है, वह भाव आप डालते हैं।

आदमी अपने चारों तरफ डालता है अपने ही भावों को। तो ऋषि-मुनियों ने जरूर अप्सराएं देखीं, पर वे अप्सराएं उनकी मनःसृष्टियां हैं, उनका अपना ही सृजन था। अगर आप साक्षी बनते हैं तो यह परिणाम घटित होगा कि दोनों बातें आप एक साथ देख सकेंगे। जितना आप दूर हटेंगे, उतने ही दोनों बातें आप एक साथ देख सकेंगे। दूरी चाहिए दोनों को देखने के लिए। अगर आप बहुत पास हैं, तो एक ही दिखाई पड़ता है। मैं यहां बैठा हूं तो आप सब मुझे दिखाई पड़ते हैं। मैं और पास आऊं तो कम लोग दिखाई पड़ेंगे, और पास आऊं तो और कम लोग दिखाई पड़ेंगे। अगर मैं किसी के बिलकुल पास आ जाऊं तो सिर्फ वही दिखाई पड़ेगा। जितनी दूरी होती है, उतना विस्तीर्ण परिपेक्ष्य होता है। तो जब कोई साक्षी हो जाता है, तो उसको क्रोध, अक्रोध; लोभ, अलोभ; घृणा, प्रेम; काम, ब्रह्मचर्य; साथ दिखाई पड़ने लगता है। और तब वह चकित हो जाता है कि यह तो एक ही तरंग है। इधर क्रोध, उधर पश्चात्ताप; इधर संसार, उधर संन्यास; इधर मांग, उधर त्याग—यह तो एक ही तरंग के दो रूप हैं। जैसे ही यह दिखाता है, दोनों चीजें एक साथ उपस्थित होकर एक दूसरे को काट देती हैं। वही सैनिक है। योद्धा बनने की जरूरत नहीं है।

उस सैनिक को खोज लेना जरूरी है, जहां विपरीत कट जाते हैं। अपनी समान सह-उपस्थिति में अपने आप कट जाते हैं। यह जो उनका अपने आप कट जाना है, वह बिना किसी हिंसा के युद्ध में विजय है—बिना लड़े।

सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो।

सैनिक का अर्थ है : विपरीत की सह-उपस्थिति, एक साथ दोनों का अनुभव।

उसे खोजने में सतर्क रहो, नहीं तो लड़ाई के आवेश में और उतावलेपन में तुम उसके पास से निकल जाओगे।

बहुत बार तुम उसके करीब पहुंचते हो, मगर तुम समझने को कम, और लड़ने को अधिक आतुर होते हो। तुम्हारा मन इतने उतावलेपन और इतनी जल्दबाजी से भरा है विजय के लिए कि तुम उस सैनिक से, जो तुम्हें जिता सकता है, उसके पास से निकल जाते हो, उसे देखते भी नहीं। अगर तुम जल्दबाजी में हो, और लड़ने की शीघ्रता में हो, और जीतने के उतावले हो, तो तुम उससे चूकते रहोगे। क्योंकि उसे देखने के लिए गैर-उतावलापन, शान्ति, मौन, सहजता चाहिये। तो ही तुम्हें वह दिखाई पड़ेगा। तो ही तुम इतनी दूरी बना सकोगे। तो ही तुम दोनों को एक साथ देख पाओगे। तो जल्दी मत करना जीतना हो, अगर जीतना हो। अगर जल्दी जीतना है, तो जल्दी बिलकुल मत करना। शीघ्रता मत करना, अगर चाहते हो कि शीघ्र परिणाम हो जाये। कि तुम जितनी शीघ्रता करोगे, तुम उतनी ही अशान्ति में रहोगे और तुम चूकते चले जाओगे।

तुम्हारे भीतर ही वह शक्ति मौजूद है, जो तुम्हें मुक्त कर देगी। तुम्हारे ही भीतर की शक्ति ने तुम्हे बांधा है। तुम्हारे भीतर की शक्ति तुम्हें मुक्त भी कर देगी, लेकिन तुम जल्दी मत करना। धैर्य, प्रतीक्षा और जीत की कोई उतावली नहीं, तो तुम्हारी जीत निश्चित है।

और वह तुमको तब तक न पहचानेगा...ध्यान रखना कि वह सैनिक तुम्हारे भीतर है। लेकिन वह तब तक तुमको न पहचानेगा, जब तक तुम स्वयं उसे न पहचान लो।

वह बैठा रहेगा, उसका तुम उपयोग ही नहीं कर रहे हो! एक महान शक्ति का उपयोग छोड़ रहे हो! वह महान शक्ति इसमें छिपी है कि दो विपरीत को साथ देख लो। उसको तुम चूके जा रहे हो। एक को तुम देखते हो, जब उससे थक जाते हो, तो दूसरे को देखते हो। लेकिन दोनों का मिलन न हो तो काट नहीं हो सकती। दोनों एक दूसरे को नष्ट नहीं कर सकते, दोनों एक दूसरे को मिटा नहीं सकते।

यदि उसके ध्यान से सुनने वाले कानों तक तुम्हारी पुकार पहुंचेगी, तो वह तुम्हारे भीतर से लड़ेगा और तुम्हारे भीतर के नीरस शून्य को भर देगा।

तीसरा सूत्र : युद्ध के लिए उसका आदेश प्राप्त करो और उसका पालन करो।

सेनापति मानकर उसकी आज्ञाओं का पालन न करो, वरन् इस प्रकार करो कि मानो वह तुम्हारा ही स्वरूप है, और उसके शब्दों में मानों तुम्हारी ही गुप्त इच्छायें मुखरित हो रही हैं। क्योंकि वह स्वयं तुम्हीं हो, परन्तु वह तुमसे असीम रूप से अधिक ज्ञानी और शक्तिशाली है। जो वह साक्षी है तुम्हारे भीतर, उस पर छोड़ दो युद्ध पूरा। उसे तुम योद्धा मत बनाओ। लेकिन जैसे ही तुम उसका उपयोग करने में समर्थ हो

जाओगे, उसके द्वारा देखने में समर्थ हो जाओगे—तुम्हें आदेश मिलने लगेंगे, जो कि सुनिश्चित विजय की तरफ ले जाते हैं। शास्त्रों से आदेश मत लेना, शब्दों से आदेश मत लेना, अपने साक्षी से आदेश लेना। वह तुम्हें हमेशा ही ठीक दिशा पर ले जायेगा। उससे गलती होने की कोई सम्भावना ही नहीं है।

लेकिन हम सब न मालूम किस-किस से आदेश ले लेते हैं! हमें इसकी भी फिक्र नहीं होती कि जिनसे हम आदेश ले रहे है, वे भी कहीं पहुंचे हैं या नहीं! बड़ा मजा तो यह है कि हम अपने ही जैसे लोगों से आदेश लेते हैं, क्योंकि हमें अपने ही जैसे लोग, हमारी बुद्धि में उतरते हैं। अगर तुम काम-वासना से पीड़ित हो, तो बहुत सम्भावना इस बात की है कि तुम ऐसा गुरु खोज लोगे, जो काम-वासना से पीड़ित है और ब्रह्मचर्य को थोपे हुए है। बहुत सम्भावना इस बात की है कि तुम उसे खोज ही लोगे। तुम ऐसे गुरु के पास पहुंच ही न पाओगे, जो काम-वासना से पीड़ित नहीं है, जिसका ब्रह्मचर्य सहज है, क्योंकि वह सहज ब्रह्मचर्य तुम्हारी पकड़ में ही नहीं आएगा। तुम इतने पीड़ित हो काम-वासना से, तुम इतने असहज हो कि असहज ब्रह्मचर्य ही तुम्हारी समझ में आएगा। अगर तुम सहज व्यक्ति के पास पहुँच गये तो तुम पचीस बहाने निकाल कर वहां से भाग निकलोगे। क्यों?

क्योंकि तुम्हें जो चीजें परेशान करती हैं, अगर तुमने देखा कि तुम्हारे गुरु को वे चीजें परेशान नहीं कर रही हैं, तो तुम यह मान ही नहीं सकते कि उसको परेशान नहीं कर रही होंगी—क्योंकि तुमको परेशान करती हैं। तुम भाग खड़े होओगे, तुम तो उसी गुरु को चुनोगे, जो तुम्हारे जैसा है। बड़ा मुश्किल है। और उससे तुम कभी मुक्त नहीं होओगे, क्योंकि वह तुम्हें उसी जाल में डाल देगा। जिस जाल में तुम पहले से ही पड़े हो, उसके विपरीत जाल में डाल देगा। लेकिन वह एक ही श्रृंखला है—कामी ब्रह्मचारियों को चुन लेते हैं।

मैं निरन्तर देखता हूँ और लोग मुझसे आकर बात करते हैं कि ऐसा हुआ। अभी चार छः दिन पहले पार्लियामेन्ट के एक सदस्य और एक बड़े उद्योगपति मुझे मिलने आये। आते से ही उन्होंने कहा कि आपकी स्मृति बड़ी अद्‌भुत है। तभी मुझे लगा कि इस आदमी की स्मृति कमजोर होनी चाहिये, यह भी कोई बात है कहने की! स्मृति से क्या लेना-देना है, अच्छी हो या बुरी! इसकी स्मृति जरूर कमजोर होनी चाहिये। जब बार-बार वे कहने लगे कि गजब हैं आप, न नाम भूलते हैं आप, न किताब भूलते हैं आप, न कोई परिचित आदमी को भूलते हैं वर्षों तक आप। आपकी स्मृति बड़ी अद्‌भुत है। तभी उन्होंने कहा कि अभी पिछले महीने जब आप क्रॉस मैदान में रामायण पर व्याख्यान कर रहे थे। मैं रामायण पर कभी बोला ही नहीं, गीता पर बोल रहा था—वे कह रहे हैं कि रामायण पर प्रवचन कर रहे थे! क्या बातें आपने कहीं!

बड़े-बड़े पण्डितों से रामायण सुनी है। तब मैंने कहा, महाराज, जब आप आये, तभी मैं समझ गया था कि आप स्मृति की कमजोरी से बीमार हैं।

आपको क्या प्रभावित करता है, वह खबर देता है आपके सम्बन्ध में। वह दूसरे के सम्बन्ध में बहुत खबर नहीं देता, सिर्फ आपके सम्बन्ध में खबर देता है। अगर आपको पता चल जाये कि फलां आदमी बाल-ब्रह्मचारी है। तो बिचारे नाहक-नाहक घोषणा करवाते रहते हैं कि फलां बाल-ब्रह्मचारी हैं। कामी लोग जल्दी उत्सुक होते हैं बाल ब्रह्मचारियों में। इसका कारण उनकी कमजोरी है, उनकी तकलीफ है। एक अति पर वे खड़े हैं, दूसरी अति उन्हें बुलाती है। आप लोभी हैं। अगर कोई कह दे कि उसने लाखों रुपये त्याग कर दिये—बस आप चरणों में गिर पड़े। वह आपकी बाबत खबर दे रहा है। उसने लाख छोड़े कि नहीं, उसका कोई बड़ा मतलब नहीं है। आप कौड़ी भी पकड़े हुए हैं, इसलिए लाख छोड़ने वाला आपको एकदम प्रभावित करता है, आप एकदम चरण पकड़ लेते हैं।

जैनी अपने शास्त्रों में लिखते हैं, महावीर ने इतने घोड़े छोड़े, इतने हाथी छोड़े। ये इतने हाथी-घोड़ों की बाबत इतनी चर्चा चलाते हैं—इनके सम्बन्ध में यह खबर है। महावीर ने छोड़े कि नहीं, यह बड़ा महत्त्वपूर्ण नहीं है। और क्यों छोड़े गये—इनके छोड़ने से क्या लेना-देना है? कितने छोड़े इसकी संख्या का क्या प्रयोजन है? लेकिन संख्या को बढ़ाए चले जाते हैं! यह इनकी पकड़ की खबर है। इसलिए महावीर के आस-पास लोभी इकट्ठे हो गये। यह जैनियों ने अगर खूब पैसा इकट्ठा किया है तो उसका कारण है। अगर वे समृद्ध बन सके तो उसका कारण है। असल में लोभी उत्सुक हुए महावीर की तरफ। वे त्यागी थे, तो लोभी एकदम पकड़ गये।

आप किसको पकड़ते हैं, यह आप पर निर्भर है। और तब बड़ी दुर्घटना घटती है। इस जगत में महागुरु भी असफल हो जाते हैं, क्योंकि उनको जो लोग पकड़ लेते हैं, वे बिलकुल उलटे लोग होते हैं। महावीर को आप नहीं समझ सके। आपके लोभ की वजह से आप उत्सुक हो गये कि इस आदमी ने इतना छोड़ा, गजब है! क्योंकि आप छोड़ नहीं सकते एक कौड़ी। और इसने इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने रथ छोड़ दिये—बस यह आदमी ठीक गुरु है। और आप बिलकुल गलत आदमी हैं इस गुरु के लिए।

जिन्दगी बहुत जटिल है। ठीक-ठीक आदेश अगर आपको पाना है और अपने से बचना है, क्योंकि आप गुरु को भी खोजेंगे तो उसे आपकी परिधि का ही आदमी खोजेंगे। आप गलत को ही खोज लेंगे। आप ठीक को भी खोजेंगे, तो उसमें भी गलत को ही आरोपित करके खोजेंगे। उचित है कि आप पीछे सरकें और साक्षी-भाव में खड़े हों, क्योंकि आप पहले तो अपने को ही साक्षी-भाव से देखें। इस साक्षी-भाव

को देखने की जैसे ही क्षमता आपमें विकसित होगी, आपको अन्तर-आदेश उपलब्ध होने शुरू हो जायेंगे। यही आदेश सत्य हैं, वे आदेश आपको ठीक मार्ग पर ले जायेंगे। अपनी वाणी की खोज, अन्तरआत्मा की, अन्तःकरण की, अत्यन्त जरूरी है। उस खोज के बिना आप भटकते रहेंगे, लहरों पर लकड़ी के टुकड़े की तरह, कभी यहां टकराएंगे, कभी वहां टकराएंगे। समय नष्ट होगा।

सबसे पहले आपको अन्तर की खोज है, क्योंकि उस अन्तर की खोज के बाद जो गुरु भी आप चुनेंगे, वह बात ही और होगी। क्योंकि तब वह आपके परिधि के आदमी ने नहीं चुना है, आपके बीमार आदमी ने नहीं चुना है। आपकी ही अन्तर-वाणी आयेगी।

साक्षी-भाव को अगर आप थोड़ा भी समझ लें, तो जिस गुरु को आप चुनेंगे, उसके सहारे आप पार हो सकेंगे। वह नाव बन सकता है। पर वह होना चाहिये अन्तर का आदेश—आपकी परिधि की बातें नहीं।

युद्ध के लिए उसका आदेश प्राप्त करो और उसका पालन करो।

सेनापति मानकर उसकी आज्ञाओं का पालन न करना, वरन् इस प्रकार करना, मानो कि वह तुम्हारा ही स्वरूप है। और उसके शब्दों में मानो तुम्हारी ही गुप्त इच्छाएं मुखरित हो रही हैं, क्योंकि वह तुम्हीं हो। परन्तु वह तुमसे असीम रूप से अधिक ज्ञानी है और शक्तिशाली है।

तुम्हारे भीतर ही छिपा है तुम्हारा ही एक रूप, जो तुमसे बहुत ज्यादा शक्तिशाली और बहुत ज्ञानी है। उसकी सुनो, उसका अनुकरण करो। लेकिन उसके लिए जरूरी है कि तुम द्वन्द्व के बीच जागके साक्षी बनना सीखो।

जीवन का संगीत

प्रवचन : ११ अप्रैल ११, १९७२, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउण्टआबू

४. जीवन का संगीत सुनो।

टिप्पणी : उसे खोजो और पहले उसे अपने हृदय में ही सुनो। आरम्भ में तुम कदाचित कहोगे कि यहां गीत तो हैं नहीं, मैं तो जब ढूढ़ता हूँ तो केवल बेसुरा कोलाहल ही सुनाई देता है। और अधिक गहरे ढूढ़ो, यदि फिर भी तुम निष्फल रहो, तो ठहरो और भी अधिक गहरे में फिर ढूंढो। एक प्राकृतिक संगीत, एक गुप्त जल-स्रोत प्रत्येक मानव हृदय में है। वह भले ही ढंका हो, बिलकुल छिपा हो और नीरव जान पड़ता हो—किन्तु वह है अवश्य।

तुम्हारे स्वभाव के मूल में तुम्हें श्रद्धा, आशा, और प्रेम की प्राप्ति होगी।

...जो पाप पथ को ग्रहण करता है, वह अपने अन्तरग में देखना अस्वीकार कर देता है, अपने कान हृदय के संगीत के प्रति मूंद लेता है और अपनी आँखों को अपनी आत्मा के प्रकाश के प्रति अंधी कर लेता है। उसे अपनी वासनाओं में लिप्त रहना सरल जान पड़ता है, इसी से वह ऐसा करता है।

परन्तु समस्त जीवन के नीचे एक वेगवती धारा बह रही है, जिसे रोका नहीं जा सकता। सचमुच गहरा पानी वहां मौजूद है, उसे ढूंढ़ निकालो...इतना जान लो कि तुम्हारे अन्दर निःसदेह वह वाणी मौजूद है। उसे वहा ढूंढ़ो और जब एक बार उसे सुन लोगे, तो अधिक सरलता से तुम उसे अपने आसपास के लोगों में पहिचान सकोगे।

मनुष्य अपने हृदय की प्रतिध्वनि है—अपने जीवन के सारे अनुभवों में सुनता है। जो तुम्हें बाहर मिलता है, वह तुम्हारे भीतर का ही प्रक्षेपण होता है। बाहर तो केवल पर्दे हैं। तुम अपने को ही उन पर्दों पर, अपनी ही छायाओं को ही उन पर देखा करते हो। अगर जीवन में दुःख मालूम पड़ता है और चारों ओर दुःख की छाया दिखाई पड़ती है, तो तुम्हारे हृदय का ही दुःख है। अगर जीवन में विषाद दिखाई पड़ता है, तो वह विषाद तुमने ही जीवन में डाला है।

वही दिखाई पड़ता है बाहर, जो हम बाहर अपने भीतर से फैलाते हैं।

ऐसा समझें कि जगत एक दर्पण है, और हमें अपनी ही तस्वीर उसमें दिखाई पड़ जाती है। लेकिन हम सोचते हैं कि जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह जगत में है और तब हम उसे जगत से मिटाने की कोशिश में संलग्न हो जाते हैं। यही कोशिश अज्ञान है। यही कोशिश और गहरे दुःख में ले जाती है। क्योंकि जिसे हम वहां मिटा रहे हैं, उसका मूल वहां नहीं है। जैसे कि दर्पण में आपको अपनी तस्वीर दिखाई पड़े और लगे कि तस्वीर कुरूप है, और आप दर्पण को तोड़ने में लग जायें। तो आप दर्पण को तोड़ सकते हैं, लेकिन इससे आपका कुरूप चेहरा बदलेगा नहीं। दर्पण टूटने पर यह भी हो सकता है कि आपको अपनी कुरूप अवस्था दिखाई न पड़े। लेकिन न दिखाई पड़ना, मिट जाना नहीं है।

इसलिए बहुत से लोग समाज को छोड़के समाज से भाग जाते हैं, क्योंकि समाज में उनकी कुरूपता दिखाई पड़ती है। सम्बन्धों में, सम्बन्धों के दर्पण में, उनके भीतर का सब रोग प्रकट होता है। जंगल में, एकान्त में, हिमालय में, कोई दर्पण नहीं रह जाता। उन्हें वहां दिखाई नहीं पड़ता कि वह कैसे हैं। और तब इस न दिखाई पड़ने को वे समझ लेते हैं कि आत्मिक रूपान्तरण हो रहा है। यह भ्रान्ति है। उन्हें वापस

हिमालय से लौटकर आना होगा। और जब वे समाज के बीच खड़े होंगे, तब उन्हें पता चलेगा कि कुछ मिटा था हिमालय में, या केवल दर्पण के न होने पर दिखाई नहीं पड़ता था।

इसलिए जो एक बार जंगल के एकान्त में भाग जाता है, वह समाज में आने से भयभीत हो जाता है। क्योंकि फिर वही दिखाई पड़ना शुरू होगा, जो उसने सोचा है कि मिट गया है। कोई दूसरा चाहिये—बिना दूसरे के आप अपने को नहीं देख पाते हैं। दूसरे की मौजूदगी, दूसरे से सम्बन्ध, आपको खुद को प्रकट करने में सुविधा हो जाती है।

कैसे क्रोध करियेगा, अगर कोई मौजूद न हो?

तो क्रोध को मिटाने के दो रास्ते हैं; या तो क्रोध को मिटाइये या दूसरे की मौजूदगी से भाग जाइये।

कैसे वासना करोगे, कैसे परिग्रह करोगे, कैसे अहंकार को निर्मित करोगे—अगर दूसरा मौजूद न हो? अगर जमीन पर आप बिलकुल अकेले हों, तो क्या करियेगा? किस बात का लोभ करियेगा? लोभ का अर्थ ही क्या होगा? पूरी जमीन ही है आपके लिए, अकेले के लिए, कहां बाड़ बनाईयेगा, कहां मकान की दीवाल-रेखा खींचियेगा? कहां दावा करियेगा कि यह मेरा है? अकेले होंगे, तो दावे का कोई अर्थ नहीं; दावा तो दूसरे के खिलाफ है। दूसरे की मौजूदगी चाहिये।

अहंकार की घोषणा भी क्या करियेगा? क्या कहियेगा कि मैं सिकन्दर हूँ, कि मैं नेपोलियन हूँ। क्या प्रयोजन होगा? किससे कहियेगा? कौन सुनेगा? कौन आपकी तरफ आँख उठा कर देखेगा कि आप सिकन्दर हैं? नहीं, अहंकार का भी कोई अर्थ न होगा। पर विनम्रता भी साधियेगा तो क्या सार है? किसको खबर करियेगा कि मुझ जैसा विनम्र कोई नहीं है।

आप अकेले होंगे, तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे, क्योंकि आपके भीतर जो भी छिपा है, उसे प्रकट करने के लिए कोई भी सुविधा न होगी। यह भी हो सकता है कि आपको पता भी न चले कि आपके भीतर क्या-क्या छिपा है?

इसलिए जो संन्यास समाज को छोड़कर फलता-फूलता है, वह संन्यास कच्चा है। वह टूट जायेगा। वह भयभीत है, वह सुरक्षा में ही जी सकता है। एक विशेष स्थिति उपलब्ध हो, तो ही बच सकता है। सामान्य जीवन में, खुले आकाश के नीचे, उसका रंग-रोगन उतर जायेगा। जो समाज के भीतर फलित होता है संन्यास, उसको ही मैं वास्तविक कहता हूँ, क्योंकि वहां दर्पण मौजूद है। और तुमने दर्पण नहीं तोड़े, बल्कि दर्पण में अपनी कुरूप तस्वीर देख कर अपने को बदलने की कोशिश की, और सुन्दर बनाया। वहां लोग मौजूद थे, जिन्हें देखकर क्रोध होता, जिन पर तुम क्रोध को फेंकते,

जो क्रोध का कारण बन जाते और तुम्हारे भीतर के क्रोध की अग्नि बाहर लपटें फेंकती। लेकिन तुम उन्हें छोड़कर नहीं भागे, न उन्हें दोषी ठहराया, न तुमने यह कहा कि तुम क्रोध के कारण हो। तुमने यह समझा कि तुम तो केवल खूंटी हो, क्रोध तो मेरे भीतर है। उस क्रोध को मैं तुम्हारी खूंटी पर टांगता हूं, तुम्हारी कृपा है कि तुमने मौका दिया। और मुझे, मेरे भीतर जो छिपा था, वह देखने का मौका दिया। और भीतर जो छिपा था, उसे देखने की सुविधा जुटाई। तुम परिस्थिति बने, और मेरा आत्म-अध्ययन बढ़ा। और तुम अपने को बदलोगे, खूंटी को नहीं तोड़ोगे, दर्पण को नहीं तोड़ोगे, और समाज को छोड़कर नहीं भागोगे, तो तुम हैरान हो जाओगे।

जिस दिन तुम्हारे भीतर से क्रोध विसर्जित हो जायेगा। उस दिन अचानक तुम पाओगे कि सारे जगत से क्रोध विसर्जित हो गया है। ऐसा नहीं कि सारे जगत से क्रोध विसर्जित हो जायेगा, क्योंकि क्रोधी अब भी क्रोधी रहेंगे। लेकिन तुम्हारे लिए यह जगत क्रोध-शून्य हो जायेगा। क्योंकि तुम्हें अब इस जगत की कोई भी परिस्थिति क्रोधित न कर पायेगी। अब कोई भी खूंटी समर्थ नहीं होगी कि तुम्हारे भीतर के क्रोध को अपने पर टांग ले, क्योंकि भीतर क्रोध नहीं बचा। अब कोई भी दर्पण तुम्हारे भीतर की कुरूपता को प्रकट नहीं कर जायेगा, क्योंकि अब वह वहां नहीं है।

अध्यात्म की खोज इस मौलिक सूत्र से शुरू होती है, कि जो भी हम अपने बाहर पाते हैं, वह हमारे भीतर छिपा है।

अगर हम मानते हैं कि यह बाहर ही है, तो आप कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते। इसलिए कार्ल मार्क्स ने, लेनिन ने इन्कार किया धर्म को। उनके इन्कार करने में बड़ा अर्थ है और उन्होंने इन्कार किया तो तर्कयुक्त है। क्योंकि कार्ल मार्क्स ने कहा, कि बीमारी समाज में है—व्यक्ति में नहीं है। इसलिए समाज को बदलना होगा, तभी दुनिया बेहतर होगी। व्यक्ति को बदलने का कोई अर्थ ही नहीं है। क्योंकि व्यक्ति के भीतर कोई बीमारी नहीं है। यह मूल प्रस्तावना है कम्युनिज्म की। इसलिए मार्क्स ने कहा, धर्म निष्प्रयोजन है, व्यर्थ है। अगर उसकी बात ठीक है, तो धर्म निष्प्रयोजन है। उसने बात तो ठीक पकड़ी, क्योंकि अगर कम्युनिज्म ठीक है, तो धर्म व्यर्थ है।

मौलिक प्रस्तावना कम्युनिज्म की यह है कि बीमारी बाहर है, भीतर नहीं है।

और धर्म की मौलिक प्रस्तावना यह है कि बीमारी भीतर है, बाहर नहीं है।

इसलिए इस जमीन पर धर्म और कम्युनिज्म बड़े से बड़े प्रतिद्वन्द्वी हैं। गहरे से गहरा संघर्ष, इन दो मान्यताओं के बीच हो रहा है। और होगा। अगर बीमारी बाहर है तो फिर व्यक्ति को कुछ करने की जरूरत नहीं। न कोई ध्यान, न कोई साधना, न कोई आत्म क्रान्ति—सब निष्फल बातें हैं। तब तो हमें बाहर की स्थिति बदल देनी

चाहिये। और जब स्थिति बदल जायेगी, जब दर्पण बदल जायेगा, तो आप सुन्दर दिखाई पड़ने लगेंगे। आपको बदलने की कोई जरूरत नहीं।

लेकिन कम्युनिज्म की मान्यता में एक बुनियादी कठिनाई है। यह बदलेगा कौन? बदलेंगे व्यक्ति! वे व्यक्ति जो उस समाज में पैदा हुए हैं, जो कुरूप था, गन्दा था, शोषक था! वे व्यक्ति समाज के निर्माता हैं! क्योंकि कम्युनिज्म मानता नहीं है कि व्यक्ति की कोई सामर्थ्य है। सब सामर्थ्य समाज का है। तो जिस समाज में पैदा हुए व्यक्ति हैं, वे उसको बदलेंगे कैसे! और यहां कम्युनिज्म मुश्किल में पड़ जाता है। वे ही व्यक्ति बदलेंगे, जो इस समाज ने पैदा किये हैं? और व्यक्ति की कोई सामर्थ्य नहीं है, सब सामर्थ्य समाज की है। तो इन व्यक्तियों के द्वारा जो समाज निर्मित होगा, वह नया समाज नहीं हो सकता। क्योंकि नयापन आयेगा कहां से, पुराने में पले हुए, पुराने को ही फिर से स्थापित कर देंगे। और यही हुआ।

रूस में क्रान्ति हुई, बदलाहट ऊपर-ऊपर हुई, भीतर फिर वही का वही पुराना ढांचा आ गया। नाम बदल गये, व्यवस्था बदल गई, बड़ा उपद्रव हुआ, बड़ी हत्याएं हुईं, लेकिन मौलिक रूप समाज का वही रहा, जो था। पूंजीपति नहीं रहा, गरीब नहीं रहा, लेकिन अब मैनेजर और मजदूर हो गये! फर्क वही का वही है, फासला उतना का उतना है, शोषण वैसा का वैसा है। दीन अब भी दीन हैं, समृद्ध अब भी समृद्ध है। समृद्धि का ढंग बदल गया, अब उसके पास बैंक-बैलेन्स नहीं है! अब समृद्धि के लिए रुपये की ताकत नहीं रही। अब समृद्धि के लिए कम्युनिस्ट पार्टी के कितने बड़े पद पर हैं, यह वह ताकत हो गई। इससे क्या फर्क पड़ता है कि नोट हाथ में है, कि कम्युनिस्ट पार्टी का सर्टिफिकेट हाथ में है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ताकतवर, ताकतवर है; कमजोर, कमजोर है, और उनके बीच का फासला उतना ही है, जितना था। शायद फासला ज्यादा हो गया है, क्योंकि गरीब मुल्क में कोई गरीब भी अमीर हो सकता है, लेकिन रूस में जो कम्युनिस्ट नहीं है, उसे कम्युनिस्ट सीढ़ियां चढ़ना करीब-करीब असम्भव है। पिछले चालीस-पचास साल तक दस-पन्द्रह लोगों का एक छोटा सा जत्था, पूरे रूस पर हावी है। एक छोटा सा ग्रुप पूरे रूस पर कब्जा किये हुए है। सारा मुल्क गुलामी की हालत में है। कोई गरीब इतना गुलाम कभी नहीं था।

धर्म की मान्यता यह है कि रोग व्यक्ति के साथ है, समाज के साथ नहीं है।

मौलिक गुण अगर व्यक्ति का बदल जाये, तो ही समाज भी बदल सकता है। अगर क्रान्ति व्यक्ति में हो सकती है, तो हो सकती है, नहीं तो कोई क्रान्ति नहीं हो सकती है।

व्यक्ति की क्रान्ति का क्या अर्थ होता है?

व्यक्ति की क्रान्ति का अर्थ होता है, कि मैं जो भी अपने जीवन में पाता हूँ, वह मेरे भीतर से ही डाला गया है।

इसे हम ऐसा समझें।

आप दुःखी हैं, आप दुःखी हैं, आप उदास हैं, मन विषाद से घिरा है। वसन्त आ गया, फूल खिल गये, पक्षी गीत गाने लगे, लेकिन आपको न तो पक्षियों के गीत सुनाई पड़ेंगे, न फूलों का खिलना सुनाई पड़ेगा, न ही फूलों से झरती सुगन्ध आपके नासापुटों को स्पर्श करेगी। वसन्त आ गया है, यह आपको पता भी नहीं चलेगा। आप अपनी उदासी में घिरे हैं, आप अपने विषाद में घिरे हैं। यह भी हो सकता है कि फूलों का खिलना कष्टप्रद मालूम पड़े, और पक्षियों का गीत शोर-गुल मालूम पड़े। और आप चाहें कि सब शान्त हो जाये। यह क्या उपद्रव मचा है! वसन्त की हवाएं आपके लिए दंश है, क्योंकि आपके भीतर जो विषाद है, आप उसी के माध्यम से देख पायेंगे।

ऐसा भी हो जाता है कि आप बड़े प्रेम में हैं, आप बड़े आनन्द में हैं, आप बड़े प्रफुल्लित हैं; तो यह भी हो सकता है कि जहां फूल मे, फूल के पौधे में, फूल न हों सिर्फ कांटे ही कांटे हों तो उन कांटों में भी आपको सौन्दर्य की अनुभूति हो सकती है। एक कैक्टस का पौधा भी परम सौन्दर्य का प्रतीक हो सकता है—अगर भीतर प्रेम और आनन्द का उल्लास हो तो कांटे फूल बन जाते हैं। क्योंकि देखने वाला ही तो देखता है, सुनने वाला ही तो सुनता है। आँखें जो बाहर देखती हैं, वह कम मूल्य का है। जो भीतर छिपा है, जो आँखों से झांकता है, वह ज्यादा मूल्य का है।

आपकी आत्मा ही आपके चारों तरफ फैलती है, और चीजों पर छा जाती है। जो भी आप देखते हैं, जो भी आप पाते हैं, वह आपका ही फैला हुआ रूप है। अगर ऐसा है, तो ही जीवन में परिवर्तन का कोई उपाय है। क्योंकि तब मैं अपने को बदल लूँ, तो मैं पूरे जगत को बदल लेता हूँ।

इसको हम ऐसा भी समझें कि हम एक ही जगत में नहीं रहते हैं। ऐसा लगता है कि एक ही जगत में रहते हैं, लेकिन हम सबका मानसिक जगत अलग-अलग है। जितने लोग हैं यहां बैठे, उतने जगत यहां मौजूद हैं। क्योंकि कोई आपमें से दुःखी होगा, कोई आपमें से सुखी होगा; और कोई शान्त होगा और कोई अशान्त होगा। तो एक ही जगत के आप सदस्य नहीं हो सकते। जो यहां शान्त बैठा है, उसे यह चारों तरफ का जगत, परिपूर्ण शान्ति से भरा हुआ मालूम होगा। इस हवा का कण-कण, आकाश के एक-एक तारे, पत्तों का, फूलों का, वृक्षों का कण-कण सब कुछ, उसे शान्ति देता हुआ मालूम पड़ेगा। हवा की एक हल्की सी लहर उसे शान्ति का एक झोंका होगी। वह ताजगी से भर जायेगा। और जो उसके पास में ही उदास और दुःखी बैठा है; घटनायें यही उसके पास भी घटेंगी, लेकिन व्याख्या अलग होगी।

व्याख्या से जगत निर्मित होता है, व्यक्तियों से नहीं।

हम क्या व्याख्या करते हैं, हम कैसे देखते हैं, इससे जगत निर्मित होता है। और हम सबकी दृष्टि अलग-अलग है। हम सबका दर्शन अलग-अलग है। हम सबके जगत अलग-अलग होते हैं। हर आदमी अपने मानसिक जगत में रहता है। और इसलिए हम एक दूसरे से टकराते हैं, क्योंकि हमारे जगत इतने अलग-अलग होते हैं।

दो व्यक्ति विवाह कर लेते हैं, कभी भी एक ताल-मेल नहीं हो पाता है, क्योंकि दोनों का जगत, मानसिक रचना का जो लोक है, वह इतना अलग है कि वे टकराते हैं, संघर्षण होता है। पति कुछ कहता है, पत्नी बिलकुल कुछ और ही समझती है, जो उसने कहा ही नहीं। वह हजार दफे कहता है कि यह मेरा मतलब ही नहीं है, लेकिन पत्नी यह मान ही नहीं सकती कि यह तुम्हारा मतलब नहीं है। यही तुम्हारा मतलब है। पत्नी जो कहती है, पति नहीं समझ पाता। सवाद बिलकुल असम्भव मालूम पड़ता है। तुम कुछ कहते हो, कुछ समझा जाता है। कोई दूसरा कुछ कहता है, तुम कुछ और अर्थ निकालते हो। दूसरा लाख सिर पटके कि यह मेरा प्रयोजन नहीं, तो भी तुम्हें भरोसा नहीं आता। तुम कहते हो, प्रयोजन तो वही है। अब तुम बदल रहे हो देखने का ढंग।

हम कितने ही पास आ जायें, हमारे जगत अलग-अलग होते हैं और इनके बीच संघर्षण बना रहता है। जब तक कि तुम यह न समझ लो कि हर व्यक्ति अपने मनस्-लोक में रह रहा है, जब तक कि तुम इतने सजग न हो जाओ, कि तुम, दूसरा कैसे देख रहा होगा, जब तक तुम अपने को उसकी जगह रखके देखना न शुरू कर दो, न देख लो, तब तक संघर्ष जारी रहेगा। तब तक मित्रता भी एक तरह की शत्रुता है। सम्बन्ध भी एक तरह की कलह है। परिवार भी एक तरह का उपद्रव है। चूंकि वहां इतने जगत पैदा हो जाते हैं और उनके बीच संघर्ष है। लेकिन हमें यह ख्याल ही नहीं कि हम एक खोल के भीतर से देखते हैं, कि हम एक चश्मे के भीतर से देखते हैं। और हमारे चश्मे का रंग सब तरफ की चीजों पर फैल जाता है। और फिर हम चीजों को बदलने में लग जाते हैं। बजाय इसके कि मैं चश्मों को बदल दूँ, बजाय इसके कि हम चश्मों को अलग कर दें—बजाय इसके कि मैं अपने को बदलूं, मैं बाहर की व्यवस्था जुटाने में लग जाता हूँ कि दुनिया कैसे अच्छी हो, मकान कैसे अच्छे हों, सौन्दर्य कैसे मेरे चारों तरफ हो। और भीतर का आदमी कुरूप होता है, जो सब चीजों को कुरूप कर देता है।

मैं धनपतियों के घर ठहरता हूँ तो मैं देखके चकित होता हूँ, उनके पास धन है, लेकिन सौन्दर्य का बोध नहीं है। तो घर में कबाड़, कचरा इकट्ठा कर लेते हैं—बड़ा कीमती। कीमती लाते हैं, सारी दुनियासे बटोर लेते हैं, लेकिन उनके पास सौन्दर्य

का कोई बोध नहीं है। पैसा उनके पास है, तो घर उनका कबाड़-खाना मालूम होता है। वे चीजें रख लेते हैं ला-लाके, जो भी बाजार में नया आता है, वह खरीद लाते हैं। लेकिन न तो उसे रखने का सलीका है, न देखने की दृष्टि है; न काव्य का कोई बोध है, न सौन्दर्य का कोई अनुभव है। उन्हें तो सिर्फ रुपया इकट्ठा करना है, जो कि इस जगत में कुरूपतम कृत्य है। तो सारी आत्मा तो कुरूप है, लेकिन फिर पैसा पास में है तो सौन्दर्य को खरीद ले सकते हैं। तो जो भी उन्हें लगता है कि सुन्दर है—अगर खबर आ जाती है कि पिकासो का चित्र घर में होना जरूरी है, तो वे लाखों रुपया खर्च करके पिकासो का चित्र खरीद लाते हैं! न वे समझते हैं कि यह चित्र क्या है! वे यह भी नहीं बता सकते कि चित्र उलटा टंगा है, या सीधा टंगा है। लेकिन पिकासो का है, तो घर में होना चाहिये! फिर उसे वे लटका देते हैं।

पिकासो ने अपने एक पत्र में लिखा है, कि मेरा जीवन एक दुःखी आदमी का जीवन है। क्योंकि मैंने जो भी जीवन में श्रम से तैयार किया है, वह ऐसे घर में लटका है, जिसमें रहने वालों के पास न देखने वाली आँखें हैं, न समझने वाले हृदय हैं। कहीं किसी बाथरूम में, कहीं किसी बैठक-घर में मैं लटका हूँ। मेरे सारे जीवन का श्रम उन लोगों के पास चला गया है, जो कभी एक क्षण रुक कर भी नहीं देखते, कि क्या है, क्या वह ले आये हैं!

आप कितनी ही चीजें इकट्ठी कर लें, अगर भीतर सौन्दर्य का बोध नहीं है, तो आपके चारों तरफ कुरूपता होगी। और एक झोपड़े में भी सौन्दर्य हो सकता है, अगर आपके भीतर सौन्दर्य का बोध है; तब एक खाली जगह भी सुन्दर हो सकती है, वह बोध आरोपित होता है। वह बोध ही आपके चारों तरफ के जगत को निर्मित करता है। तब हो सकता है कि आपके फूलदान में कीमती फूल न हों और आपने सिर्फ साधारण पत्तों की एक सजावट कर रखी हो, लेकिन उसमें भी सौन्दर्य होगा, क्योंकि सौन्दर्य आपके भीतर से आता है।

यह सूत्र समझने जैसा है, क्योंकि जीवन-क्रान्ति की दिशा में चलने वालों के लिए बहुत ही विचारणीय है।

चौथा सूत्र : जीवन का संगीत सुनो।

उसे खोजो और पहले उसे अपने हृदय में ही सुनो। आरम्भ में तुम कदाचित् कहोगे कि यहां गीत तो है ही नहीं, मैं तो जब ढूंढता हूँ तो केवल बेसुरा कोलाहल ही सुनाई देता है। और अधिक ढूंढो। यदि फिर भी तुम निष्फल रहो, तो ठहरो, और भी अति गहरे में फिर ढूंढो। एक प्राकृतिक संगीत, एक गुप्त जल-स्रोत प्रत्येक मानव हृदय में है। वह भले ही ढंका हो, बिलकुल छिपा हो, और नीरव जान पड़ता हो—किन्तु है वह अवश्य।

जीवन का संगीत सुनो।

लेकिन इसे सुनने की पहली शर्त है कि उसे पहले अपने हृदय में सुनो। नहीं तो यह बाहर सुनाई नहीं पड़ेगा। हम बाहर संगीत सुनते हैं। शायद सोचते भी हैं कि संगीत समझ में आ रहा है। सिर भी हिलाते हैं, आनन्दित भी होते हैं, लेकिन अगर भीतर का संगीत नहीं सुना है, तो यह सब ऊपर-ऊपर की बात है, इससे संगीत में प्रवेश न हो पायेगा।

संगीत अध्यात्म है।

और जब तक आपके हृदय में, राग का अनुभव न होने लगे, और जब तक आपकी श्वांस-श्वांस में एक लय-बद्धता न आ जाये, और जब तक आपका जीवन-स्पन्दन वीणा न बन जाये; जब तक आपको भीतर न सुनाई पड़ने लगे वह नाद, जो जीवन का नाद है, जिसको पैदा नहीं करना पड़ता, जो चल ही रहा है, जो आप है ही; जब तक आपको वह सुनाई न पड़ जाये, तब तक इस जगत में जो अनन्त संगीत गुंजायमान हो रहा है, उससे आपकी कोई पहचान न होगी। और एक बार आपको अपने हृदय में सुनाई पड़ जाये वह नाद, तब आप पाएंगे कि हर तरफ, झरने की कलकल में, हवाओं का गुजरना वृक्षों के पत्तों के बीच से, उसमें; पत्थर के गिरने में, नदी के बहने में, नीरवता में, रात्रि के सन्नाटे में, झींगुरों की आवाज में, सब तरफ आपको अपने हृदय की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। यह जगत एक संगीत हो जायेगा। लेकिन यह होगा उस दिन, जिस दिन हृदय को सुना जा सके।

क्यों?

क्योंकि हृदय इतना निकट है, कि जब आप उसका संगीत नहीं सुन पाते, तो और सब चीजें तो दूर हैं, उनका संगीत आप न सुन पायेंगे। तारे बहुत दूर हैं, उनका संगीत आपको कैसे सुनाई पड़ेगा? और हृदय इतना निकट है, उसका ही नहीं सुनाई पड़ रहा है!

जो निकटम है, उससे यात्रा शुरू करो।

पुराने दिनों में, बहुत पुराने दिनों में इतिहास ने जिसका स्मरण ही छोड़ दिया है, संगीत की शिक्षा ध्यान से शुरू होती थी। क्योंकि वाद्य पर क्या करोगे, कंठ से क्या होगा, जब तक हृदय से संगीत का स्वर अनुभव न होने लगे? नृत्य की शिक्षा ध्यान से शुरू होती है। चूंकि शरीर को हिलाने से क्या होगा, जब तक कि स्पन्दन भीतर न आने लगे, जब तक कि भीतर विद्युत प्रभावित होने न लगे, जब तक कि भीतर कोई न नाच उठे? तब शरीर को हिलाना कवायद होगी, तब तक वह नृत्य नहीं होगा। और चाहे कितनी ही कुशलता आ जाये शरीर को नचाने की, वह कुशलता टेक्निकल होगी, हार्दिक नहीं होगी। उसमें कहीं भी हृदय नहीं होगा, कुशलता होगी। और

कुशलता बहुत गहरी हो सकती है, फिर भी आत्मा नहीं होगी, शरीर ही नाचेगा। यही फर्क है।

बड़े से बड़ा संगीतज्ञ भी नाच सकता है, नृत्यकार नाच सकता है। बड़े से बड़ा संगीतज्ञ संगीत को जन्म दे सकता है। लेकिन कृष्ण के नृत्य में बात कुछ और है। टेक्निकली वह गलत भी हो सकता है। उनके नृत्य में भूल-चूक खोजी जा सकती है। और पण्डितों को लगा दें, तो वे जरूर खोज लेंगे। लेकिन फिर भी उनका नृत्य किसी और आयाम में है।

मीरा के संगीत में भूल-चूक खोजी जा सकती है, काव्य में भूल-चूक खोजी जा सकती है, व्याकरण में भूल-चूक खोजी जा सकती है। क्योंकि मीरा न तो कोई कवि है, न वह कोई नर्तकी है, न वह कोई संगीतज्ञ है। लेकिन फिर भी किसी अन्तस् के कोने में, गहरे में, संगीत घटा है, नृत्य घटा है, काव्य का जन्म हुआ है। वही काव्य, वही नृत्य शरीर तक आ गया है, बाहर तक फैल गया है। इसलिए उसके नृत्य में कुछ बात ही और है। इस जगत का नहीं है वह नृत्य। वह तो जैसे पार से आती है कोई किरण, वह कहीं दूर की खबर लाती है—ऐसा है नृत्य। इसलिए मीरा छा गई हृदय पर। बहुत बड़े संगीतज्ञ हुए, मीरा की कोई तुलना नहीं उनसे। टेक्निकली कोई उसका अस्तित्व नहीं है, लेकिन संगीतज्ञों को हम भूलते चले जायेंगे, मीरा को भूलना असम्भव है।

चैतन्य नाचते हैं, उनके नाचने में न कोई व्यवस्था है, न कोई जानकारी है, नाचना अनगढ़ है। लेकिन नृत्य में कुछ प्राण हैं, कोई आत्मा है। नृत्य सजीव है। शरीर ही नहीं कंप रहा है, भीतर कहीं गहरे में स्पन्दन हो रहे हैं और शरीर उन स्पन्दनों की केवल खबर दे रहा है।

नृत्य-संगीत जैसी सारी कलाओं का जन्म कभी मन्दिर में हुआ था, उनका जन्म मन्दिर से है। वे कलाएं मन्दिर से फिर लौट-लौट कर बाहर व्याप्त हो गयी हैं। उनका प्राथमिक चरण कभी अध्यात्म की खोज का ही हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे जैसा सभी चीजों के साथ होता है, हम उसके बाह्य आवरण में ज्यादा उत्सुक हो जाते हैं। फिर बाह्य आवरण की व्यवस्था में उत्सुक हो जाते हैं। फिर हम इतनी व्यवस्था कर लेते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि जिसके लिये व्यवस्था कर रहे हैं, वह कभी का मर चुका है। अब हम शरीर की सजावट किये चले जा रहे हैं। संगीत बहुत दूर चला गया अध्यात्म से, नृत्य बहुत दूर चला गया; इतने दूर कि करीब-करीब उलटा हो गया है। करीब-करीब नृत्य और संगीत अब वासना की सेवा कर रहा है। कभी वह आत्मा से पैदा हुआ था; अब वासना की सेवा में रत है। इसलिए इस्लाम को तो इन्कार ही कर देना पड़ा बिलकुल कि संगीत पाप है। वह हैरानी की बात है। मगर सोचने जैसी है।

हिन्दुओं ने संगीत को श्रेष्ठतम समझा। संगीत की अनुभूति को परम-ज्ञान समझा। और हजारों साल बाद जो आखिरी धर्म जमीन पर आया, इस्लाम—उसने संगीत को वर्जित कर दिया, कि मस्जिद के सामने संगीत नहीं बजे! संगीत को पाप घोषित कर दिया! इस्लाम भी सही है। और हिन्दू भी सही हैं। जिस दिन संगीत पैदा हुआ था, उस दिन वह परम-ज्ञान का हिस्सा था, ध्यान का हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे हटते-हटते वह वासना की सेवा में रत हो गया था। और जब मुहम्मद का जन्म हुआ तो संगीत वासना की सेवा में रत था। वह काम-वासना का हिस्सा हो गया था। इसलिए मोहम्मद ने कहा कि संगीत मस्जिद के सामने नहीं हो। संगीत पाप है। दोनों सही हैं, क्योंकि संगीत के दोनों बिन्दु हैं, दो छोर हैं।

एक बात स्मरणीय है कि संगीत वासना की सेवा में लग जायेगा, अगर आपने उसे पहले भीतर न सुना। अगर बाहर सुना तो उसकी जो चोट है, वह आपके काम-केन्द्र पर होगी। क्योंकि काम-केन्द्र आपका सबसे बाहरी केन्द्र है—सबसे निम्न, सबसे बाहरी। अगर आपने संगीत भीतर सुना, तब तो वह आत्मा मे प्रतिध्वनित होगा। अगर आपने बाहर सुना तो उसकी पहली चोट, पहला आघात सेक्स सेन्टर पर होगा, काम-केन्द्र पर होगा, क्योंकि वही निकटतम है। और तब अनिवार्य रूप से संगीत, काम की सेवा मे संलग्न हो जायेगा। तो कामातुर लोग नाच में रस लेते हैं, गान में रस लेते हैं। तो धीरे-धीरे राजा-महाराजाओं के दरबार की बात हो गई। साधु दूर हटता गया, क्योंकि असाधु संगीत का रस लेने लगा। लेकिन कारण संगीत नहीं है, कारण अगर भीतर से पहले यात्रा न हुई, तो यह उलझन आयेगी। अगर भीतर से यात्रा हुई, एक बार भीतर का संगीत अनुभव में आया, तो फिर जगत मे जो भी संगीत सम्भव है—निर्मित, अनिर्मित; प्राकृतिक, कृत्रिम; वह सभी संगीत, एक बार भीतर का स्मरण आ जाये, तो वहीं चोट करेंगे।

नानक अपने साथ एक संगीतज्ञ को रखते थे। बोलते कम थे, गाते ज्यादा थे। और बगल में मरदाना, अपने इकतारा को बजाता था। पर नानक पहले अजपा की शिक्षा देते थे। तो पहले भीतर अजप का जो नाद है, वह सुना जाये। और जब उनके साधक अजपा के नाद में लीन होने लगते थे, भीतर का नाद सुनने लगते थे, तब वे बाहर का संगीत भी साथ में देते थे। यह बाहर का भी संगीत, भीतर के उस गहन संगीत के साथ एक हो जाता था। और जब बाहर और भीतर का संगीत एक होता है, तो बाहर और भीतर मिट जाते हैं, सिर्फ संगीत रह जाता है। वह संगीत का क्षण ब्रह्म-अनुभव का क्षण हो जाता है। पर उसे खोजो और पहले अपने हृदय में ही सुनो।

...आरम्भ में तुम कदाचित् कहोगे कि यहां गीत तो है ही नहीं, संगीत तो है ही नहीं, मैं तो जब सुनता हूं तो बेसुरा कोलाहल ही सुनाई पड़ता है।

निश्चित ही, जब तुम पहली दफा भीतर जाओगे, तो सिवाय भीड़ और बाजार के कुछ भी न मिलेगा। क्योंकि तुमने अब तक भीड़ और बाजार को ही अपने भीतर पहुंचाया है। तब वहां तुम शोर-गुल सुनोगे। वहां व्यर्थ की आवाजें सुनाई पड़ेंगी, वहां खण्ड-खण्ड, टुकड़े बातचीत के सुनाई पड़ेंगे, जिनमें कोई तुक भी नहीं है। संगीत तो बहुत दूर है, जिनमें कोई संगीत भी नहीं है, जिनमें कोई सम्बन्ध भी नहीं है। अगर तुम बैठ जाओ एकान्त में और तुम्हारे भीतर जो चल रहा है, उसे तुम कागज पर लिखो, तो तुम समझोगे कि यह कोई पागल है मेरे भीतर या बहुतेरे पागल हैं मेरे भीतर।

अभी वैज्ञानिक सोचते हैं कि आज नहीं कल, ऐसा उपाय कर लेंगे कि आपकी खोपड़ी में विद्युत का यन्त्र लगाकर एम्प्लीफाई किया जा सके, कि वहां जो भीतर चल रहा है, उसे और लोग भी सुन सकें। कोई राजी नहीं होगा इस काम के लिए, कि आपके भीतर जो चल रहा है, उसे और लोग भी सुन लें। एक दफा अगर उन्होंने सुन लिया, तो आपका कोई भरोसा नहीं करेगा, क्योंकि आप अपना एक चेहरा बनाए हुए बैठे हैं, वह एकदम नकली है। आप बड़े बुद्धिमान दिखाई पड़ रहे हैं, वह सब नकली है। वह भीतर जो चल रहा है, वह बिलकुल विक्षिप्त-सा है।

स्वभावतः जब आप भीतर जायेंगे तो पहले यह विक्षिप्तता ही सुनाई पड़ेगी। पहले आपको यही आवाजें सुनाई पड़ेंगी; उनसे डरना मत, घबड़ाना भी मत। और थोड़े भीतर प्रवेश की जरूरत है, साक्षी-भाव से उन्हें सुनना है, तो भीतर प्रवेश हो सकेगा। उनके विरोध में भी कुछ मत करना, क्योंकि विरोध में किया, तो वहीं उलझ जाओगे। उनसे लड़ना भी मत, क्योंकि लड़े, तो तुम भी एक हिस्सा हो जाओगे उस भीड़ में उपद्रव का। उपद्रव और बढ़ जायेगा। उनको रोकने की भी कोशिश मत करना, क्योंकि रोकने से उनसे छुटकारा नहीं है। और जिसे हम रोकते हैं, उसकी छाती पर हमें बैठे रहना पड़ता है, उसके आगे नहीं जा सकते। उनके साथ कुछ करना ही मत—तटस्थ भाव।

बुद्ध ने कहा है, उपेक्षा से भीतर की तरफ चलना।

वह चल रहा है, शोर-गुल चलने देना। जैसे एक बाजार से तुम गुजर रहे हो, तो ठीक है, बाजार है। तुम उसकी चिन्ता नहीं ले रहे हो। ऐसे ही तुम इस भीतर के बाजार से भी गुजरते वक्त परेशान मत होना। एक उपेक्षा का भाव रखना कि ठीक है, बाजार है। अब तक यही इकट्ठा किया है, वह है। तुम चुपचाप साक्षी-भाव से भीतर की तरफ चलना और गहरे खोजना।

...और अधिक गहरे ढूंढो। यदि फिर भी तुम निष्फल रहो, तो उससे और भी अधिक गहरे ढूंढो।

डरना मत, क्योंकि निश्चित स्रोत है। वह स्रोत अनेकों ने पाया है, और तुम भी पा सकते हो। वह जिन्होंने पाया है, उनकी गवाही है कि पाया जा सकता है। वह तुम्हारे भीतर है, पर्त-दर-पर्त दबा है। बहुत पर्तें हो सकती हैं, लेकिन घबड़ाना मत और उसकी खोज जारी रखना। और कितना ही उपद्रव भीतर मालूम पड़े, तुम शान्त बैठकर उस उपद्रव को देखते रहना।

श्री अरविन्द जब पहली दफा साधना में उतरे, तो उनके गुरु ने उन्हें कहा कि विचार तुम्हारे भीतर चलेंगे बहुत, तुम एक छोटा-सा काम भी करना, कि तुम विचारों को मक्खियां समझ लेना, कि मक्खियां तुम्हारे सिर के आस-पास मंडरा रही हैं, और तुम उनकी फिक्र न करना, उनको शोरगुल मचाने देना। तुम समझना कि तुम बीच में खड़े हो, और मक्खियां गूंज रही हैं चारों तरफ। श्री अरविन्द तीन दिन तक वैसी अवस्था में बैठे रहे। पहले तो वे बहुत घबड़ाये, क्योंकि मक्खियां थोड़ी न थीं। एक-एक विचार अगर एक-एक मक्खी थी, तो करोड़ों मक्खियां भिनभिनाने लगीं। पर संकल्प के व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कि अगर मक्खियां ही मानना है, तो फिर चिन्ता क्या करनी है, बैठे रहना है—बैठे रहे, बैठे रहे; मक्खियां भिनभिनाती रहीं, न उनसे लड़े, न उनको भगाया, न हटाया। धीरे-धीरे उन्होंने पाया, घण्टों के बीतने के बाद, मक्खियों की भीड़ कम होती आ रही है। तब भरोसा बैठा कि सिर्फ बैठने से मक्खियों की भीड़ कम हो रही है, तो और बैठने से मक्खियां और भी कम हो जायेंगी। तो फिर प्रसन्नता भी आ गई, आस्था भी आ गई, आशा भी आई; आत्मविश्वास भी बढ़ा। फिर वे बैठे ही रहे, फिर उन्होंने सोचा कि अब उठना उचित नहीं, क्योंकि उठने पर हो सकता है कि फिर इतनी भीड़ से गुजरना पड़े। तो बैठे ही रहे। तो वे तीन दिन तक बिना खाये-पिये बैठे ही रहे। उन्होंने तय कर लिया कि जब तक आखिरी मक्खी न चली जाये, तब तक मैं बैठा ही रहूँगा। तीन दिन में आखिरी मक्खी भी चली गई। कोई विचार न रहा।

उस क्षण में सुना जाता है जीवन-संगीत, उस क्षण मे भीतर का स्रोत प्रकट हो जाता है। जब आप होते है निर्विचार, तब सम्बन्ध हो जाता है हृदय के संगीत से। जब तक विचार से भरे हैं, तब तक कोलाहल रहेगा। पर यह कोलाहल, बहुत कठिन नहीं है इसको पार करना—सिर्फ उपेक्षा और इस कोलाहल में न उलझने की दृष्टि, और धीरे-धीरे अपने को शिथिल छोड़ते जाना जरूरी है।

अभी पश्चिम में उन्होंने फीड-बैक मशीनें बनाई हैं। सस्ती मशीनें हैं, बड़े काम की हैं। बहुत छोटी सी मशीनें हैं, कोई हजार रुपये की होंगी। आपके माथे पर दोनों तरफ जहां विचार की चोट पड़ती है और आपके मस्तिष्क के स्नायु कंपते हैं, वहां तार लगा दिये जाते हैं। ऊपर से तार चिपका दिये जाते हैं और मशीन के सामने आपको बिठा दिया जाता है, फिर मशीन को ऑन कर दिया जाता है। मशीन तत्क्षण, उसका कांटा

घूमने लगता है तेजी से—जितनी तेजी से आपके विचार घूम रहे हैं मशीन का कांटा घूमने लगता है। और आपसे कहा जाता है कि आप शान्त होते जाएं, शिथिल होते जाएं। आप सामने देखते हैं कि कांटा जैसे आप शिथिल होते हैं, कम हो जाता है। उससे भरोसा बढ़ता है। जब आप और शान्त होते हैं तो कांटा और धीमा हो जाता है। और जब आप ठीक एक शान्ति की अवस्था में आते हैं, जिसको वे अल्फा-वेव कहते हैं, तब मशीन पीप पीप पीप की आवाज करने लगती है। जैसे ही मशीन पीप पीप पीप की आवाज करती है, आपको पक्का भरोसा आ जाता है कि विचार शान्त हो गये, और मैं अल्फा-वेव में आ गया, जहां ध्यान और गहरी नींद घटित होती है। उस क्षण आप अपने भीतर देखें तो एक भी विचार नहीं होता। बाहर मशीन खबर देती है कि भीतर एक भी विचार नहीं है। अगर आप और शान्त होते चले जाएं, तो अल्फा से भी गहरे उतर जाते हैं, तब मशीन दूसरी तरह की आवाज देती है। जो काम आप सालों में कर पाते हैं, वह इस मशीन पर बैठ कर तीन या सात दिन में हो जाता है। क्योंकि आप कुछ भी करते हैं, ध्यान करते हैं, कुछ भी करते हैं तो आपको पता तो चलता नहीं कि भीतर हो क्या रहा है? पता चल जाये तो बड़ी सुविधा हो जाती है, क्योंकि आपको भरोसा आता है कि कोई गति हो रही है, कोई फर्क पड़ रहा है। इसको वह फीड बैक कहते हैं, क्योंकि वह मशीन आपको सहायता देती है। वह फीड करती है आपको, वह खबर देती है कि हाँ, अब आप शान्त हो रहे हैं। तो भीतर का आपको पता नहीं चलता, लेकिन मशीन से पता चलता है कि आप शान्त हो रहे हैं। यह ख्याल, कि मैं शान्त हो रहा हूँ, सजेशन बन जाता है, सुझाव बन जाता है। अगर मैं शान्त हो रहा हूँ तो आप और शान्त हो जाते हैं। जब आप और भी शान्त होते हैं, मशीन और भी खबर देती है। और इस तरह मशीन और आपके बीच एक संवाद निर्मित हो जाता है। अगर आप कुछ न करें, सिर्फ बैठकर अपने विचारों को शिथिल छोड़ दें, पांच-सात मिनिट तो एक दो-तीन दिन के प्रयोग में आप अल्फा-वेव को उपलब्ध कर लेते हैं।

वह जो भीतर के जगत हैं, इस भीतर के जगत में विचारों को शिथिल छोड़ना और विचारों से अपने को शान्ति से अलग हटा लेना—यही एक मात्र प्रयोग है, सारे धर्मों, सारी व्यवस्थाओं, सारे योग, सारे तन्त्रों में। एक ही महत्वपूर्ण बात है कि किसी तरह भीतर के कोलाहल की पर्त को पार करके आप उस जगह पहुंच जायें, जहां भीतर शान्ति का झरना है। वह झरना आपके भीतर है। वह उतना ही आपके भीतर है, जितना बुद्ध के भीतर है, उसमें रत्ती भर की कमी नहीं है। उस झरने से सम्पर्क स्थापित करने की बात है।

...फिर भी तुम निष्फल रहो तो ठहरो और भी अधिक गहरे में फिर डूबो। एक प्राकृतिक संगीत, एक गुप्त जल-स्रोत प्रत्येक मानव हृदय में है। वह भले ही ढंका हो, बिलकुल छिपा हो, और नीरव जान पड़ता हो, किन्तु वह है अवश्य।

तुम्हारे स्वभाव के मूल में तुम्हें श्रद्धा, आशा और प्रेम की प्राप्ति होगी।

और जिस दिन तुम इस स्रोत से सम्बन्धित हो जाओगे, तुम्हारा जीवन श्रद्धा, आशा और प्रेम से भर जायेगा। वह लक्षण होगा।

लोगों से कहा जाता है, श्रद्धा करो। वे श्रद्धा कर भी कैसे सकते हैं? भरोसा लाओ। वे भरोसा ला भी कैसे सकते हैं? विश्वास करो। वे विश्वास कर कैसे सकते हैं? क्योंकि भरोसा, विश्वास या श्रद्धा, जब तक भीतर के आनन्द, शान्त-संगीत से सम्बन्ध न हो जाये, तब तक पैदा नहीं होते। वह भीतर के संगीत से सम्बन्धित होने के बाह्य परिणाम हैं। तो चेष्टा करके लोग झूठी श्रद्धा ले आते हैं, जबरदस्ती विश्वास कर लेते हैं। मान लेते हैं कि जब इतना कहा जाता है कि मानो, तो ठीक है, मान लेते हैं। लेकिन तब एक नुकसान होता है। तब वे असली श्रद्धा से वंचित रह जाते हैं। नकली, झूठी श्रद्धाओं के हाथ मे रह जाते हैं। और वे सोचते हैं कि यही श्रद्धा है। हम सबके हाथ में ऐसी श्रद्धा है। बचपन से सिखाया जा रहा है कि विश्वास करो, तो हम विश्वास कर रहे हैं। फिर अविश्वास करने में अड़चन भी है। सुविधापूर्ण, कनविनियेन्ट भी यही है कि विश्वास करो, क्योंकि चारों तरफ विश्वास करने वाले लोगों का समूह है। लेकिन झूठा विश्वास है, इससे भीतर की आस्था तक हम पहुंच ही नहीं पाते।

भीतर की आस्था तक जाना हो तो ध्यान के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

जानकारी, शिक्षा, कुछ भी सहायता न पहुंचा सकेगी, जब तक कि तुम्हें भीतर का स्वाद न आने लगे। इस स्वाद के आते ही तीन घटनाएं घटेंगी। तुम्हारे जीवन में श्रद्धा आ जायेगी। श्रद्धा का अर्थ किसी के प्रति श्रद्धा नहीं है।

श्रद्धा का अर्थ है: भरोसा करने की वृत्ति।

ऐसा नहीं है कि तुम अपने गुरु के प्रति श्रद्धा रखोगे, कि महावीर के प्रति श्रद्धा रखोगे। क्योंकि मैं देखता हूं, जो महावीर के प्रति श्रद्धा रखता है, वह मोहम्मद के प्रति नहीं रखता। यह श्रद्धा झूठी है। श्रद्धा किसके प्रति? यह सवाल नहीं है। तुम्हारे भीतर श्रद्धा का एक सहज-भाव होगा। तुम्हारी सहज वृत्ति यही होगी कि तुम भरोसा करोगे। किसका? यह सवाल नहीं है। तुम्हारा पहला लक्षण भरोसा करना होगा। अभी क्या है? तुम्हारा पहला लक्षण अविश्वास करना है।

अगर एक नया आदमी तुम्हारे घर में आता है, अजनबी है, तुम पहले उसको ऐसे देखते ही—कोई चोर तो नहीं है, कोई बदमाश तो नहीं है। सामान सम्भाल कर रखो। कुछ ले तो नहीं जायेगा? या कुछ दान लेने तो नहीं आया है? कोई पैसा

तो नहीं मांगेगा? क्या करेगा? पहले तुम...उसके कपड़े-लत्ते देखते हो कि उसकी हालत कैसी है। क्योंकि हालत खबर देगी। पहले तुम्हारी जो दृष्टि है किसी के भी प्रति, वह अविश्वास की है। तुम भरोसा भी अगर लाते हो, तो बहुत तुम अविश्वास करके। जब देख लेते हो कि नहीं, अविश्वास सफल नहीं हो रहा है, यह आदमी न तो चोरी कर रहा है, न लेकर भाग रहा है, न कुछ कर रहा है, तब तुम लाते हो।

तुम्हारा भरोसा जो है, वह तुम्हारा सहज-भाव नहीं है, तुम्हारे तर्क की निष्पत्ति है। तुम्हारा सहज-भाव अविश्वास है। पहली बात जो पैदा होती है, वह अविश्वास की है। अगर रात में तुम देखते हो कि कोई आदमी घर में चला आ रहा है अंधेरे में, तो तुम एकदम चिल्ला पड़ते हो, चोर...और कोई विचार भी नहीं है, लेकिन यह तुम्हारी सहज-वाणी है। अंधेरे में कुछ छायाओं को देखकर, पहला ख्याल यही आता है कि दुश्मन हैं। मित्र, ऐसा ख्याल नहीं आता! जो मैं कह रहा हूँ, वह यह कह रहा हूँ कि हमारा सहज-भाव बिना किसी तर्क के अविश्वास का है। यह कोलाहल से भरे चित्त का लक्षण है। वह डरा हुआ है। जिन्दगी में सब जगह उसे शत्रुता दिखाई पड़ती है, जब जगह कोई न कोई कुछ छीनने को उत्सुक है। कोई न कोई, कुछ न कुछ लेने को उत्सुक है। सब चोर हैं, सब बेईमान हैं। और सब तरफ लूट मची है। और बस उसके ऊपर ही सारी दुनिया की नजर है।

जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर के संगीत से सम्बन्धित होता है, इसके विपरीत सहज भरोसा आ जाता है। तब चोर भी आपके घर में घुस आये तो आपको पहला यह ख्याल नहीं आता कि वह चोर है। पहला यह ख्याल आना, बहुत बुरा है—भला वह चोर ही क्यों न हो। लेकिन पहला यह ख्याल आना बहुत बुरा है, भला यह सही ही क्यों न हो आपका ख्याल कि वह चोर है। और चोर ही क्यों न साबित हो, लेकिन चोर जितना नुकसान पहुंचा सकता है, उससे ज्यादा नुकसान इस ख्याल से पहुंच रहा है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति धार्मिक नहीं हो पायेगा। और ऐसा व्यक्ति परमात्मा से वंचित रह जायेगा। वह बचा लेगा थोड़ी बहुत चीजें, चोर वगैरह से बच जायेगा, बेईमान से बच जायेगा, जेब सम्भाल कर रखेगा, लेकिन वह जो बचा रहा है, वह दो कौड़ी का है। और वह जो खो रहा है, अनन्त है।

अगर भरोसा किया तो क्या खो जायेगा? आपके पास है क्या, जो खो जायेगा? क्या लुट जायेगा?

और वह आदमी जिसको हजार बार धोखा दिया जाये, फिर भी एक हजार एक बार मौका आये, तो भरोसा कर ले, वह आदमी सन्त है। उसके सन्तत्व का कारण यह है कि उसके भरोसे की वृत्ति सहज है। कितना ही अनुभव विपरीत हो, वह उस वृत्ति को नहीं छोड़ेगा।

मैंने सुना है कि उमा स्वांति ने कहीं लिखा है कि एक साधु नदी में स्नान करने को उतरा था, देखा उसने एक बिच्छू गिर पड़ा है, तो उसने उसे हाथ पर उठाकर किनारे के बाहर रखना चाहा। उस बिच्छू ने एक डंक मारा, डंक मारने से वह हाथ से बिच्छू छूट गया, फिर पानी में गिर गया तो उस साधु ने फिर उठाया। पास किनारे खड़े एक मछुए ने कहा कि आप पागल तो नहीं हैं? वह बिच्छू डंक मार रहा है और अभी उसने डंक मारा है, और फिर पानी में से तुम उसे उठा रहे हो! तो उस साधु ने कहा, बिच्छू अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, मुझे भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिये। मैं बचाना चाहता हूँ, पर बिच्छू बेचारा डरा हुआ है, डर के मारे वह समझ रहा है कि पता नही मैं उसकी हत्या कर रहा हूँ या क्या कर रहा हूँ, इसलिए डंक मार रहा है। लेकिन क्या तुम सोचते हो कि मैं बिच्छू से हार जाऊं, और बिच्छू जीत जाये? मैं उसे उठाऊंगा, और मैं कोशिश करूंगा कि ऐसा वक्त आये कि बिच्छू भी समझ जाये कि उठाने वाला मुझे हत्या करने के लिए नहीं उठा रहा है, तभी मैं रुकूंगा।

बिच्छू से मैं हार नहीं सकता—इसे हम थोड़ा समझें।

बिच्छू काट कर भी क्या करेगा? थोड़ी पीड़ा देगा। लेकिन अगर यह साधु बिच्छू से नहीं हारा, तो इसे जो आनन्द उपलब्ध होगा, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

यह सूत्र कह रहा है कि—तुम्हारे स्वभाव के मूल में तुम्हें श्रद्धा, आशा और प्रेम की प्राप्ति होगी।

श्रद्धा सहज-भाव हो जायेगी। किस पर—यह सवाल नहीं है, तुम श्रद्धालु हो जाओगे। वह चोर हो कि साधु, कि महात्मा हो कि चोर, इससे कोई सवाल नहीं है; अपना हो कि पराया, तुम्हारा सहज-भाव श्रद्धा होगा। यह श्रद्धालु का लक्षण है। इसलिए जिन श्रद्धालुओं को तुम देखते हो कि मन्दिर के सामने माथा झुका रहे हैं और मस्जिद के सामने अकड़ कर चल रहे हैं, वे श्रद्धालु वगैरह नहीं हैं। श्रद्धालु तो सब जगह झुका होगा। कि मस्जिद को तो बचा रहे हैं, और मन्दिर को जला रहे हैं! वे श्रद्धालु नहीं हैं। कि कुरान को तो सिर पर रखे हुए हैं और गीता को लात मार रहे हैं! वे श्रद्धालु नहीं हैं। वह श्रद्धा झूठी है। और वह श्रद्धा खतरनाक है, जहरीली है।

श्रद्धालु का तो अर्थ यह है कि कुछ भी चारों तरफ हो, वह उसमें से कुछ खोज लेगा, जिसमें श्रद्धा की जा सकती है। वह खोज ही लेगा, अपनी श्रद्धा के योग्य। वह उसकी सहज खोज है। आशा और प्रेम—जिस व्यक्ति को भीतर के संगीत का स्वर सुनाई पड़ जायेगा, उसके जीवन से निराशा समाप्त हो जायेगी। और आशा

का मतलब आप यह मत समझना कि वह सोचेगा कि कल मुझे यह मिलने वाला है, परसों मुझे यह मिलने वाला है। नहीं, वह आशा तो वासना की आशा है। उसे तो हम बहुत पीछे छोड़ आये सूत्रों में। साधक उसे बहुत पीछे छोड़ आया।

आशा का अर्थ यह है कि आगे जीवन में जहां भी वह देखेगा, उसे आशा का पहलू दिखाई पड़ेगा। अगर रात अंधेरी होगी; तो उसे दिखाई पड़ेगा कि सुबह बहुत करीब है। अगर आकाश में काले बादल घिरे होंगे, तो वह कहेगा कि आज की बिजली की चमक बड़ी शानदार होगी। कि दुःख आयेगा तो वह कहेगा कि सुख की प्रतीक्षा करो, सुख जरूर ही करीब होगा। उसे कितना ही दुःख दिया जाये, वह उसमें से सुख खोज लेगा। और उसे कितना ही परेशान किया जाये, परेशानी में से वह शिक्षा निकाल लेगा। उसके जीवन में कुछ भी घटित हो, उसे निराश न किया जा सकेगा। वह हर तरफ से आशा का बिन्दु खोज लेगा। वह जो शुभ्र बिन्दु है, वह हर जगह खोज लेगा। वह हर जगह मौजूद है।

निराश आदमी हर जगह अंधेरे को खोज लेगा। कुछ भी करो, निराश आदमी से पूछो, तो वह कहता है कि दुनिया बड़ी बुरी है। दो रातें होती हैं, तब कहीं एक छोटा सा दिन होता है। इस तरह का आदमी कहेगा, दुनिया बड़ी अद्‌भुत है, दो उजाले दिन होते हैं, तब कहीं बीच में छोटी सी रात होती है। और रात दिन बराबर होते हैं, बाकी देखने का कोण है। निराश आदमी गुलाब के फूल के पास जा कर कांटोंकी गिनती करेगा। और जब वह देख लेगा कि हजार कांटे हैं, तो वह कहेगा कि यह एक जो फूल है, वह झूठ है। जहां इतने कांटे हैं, वहां फूल हो सकता है? जिस पौधे में ऐसे जहरीले कांटे निकल रहे हैं, कि जान ले लें, उसमें यह फूल हो सकता है? यह फूल तो प्रलोभन है, ताकि कांटों में फंस जाओ। यह फूल झूठ है। और फिर वह कहेगा कि फूल तो सुबह खिलता है और सांझ गिर जाता है, कांटे सदा रहते हैं। सत्य है कांटा। यह फूल तो माया है, सपना है; इसमें मत उलझना, इससे बचना।

आशा वाला व्यक्ति भी गुलाब के फूल के पास जायेगा, तो फूल उसे पहले पकड़ लेगा। वह फूल में इतना डूब जायेगा कि उसे कोई याद भी दिलायेगा कि यहां कांटे हैं, तो वह कहेगा कि जहां इतना अद्‌भुत फूल खिला है, वहां कांटे कैसे हो सकते हैं? और अगर कांटे हैं तो जरूर फूल की रक्षा के लिए होंगे। अगर कांटे हैं तो जरूर उनका कोई अर्थ होगा। क्योंकि जहां ऐसा सुन्दर फूल खिल रहा है, जिस पौधे में; उस पौधे में कांटे दुश्मन की तरह नहीं लग सकते, वे मित्र की तरह ही लगेंगे। और जो फूल के रस में ठीक तरह से डूब जायेगा, उसके लिए कांटों में भी फूल दिखाई पड़ने लगेंगे। और जो कांटों के जहर में ठीक से डूब जायेगा, उसे फूल के रस में भी जहर दिखाई पड़ने लगेगा।

दुनिया वैसी ही हो जाती है, जैसा हम देखते हैं।

आशा का अर्थ है, जीवन का वह जो शुभ्र पहलू है, वह उसे दिखाई पड़े।

...और प्रेम की प्राप्ति होगी।

प्रेम का अर्थ नहीं कि वह किसी एक व्यक्ति को प्रेम करने लगे। प्रेम का अर्थ इस घड़ी में, कि प्रेम उसकी सहज अवस्था होगी। वह प्रेम करेगा! और जो तैयार हों और जो भी खुले हों, वे उसके प्रेम के पाने के पात्र हो जायेंगे। उसका प्रेम कोई मोह नहीं होगा। उसका प्रेम कोई आसक्ति नहीं होगी। उसका प्रेम तो... कोई बंधन निर्मित नहीं होगा। उसका प्रेम एक सहज दान होगा। उसके भीतर शान्ति और आनन्द घटा है, वह बांटेगा। प्रेम का कृत्य होगा कि वह अपनी शान्ति और आनन्द को बांटता रहे। हमारे लिए प्रेम एक सम्बन्ध है, उसके लिए प्रेम एक अवस्था होगी। ऐसा नहीं है कि वह प्रेम करेगा आपको, वह प्रेमपूर्ण होगा। दो में फर्क है। आप किसी को प्रेम करते हैं, तो प्रेम आपके लिए एक सम्बन्ध है, लेकिन आप प्रेमपूर्ण नहीं हैं।

बुद्ध या महावीर किसी को प्रेम नहीं करते, लेकिन प्रेमपूर्ण हैं। इसका यह मतलब नहीं, कि सभी को उनका प्रेम बराबर मिलेगा। वे तो सभी को बराबर देते हैं, लेकिन जो जितना ले सकेगा, उतना ही पायेगा। और जो उनके पास दुश्मन की तरह खड़ा हो जायेगा, वह वंचित रह जायेगा। जो उनके पास पूरा हृदय का पात्र खोल देगा, वह पूरा भर जायेगा।

सबको अलग-अलग मिलेगा, लेकिन महावीर की तरफ से बराबर दिया जा रहा है। दिया जा रहा है, यह कहना ठीक नहीं है। यह ऐसे ही है, जैसे कि दीया जलता तो उससे प्रकाश गिरता है। आप उसके पास से निकलेंगे, अगर आँखें खुली होंगी तो आपको दिखाई पड़ेगा। आँखें बन्द होंगी तो नहीं दिखाई पड़ेगा। प्रकाश आपके लिए गिर भी नहीं रहा है, प्रकाश तो गिर रहा है; आप निकले, आप की आँखें खुली हैं, तो प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में प्रेम एक अवस्था होगी।

...जो पाप-पथ को ग्रहणक रता है, वह अपने अन्तरग में देखना अस्वीकार कर देता है, अपने कान हृदय के संगीत के प्रति मूंद लेता है, और अपनी आँखों को अपनी आत्मा के प्रकाश के प्रति अन्धा कर लेता है। उसे अपनी वासनाओं में लिप्त रहना सरल जान पड़ता है, इसी से वह ऐसा करता है।

पाप-पथ का एक ही अर्थ है, कि तुम अपनी तरफ, अपने भीतर न जाकर, बाहर की तरफ, किसी और की तरफ जा रहे हो। पाप का एक ही अर्थ है कि तुम्हारी अन्तर्यात्रा बन्द हो रही है, और बहिर्यात्रा शुरू हो रही है। सभी बहिर्यात्रा पाप है

उसका नाम चाहे धार्मिक भी दे दो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन जब भी तुम अपने से दूर जा रहे हो, तब तुम पाप-पथ पर हो। और जब अपने करीब आ रहे हो, तुम पुण्य-पथ पर हो। और जो व्यक्ति अपने से दूर जाना चाहता है, उसे अपने भीतर की आवाज के प्रति बहरा हो जाना जरूरी है, क्योंकि वह आवाज भीतर खींचेगी। जो अपने से दूर जाना चाहता है, उसे भीतर के प्रति अन्धा हो जाना जरूरी है, क्योंकि वह भीतर का दृश्य, आंखों को भीतर बुलायेगा। तो हम धीरे-धीरे भीतर की तरफ बिलकुल समाप्त हो जाते हैं, ताकि हम बाहर सुविधा से जा सकें, दूर जा सकें—कोई हमें रोके ना। और जितने हम दूर चले जाते है, उतना ही कोलाहल, उतना ही उपद्रव हमारे चारों तरफ इकट्ठा हो जाता है। और फिर जब हम पीड़ित और परेशान होकर भीतर लौटना चाहते हैं, तो पहले हमें इसी बाजार से लौटना पड़ता है जो हमने ही निर्मित किया है। फिर अगर कोई हिम्मत रखे, साहस रखे, तो इस भीड़ के पास जाया जाता है। क्योंकि यह भीड़ बहुत कमजोर है, और भीतर का स्वर बहुत बलशाली है।

बस एक बार सम्बन्ध स्थापित हो जाये, तो अनन्त स्रोत के हम मालिक हो जाते हैं।

...परन्तु समस्त जीवन के नीचे एक बेगवती धारा बह रही है, जिसे रोका नहीं जा सकता। सचमुच गहरा पानी वहां मौजूद है, उसे ढूंढ निकालो।

...इतना जान लो कि तुम्हारे अन्दर निःसंदेह वह वाणी मौजूद है। उसे वहां ढूंढो और जब एक बार उसे सुन लोगे, तो अधिक सरलता से तुम उसे अपने आस-पास के लोगों में पहचान सकोगे।

काश, वह तुम्हें सुनाई पड़ जाये, तो फिर वह तुम्हें अपने आस-पास सभी में सुनाई पड़ने लगेगी। जितने गहरे तुम अपने भीतर जाओगे, उतने ही गहरे तुम दूसरों के भीतर भी देख सकोगे। जिस दिन तुम अपने केन्द्र को पहचान लोगे, उस दिन लोग भी तुम्हारे लिए, शरीर न होकर आत्माएं हो जायेंगे। क्योंकि उनका केन्द्र भी तुम्हारे लिए पारदर्शी हो जायेगा।

(एक बात याद रखनी चाहिये, आप अपने भीतर जितने गहरे होते है, उतने ही गहरे आप दूसरे के भीतर देख सकते हैं। अगर आप अपने भीतर बिलकुल नहीं हैं, उथले हैं, तो उतना ही उथला आप दूसरे के भीतर देख पाते है। इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि आप बुद्ध और कृष्ण के करीब से भी गुजर जाते हैं और नहीं पहचान पाते हैं। क्योंकि आप जितना अपने भीतर देख सकते हैं, उतना ही उनके भीतर भी देख सकते हैं। आप उथले हैं तो आप उनकी गहराई में नहीं झांक सकते। आपको उथला ही ख्याल आता है, आप उथली ही बातें इकट्ठी कर लेते हैं और

सोचते हैं कि आपने जान लिया, पहचान लिया! और जब मैं यह कहता हूँ कि आप बुद्ध के करीब से निकलते हैं, तो मैं ऐसे ही नहीं कह रहा हूँ, आप निकले भी हैं, क्योंकि आप जमीन पर रहे ही होंगे। कोई न कोई बुद्ध, कोई न कोई क्राइस्ट, कोई न कोई महावीर, कोई न कोई राम, कोई न कोई कृष्ण, आपके रास्ते पर पड़ा ही होगा। कितने जन्मों में कितने रास्तों से आप गुजरे हैं, लेकिन आप उसको पहचान नहीं पाये! आप पहचान लेते तो शायद आज आप होते भी नहीं, या आप ऐसे न होते, जैसे दुःख और पीड़ा से भरे आप हैं।

नहीं पहचानने का कारण यह है कि आप सदा अपनी ही गहराई के अनुपात में देख पाते हैं। जो आपको अपने भीतर नहीं दिखाई पड़ता, वह आपको किसी के भीतर दिखाई नहीं पड़ सकता। अगर आपको चारों तरफ बुरे लोग दिखाई पड़ते हैं, गलत लोग दिखाई पड़ते हैं, अन्धकार दिखाई पड़ता है, तो एक बात निश्चित है कि आपने अपने भीतर प्रकाश नहीं देखा। एक बात निश्चित है कि आपने अपने भीतर दिव्यता नहीं देखी। एक बात निश्चित है कि भीतर का संगीत अभी सुनने में नहीं आया।

स्वर-बद्धता का पाठ

प्रवचन : १२ अप्रैल १२, १९७२, सुबह
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

५. सुने गये स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।

जब तक तुम केवल मानव हो, तब उस महा-गीत के कुछ अंश ही तुम्हारे कानों तक पहुंचते हैं। परन्तु यदि तुम ध्यान देकर सुनते हो, तो उन्हें ठीक-ठीक स्मरण रखो; जिससे कि जो कुछ तुम तक पहुंचा है, वह खो न जाय और उससे उस रहस्य का आशय समझने का प्रयत्न करो, जो रहस्य तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है। एक समय आएगा, जब तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता न होगी, क्योंकि जिस प्रकार व्यक्ति को वाणी की शक्ति है, उसी प्रकार उस सर्वव्यापी में भी यह शक्ति है, जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व है।

६. और उन स्वर-लहरियों से स्वर-बद्धता का पाठ सीखो।

जीवन की अपनी भाषा है और वह कभी मूक नहीं रहता, और उसकी वाणी एक चीत्कार नहीं है, जैसा कि तुम जो बहरे हो, कदाचित् समझो। वह तो एक गीत है। उससे सीखो कि तुम स्वयं उस सुस्वरता (हार्मनी) के अंश हो, उससे सुस्वरता के नियमों का पालन करना सीखो।

जीवन में सबसे अधिक सीखने योग्य यदि कुछ है, तो संगीत का बोध है, संगीत का भाव है। संगीत का अर्थ है, कि जीवन का अन्तिम रहस्य—स्वरों की भीड़-भाड़ नहीं है, न ही एक अराजकता है, न ही एक अव्यवस्था है; वरन् सभी स्वर मिलकर एक ही तरंग, एक ही लय, एक ही इंगित, एक ही इशारा कर रहे हैं। जीवन के परम-केन्द्र पर सभी संयुक्त हैं, सुव्यवस्थित हैं। और जो अव्यवस्था दिखाई पड़ती है, वह हमारे अन्धेपन के कारण है। और जो स्वरों का उपद्रव दिखाई पड़ता है, जो तनाव दिखाई पड़ता है, वह भी हमारे बहरे होने के कारण है। क्योंकि हम ठीक से नहीं सुन पाते, इसलिए हम स्वरों के बीच में बहती हुई जो समस्वरता है, उसका अनुभव नहीं कर पाते हैं।

हमें स्वर तो सुनाई पड़ जाते हैं, लेकिन एक स्वर को दूसरे स्वर से जोड़ने वाला जो बीच का सेतु है—संगीत, वह हमें सुनाई नहीं पड़ता है। जैसे-जैसे सुनने की सामर्थ्य बढ़ेगी, वैसे-वैसे स्वर खोते जायेंगे, और संगीत उभरने लगेगा। एक ऐसा क्षण भी आता है, जब स्वर खो जाते हैं, शून्य हो जाते हैं; सब लहरें खो जाती हैं और केवल संगीत का सागर रह जाता है, केवल संगीत की प्रतीति रह जाती है।

संगीत का अर्थ है : स्वरों के बीच जो प्रेम का सम्बन्ध है, एक स्वर दूसरे स्वर से जुड़ा है, एक स्वर दूसरे स्वर में जिस भांति खो जाता है और लीन हो जाता है। वह जो दो स्वरों के बीच में अन्तराल है, वह अन्तराल खाली नहीं है। वह अन्तराल भी भरा हुआ है। चाहे वह अन्तराल सन्नाटे से ही भरा हो, चाहे वह अन्तराल शून्य से ही भरा हो, लेकिन वह अन्तराल भरा हुआ है।

उस अन्तराल को अनुभव करने का नाम जीवन के संगीत को अनुभव करना है।

सुना होगा, कि सत्य शब्दों में नहीं कहा जा सकता, लेकिन शब्दों के बीच

में जो खाली जगह होती है, वहां प्रकट होता है। और सुना होगा, कि रिक्तता तोड़ती नहीं, जोड़ती है। और यह भी सुना होगा, कि शून्यता भी मात्र शून्यता नहीं है, शून्यता भी एक अपूर्व संगीत से भरी है। लेकिन शून्यता को सुनने का, सन्नाटे को सुनने की सामर्थ्य हमारे पास नहीं है। जीवन का संगीत अन्तरालों में है। अन्तराल हमें दिखाई नहीं पड़ते। बीच में खाई, खड्डे मालूम पड़ते हैं। एक स्वर सुनाई पड़ता है, फिर दूसरा स्वर सुनाई पड़ता है, लेकिन बीच में कोई सेतु दिखाई नहीं पड़ता। इससे अराजकता अनुभव होती है।

हम यहां इतने लोग बैठे हैं। एक व्यक्ति दिखाई पड़ता है, फिर दूसरा व्यक्ति दिखाई पड़ता है, दोनों के बीच में जो जोड़ है, वह नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए सभी व्यक्ति अलग-अलग मालूम पड़ते हैं। अगर बीच का जोड़ दिखाई पड़ जाये, तो व्यक्ति यहां खो जायें—जीवन की एक सरिता रह जाये। जैसे मैं देखता हूँ कि आप महत्त्वपूर्ण कम हैं, आपके पड़ोस में बैठा हुआ व्यक्ति भी कम महत्त्वपूर्ण है, लेकिन दोनों के बीच जो जीवन बह रहा है, वही ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि उसी जीवन के कारण आप भी जीवित हैं और आपका पड़ोसी भी जीवित है। लेकिन वह जीवन अदृश्य है। आप दिखाई पड़ते हैं एक छोर पर, पड़ोसी दिखाई पड़ता है दूसरे छोर पर; बीच में जो जीवन की तरंग है, वह दिखाई नहीं पड़ती।

दृश्य को ही जो देखता है, उसे जीवन में अराजकता दिखाई पड़ेगी। क्योंकि सभी दृश्य अदृश्य से जुड़े हैं। जो दिखाई पड़ता है, वह तो छोर है; जो नहीं दिखाई पड़ता, बीच की जो तरंग है, बीच की जो लहर है, वही वास्तविक अस्तित्व है। इस अदृश्य को अनुभव करना ही जीवन-संगीत को अनुभव करना है।

संगीत का अर्थ ठीक से ख्याल में ले लेंगे।

अन्तराल को जो भरे हुए है, रिक्त को भी जो पूर्ण किये हुए है, शून्य में भी जो पूर्ण की तरह मौजूद है।

जो दिखाई नहीं पड़ता, और है—लेकिन अनुभव किया जा सकता है। जैसे-जैसे हम भीतर ज्यादा संवेदनशील होते जायें, वैसे-वैसे अनुभव होने लगेगा। और तब व्यक्ति न दिखाई पड़ेंगे, उनको जोड़ने वाला परमात्मा दिखाई पड़ेगा। तब एक वृक्ष नहीं दिखाई पड़ेगा, दूसरा वृक्ष भी नहीं दिखाई पड़ेगा, बल्कि दोनों वृक्षों में जो जीवन एक-सा बह रहा है—भीतर भी और दोनों वृक्षों के बाहर भी, वह दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा।

जिस दिन वह दिखाई पड़ने लगता है, उस दिन यह जगत एक की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए इन सूत्रों में संगीत पर बड़ा जोर दिया गया है। क्योंकि संगीत को जो अनुभव कर लेगा—स्वरों को नहीं, स्वरों को जोड़ने वाली तरंगों को, अदृश्य तरंगों

को, स्वरों के बीच में बहने वाली लय-बद्धता को जो अनुभव कर लेगा, वह ब्रह्म को अनुभव कर लेगा। क्योंकि ब्रह्म वही है, जो सबको जोड़े हुए है, और दिखाई नहीं पड़ता। निश्चित ही, जो दिखाई पड़ता है, वह मिटेगा। जो दिखाई पड़ता है, वह खो जायेगा। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह नहीं मिटेगा। उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है। लहरों की तरह हम उठते हैं और दिखाई पड़ते हैं और फिर लहरें गिर जाती हैं, और खो जाती हैं। और जो सागर कभी दिखाई नहीं पड़ता—आप हैरान होंगे, आप कहेंगे सागर दिखाई पड़ता है, लेकिन मैं आपसे कहता हूँ, सागर कभी दिखाई नहीं पड़ता। जब दिखाई पड़ती हैं, लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। सागर को आपने नहीं देखा। जब दिखाई पड़ती हैं, लहरें ही दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि सागर की सतह दिखाई पड़ती है। सतह तो सदा लहरों से भरी है। सागर को आप कभी देख नहीं पाते हैं। देखते हैं, उन लहरों को ही—सागर तो अनुमान है आपका। लहरें दिखती हैं, उठती हैं, गिरती हैं, लेकिन जिस सागर में उठती हैं, जिस सागर से उठती हैं, और जिस सागर में खो जाती हैं, वह है संगीत। लहरें तो स्वर हैं। पर स्वर सुनाई पड़ते हैं, संगीत सुनाई नहीं पड़ता है! लहरें दिखाई पड़ती हैं, सागर दिखाई नहीं पड़ता!

और बहुत मजे की बात है कि लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं। और स्वर बिना संगीत के नहीं हो सकता। सागर बिना लहरों के हो भी सकता है, लेकिन लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं। संगीत बिना स्वरों के भी हो सकता है, लेकिन स्वर बिना संगीत के नहीं हो सकते। फिर भी संगीत सुनाई नहीं पड़ता, सागर दिखाई नहीं पड़ता! लहरें दिखाई पड़ती हैं, स्वर सुनाई पड़ते हैं!

वह जो निरव्यक्ति है, वह जो ब्रह्म है, वह जो जीवन का परम गुह्य विस्तार है, वह अनुभव में नहीं आता; व्यक्ति अनुभव में आते हैं। व्यक्ति की सीमा है, इसलिए दिखाई पड़ जाता है। लहर छोटी है, दिखाई पड़ जाती है। सागर बड़ा है, आंखें छोटी हैं, दिखाई नहीं पड़ता। स्वर छोटा है, चोट पड़ती है, सुनाई पड़ जाता है। संगीत सागर का विराट् है, उसकी चोट भी नहीं पड़ती। वह अनुभव में नहीं आता। लेकिन अगर हम भीतर चलना शुरू करें, तो जैसे-जैसे हम भीतर सरकेंगे, वैसे-वैसे वह संगीत हमें सुनाई पड़ेगा।

लेकिन क्यों? भीतर सरकने से क्यों सुनाई पड़ेगा?

लहर की बात को थोड़ा और ख्याल में ले लें।

अगर एक लहर भी उठ कर देखे, लहर के पास आंखें हों, और कोई कठिनाई नहीं कि लहर के पास आंखें हों; क्योंकि हम भी लहर हैं और हमारे पास आंखें हैं। अगर लहर के पास बुद्धि हो, और लहर अपने चारों तरफ देखे, तो उसे लहरें

ही लहरें दिखाई पड़ेंगी, सागर दिखाई नहीं पड़ेगा। और लहर को यह भी दिखाई पड़ेगा, कि सभी लहरें मुझसे भिन्न हैं। निश्चित ही कोई लहर बड़ी हो रही है, कोई छोटी हो रही है, कोई गिर रही है, कोई बन रही है। तो यह मेरी लहर कैसे मान सकती है कि मैं लहरों के साथ एक हूँ। क्योंकि कोई लहर मेरे सामने ही मिट रही है, और मैं नहीं मिट रही हूँ। अगर हम एक होते तो मिट जाते साथ-साथ। कोई लहर उठ रही है, मुझसे बड़ी हो रही है। हम एक नहीं हो सकते। अगर हम एक होते, तो मैं भी इसके साथ बड़ा हो जाता। तो निश्चित ही, अगर लहर देखें चारों तरफ, तो एक बात—सागर दिखाई नहीं पड़ेगा, क्योंकि तरंगें छाती पर भरी हैं सागर के। और दूसरी बात—लहर को सब लहरें अपने से भिन्न मालूम पड़ेंगी। और तीसरी बात—लहर को सारी लहरें उसकी दुश्मन हैं, उसको मिटाने को उत्सुक हैं, हटाने को उत्सुक हैं, ऐसा भी प्रतीत होगा।

संघर्ष, प्रतियोगिता, स्पर्धा, यही हमारे साथ हो रहा है। लेकिन अगर लहर भीतर की तरफ मुड़ सके, बाहर से आंख बन्द कर ले, और भीतर की तरफ मुड़े तो क्या मिलेगा? अगर लहर भीतर की तरफ मुड़े तो, जैसे भीतर की तरफ जायेगी, वैसे ही सागर में उतरने लगेगी। क्योंकि लहर के भीतर तो सागर ही है, लहर के नीचे सागर ही है।

लहर अगर अपने से बाहर देखे तो लहरें दिखाई पड़ती हैं, अगर भीतर देखे तो सागर अनुभव में आयेगा।

और भीतर देखके फिर सारी स्थिति बदल जायेगी। अगर सागर अनुभव में आये तो लहर हंसेगी कि वह जो लहरे दिखाई पड़ रही थीं, वह वास्तविक न थी। उनके भीतर भी वही सागर है। अब तो लहर अपने भीतर से दूसरी लहरों के भीतर भी प्रवेश करके देख सकती है, क्योंकि नीचे एक ही सागर है—कहीं कोई बाधा नहीं है। कहीं कोई दीवाल नहीं है, कहीं जाने में कोई अड़चन नहीं है।

जो अपने भीतर जाता है, वह किसी के भी भीतर प्रवेश कर सकता है।

क्योंकि उसे वह रास्ता मिल गया है नीचे का, अन्तर-गर्भ का, जहां से हम एक हैं।

यह जब आप बुद्ध या महावीर जैसे व्यक्ति के पास जाते हैं, तो आपको पता नहीं चलता—आपको लगता है कि वे आपको ऊपर से ही देख रहे हैं। लेकिन उनके पास एक भीतर का रास्ता भी है, जहां से वे आपको भीतर से देख रहे हैं। जहां से आपको उस भांति देख रहे हैं, जैसा आपने भी अपने को नहीं देखा। इसलिए इतना जोर है परम्पराओं में, कि गुरु के प्रति पूरा समर्पण कर देना, ठीक मार्ग बन सकता है। क्योंकि आप अपने सम्बन्ध में जो नहीं जानते, वह भी आपके सम्बन्ध में जान सकता है, जानता है। जो आप अपने सम्बन्ध में बताते हैं, वह दो कौड़ी का है। जो आप अपना परिचय देते हैं, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। क्योंकि आपकी पहचान क्या है?

आपने अपनी ही लहर की ऊपर की परत को देखा है। और यह भी हो सकता है कि वह जो आपको कहे, आपकी समझ में न आये। क्योंकि वह आपको गहरे से देख रहा है, जहां से आपका अभी तक कोई—कोई सम्बन्ध, कोई सम्पर्क स्थापित नहीं हुआ है।

यहां समर्पण का अर्थ यह है, कि आप अपने परिचय को, जो आप जानते हैं, छोड़ते हैं। और आप उस मार्ग से अपरिचित होने को राजी हैं, जो गुरु जानता है, और आप नहीं जानते हैं। अगर कोई लहर अपने भीतर चली जाये, तो वह दूसरी लहरों के भीतर भी चली गई। तो उसे अनुभव होगा कि लहर होना अवास्तविक है, सागर होना वास्तविक है। उसे अनुभव होगा कि दूसरी लहरें मुझसे भिन्न नहीं हैं, कितनी ही भिन्न दिखाई पड़ती हों—हम एक ही सागर का खेल हैं।

और तीसरी बात उसे दिखाई पड़ेगी कि लहर की तरह तो मैं मिट जाऊंगी, लेकिन सागर की तरह मेरे मिटने का कोई उपाय नहीं है। अमृत का यही अनुभव है। और अगर ज्ञानियों ने कहा है कि आत्मा नहीं मरती, तो आप यह मत समझना कि आप नहीं मरते। आप तो मरेंगे ही। आप पैदा हुए हैं, और आप मरेंगे—आत्मा नहीं मरती।

आत्मा का अर्थ है, आपके भीतर जो सागर है, वह नहीं मरता। आपके भीतर जो लहर है, वह तो मरती ही है। लेकिन अभी तो आप लहर को ही समझते हैं अपने होने को। फिर बड़ी भ्रान्ति होती है। लोग पढ़ लेते हैं कि आत्मा नहीं मरती, तो वे सोचते हैं कि मैं नहीं मरूंगा। आप तो मरेंगे ही, आपके बचने का तो कोई उपाय ही नहीं है। लेकिन जब मैं कहता हूं कि आप मरेंगे ही, तो मैं यही कह रहा हूं कि जिसको आप अभी समझते हैं कि आप हैं, वह मरेगा। लेकिन आपके भीतर एक ऐसा केन्द्र भी है, जिसको आप पहचानते ही नहीं कि आप हैं—वह नहीं मरेगा।

लहर की भांति मृत्यु निश्चित है, सागर की तरह अमृत निश्चित है।

अब हम इन सूत्रों में प्रवेश करें।

पांचवां सूत्र : सुने गये स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।

जब तक तुम केवल मानव हो, तब तक उस महा-गीत के कुछ अंश ही तुम्हारे कानों तक पहुंचते हैं। परन्तु यदि तुम उन्हें ध्यान देकर सुनते हो, तो उन्हें ठीक-ठीक स्मरण रखो, जिससे कि जो कुछ भी तुम तक पहुंचा है, वह खो न जाये और उससे उस रहस्य का आशय समझने का प्रयत्न करो, जो रहस्य तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है। एक समय आएगा, जब तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता न होगी। क्योंकि जिस प्रकार व्यक्ति को वाणी की शक्ति है, उसी प्रकार उस सर्व-व्यापी में भी यह शक्ति है, जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व है।

सुने गये स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।

निश्चित ही उस महा-संगीत को पूरा नहीं सुना जा सकता आज। अभी जैसे तुम हो, वहां से पूरे संगीत को नहीं सुना जा सकता। उस पूरे संगीत को सुनने के लिए तो तुम्हें भी धीरे-धीरे भीतर लयबद्ध होना पड़ेगा, क्योंकि समान ही समान का अनुभव कर सकता है।

इस महा-सूत्र को सदा याद रखो—कि समान ही समान का अनुभव कर सकता है।

अगर तुम इस महा-संगीत को सुनना चाहते हो, तो तुम्हें खुद भी संगीतपूर्ण हो जाना पड़ेगा। अगर तुम उस महा-प्रकाश को देखना चाहते हो, तो तुम्हें भी प्रकाश-पूर्ण हो जाना पड़ेगा। अगर तुम्हें उस अमृत का अनुभव करना है, तो तुम्हें मृत्यु के भय से पार हो जाना होगा।

तुम जिसको जानना चाहते हो, उसके जैसा ही तुम्हें होना पड़ेगा—क्योंकि समान को ही जाना जा सकता है, असमान को जानने का कोई उपाय नहीं।

इसलिए पुराने अनुभवियों ने कहा है कि आंख तुम्हारे भीतर है—सूरज का ही हिस्सा है, इसलिए प्रकाश को देख पाते हो। कान तुम्हारे भीतर ध्वनि का ही हिस्सा है, इसीलिए सुन पाते हो। काम-वासना तुम्हारे भीतर पृथ्वी का ही हिस्सा है, इसलिए नीचे की ओर तुम्हें खींचती है। ध्यान तुम्हारे भीतर परमात्मा का ही अंश है, इसलिए परमात्मा की तरफ ले जाता है।

ध्यान रखना, जो जिससे जुड़ा है, उसी का यात्रा-पथ बन जाता है। अगर तुम उस महा-संगीत को सुनना चाहते हो, वैसे ही जैसे तुम हो, तो न सुन पाओगे। क्योंकि तुम इतने असंगीत से भरे हो, तुम्हारी जिन्दगी इतनी स्वर-माधुर्य से हीन है। तुम्हारे भीतर उपद्रव तो बहुत है, लय-बद्धता जरा भी नहीं है। तुम्हारे उठने में, बैठने में, चलने में, सोचने में, एक भीड़-भाड़, शोरगुल है। जैसे कि तुम एक बाजार की सड़क हो, जिस पर न मालूम क्या-क्या चल रहा है; जिसके बीच कोई व्यवस्था नहीं है, अराजकता है। इस अराजक स्थिति से अगर तुम चाहो कि तुम उस महा-संगीत को सुन लोगे, तो असम्भव है। पर अगर तुम थोड़ी चेष्टा करो, तो उसके खण्ड सुनाई पड़ सकते हैं। क्योंकि तुम चाहे कितनी ही अराजकता में होओ, तुम जीवित हो। यही इस बात की खबर है कि कुछ न कुछ लय तुम्हारे भीतर ही होगी, अन्यथा जी नहीं सकते; तुम टूट जाते, बिखर जाते। अगर सच में ही तुम्हारी भीड़ इतनी बड़ी हो गई कि तुम्हारे भीतर उस भीड़ को जोड़ने वाला कोई भी न बचा हो, तो तुम खण्ड-खण्ड होकर गिर जाओगे। तुम उस मकान की तरह गिर जाओगे, जिसकी ईंटों के बीच का सब जोड़ खो गया है; तुम भूमिसात् हो जाओगे।

लेकिन तुम जीवित हो, मिट नहीं गये हो, भूमिसात् नहीं हुए हो। इसलिए चाहे कितना भी उपद्रव तुम्हारे भीतर हो और कितने ही स्वरों के बीच तनाव हो, और कितने

ही स्वरों के बीच संघर्ष हो, कहीं न कहीं, कोई न कोई चीज तुम्हें जोड़ती होगी, अन्यथा तुम हो कैसे सकते हो? कोई न कोई चीज तुम्हें बांधे होगी, कहीं न कहीं, कुछ-न-कुछ संगीत तुम्हारे इस उपद्रव में भी मौजूद है, चाहे कभी उसकी झलक मिलती हो।

किसी दिन सुबह सूरज को उगते देखकर, तुम्हें शान्ति की लहर दौड़ जाती है, या किसी दिन रात आकाश में तारे भरे हों और तुम जमीन पर लेटे उन्हें देख रहे हो, अचानक सब मौन हो जाता है। या किसी के प्रेम के क्षण में, या किसी संगीत को सुनकर, या किसी नर्तक को नाचते देखकर तुम्हारे भीतर भी कुछ नृत्य बन जाता है। कहीं कोई क्षण में तुम्हें भी एक झलक संगीत की मिलती है, उस झलक को ही कभी तुम सुख कहते हो, उसी झलक को कभी तुम शान्ति कहते हो, उसी झलक को कभी तुम रस कहते हो। तुमने बहुत नाम दिये हैं। लेकिन वह झलक इसी बात की है कि बाहर की कोई घटना की उपस्थिति में भीतर तुम बंध जाते हो। तुम्हारा उपद्रव एक क्षण को खो जाता है, और तुम्हारे भीतर स्वर एक क्षण को मिल जाता है। लहरें एक क्षण को सागर हो जाती हैं और तुम्हारे भीतर जैसे एक द्वार खुल जाता है। क्षण भर को ही सही, एक झलक निकलती है, और जगत दूसरा हो जाता है। यह सम्भावना है। खण्ड ही तुम्हें अनुभव में आयेगा। बहुत दूर की ध्वनि तुम्हें सुनाई पड़ेगी।

इसलिए यह सूत्र कहता है पांचवा : सुने गये स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।

तुम्हारे जीवन में जो भी ऐसी घटनाएं घटी हों, जब तुमने रस का, संगीत का, लय का अनुभव किया हो, तो उनको अपनी स्मृति में संजोओ, उनको खो मत जाने दो।

ईसाइयों का एक पुराना सम्प्रदाय था—ईसेन, जिसमें जीसस को दीक्षा मिली थी। उस सम्प्रदाय का एक ध्यान-मार्ग था। और वह ध्यान-मार्ग यह था, कि तुम्हारे जीवन में अगर कभी भी कोई ऐसा क्षण घटा हो, जिस क्षण में विचार न रहे हों और तुम आनन्द से भर गये हो, तो उसी क्षण को पुनः पुनः स्मरण करके, उसी पर ध्यान करो। वह क्षण कोई भी रहा हो, उसी को बार-बार स्मरण करके उस पर ही ध्यान करो, क्योंकि उसी क्षण में तुम अपनी श्रेष्ठतम ऊंचाई पर थे, जहां तक तुम अब तक जा चुके हो। उसी को खोदो, उसी जगह मेहनत करो।

सभी के जीवन में ऐसा कोई क्षण है। उसी की आशा में आदमी जिये चला जाता है, शायद वह क्षण फिर आये। उसी के भरोसे में जिये चला जाता है कि शायद वह क्षण और गहरा हो जाये। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके जीवन में एकाध ऐसी स्मृति न हो। कभी-कभी तो बहुत क्षुद्र कारणों में ऐसी घटना घट जाती है। कभी तुम जा रहे हो, सूरज की किरणें तुम्हारे सिर पर पड़ रही हैं, अचानक तुम पाते हो कि तुम शान्त हो। तुमने कुछ किया नहीं है, आकस्मिक, तुम उस जगह आ गये हो,

कहां स्युमित हो गई है।

कभी बहुत साधारण सी घटनाओं में—तुम अपने बिस्तर पर पड़े हो, सुबह तुम्हारी आंख खुली और अचानक तुम पहचान भी नहीं पाते हो कि तुम कौन हो? वह जो आदमी रात में सोया था—उपद्रव, परेशानी, चिन्ता से भरा, वह नहीं है। एक क्षण तो तुम्हें यह भी समझ नहीं आता कि तुम कहां हो? तुम एकदम शान्त हो। तुम इतने शान्त हो कि खुद की पहचान भी भूल गये हो। किन्हीं कारणों में उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, तुम्हारे भीतर जिन्दगी चलती रहती है। कभी तुम्हारे अनजाने भी तुम्हारे भीतर के खण्ड-खण्ड इकट्ठे पड़ जाते हैं—संयोगवश। और तब कोई भी घड़ी बाहर मौजूद हो, तुम अचानक शान्त हो जाते हो।

इन स्मृतियों को संजोओ। फिर अगर तुम ध्यान कर रहे हो, तो ऐसी स्मृतियां बढ़ती चली जायेंगी। इन स्मृतियों को इकट्ठा करो। इनको हृदय के एक कोने मे इकट्ठा करते जाओ, ताकि वे गहरी हो जायें। और सारी स्मृतियां जितनी तुम्हारे जीवन में इस आनन्द की घटी हों, जब तुमने संगीत जाना हो, उन सबको पास ले आओ, उनको एकाग्र कर दो एक बिन्दु पर, ताकि उन सबके सहारे तुम आगे बढ़ सको। अभी तुम्हें खण्ड-खण्ड मिलेंगे, तुम उन्हें इकट्ठे करते जाना। कभी ये खण्ड इकट्ठे होते जायेंगे, तो और बड़े खण्डों के मिलने की सम्भावना बढ़ती जायेगी। ऐसे धीरे-धीरे एक-एक ईंट रखकर एक भवन खड़ा होगा—जिस दिन तुम उस महा-सगीत को सुन सकोगे, जिसे जीवन का संगीत कहा जा रहा है।

लेकिन आदमी बहुत उल्टा है। हम दुःख की स्मृति सजोते हैं। हम दुःख में बड़ा रस लेते हैं। हम बार-बार दुःख की चर्चा करते हैं। लोगों की बातें सुनो, वह अपना दुःख रोते हैं। सुख कोई भी नहीं हंसता, दुःख लोग रोते हैं। तभी तो यह भाषा में शब्द ही नहीं कि फलां आदमी सुख हस रहा है। भाषा में शब्द यह है कि फलां आदमी दुःख रो रहा है। लोग अपना दुःख एक दूसरे को बताते रहते हैं, जैसे कि दुःख कुछ बताने जैसा है, जैसे कि दुःख कुछ बड़ी घटना है! कोई आपने महान कार्य किया है कि आप दुःखी हैं।

लेकिन क्यों आदमी दुःख की इतनी चर्चा करता है?

और उसे पता नहीं कि वह अपना आत्मघात कर रहा है। क्योंकि दुःख की चर्चा से दुःख घना हो जाता है। दुःख की चर्चा से दुःख इकट्ठा हो जाता है। दुःख की चर्चा से दुःख पर ध्यान बंट जाता है, ध्यान बंध जाता है। दुःख की चर्चा से दुःख घनीभूत होता है और नये दुःखों को पैदा करता है। क्योंकि तुम जो दुःख सजोते हो, उसी को जानने में समर्थ होते चले जाते हो।

सुख की कोई बात ही नहीं कर रहा है। दुःख को हम छोड़ कर ही चलते हैं।

वैसे सुख है भी कम। लेकिन उसके कम होने का एक कारण यह भी है कि हम सुख को इकट्ठा नहीं कर रहे हैं। दुःख को हम इकट्ठा कर रहे हैं।

पर क्यों? आदमी दुःख की चर्चा क्यों करता है?

उसके कारण हैं।

जब भी कोई आदमी दुःख की चर्चा करता है तो उसका अर्थ केवल इतना ही है कि वह दूसरे की सहानुभूति चाहता है, दूसरे का प्रेम चाहता है। और सुख की चर्चा इसलिए नहीं करता कि सुख से कोई सहानुभूति नहीं करता। सुखी आदमी से लोग ईर्ष्या करते हैं, प्रेम नहीं करते। इस भय से कि दूसरे ईर्ष्या करेंगे, इस भय से कि कोई सहानुभूति न देगा, आदमी दुःख की चर्चा करता है। आदमी सहानुभूति का प्यासा है, प्रेम का प्यासा है।

लेकिन ध्यान रहे, दुःख सुनकर जो सहानुभूति की जाती है, वह प्रेम नहीं है और दुःख सुनकर जो दया प्रकट की जाती है, वह आपकी दीनता की स्वीकृति है। लेकिन इस भांति आप और दीन होते चले जायेंगे। और अगर आपने एक ही रस बना लिया है अपने जीवन का—सहानुभूति पाना, तो फिर आप झूठे दुःख की भी कल्पना कर लेंगे, जो कभी नहीं घटे, और धीरे-धीरे उनके घटने का रास्ता बना लेंगे।

ध्यान रहे : अपने दुःखों की चर्चा मत करो—उससे क्या प्रयोजन है?

सुख की चर्चा के लिए नहीं कह रहा हूँ, लेकिन अपने सुख को प्रकट करो।

दुःख को एकान्त में विसर्जित कर दो। द्वार-दरवाजे बंद कर लो, हृदयपूर्वक रो लो, चीख लो, चिल्ला लो; लेकिन दूसरे के पास जाके दुःख की चर्चा मत करो। क्योंकि तुम दूसरों के सुख में सहयोगी नहीं रहे हो, तुम उसे भी दुःखी कर रहे हो। इसलिए दुःख की चर्चा करने वालों पर हम सहानुभूति कितनी ही बतायें, लेकिन उस आदमी से हम बचना चाहते हैं। वह न मिले तो अच्छा है। क्योंकि वह अपने दुःख की तरंगें हम तक भी पहुंचा देता है। और अगर हम उसकी दुःख की चर्चा सुनते भी हैं, तो इसी आशय में कि वह चुप हो जाये, तो हम अपने दुःख की चर्चा उसको सुनायें। ऐसा दुःख का लेन-देन चलता रहता है।

दुःख की बात ही बन्द कर दो। दुःख तुम्हारा निजी है, उसे तुम निज में ही भोग लो। दबाने को नहीं कह रहा हूँ, उसे प्रकट तो जरूर करो; लेकिन शून्य-आकाश में, जहां वह किसी की छाती पर बोझ नहीं बनेगा। और दुःख बताके सहानुभूति मत मांगो। यह भिखमंगापन है। अकेले में छोड़ दो, दुःख को विसर्जित कर दो।

और जब भी कोई तुम्हारे पास हो, तो तुम्हारे भीतर जो सुख की स्मृति है, उसको ऊपर ले आओ। जब भी तुम किसी के पास हो, तो तुम्हारे सुख को प्रकट करो, अपने सुख को नाचो और हंसो; और अपने सुख को जियो, ताकि तुम दूसरे के दुःख को

थोड़ा कम कर पाओ। और तुम जितना इस सुख को जीने लगोगे, उतना ही सुख बढ़ता आयेगा। और जितना ही तुम इस सुख की स्मृति करोगे, उतनी ही ज्यादा गहन सुख में तुम्हारी गति होने लगेगी।

हम जिस पर ध्यान देते हैं, वह बढ़ता जाता है—ध्यान बढ़ोत्तरी का मार्ग है।

अभी वनस्पति-शास्त्री कहते हैं, अगर पौधे पर आप ठीक से ध्यान दें, तो वह जल्दी बढ़ता है—पौधा भी। इसलिए माली बगीचे में जिस पौधे को ज्यादा प्रेम करता है, वह जल्दी बढ़ता है। जिस पर वह ज्यादा ध्यान देता है, वह जल्दी बढ़ता है, उसमें जल्दी फूल आते हैं।

अब तक इस पर बहुत वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं। सिर्फ ध्यान देने से...! जिस पौधे को कोई ध्यान नहीं देता, उसको मिट्टी दो, खाद दो, पानी दो, सूरज दो, सब दो; सिर्फ ध्यान मत दो, उपेक्षा दो; उसकी बढ़ती रुकती है!

वैज्ञानिक अब कहते हैं कि बच्चा मां के पास जो बढ़ता है गति से, उसका कारण है मां का ध्यान। वह चाहे दूर हो, चाहे वह दूसरे कमरे मे हो, लेकिन ध्यान उसका बच्चे की तरफ लगा है। वह चाहे सैकड़ों मील दूर चली गई हो, वह हजार काम में उलझी हो, लेकिन भीतर उसके ध्यान अपने बच्चे में लगा है। रात वह सो रही है, तो भी ध्यान उसका बच्चे में लगा है। आकाश में बादल गरजते रहें, तो भी उसकी नींद नहीं टूटती; लेकिन बच्चा जरा सा कुनमुना दे, और उसकी नींद टूट जाती है! उसका ध्यान बच्चे में लगा है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे की बढ़ती में मां का दूध जितना जरूरी है, उससे भी ज्यादा जरूरी उसका ध्यान है। इसलिए अनाथालय में भी बच्चे बड़े होते हैं; दूध उनको शायद मां के दूध से भी अच्छा मिल सकता है, यह कोई अड़चन की बात नहीं है; सेवा उनको प्रशिक्षित नर्सों की मिल सकती है; मां उतनी अच्छी सेवा नहीं कर सकती, क्योंकि उसका कोई प्रशिक्षण नहीं है; उनको वस्त्र, दवा, सारा इन्तजाम अच्छा मिलता है; लेकिन न मालूम क्या है कि उनके भीतर बढ़ती नहीं होती मालूम पड़ती है। सब सूखा-सूखा लगता है। कोई एक चीज कमी हो रही है। वह कमी है मां के ध्यान की, जो उन्हें नहीं मिल रहा है।

हम प्रेम के लिए इतने आतुर होते हैं, तुम्हें पता नहीं होगा कि क्यों?

क्योंकि प्रेम के बिना ध्यान नहीं मिलता। प्रेम की तलाश वस्तुतः ध्यान की तलाश है। कोई तुम पर ध्यान दे, तो तुम्हारे भीतर जीवन का फूल खिलता है, बढ़ता है। कोई ध्यान न दे, कुम्हला जाता है, इसलिए प्रेम की प्यास है कि कोई प्रेम करे। कोई ध्यान दे, कोई तुम्हारी तरफ देखे, कोई तुम्हारी तरफ देखकर प्रसन्न हो, आनन्दित हो, तो तुम बढ़ते हो। मगर कभी-कभी यह रुग्ण रूप ले लेता है।

रुग्ण रूप हर चीज के होते हैं।

प्रेम की खोज तो स्वस्थ है, लेकिन कोई आदमी फिर यह भी कोशिश करता है कि किसी भी भांति ध्यान मिले, तो खतरा हो जाता है। तुम अगर जोर से रोओ, चिल्लाओ, तो लोगों का ध्यान तुम्हारी तरफ आयेगा। बच्चा सीख जाता है, मां अगर उसे ठीक से प्रेम नहीं करती। जिस बच्चे की मां ठीक से प्रेम करती है, वह रोता, चीखता, चिल्लाता नहीं है। लेकिन जिसकी मां ठीक से प्रेम नहीं करती, बच्चा ज्यादा रोता, चीखता, चिल्लाता है। क्योंकि अब वह एक तरकीब सीख रहा है—कि जब वह चिल्लाता है, तो मां ध्यान देती है; सामान पटक देता है, तो मां ध्यान देती है; कोई चीज तोड़ देता है, तो मां ध्यान देती है।

कभी आपने ख्याल किया, कि आपके घर में मेहमान आ जायें, तो बच्चे ज्यादा चीजें पटकते हैं, ज्यादा उपद्रव मचाते हैं?

वे मेहमानों का ध्यान खींच रहे हैं। वैसे शान्त बैठे हैं। और आप चाहते हैं कि मेहमान आयें तब वे शान्त रहें। वे कैसे शान्त रहें? मेहमान आपसे ही बातें कर रहे हैं, और बच्चे की तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं, तो बच्चा पचीस उपद्रव खड़े करेगा कि आप भी ध्यान दो, मेहमान भी ध्यान दें। अनजाने चल रहा है। लेकिन ध्यान जकोत्तरी का हिस्सा है—वह बढ़ेगा, जितना ज्यादा ध्यान दिया जायेगा।

फिर लोग बीमार हो जाते हैं। जैसे एक राजनीतिक है, वह भी कुछ नहीं मांग रहा है। पद पर होकर मिलेगा क्या उसको? हजार तरह की गालियां मिलेंगी, हजार तरह का अपमान मिलेगा, हजार तरह की निन्दा मिलेगी, और कुछ मिलने वाला नहीं है। लेकिन एक बात है, जब वह पद पर होगा, कुर्सी पर होगा, तो ध्यान मिलेगा, चारों तरफ से लोग देखेंगे।

पद की खोज ध्यान की खोज है, लेकिन रुग्ण।

क्योंकि यह जो ध्यान है, इस तरह मांगना, जबरदस्ती मांगना है, हिंसात्मक है। जैसे बच्चा चीज तोड़ के ध्यान मांग रहा है। ऐसे ही राजनीतिक भी हिंसात्मक होकर ध्यान मांग रहा है। आप देखें, अगर कभी इस मुल्क में युद्ध हो जाये, तो युद्ध के समय जो मुल्क का बड़ा नेता है, वह महान नेता हो जाता है। क्योंकि युद्ध के समय में जितना ध्यान आपको नेता पर देना पड़ता है, शान्ति के समय नहीं देना पड़ता है। इसलिए राजनीतिक आपसे कहता है कि अगर किसी को महान् नेता होना हो तो पद के होते युद्ध, युद्ध होना ही चाहिये। हिन्दुस्तान, पाकिस्तान का युद्ध हो गया, बंगला देश को लेकर, तो इन्दिरा को आप कहने लगे कि महाकाली है। यह आपने कभी नहीं कहा होता, यदि युद्ध में विजय न मिली होती। नेता खो जाते हैं, अगर युद्ध उनके जीवन में न घटे। अगर युद्ध में वे हार जायें, तो फिर ध्यान

उनको बिलकुल नहीं मिलता। और अगर युद्ध में जीत जायें, तो फिर पूरा ध्यान मिलता है। इसलिए नेता बड़ी कोशिश में होता है कि किसी तरह जीत का सेहरा उसके सिर पर बंध जाये, तो सारा मुल्क, सारी दुनिया ध्यान दे।

मगर यह रुग्ण है। क्योंकि यह ध्यान प्रेम से नहीं मिल रहा, यह ध्यान सृजनात्मकता से नहीं मिल रहा। यह ध्यान मिल रहा है विध्वंस से, हिंसा से, घृणा से। मगर ये वे ही बच्चे हैं, जिन्होंने घर में बर्तन तोड़के ध्यान आकर्षित किया होगा। अब वे एम. एल. ए., एम. पी., मिनिस्टर होकर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। ये वे ही बच्चे हैं, जिनको मां का प्रेम नहीं मिला।

अगर मां का प्रेम मिला हो तो आदमी हिंसात्मक ढंग से ध्यान आकर्षित नहीं करता। तब करता है सृजनात्मक ढंग से... तब वह आनन्दित होता है। और अगर ध्यान से आनन्द मिल जाये तो ठीक है, तब वह रोता-चिल्लाता नहीं है।

यह जो ध्यान की तलाश है, यह आप दुःख के साथ मत जोड़ना, नहीं तो आप और दुःखी होते चले जायेंगे। यह दूसरे को दुःख देके भी ध्यान मत मांगना आप, क्योंकि तब आप और दुःखी होते चले जायेंगे।

आप अपने जीवन के सुख-क्षणों को इकट्ठा करना, उनकी स्मृति संजोना।

ध्यान के प्रयोग में जब भी आपको कोई अनुभव मिले, कोई ताजी हवा आपके भीतर से गुजर जाये, कोई सूरज की किरण कौंध जाये, कोई फूल खिल जाये भीतर, कोई सुगन्ध भर जाये, कोई संगीत का एक टुकड़ा आपको सुनाई पड़ जाये; उसे इकट्ठा करते जाना, हृदय के गहन में उसे संजोते जाना और उसको ज्यादा से ज्यादा जीने की कोशिश करना, उसे ज्यादा से ज्यादा पुकारना, उसे ज्यादा से ज्यादा अनुभव में उतारना। जब भी मौका मिले, एकान्त क्षण मिले, आंख बन्द कर लेना, उसी क्षण में लौट जाना, उसे पुनः जीना। तो आप उसको बढ़ा रहे हैं, और आप उसको जीवन और ध्यान दे रहे हैं। आप धीरे-धीरे पायेंगे, और बड़े खण्ड आने लगे, और बड़े टुकड़े उतरने लगे, और चीजें साफ होने लगीं, संगीत का बोध और प्रगाढ़ होने लगा।

जब तक तुम केवल मानव हो, तब तक उस महा-गीत के कुछ अंश ही तुम्हारे कानों तक पहुंचते हैं। परन्तु यदि तुम ध्यान देकर सुनते हो, तो उन्हें ठीक-ठीक स्मरण रखो। जिससे कि जो कुछ तुम तक पहुंचा है, वह खो न जाए और उससे उस रहस्य का आशय समझने का प्रयत्न करो, जो रहस्य तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है।

जो भी श्रेष्ठतम मिलता है, वह खोया जा सकता है। जब तक कि पूर्ण की उपलब्धि नहीं होती, तब तक कुछ भी पाया हुआ, खोया जा सकता है। इसे ध्यान रखना।

ऐसा मत सोच लेना कि जो पा लिया है, वह खोयेगा नहीं। जब तक पूर्ण न मिल जाए, तब तक तो तुम्हें लापरवाही नहीं करनी है, तब तक तो जो थोड़ा बहुत मिलता

है, उसे बचाने की कोशिश करना। क्योंकि दुःख तुम्हारे पास बहुत है, सुख का क्षण कभी मिलता है। अगर तुमने लापरवाही की, तो इस दुःख में वह कहीं भी खो जायेगा। तुम्हारे घर में कूड़ा-कर्कट इतना है, कि अगर तुम्हें एक हीरे का टुकड़ा भी मिल जाये, तो तुम उसे अपने घर के ही कूड़े-कर्कट में खो सकते हो। कहीं बाहर जाकर खोने की कोई जरूरत नहीं है। वह तुम्हारे घर की धूल में कहीं भी दब सकता है, वह इतना छोटा है कि मुश्किल से ढूंढा जा सकता है। और तुमने घर में इतना कचरा इकट्ठा किया है कि उस कचरे में ही वह दबा पड़ा रह जायेगा।

तो अपने हृदय के एक कोने को साफ कर लो और वहां केवल सुख को संजोओ। जब तक कि पूर्ण की उपलब्धि नहीं होती। पूर्ण की उपलब्धि पर तो तुम्हारी धूल-गर्द, तुम्हारा कचरा सब खो जाता है। फिर तो कोई डर नहीं है, फिर खोने का कोई डर नहीं है। आखिरी सीमा तक से भी गिरना हो सकता है। एक क्षण पहले भी परम-अनुभूति के, पटकना हो सकता है। उसके हो जाने बाद फिर कोई डर नहीं है। क्योंकि तुम वहां खो सकते हो, वहां तुम्हारे पास काफी सामान है। जिसमें तुम खो सकते हो, वह तुम्हारे पास बहुत है। तो एक, हृदय का कोना बिलकुल साफ-सुथरा कर लो। जैसे घर में कोई एक मन्दिर बना लेता है, तो उस मन्दिर में सोता नहीं है। उस मन्दिर में लड़ने-झगड़ने नहीं जाता और उस मन्दिर में खाना नहीं खाता; उस मन्दिर में सिर्फ प्रार्थना को जाता है, पूजा को जाता है। घर कितना ही अपवित्र हो, उस छोटे से कोने को पवित्र रखता है।

ऐसे ही हृदय के एक कोने में एक मन्दिर बना लो, वहां सिर्फ तुम्हारे जीवन में जो सुख की कभी-कभी प्रतीतियां आती हैं, इकट्ठी करते जाओ और कभी जब तुम्हारे पास मौका हो तो आंख बन्द करो और उस कोने में सरक जाओ। पुनः जियो, उन्हीं स्मृतियों को फिर लौटा लो। कोई प्रेम का क्षण, कोई आनन्द का क्षण, कोई ध्यान का क्षण, उनको पुनः पुनः जियो। पुनः जीने का अर्थ सिर्फ स्मृति नहीं है। पुनः जीने का अर्थ पुनः जीना। दोनों में फर्क है।

समझो, अपने बचपन की तुम याद करते हो। तुम याद करते हो कि बचपन सुखद था। या तुम्हें कोई ख्याल है कि एक दिन सुबह बगीचे में तुम गये, वृक्ष मौन थे, सन्नाटा था, वृक्षों के किनारे से सूरज की किरणें भीतर प्रवेश कर रही थीं, और एक तितली को तुमने उड़ते देखा और तुम उसके पीछे दौड़ने लगे। वह तुम्हें आज भी याद है। तुम इसे दो तरह से याद कर सकते हो। एक, बौद्धिक स्मृति की तरह विवरण दे सकते हो कि ऐसा-ऐसा हुआ, अपने सामने। दूसरा रास्ता यह है कि आंख बन्द कर लो और पुनः बच्चे हो जाओ। स्मरण करो कि तुम फिर वहीं वृक्षों की छाया में खड़े हो, जहां तुम बीस साल, पचास साल पहले खड़े थे। स्मरण करो कि

धूप की किरणें तुम्हें छू रही हैं, तुम पुनः एक बच्चे हो गये हो। तुम भूल जाओ यह बीच के पचास वर्ष, हटा दो, तुम पुनः बच्चे हो जाओ। 'रि-लिव', पुनः जियो; स्मरण भर मत करो। स्मरण तो ऊपर से है, बाहर से है। तुम पचास साल के हो, तो पचास साल के रहके स्मरण करते हो।

पुनः जीने का अर्थ है कि तुम फिर पांच-छः साल के हो गये हो। अब तुम भूल ही गये कि बीच के पैंतालीस साल गुजरे। तुम पांच साल के बच्चे हो, वही क्षण फिर मौजूद है। धूप उतर रही है वृक्षों के किनारे से, एक तितली उड़ रही है, तुमने उसके पीछे दौड़ना शुरू कर दिया है। तुम दौड़ो। तुम घड़ी भर पांच साल के बच्चे हो जाओ। जब तुम वापस लौटोगे, तुम पाओगे कि तुम ताजगी लेकर वापस लौटे। यदि इस पचास साल की उम्र में पुनः तुम पांच साल के बच्चे हो सकते हो, तो तुमने पचास साल की उम्र को भी एक नई ताजगी और नए जीवन से भर दिया। जब तुम आंख खोलोगे, तो तुम पाओगे तुम्हारे पास आंखें हैं, जो पांच साल के बच्चे के पास हैं, निर्दोष। क्षण भर यह टिकेगा, लेकिन इसे पुनःपुनः जीना। तुम्हारे जीवन को बदलने का यह रास्ता हो सकता है।

सुख के क्षण को, आनंद के क्षण को जियो, संगीत के क्षण को जियो, ताकि वह खो न जाये।

...एक समय आयेगा, जब तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता न होगी। क्योंकि जिस प्रकार व्यक्ति को वाणी की शक्ति है, उसी प्रकार उस सर्वव्यापी में भी यह शक्ति है, जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व है।

अगर तुम संगीत के इन टुकड़ों को पकड़ते चले गये और ये टुकड़े आपस में बैठके एक बड़े संगीत को जन्म देने लगे, तो एक दिन ऐसी घड़ी आ जायेगी कि तुम इस अन्तर-आत्मा की या उस परमात्मा की, या जो भी नाम तुम देना चाहो, उसकी वाणी, उसके निर्देश को सीधा ही सुन सकोगे। तुम्हें तब किसी व्यक्ति को गुरु बनाने की जरूरत नहीं रहेगी। वह तो तभी तक जरूरत है, जब तक तुम सीधा नहीं सुन सकते। तब तक तुम्हें एक मध्यस्थ की जरूरत है, जो सीधा सुन सकता है। वह तुमसे वही कह रहा है, जो तुम सीधा भी सुन सकते थे। वह तुमसे वही कह रहा है, जो तुम भी सुनने में समर्थ हो। लेकिन अभी तुम समर्थ नहीं हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर इतना कोलाहल है। यह कोलाहल जैसे-जैसे गिरता जायेगा, और जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर की भूमि के टुकड़े साफ होते जायेंगे, और जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर से कचरा अलग फिंकता जायेगा और व्यर्थ के झाड़-झंखाड़ उखड़ जायेंगे, और तुम्हारे भीतर वही रह जायेगा, जो जरूरी है; तुम जैसे-जैसे भीतर साफ-सुथरे होते जाओगे, वैसे-वैसे तुम खुद ही पकड़ने लगोगे अनन्त के स्वर को, अनन्त की वाणी को, अनन्त के शब्द को।

जिस दिन तुम खुद पकड़ने लगोगे, उस दिन बाहर के गुरु की कोई जरूरत न रह जायेगी। वह केवल मध्यस्थ था। वह पकड़ता था, तुम नहीं पकड़ पाते थे। वह तुमसे वही कहता था, जो तुम्हारी अन्तर-आत्मा भी तुमसे कहेगी। लेकिन एक-एक कदम सुख के अनुभव को, जितना ज्यादा तुम पकड़ सको, उसे पकड़ कर भरते जाना।

इसमें एक बात और ख्याल में ले लेना जरूरी है, जो बड़ी बुरी तरह बाधा बनती है। इससे कहीं वैसी भूल आप भी मत कर लेना, बहुत से लोग करते हैं। वे मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि कल तो ध्यान में बड़ा आनन्द आया था, आज वैसा आनन्द नहीं आया। शुरू में तो ध्यान में बड़ा आनन्द आया था, अब वैसा नहीं आ रहा है। कोई आकर कहता है, वह बड़ा परेशान है।

ध्यान रहे, इस सूत्र का अर्थ यह नहीं है। कल जो ध्यान आया था, उसे अगर तुम मांगोगे, तो वह नहीं आयेगा, क्योंकि आनन्द जबरदस्ती नहीं लाया जा सकता है। उसकी कोई अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। उसके लिए अगर तुमने अपेक्षा की, तुम इतने तन जाओगे कि वह नहीं आयेगा।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि पहली दफा जो लोग ध्यान शुरू करते हैं, तो उन्हे जैसा आनन्द अनुभव होता है, फिर वह बाद में नहीं होता। उसका कारण वे खुद ही हैं। क्योंकि जो पहली दफा उनको अनुभव में आया, उस वक्त तो कोई प्रतीक्षा भी नहीं थी, उन्हें पता भी नहीं था, कोई तनाव भी नहीं था कि आना चाहिये। नहीं आये तो दुखी हो जायेंगे, यह भी नहीं था। कुछ पता ही नहीं था, वे भोले-भाले थे। उस भोले-भाले अपेक्षा-रहित मन में आनन्द उतरा था। एक दफे आनन्द उतर आया, तो अब उनकी अपेक्षा है। ध्यान में खड़े होते हैं, तो उनकी शर्त है कि अब आनन्द आना चाहिये। अब वे तने हुए हैं, अब वे खिंचे हुए हैं। अब ध्यान नहीं कर रहे है, अब वे सिर्फ आनन्द की मांग कर रहे हैं। पहली दफा आया था, तब कोई मांग नहीं थी, अब मांग है। अब वह न आयेगा, आपने उसकी बुनियादी आधार-शिला बदल दी।

इस सूत्र का यह अर्थ नहीं है कि जो मिला है, उसको मांगो। इस सूत्र का अर्थ है, जो भी मिला है, उसको जियो, स्मरण करो। लेकिन उसकी पुनरुक्ति की मांग मत करो, तो वह पुनरुक्त होगा। उसको मांगो मत, तो वह मिलेगा। उसको जबरदस्ती लेने की कोशिश मत करो। क्योंकि जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, उसके साथ जबरदस्ती नहीं हो सकती। तुमने जबरदस्ती की तो वह टूट जायेगा।

एक अजनबी आदमी तुम्हें मिलता है। तुम प्रेम में पड़ जाते हो, बड़ा सुख मिलता है। फिर तुम विवाह कर लेते हो और फिर वैसा सुख नहीं मिलता। वही हो रहा है। अब तुम्हारी अपेक्षा है कि अब वह सुख कहां है, लाओ! जो सुख पहले दिन आता

था, वह वापस लाओ। कोई भी नहीं ला सकता दुनिया में, क्योंकि वह खींच-तान के नहीं लाया जा सकता।

तुम अपनी पत्नी से मांग रहे हो कि जब तू मेरी प्रेयसी थी, और जैसा सुख का क्षण तूने मुझे दिया था, अब क्यों नहीं दे रही है, क्या तेरा प्रेम खत्म हो गया? पत्नी पति से कह रही है, अब तुम उस तरह की बातें नहीं करते, उस तरह का प्रेम प्रकट नहीं करते, जैसा तुम पहले करते थे, क्या बात है? कहीं किसी और के साथ तो तुम प्रेम में नहीं उलझ गये? अब पति-पत्नी चिन्तित हैं, परेशान हैं। एक दूसरे पर पहरा दे रहे हैं, और एक दूसरे से मांग कर रहे हैं और कुछ भी हाथ नहीं आ रहा है। और जीवन रिक्त होता जाता है, चुकता जाता है। अब वे केवल एक दूसरे को कष्ट दे रहे हैं। कष्ट का कारण वही है। जो पहले दिन घटा था, वह अनजान में घटा था। उस दिन वह तुम्हारी पत्नी न थी, उस दिन तुम्हारा कोई बल न था उसके ऊपर। उस दिन तुम मांग नहीं सकते थे, उस दिन उसने बिना मांगे दिया था। उस दिन तुमने भी दिया था बिना मांगे। अनजान में घटना घटी थी। जो अनजान में घटा था, वह अब तुम जानके घटाना चाहते हो। तुम एक नई शर्त प्रविष्ट कर रहे हो, वह शर्त सब खराब कर देगी।

प्रेयसी और प्रेमी के भीतर जो प्रेम की धारा होती है, वह पति-पत्नी के बीच नहीं रह जाती है। बड़ा कठिन है। असम्भव है।

पहले दिन जब तुम ध्यान में उतरे हो, तो जो सुख अनुभव होता है, वह दूसरे दिन नहीं होगा। क्योंकि दूसरे दिन तुम तैयारी से आ रहे हो कि अब सुख लेने जा रहे हैं। यह तैयारी पहले दिन नहीं थी, ध्यान रखो। दूसरे दिन भी उसी तरह गैर-तैयार आओ, जैसे पहले दिन आये थे, और भी बड़ा सुख घटेगा। तीसरे दिन और भी गैर-तैयार होकर आओ। मांग ही मत करो, सिर्फ ध्यान करो। पूछो ही मत कि वह कब होगा? यह बात ही मत उठाओ। तुम तो सिर्फ ध्यान करो, यह बढ़ता जायेगा।

इस सूत्र का अर्थ है, कि जो तुम्हारा सुख है, उसे इकट्ठा करो। उसे पुनः जियो, लेकिन उसकी पुनरुक्ति की कामना मत करना।

पुनः जीने का मतलब है कि पीछे से जो तुमने इकट्ठा किया है, उसका बार-बार स्वाद लो, उसकी जुगाली करो। भैंस-गाय जुगाली करना जानती हैं, वह सीखो। वह भोजन कर लेती हैं, फिर उसकी जुगाली करती हैं, बार-बार चबाती हैं। जो सुख का अनुभव हो, उसकी जुगाली करो। दुःख के अनुभव को तुम काफी करते हो, इसलिए जुगाली को तो तुम जानते ही हो। कोई आदमी अगर एक दफा गाली दे दे, तो तुम पचास बार उसकी गाली को अपने भीतर दोहराते हो, कि उसने ऐसा कहा। फिर-फिर तुम क्रोध में आ जाते हो। क्यों? उसने एक दफा दिया, तुम पचास दफे दे रहे हो!

रात तुम्हें नींद नहीं आती कि उसने गाली दी। अब तुम उसकी जुगाली किये जा रहे हो। गाली में इतना क्या रस है? जरा-सा दुःख हो जाये, तो तुम फिर उसको सोचते ही चले जाते हो, सोचते ही चले जाते हो, कि ऐसा क्यों हुआ, ऐसा नहीं होना था!

सुख की इस भांति जुगाली करो, दुःख की जुगाली करके तुमने खूब दुख बढ़ा लिया है। तो सुख की जुगाली करो, और खूब सुख बढ़ जायेगा। लेकिन मांग मत करो। भविष्य में तो जाओ खाली। अतीत के रस को खींच लो पूरा अपने प्राणों में, लेकिन भविष्य में जाओ खाली, शून्य। जो वह अतीत से तुम सुख का रस खींच रहे हो, वह तुम्हें भविष्य के लिए तैयार कर रहा है। तुम्हें मांगने की जरूरत नहीं है, तुम्हारा सुख बढ़ता चला जायेगा।

छठवां सूत्र : और उन स्वर-लहरियों से स्वर-बद्धता का पाठ सीखो।

जीवन की अपनी भाषा है और वह कभी मूक नहीं रहता, और उसकी वाणी एक चीत्कार नहीं है, जैसा कि तुम जो बहरे हो, कदाचित् समझो। वह तो एक गीत है। उससे सीखो कि तुम स्वयं उस सुस्वरता के अंश हो, और इस सुस्वरता के नियमों का पालन करना सीखो।

यह जो संगीत के खण्ड तुम भीतर इकट्ठा कर लोगे, इसको खण्डों की भांति इकट्ठा मत करना, इनके बीच सम्बन्ध भी खोजना।

बचपन में एक तितली के साथ दौड़के एक सुख मिला था, वह तुम्हारे भीतर पड़ा है। फिर पहली बार तुम किसी के प्रेम में गिर गये थे, और तब तुमने एक आनन्द का अतिरेक अपने में अनुभव किया था, वह भी तुम्हारे भीतर पड़ा है। और तब किसी एक रात सागर के किनारे बैठके सागर के गर्जन में तुम डूब गये थे, वह भी तुम्हारे भीतर पड़ा है। और कभी अकारण ही, खाली तुम बैठे थे और अचानक तुमने पाया कि सब मौन और शान्त हो गया, वह तुम्हारे भीतर पड़ा है। ऐसे दस-पांच अनुभव तुम्हारे भीतर पड़े हैं। ये टुकड़े-टुकड़े हैं। इनमें तुमने कभी यह खोजने की कोशिश नहीं की है, कि इन सबके भीतर कामन एलिमेन्ट क्या है, इन सबके भीतर सम-स्वरता कहां है?

तितली के पीछे दौड़ता हुआ बच्चा और अपनी प्रेयसी के पास बैठा हुआ युवक—इन दोनों के बीच सम्बन्ध है—दोनों से सुख मिला, और दोनों से एक संगीत का अनुभव हुआ है, और दोनों के बीच आनन्द की कोई एक झलक थी, तो जरूर दोनों के बीच कोई तत्व समान होना चाहिये। बात बिलकुल भिन्न है। तितली के पीछे दौड़ता हुआ बच्चा, अपनी प्रेयसी के पास बैठा हुआ जवान, ओम् का पाठ करता हुआ बूढ़ा, कहीं कोई ताल-मेल ऊपर से नहीं दिखता; लेकिन भीतर जरूर कोई बात समान है, क्योंकि तीनों कहते हैं, बड़ा आनन्द है। वे स्वाद जरूर समान हैं, ओवम कितने ही भिन्न हों।

तो जरा खोजना कि तितली के पीछे दौड़ते हुए बच्चे को जो सुख मिला था, वह क्या था ! एकाग्रता थी, तितली ही रह गई थी। सारा जगत् भूल गया था बच्चा, दौड़ रहा है उसके पीछे, यह भी उसे पता नहीं था। दौड़ने के साथ एक हो गया था। उसकी आंखें तितली पर बंध गईं थीं। मन में सारे विचार खो गये थे, क्योंकि तितली पकड़नी थी, इतना ही विचार था। वह भी विचार था, ऐसा कहना कठिन है। एक भाव था। उस भाव-एकाग्रता के कारण सुख का अनुभव हुआ था।

फिर जवान हो गया था, वही बच्चा जो तितली पकड़ रहा था, फिर वह अपनी प्रेयसी के पास बैठा है, एक तारों भरी रात में। तितली और प्रेयसी मे कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन इस प्रेयसी के पास बैठकर वह पुनः एकाग्र हो गया है। बस एक ही भाव रह गया, जगत् मिट गया है, वह प्रेयसी ही रह गई है। अब कोई मन मे उसके विचार नहीं है। इस प्रेयसी की मौजूदगी मे वह उसी को पीता है। अब कोई दूसरा भाव, कोई दूसरा विचार उसको नहीं पकड़ता। इस क्षण में वह पुनः भाव-एकाग्रता में डूब गया है।

फिर बूढ़ा ओम् का पाठ करता है। कहां तितली, कहां प्रेयसी, कहां ओम् का पाठ! कहा वह मन्दिर का कोना, धूप-दीप-बाती! कोई सम्बन्ध नहीं दिखता। लेकिन ओम् के पाठ में वह फिर भाव एकाग्र हो गया था। जगत मिट गया है, ओंकार का नाद ही सब कुछ है। भूल गया है अपने को। वह जो मन्त्र बोल रहा है, उसका भी पता नहीं है। मन्त्र ही रह गया है, ओम् की ध्वनि ही रह गई है। फिर भाव एकाग्र हो गया है। तब आपको समझ में आयेगा कि तीन खण्ड हैं, अब खण्ड न रहे। इनके भीतर एक सूत्र मिल गया। वही संगीत है, वही सम-स्वरता है।

तो अपने जीवन-अनुभव, अपने आनन्द, अपने संगीत के बीच जो खण्ड तुम इकट्ठे कर लो, उनके बीच सम-स्वरता, 'हार्मनी'को खोजना। तो तुम बहुत चकित हो जाओगे। तब तुम बहुत चकित हो जाओगे कि कितने ही भिन्न दिखाई पड़ने वाले अनुभव भी, अगर उनके भीतर सुख है, तो समान होते हैं। और कितने ही भिन्न दिखाई पड़ने वाले अनुभव भी, अगर उनके भीतर दुःख है, तो समान होते हैं।

दुःख की एक ही भाषा है। सुख की भी एक ही भाषा है। इनको अलग-अलग देखते रहोगे, तो तुम्हें जीवन-दृष्टि न मिलेगी। तब तुम सोचते रहोगे—कि बूढ़ा ओंकार का पाठ करता हुआ सोचेगा कि जवान नासमझ है, कि कहां स्त्रियों के पीछे भटक रहा है ! जवान प्रेयसी के पास बैठा हुआ बच्चों को देखकर समझेगा कि क्यों व्यर्थ अपना समय खो रहे हैं, तितलियों के पीछे भटक रहे हैं !

तब ये एक दूसरे को न समझ पायेंगे। इसलिए नहीं समझ पायेंगे कि बूढ़ा अपनी ही जवानी को भी न समझ पाया, अपने बचपन को भी न समझ पाया। वह

बूढ़ा हो गया है, लेकिन उसे यह अभी तक पता नहीं चल पाया है, कि जवानी, बचपन बुढ़ापा एक ही जीवन-धारा के अंग हैं। और जब भी कहीं कोई सुख मिलता है, कोई आनन्द की प्रतीति होती है। तो चाहे बाहरी वातावरण कितना ही भिन्न हो, भीतर की घटना एक ही होती है।

तितली के पीछे दौड़ो, कि ओम् का पाठ करो, बराबर है। तितली के पीछे दौड़ना बच्चे का ढंग है, बराबर बूढ़े के ओंकार का पाठ करने के। ओंकार का पाठ करना बूढ़े का ढंग है, बराबर बच्चे के तितली के पीछे दौड़ने के। जवान भी अपनी प्रेयसी के पास ओंकार का पाठ कर रहा है, तितली के पीछे दौड़ रहा है। यह जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगा, उस दिन सब खण्ड एक संगीत में गिर जायेंगे, और तुम्हें भीतर का सूत्र मिल जायेगा। तब माला के मनके महत्त्वपूर्ण न रह जायेंगे, भीतर का धागा तुम्हारी पकड़ में आ गया है। और वही धागा परम-सत्य की तरफ ले जा सकता है।

तब बूढ़ा बच्चे पर नाराज नहीं होता, क्योंकि वह अपने बचपन को समझ चुका है और स्वीकार कर लिया है। जो बूढ़ा बच्चे पर नाराज हो रहा है, वह ठीक से बुद्धिमान नहीं है। वह अपने बचपन के प्रति ही नाराज है। असल में, बच्चे पर तो वह प्रक्षेपण कर रहा है। जो बूढ़ा जवान को कह रहा है कि क्यों जिन्दगी नष्ट कर रहे हो, वह जीवन के अनुभव को समझ नहीं पाया। उसका किसी जवान से यह कहना है कि तुम जीवन नष्ट कर रहे हो, इस बात की प्रतीति है, कि वह समझता है कि जवानी में उसने जीवन नष्ट किया और कुछ अर्थ नहीं है इसका। इस बूढ़े के जीवन में जवानी और बचपन एकाकार नहीं हो पाये। यह बूढ़ा खण्ड-खण्ड में जी रहा है।

खण्ड-खण्ड में दुःख है।

नहीं तो बूढ़ा बच्चे को सहायता देगा तितली पकड़ने में। और बूढ़ा जवान को सहायता देगा, प्रेम की कला में उतरने में। क्योंकि बूढ़ा जानता है कि वह सब ओंकार का ही नाद है, अलग-अलग अवस्थाओं में। तब वह नाराज नहीं होगा। तब उसकी कोई शिकायत नहीं है।

और ध्यान रहे कि इस तरह के बूढ़े को हम ऋषि कह सकते हैं, हर किसी बूढ़े को नहीं। तो बूढ़े तो सब हो जाते हैं उम्र से, लेकिन वार्धक्य बहुत कम लोगों को उपलब्ध होता है।

वार्धक्य का अर्थ है, जिसने जीवन का सारा अनुभव निचोड़ लिया। इसलिए हमने इस देश में बूढ़ों को आदर दिया था, बुढ़ापे के कारण नहीं। बूढ़े को हमने आदर दिया था, क्योंकि बच्चे के पास तितली पकड़ने का अनुभव है, लेकिन ओंकार का अनुभव नहीं है। जवान के पास प्रेयसी के पास बैठने का अनुभव है, लेकिन ओंकार का अनुभव नहीं है। बूढ़े के पास तीनों हैं। उसके पास सब है। इसलिए हमने बूढ़ों

के चरणों में झुकने को कहा था, कि झुकना। इसलिए नहीं कि उसकी उम्र ज्यादा है, बल्कि इसलिए कि उसकी माला के मनके सब पूरे हो गये और हो सकता है कि उसने उस धागे को पकड़ लिया हो। जिसने नहीं पकड़ा है, बूढ़ा हुआ ही नहीं है। उसने बाल धूप में पका लिये हैं। उसकी उम्र समय के भीतर गुजरी है, लेकिन उसने समयातीत को अनुभव नहीं किया है।

क्या है समयातीत ?

विभिन्न, अनन्त अनुभवों के बीच एक स्वर-संगीत को पकड़ लेना समयातीत है, वह समय के बाहर है।

और जिसने उसको पकड़ लिया, उसके लिए इस जगत् में फिर कोई दुःख नहीं है। उसके लिए जगत् में फिर कुछ भी बन्धन नहीं है। उसने इस जीवन का सार पा लिया है। सार पाते ही व्यक्ति जीवन से मुक्त हो जाता है।

जीवन है ही इसलिए कि तुम सार पा सको।

अगर तुम सार न पाओगे तो बूढ़े से फिर तुम्हें बच्चा होना पड़ेगा, फिर नया जन्म लेना पड़ेगा, फिर तुम्हें तितलियां पकड़नी पड़ेंगी, और तुम्हें प्रेयसियों के पास बैठना पड़ेगा, फिर तुम्हें ओंकार का नाद करना पड़ेगा। और अगर फिर भी तुम जीवन के पूरे सार का सूत्र न पकड़ पाये, तो फिर तुम्हें बच्चा होना पड़ेगा। अगर तुम पूरे जीवन को एक सूत्रता में पकड़ लो, तो तुम्हारे फिर बच्चे होने की कोई जरूरत नहीं है। बच्चा होने का मतलब ह कि तुम्हें फिर छोटी क्लास में वापस भेजा गया है। मैट्रिक तक आ गये थे, फिर तुम्हें उतारकर पहली क्लास में बिठा दिया गया। यह बहुत दुःखद है।

इसलिए इस मुल्क में हमारे मन की पीड़ा एक ही रही है कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो ? उसका कुल मतलब यह है कि बार-बार बूढा होकर बच्चा होने का मतलब क्या है ? उसका मतलब यह होता है कि वह समय व्यर्थ गया। पहुंच गये आखिरी क्लास तक, फिर उतारकर पहली क्लास में बिठा दिया गया ! वह तो आपको नया शरीर मिल जाता है, इसलिए ज्यादा पीड़ा नहीं होती।

अगर परमात्मा फिर से सृष्टि बनाये, तो उससे यह प्रार्थना करनी चाहिये कि दूसरा शरीर मत देना। बूढ़े को वापस बच्चा बना देना, वैसे का वैसा। फिर वह तितलियां पकड़े तो ज्यादा लाभ होगा। वह दूसरा शरीर मिल जाता है, तो आप भूल ही जाते कि क्या मामला है, आप क्या कर रहे हैं ? वह तो बेहतर यही हो कि बूढ़े को बूढ़े ही रहते हुए फिर तितलियां पकड़वाना, फिर स्त्रियों के पीछे दौड़वाना, फिर मन्दिर में पहुंचाना। मगर हो यही रहा है, क्योंकि भीतर की आत्मा तो वही रहती है।

उन स्वर लहरियों से स्वर-बद्धता का पाठ सीखना।

वही पाठ जीवन का संचित सार है।

जीवन का सम्मान

प्रवचन : १३, अप्रैल १५, १९७२, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

७. समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है।

...अपने आसपास के निरन्तर बदलने वाले और चलायमान जीवन पर ध्यान दो, क्योंकि यह मानवों के हृदय का ही बना है। और ज्यों-ज्यों तुम उसकी बनावट और उसका आशय समझोगे, त्यों-त्यों क्रमशः तुम जीवन का विशालतर शब्द भी पढ़ और समझ सकोगे।

८. समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो।

...मनुष्यों के हृदयों का अध्ययन करो, ताकि तुम जान सको कि वह जगत कैसा है, जिसमें तुम रहते हो और जिसके तुम एक अंश बन जाना चाहते हो।

टिप्पणी : बुद्धि निष्पक्ष होती है। न कोई तुम्हारा शत्रु है और न कोई मित्र। सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं। तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है, जिसे तुम्हें हल करना है, चाहे इस हल करने में युगों का समय लग जाए, क्योंकि मानव को समझना तो है ही।

...तुम्हारा मित्र तुम्हारा ही एक अंग बन जाता है, तुम्हारा ही एक विस्तृत रूप हो जाता है, जिसे समझना कठिन होता है।

जीवन सत्य की खोज में है—जो बड़ी से बड़ी कठिनाई हो सकती है, वह है जीवन के प्रति असम्मान का भाव। और हम सबके भीतर जीवन के प्रति असम्मान का भाव है। और यह बात उलटी लगेगी और समझने में थोड़ी मुश्किल पड़ेगी, कि तथाकथित धर्मों ने भी हमें जीवन के प्रति असम्मान से भर दिया है, जबकि वास्तविक धर्म हमें जीवन के प्रति सम्मान से भरेगा।

क्योंकि परमात्मा जीवन में ही छिपा है। जीवन उसका ही वस्त्र है, उसका ही आच्छादन है। जीवन उसकी ही सांस है। और अगर जीवन के प्रति असम्मान का भाव है, तो परमात्मा को खोजना असम्भव है। क्योंकि उस सम्मान से ही तो उसमें प्रवेश का द्वार मिलेगा। असम्मान से तो हमारी पीठ उसकी तरफ हो जायेगी।

पर ऐसी उलझन हो गई है कि धर्म कहते हैं कि परमात्मा को खोजो। और धर्म यह भी कहते हैं कि परमात्मा जीवन के कण-कण में छिपा है। लेकिन परमात्मा को खोजने की बात, जो रुग्ण चित्त लोग हैं, वे समझते हैं, जैसे जीवन का निषेध करके खोजना है! जैसे परमात्मा की खोज जीवन का विरोध है। जैसे परमात्मा को पाना हो तो जीवन को छोड़ना होगा।

अगर यह सच है कि परमात्मा को पाने के लिए जीवन को छोड़ना होगा, तो फिर जीवन का सम्मान नहीं हो सकता है; जीवन की निन्दा होगी, अपमान होगा। और जीवन का अपमान होगा तो जीवन का जो परम-रहस्य है, उसका सम्मान कैसे हो सकता है?

कृष्ण तो जीवन के प्रति सम्मान से भरे हैं, जीसस तो जीवन के प्रति सम्मान से भरे हैं, बुद्ध तो जीवन के प्रति सम्मान से भरे हैं, लेकिन उनके अनुयायिओं का बड़ा वर्ग जीवन के प्रति अपमान से भरा है। इसका कारण बुद्ध, कृष्ण या क्राइस्ट की शिक्षाओं में नहीं है। इसका कारण अनुयायिओं की समझ में है।

क्योंकि वे सभी कहते हैं कि परम-सत्य को खोजो। हम भी उसे खोजना चाहते हैं। लेकिन जब भी हम उसकी खोज का विचार करते हैं, तभी हमें लगता है कि हमारा जो आज का क्षण, अभी का जो जीवन है, उसे छोड़ना पड़े, तभी उसकी खोज हो सके। इससे हटना पड़े, इसे नष्ट करना पड़े, तभी उसकी खोज हो सके। इसलिए नहीं कि उसकी खोज के लिए इससे हटना जरूरी है, बल्कि सचाई यह है कि हम इससे इतने ऊब गये हैं, और परेशान हो गये हैं, और हम इसमें इतने दुःखी और इतने दीन हो गये हैं, कि जब भी हमें कोई मौका मिले, इसे छोड़ने और तोड़ने का, तो हम तैयार हैं। कोई भी बहाना मिले तो हम जीवन को नष्ट करने को तैयार हैं। हम आत्मघाती हैं, हम रुग्ण हैं। और ये रुग्ण लोग इकट्ठे हो जाते हैं, और ये सारी जीवन की परिभाषा बदल देते हैं, सारा ढंग बदल देते हैं। और ये पूरी व्यवस्था को उल्टा कर देते हैं।

धर्म की तरफ पैथालॉजिकल, रुग्ण चित्त लोग बहुत तीव्रता से उत्सुक होते हैं। उनकी उत्सुकता का कारण है, क्योंकि वे जीवन के तो विरोध में हैं। क्योंकि जीवन से तो उनको कोई सुख और शान्ति नहीं मिली। इसका कारण यह नहीं कि जीवन में सुख और शान्ति नहीं है। इसका कारण यह है कि उनका जो ढंग था जीवन से सुख और शान्ति पाने का, वह गलत था। तो वे जीवन में प्रति-विरोध से भर गये, और जब भी उन्हें कोई शिक्षक मिल जाता है, जो किसी और बड़े जीवन की तरफ इशारा करता है, तभी वे तत्काल यह निर्णय बना लेते हैं कि इस जीवन में ही पाप है, इस जीवन में ही दुःख है। इसको छोड़ेंगे तो वह परम-जीवन मिलेगा।

जीवन में दुःख नहीं है, जीवन को देखने के ढंग में दुःख है। और अगर यही ढग लेकर तुम परम-जीवन में प्रवेश कर गये, तो वहां भी दुःख पाओगे। वह ढंग तुम्हारे साथ है। तुम कहां हो यह सवाल नहीं है। तुम जहां भी रहोगे, वह ढंग तुम्हारे साथ रहेगा। तुम जहां भी जाओगे, तुम्हारी आंख तुम्हारे साथ रहेगी। तुम्हें परमात्मा भी मिल जाये, तो तुम उससे भी दुःखी होने वाले हो! तुम सुखी हो नहीं सकते, तुम्हारा जो ढंग है उसके बिना बदले। लेकिन ढंग तुम बदलना नहीं चाहते, तुम परिस्थिति बदलने को उत्सुक हो जाते हो। तुम जीवन की निन्दा करने में रस ले लेते हो। खुद गलत हो, यह तुम्हें सोचना मुश्किल हो जाता है।

यह जो निन्दकों का एक समूह है, यह जीवन को नुकसान तो पहुंचा देता है, लेकिन परमात्मा की तरफ एक भी कदम बढ़ने में सहायता नहीं कर पाता।

एक बात समझ लेनी जरूरी है कि अगर कोई परम-जीवन भी है, तो इस जीवन की ही गहराई का नाम है। अगर कोई पार का जीवन भी है तो भी इसी जीवन की सीढ़ियों से होकर, वह रास्ता है।

यह जीवन तुम्हारा दुश्मन नहीं है—यह जीवन तुम्हारा सहयोगी है, साथी है, संगी है। और अगर इस जीवन से तुम्हें कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता, तो तुम अपने देखने के ढंग को बदलना। तुम अपने देखने की रुचि को बदलना। लेकिन कोई भी आदमी अपने को बदलने को तैयार नहीं!

मैं तो इतना चकित होता हूँ कि जो लोग कहते भी हैं कि हम स्वयं को बदलने को तैयार हैं; वे भी स्वयं को बदलने को तैयार नहीं होते, कहते ही हैं। उनकी उत्सुकता भी होती है कि सब बदल जायें और वे न बदलें। क्योंकि खुद को बदलना—अहंकार को बड़ी चोट लगती है, बहुत पीड़ा होती है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे मुझे भी बदलने की योजनाएं लेके आ जाते हैं। वे कहते हैं कि अगर आप ऐसा करें तो बहुत ही अच्छा होगा, अगर आप ऐसा कहें तो बहुत अच्छा हो, अगर आप ऐसे जियें तो बहुत अच्छा हो! मैं उनसे पूछता हूँ कि तुम यहां किस लिए आये हो? तुम अपने को बदलने आये हो, या मुझे। मैं जैसा हूँ, आनन्दित हूँ। मुझे इसमें रत्ती भर बदलने का कोई सवाल नहीं है। तुम अगर दुःखी हो तो खुद को बदलने की फिक्र करो। अगर तुम भी आनन्दित हो, तो बात खतम हो गई।

लेकिन दुःखी आदमी भी आता है तो, उसे इसका ख्याल ही नहीं कि वह किसलिए आया हुआ है! वह किसलिए आया हुआ है, अपने को बदलने? यहां शिविर में लोग आते हैं, दिन भर मेरा सिर खाते हैं; फलां आदमी ऐसा कर रहा है, ढिकां आदमी ऐसा कर रहा है! तुम यहां किस लिए आये हो? तुम सारे लोगों की चिन्ता के लिए आये हो? तुम्हें किसने ठेका दिया सबकी चिंता का? तुम्हारे पास बहुत समय मालूम पड़ता है, बहुत शक्ति मालूम पड़ती है। अपना जीवन तुम दूसरे के लिए चुका रहे हो कि कौन आदमी क्या कर रहा है? क्या प्रयोजन है? कौन आदमी किस स्त्री से बात कर रहा है, कौन आदमी किस स्त्री के पास बैठा हुआ है? तुम्हें चिन्ता का क्या कारण है? तुम कौन हो?

लेकिन तुम यहां आये थे अपने को बदलने को और यहां तुम फिक्र में पड़ जाते हो किसी दूसरे को बदलने की! असल में तुम अपने को बदलने को आये ही नहीं हो, इसीलिए यह फिक्र पैदा होती है। तुम्हारा ख्याल गलत था कि तुम अपने को बदलने आये हो। तुमने अपने को धोखा दिया। तुम चाहते तो हो कि सारी दुनिया को बदल लो, पर तुम तो जैसे हो, उससे रत्ती भर भी हटना नहीं चाहते! और फिर तुम चाहते हो कि तुम्हारा दुःख समाप्त हो जाये, तुम्हारी पीड़ा समाप्त हो जाये! तुम जैसे हो, वैसे ही रहके दुःख समाप्त नहीं होगा। फिर इससे क्या तुम्हें पीड़ा होती है कि कोई आदमी किसी स्त्री के साथ बात कर रहा है, प्रेमपूर्ण ढंग से बैठा हुआ है? इससे तुम्हें क्या पीड़ा होती है?

मुझे खबर दी किसी ने कि फलां आदमी किसी स्त्री के साथ इस ढंग से बैठा है, जो शोभादायक नहीं है। शोभा का कोई निर्णायक है? और जो आदमी खबर दे रहा है, उसे इस बात का ख्याल ही नहीं है कि उसको यह पीड़ा क्यों पकड़ रही है। इस आदमी को मैं भलीभांति जानता हूँ। यह किसी भी स्त्री के पास बैठने में समर्थ नहीं है। कोई स्त्री इसके पास बैठने में समर्थ नहीं है। यह परेशान है। उस आदमी की जगह बैठना चाहता था, इसलिए यह परेशानी की खबर ले आया। लेकिन इसे यह ख्याल ही नहीं है कि इसका खुद का रोग इसको खा रहा है। दूसरे को बदलने की फिक्र में है!

मैंने उस आदमी को कहा कि जो आदमी वहां बैठा है स्त्री के पास, तुमने उस आदमी के बाबत एक बात ख्याल की, वह आदमी सदा प्रसन्न रहता है, सदा हंसता है, सदा खुश है। और तुम सदा उदास, दुःखी और परेशान हो। तुम उस आदमी से कुछ सीखो, उसके पास में बैठी स्त्री की फिक्र छोड दो। और यह भी हो सकता है कि तुम इतने खुश हो जाओ, कि कोई स्त्री तुम्हारे पास भी बैठना चाहे। लेकिन तुम्हारी शक्ल नारकीय है। तुम इतने दुःख और परेशानी से भरे हो, कि कोई तुम्हारे पास बैठना नहीं चाहता। फिर अगर दो व्यक्ति प्रेम पूर्णढंग से बैठे हैं, तो इसमें अशोभन क्या है?

यह बहुत मजे की बात है कि जीवन के असम्मान के कारण प्रेम अशोभन मालूम पड़ता है। क्योंकि प्रेम जीवन का गहनतम फूल है। अगर दो आदमी सड़क पर लड़ रहे हो तो कोई नहीं कहता कि अश्लील है। लेकिन दो आदमी गले में हाथ डालके वृक्ष के नीचे बैठे हो, तो लोग कहेंगे, अश्लील है! हिंसा अश्लील नहीं है, प्रेम अश्लील है! प्रेम क्यों अश्लील है, हिंसा क्यों अश्लील नहीं है! हिंसा मृत्यु है, प्रेम जीवन है। जीवन के प्रति असम्मान है और मृत्यु के प्रति सम्मान है!

देखिए, कितनी हैरानी की बात है—युद्ध की फिल्में बनती हैं, कोई सरकार उन पर रोक नहीं लगाती। हत्या होती है, खून होता है फिल्म में, कोई दुनिया की सरकार नहीं कहती कि अश्लील है। लेकिन अगर प्रेम की घटना है तो सारी सरकारें चिन्तित हो जाती हैं। सरकारें तय करती हैं कि चुम्बन कितने दूर से लिया जाये! छः इंच का फासला हो, कि चार इंच का फासला हो! कि कितने इंच के फासले पर चुम्बन श्लील होता है, और कितने इंच के फासले पर अश्लील हो जाता है! लेकिन छुरा भोंक जाये फिल्म में, तो अश्लील नहीं होता! कोई नहीं कहता कि छः इंच दूर छुरा रहे।

यह बहुत विचार की बात है कि क्या कठिनाई है। चुम्बन में ऐसा क्या पाप है, जो छुरा भोंकने में नहीं है! लेकिन चुम्बन जीवन का साथी है और छुरा मृत्यु का। हम सब आत्मघाती हैं। हम सब हत्यारे हैं। लेकिन प्रेम के हम सब दुश्मन हैं! यह

दुश्मनी क्यों है? इसको अगर हम बहुत गहरे में खोजने जायें तो हमारा जीवन के प्रति असम्मान का भाव है। फिर अगर दो व्यक्ति प्रेम से बैठे हैं, किसी को नुकसान नहीं पहुंचा रहे हैं—यह उनकी निजी बात है, यह उनका निजी आनन्द है। अगर यह आपको कष्ट देता है तो आपको अपने भीतर खोज करनी चाहिये। आपके जीवन में प्रेम की कमी रह गई है। या आपकी काम-वासना पूरी नहीं हो पाई है, अटकी रह गई है। आपकी काम-वासना रोग बन गई है, घाव बन गई है। मगर ये आदमी जो मेरे पास आकर खबर लायेंगे, वे यह नहीं कहते कि हम अपनी काम-वासना से पीड़ित हैं! वे यह कहते हैं कि यह क्या हो रहा है!

अपनी तरफ ख्याल करो, अपने दृष्टिकोणों को सोचो, दूसरे की चिन्ता मत करो। और एक बात सदा ख्याल में रखो कि तुम किस बात का सम्मान करते हो—जीवन का!

दो व्यक्ति का प्रेमपूर्ण ढंग से खड़ा होना, इस पृथ्वी पर घटने वाली सुन्दरतम् घटनाओं में से एक है। और अगर प्रेम सुन्दर नहीं है, तो फूल सुन्दर नहीं हो सकते, पक्षियों के गीत सुन्दर नहीं हो सकते, क्योंकि फूल भी प्रेम की घटना है। यह भी वृक्ष की काम-वासना है। उससे वृक्ष अपने बीज पैदा कर रहा है, अपने वीर्य-कण पैदा कर रहा है। पक्षियों के गीत सुन्दर नहीं हो सकते, क्योंकि वह भी प्रेयसियों के लिए बुलाई गई पुकार है या प्रेमियों की खोज है—वह भी काम-वासना है।

अगर कोई व्यक्ति जीवन के प्रति असम्मान से भरा है तो इस जगत में फिर कुछ भी सुन्दर नहीं है, सब अश्लील है।

आपको फूल में दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि फूल की काम-वासना का आपको पता नहीं है। जब वसन्त आता है, तो पृथ्वी जवान होती है। वह जो आप खुशी देखते हैं चारों तरफ, वह भी काम-वासना की ही खुशी है—वह जो उत्सव दिखाई पड़ता है।

जीवन की निन्दा में काम-वासना भी एक कारण है। न मालूम किस-किस भांति से हमने काम-वासना का विरोध किया है, उसको पाप कहा है। वह पाप हो सकती है, क्योंकि उसमें पुण्य होने की क्षमता है।

एक बात का ध्यान रखना : वही चीज पाप हो सकती है, जिसमें पुण्य होने की क्षमता हो।

एक छोटा बच्चा अगर कोई भूल करता है, तो हम उसे माफ कर देते हैं; हम पाप नहीं कहते, हम कहते हैं कि वह बच्चा है। अभी ठीक करने की क्षमता ही उसमें नहीं है, तो गलत करना माफ किया जाये। एक आदमी शराब पीकर कोई जुर्म कर लेता है, तो अदालत भी माफ कर देती है, क्योंकि उसने बेहोशी में किया है। होश में होता तो हम मानते हैं कि उसमें ठीक करने की क्षमता भी थी। जब क्षमता ही न थी तो फिर गलत का जुम्मा भी नहीं रह जाता। एक आदमी पागल सिद्ध हो जाये तो बड़े

से बड़ा जुर्म भी माफ हो जाता है, क्योंकि पागल को क्या दोष देना! वह ठीक कर ही नहीं सकता था, तो गलत करने के लिए जिम्मेवार भी नहीं रह जाता।

एक बात—कि जिस स्थिति में पाप हो सकता है, वह वही स्थिति है, जिसमें पुण्य भी हो सकता था; नहीं तो पाप नहीं हो सकता है। जो ऊर्जा पाप बन सकती है, वही ऊर्जा पुण्य भी बन सकती है। इसलिए काम वासना का जो विरोध किया है जानने वालों ने, उसका कारण दूसरा है। न जानने वालों ने विरोध को पकड़ लिया, उसका कारण दूसरा है। जानने वालों ने इसलिए कहा है कि तुम काम-वासना में मत पड़ो, ताकि तुम्हारी काम-ऊर्जा परमात्मा की तरफ प्रवाहित हो सके। इसमें काम-वासना की निन्दा नहीं है, केवल उसका महत्तर उपयोग है। सच पूछें तो इसमें उसकी महत्ता है। क्योंकि काम-वासना में पड़के तुम संसार मे प्रवेश कर जाओगे, और गहन अन्धकार में। अगर तुम काम-वासना में न पड़ो, तो यही ऊर्जा ऊपर चढ़ने की सीढ़ी बन जायेगी।

तो जो सीढ़ी तुम्हें ऊपर ले जा सकती हो, उसको तुम नीचे की यात्रा पर मत लगाओ। इसमें सम्मान है, अपमान नही है। इसका अर्थ यह हुआ कि काम-ऊर्जा परम-सत्य तक ले जा सकती है, और तुम उसे व्यर्थ मत खो देना। लेकिन रुग्ण लोगों ने इसका जो अर्थ लिया, वह अर्थ है कि कामवासना के शत्रु हो जाओ। वे सीढ़ी तो ऊपर की तरफ लगाते नहीं, सीढ़ी नीचे की तरफ भी नहीं लगाते! वे सीढ़ी को कन्धे पर लेके घूमते हैं, वे सीढ़ी लगाते ही नहीं!

ऊपर की तरफ लगाओ, बहुत सुखद है, परम-आनन्दपूर्ण है। ऊपर की तरफ न लगा सको, तो कन्धे पर लेके मत घूमो। क्योंकि उससे तुम सिर्फ रुग्ण हो रहे हो और बोझ ढो रहे हो। काम-वासना के विरोध के कारण जीवन का भी अपमान हो गया हमारे मन में, क्योंकि जीवन उसी से तो उठता है, जीवन उसी से तो जागता है।

जीवन काम-वासना का ही तो फैलाव है।

प्रेम छुप-छुप कर करना पड़ता है—कहीं भाव है कि पाप है। अगर प्रेम पाप है, तो प्रेम से पैदा होने वाले बच्चे पुण्य नही हो सकते। अगर प्रेम पाप है, तो पूरा जीवन पाप है।

ये सूत्र बहुत कीमती हैं, समझने जैसे हैं।

पहला सूत्र है—

सातवां सूत्र : समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है।

समस्त जीवन का सम्मान करो—मृत्यु का नहीं, हिंसा का नहीं, विध्वंस का नहीं; जीवन का, सृजन का, प्रेम का। जहां से जीवन उठता है, जहां से जीवन जन्मता है, जहां से जीवन फैलता है—चाहे पौधों में, चाहे पक्षियों में, चाहे मनुष्यों में—जीवन का सम्मान करो, समग्र जीवन का।

...अपने आसपास के निरन्तर बदलने वाले और चलायमान जीवन पर ध्यान दो, क्योंकि वह मानव के हृदय का ही बना है। और ज्यों-ज्यों तुम उसकी बनावट और उसका आशय समझोगे, त्यों-त्यों क्रमशः तुम जीवन का विशालतर शब्द भी पढ़ और समझ सकोगे।

जीवन के सम्मान में एक सृजनात्मक दृष्टिकोण है। चारों ओर देखो, हृदय से बना है सब कुछ। तुम्हारे पड़ोस में जो बैठा है, उसका हृदय भी धड़क रहा है। यह जो वृक्ष लगा है, उसकी भी जीवन-धारा प्रवाहित हो रही है। वह जो तुम्हारे नीचे पृथ्वी है; वह भी सांस ले रही है। छोटा सा कीड़ा-मकोड़ा हो या आकाश के बड़े से बड़े तारा-मंडल हों, उन सबमें एक ही जीवन विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है। इसका सम्मान अगर मन में न हो, तो तुम अस्तित्व में प्रवेश कैसे करोगे? तुम कैसे प्रवेश करोगे, कहां से द्वार खोजोगे? अगर तुम्हारी घृणा है, अगर तुम्हारा विरोध है, निन्दा है, तो तुम पीठ करके खड़े हो जाओगे द्वार की तरफ। जहां भी जीवन दिखाई पड़े, उसकी पूजा करो। जहां भी जीवन की कली खिलती हो, उसका स्वागत करो। विध्वंस तुम्हारे मन में न आये, निन्दा तुम्हारे मन में न आये, सम्मान तुम्हारी भाव-दशा बन जाये।

श्वीत्ज़र ने किताब लिखी ह, 'रिवरेन्स फॉर लाइफ', जीवन के प्रति सम्मान। और श्वीत्ज़र ने अपना पूरा जीवन, जीवन के प्रति सम्मान में पूरा समर्पित किया है। और श्वीत्ज़र ने कहा है कि जीवन का सम्मान करते-करते ही मुझे प्रभु की प्रतीति होने लगी। और न मैंने कोई पूजा की है और न मैंने कोई प्रार्थना की है, और न मैंने ध्यान किया है। मुझे तो जहां भी जीवन दिखाई पड़ा, जो भी मुझसे बन सका—जीवन के स्वागत, सेवा, समादर के लिए, वह मैंने किया है। और जहां भी मुझे ख्याल आया कि मैं मृत्यु का पक्षपाती हो रहा हूँ, वहीं से मैंने अपने को हटा लिया। जहां भी मुझे लगा कि मुझसे कोई विध्वंस हो रहा है, वहीं मैंने अपने हाथ रोक लिए। मैंने अपनी शक्ति को विध्वंस में नियोजित नहीं किया। कुछ मैंने तोड़ने में अपनी शक्ति नहीं लगाई। कुछ जोड़ सका, कुछ बना सका, कुछ निर्मित कर सका जीवन के लिए; कोई रास्ता, कोई सहारा—वही मैंने किया है। तो यह मेरी पूजा है। और मैं इसमें तृप्त हूँ, क्योंकि मैंने पा लिया वह, जो मुझे पाने जैसा लगता है। कोई और खोज बाकी नहीं है।

लेकिन यह तभी हो सकेगा, जब तुम्हारा दृष्टिकोण बदले। अभी तो तुम विध्वंस की तलाश में रहते हो। कहीं तुम्हें कुछ तोड़ने-फोड़ने को मिल जाये, तो तुम्हारे आनन्द का अन्त नहीं होता। बनाने में किसी को कोई रस नहीं है, मिटाने की बड़ी उत्सुकता है। इस उत्सुकता को अपने भीतर खोजना।

निन्दा का बड़ा भाव है। अगर मैं किसी की निन्दा करूं, तो आप बिना किसी विवाद के स्वीकार कर लेते हैं। अगर मैं किसी की प्रशंसा करूं, तो आपका मन एकदम चौंक जाता है, आप स्वीकार करने को राजी नहीं होते हैं। आप कहते हैं, सबूत क्या है, प्रमाण क्या है? आप वहम् में पड़ गये हैं। लेकिन जब कोई निन्दा करता है, तब आप ऐसा नहीं कहते। कभी अपने देखा, कि कोई आके जब आपको किसी की निन्दा करता है तो आप कैसे मन से, कैसे भाव से स्वीकार करते हैं? आप यह नहीं पूछते कि यह बात सच है? आप यह नहीं पूछते कि इसका प्रमाण क्या है? आप यह भी नहीं पूछते कि जो आदमी इसकी खबर दे रहा है, वह प्रमाण योग्य है? आप यह भी नहीं पूछते कि इसको मानने का क्या कारण है, क्या प्रयोजन है? नहीं, कोई निन्दा करता है तो आपका प्राण एकदम खुल जाता है, फूल खिल जाते हैं, सारी निन्दा को आत्मसात् करने के लिए मन राजी हो जाता है!

इतना ही नहीं, जब आप यही निन्दा दूसरे को सुनाते हैं, क्योंकि ज्यादा देर आप रुक नहीं सकते। घड़ी, आधा घड़ी बहुत है। आप भागेंगे किसी को बताने को, क्योंकि निन्दा का रस ही ऐसा है। वह हिंसा है। और अहिंसक दिखाई पड़ने वाली हिंसा है। किसी को छुरा मारो अदालत में, पकड़े जाओगे। लेकिन निन्दा मारो, तो कोई पकड़ने वाला नहीं है। कोई कारण नहीं है, कोई झंझट नहीं है। हिंसा भी हो जाती है साध्य, रस भी आ जाता है तोड़ने का और कोई नुकसान भी कहीं अपने लिए होता नहीं। भागोगे जल्दी, और ख्याल करना, जितनी निन्दा पहले व्यक्ति ने की थी, उससे दुगुनी करके तुम दूसरे को सुना रहे हो। अगर उसने पचास कहा था, तो तुमने सौ संख्या कर ली है। तुम्हें ख्याल भी नहीं आयेगा कि तुमने कब यह सौ कर ली है। निन्दा का रस इतना गहरा है कि आदमी उसे बढ़ाए चला जाता है।

लेकिन कोई तुमसे प्रशंसा करे किसी की, तुमसे नहीं सहा जाता फिर, तुम्हारा हृदय बिलकुल बन्द हो जाता है, द्वार-दरवाजे शक्ति से बन्द हो जाते हैं। और तुम जानते हो कि यह बात गलत है, यह प्रशंसा हो नहीं सकती, यह आदमी इस योग्य हो नहीं सकता। तुम तर्क करोगे, तुम दलील करोगे, तुम सब तरह के उपाय करोगे। इसके पहले कि तुम मानों यह सच है, और तुम जरूर कुछ न कुछ खोज लोगे, जिससे यह सिद्ध हो जाये कि यह सच नहीं ह। और तुम आश्वस्त हो जाओगे कि नहीं, यह बात सच नहीं है। और यह कहने तुम किसी से भी न जाओगे, कि यह प्रशंसा की बात तुम किसी से कहो। यह तुम्हारा जीवन के प्रति असम्मान है और मृत्यु के प्रति तुम्हारा सम्मान है।

अखबार में अगर कहीं कोई आगजनी न हुई हो, कहीं कोई लूटपाट न हुई हो, कोई डाका न पड़ा हो, कोई युद्ध न हुआ हो, कहीं बम न गिरे हों, तो अखबार ऐसा

पटकके कहते हो, कि आज तो कोई खबर ही नहीं है। क्या तुम इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे? क्या तुम सुबह-सुबह उठकर यही अपेक्षा कर रहे थे कि यह हो? कोई समाचार ही नहीं है। तुम्हें लगता है कि अखबार में जो दो आने खर्च किये, वे व्यर्थ गये। तुम्हारे दो आने के पीछे तुम क्या चाह रहे थे, इसका तुमने कुछ सोच-विचार किया है? तुम्हारे दो आने की सार्थकता का कितना मूल्य तुम लेना चाहते हो जगत से?

अखबार भी तुम्हारे लिए ही छपते हैं, इसलिए अखबार वाले भी अच्छी खबर नहीं छापते, उसे कोई पढ़ने वाला नहीं है, उसमें कोई सेन्सेशन नहीं है, उसमें कोई उत्तेजना नहीं है। अखबार वाले भी वही छापते हैं, जो तुम चाहते हो। वहीं खोजते हैं, जो तुम चाहते हो। दुनिया में जो भी कचरा और गन्दा और व्यर्थ कुछ हो, उस सबको इकट्ठा कर लाते हैं। तुम प्रफुल्लित होते ही सुबह से, तुम्हारा हृदय बड़ा आनन्दित होता है। तुम अखबार से जो इकट्ठा कर लेते हो, दिन भर फिर तुम उसका प्रचार करते हो। तुम्हारा ज्ञान अखबार से ज्यादा नहीं है, फिर तुम उसी को दोहराते हो। पर कभी यह ख्याल किया कि तुम्हारा रस क्या है?

लोग डिटेक्टिव कहानियां पढ़ते हैं। क्यों? क्यों जासूसी उपन्यास पढ़ते हैं? क्यों जाके हत्या और युद्ध की फिल्में देखते हैं? अगर रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों, तो तुम हजार काम रोकके खड़े होके देखते हो, देखोगे। हो सकता है तुम्हारी मां मर रही हो और तुम दवा लेने जा रहे हो। लेकिन फिर तुम्हारे पैर आगे न बढ़ेंगे। तुम कहोगे कि मां तो थोड़ी देर रुक भी सकती है, ऐसी कोई जल्दी नहीं है। बाकी यह जो दो आदमी लड़ रहे हैं, पता नहीं, क्या से क्या हो जाये? और अगर दो आदमी लड़ते रहें और कुछ से कुछ न हो, तो थोड़ी देर में तुम वहां से निराश हटते हो कि कुछ भी न हुआ।

इसलिए मैं कह रहा हूँ, इसे तुम निरीक्षण करना। इससे तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारा कोण क्या है जीवन को देखने का? तुम चाहते क्या हो? तुम्हारी क्या है मनोदशा? इसको तुम पहचानना और तब इसे बदलना। तब देखना जहां-जहां तुम्हें लगे कि मृत्यु, हिंसा और विध्वंस के प्रति तुम्हारा रस है, उसे हटाना। और जीवन के प्रति बढ़ाना। अच्छा हो कि जब कली फूल बन गयी हो, तब तुम रुक जाना। घड़ी भर वहां बैठके ध्यान कर लेना, उस फूल बनती कली पर, क्योंकि वहां जीवन खिल रहा है। अच्छा हो कि कोई बच्चा जहां खेल रहा हो, हंस रहा हो, नाच रहा हो, वहां घड़ी भर तुम रुक जाना।

दो आदमी छुरा लेकर लड़ रहे हैं, वहां रुकने से क्या प्रयोजन है? और तुम्हें शायद पता न हो और तुमने कभी सोचा भी न हो कि वे दो आदमी जो छुरा मार रहे हैं एक दूसरे को, उसमें तुम्हारा हाथ भी सकता है, क्योंकि तुम ध्यान देते

हो। अगर भीड़ इकट्ठी न हो तो लड़ने वालों का रस भी चला जाता है। अगर कोई देखने न आये, तो लड़ने वाले भी सोचते हैं कि बेकार है; फिर देखेंगे, फिर कभी। जब भीड़ इकट्ठी हो जाती है तो लड़ने वालों को भी रस आ जाता है। जितनी भीड़ बढ़ती जाती है, उतना उनका जोश गरम होता जाता है, उतना अहंकार और प्रतिष्ठा का सवाल हो जाता है। इसलिए तुम यह मत सोचना कि तुम खड़े थे, तो तुम भागीदार नहीं थे, तुम्हारी आंखों ने भी हिंसा में भाग लिया। और वह जो छुरा भोंका गया है, अगर दुनिया में कोई सच में अनूठी अदालत हो, तो वह छुरा मारने वाला ही नहीं, तुम भी पकड़े जाओगे, क्योंकि तुम भी वहां खड़े थे। तुम क्यों खड़े थे! तुम्हारे खड़े होने से सहारा मिल सकता है, तुम्हारे खड़े होने से उत्तेजना मिल सकती है। तुम्हारे खड़े होने से वह हो सकता है, जो न हुआ होता।

पर अपनी उत्सुकता को खोजो, और अपनी उत्सुकता को जीवन की तरफ ले जाओ। और जहां भी तुम्हें जीवन दिखाई पड़े, वहां तुम सम्मान से भर जाना, वहां तुम, अहोभाव से भर जाना। और तुमसे जीवन के लिए जो कुछ बन सके, तुम करना।

अगर ऐसा तुम्हरा भाव हो तो, तुम अचानक पाओगे, तुम्हारी हजार चिन्ताएं खो गईं, क्योंकि वह तुम्हारी रुग्ण-वृत्ति से पैदा होती हैं। तुम्हारे हजार रोग खो गये; क्योंकि तुम्हारे रोग, तुम विध्वंस की भावना से भरते थे। तुम्हारे बहुत से घाव मिट गये, क्योंकि उन घावों से तुम दूसरे को दुःख पहुंचा-पहुंचा कर खुद भी अपने को दुःख पहुंचाते थे और हारा करते थे।

इस जगत में केवल वही आदमी आनन्द को उपलब्ध हो सकता है, जो अपनी तरफ से, जहां भी आनन्द घटित होता हो, उस आनन्द से आनन्दित होता है। लेकिन जब तुम किसी को सुखी देखते हो, तो तुम दुःखी होते हो। तुम्हारी पूरी चिन्ता यह हो जाती है कि इस व्यक्ति को दुःखी कैसे किया जाये। जानकर शायद तुम ऐसा न भी करते हो, लेकिन अनजाने यह चलता है कि तुम किसी को सुखी नहीं देख पाते। जब तुम किसी को दुःखी देखते हो, तब तुम्हारे पैरों में थिरकन आ जाती है। तब तुम बड़ी सहानभूति प्रकट करते हो। और शायद तुम सोचते हो कि तुम दुःखियों के बड़े साथी हो, क्योंकि कितनी सहानुभूति प्रकट करते हो। लेकिन एक बात ध्यान रखना कि अगर तुम दूसरे के सुख में सुखी नहीं होते, तो तुम्हारा दूसरे के दुःख में दुःखी होना झूठा है। यह हो ही नहीं सकता।

जब तुम दूसरे के सुख में सुखी नहीं होते, तो तुम दूसरे के दुःख में दुःखी नहीं हो सकते।

जब तुम दूसरे के सुख में दुःखी होते हो, तो खोज करना अपने भीतर, तुम दूसरे के दुःख में जरूर सुखी होते होगे। क्योंकि यह तो सीधा गणित है। इस गणित से

विपरीत नहीं होता। तुम्हारी सहानुभूति दूसरे के लिए नहीं है, तुम्हारी सहानुभूति में तुम मजा लेते हो। दूसरा नीचे पड़ गया है आज, उसका पैर छिलके से फिसल गया है और जमीन पर चारों खाने चित पड़ा है। तुम्हारा चित्त बड़ा प्रसन्न है कि तुम नहीं गिरे, कोई और गिर गया है। अब तुम बड़ी शिष्टता और सभ्यता दिखला रहे हो; बड़ी सहानुभूति—उठाके झाड़ रहे हो, उस आदमी के वस्त्रों को। लेकिन तुम्हारा हृदय प्रसन्न हो रहा है कि तुम नहीं गिरे, और ये पड़ोसी गिर गया। कितनी दफा तुमने इसे गिराना चाहा था, आज केले के छिलके ने वह काम कर दिया है।

तुम जब किसी के दुःख में दुःख प्रकट करने जाते हो, तब जरा अपने भीतर देखना कि तुम सुखी तो नहीं हो रहे ?

मैं एक घर में रहता था, उस घर की गृहिणी बड़ी तलाश में रहती थी, कि कब कौन, कहां मर गया! न भी हो पहचान, तो भी वह गृहिणी सम्वेदना प्रकट करने जाती थी! और जब भी मैंने उस गृहिणी को सम्वेदना प्रगट करते जाते देखा, तो उसकी चाल का मजा ही और था! मैंने पूछा भी कि मामला क्या है? कोई मर जाता है, कुछ हो जाता है, तो तू क्यों इतनी प्रसन्न होकर जाती है? उसने कहा कि दुःख में तो साथ देना ही चाहिये। मैंने कहा कि तेरी आंखों से दुःख का कोई पता नहीं चलता, तेरी चाल से कुछ पता नहीं चलता। मुझे तो ऐसा लगता है कि तू प्रतीक्षा में थी कि कब कोई मरे। तेरी जल्दी, तेरा रस, यह सब शक पैदा करते हैं।

आप अपने पर ध्यान करना। जब आप किसी के दुःख में दुःख प्रकट कर रहे हों, एक क्षण आंख बन्द करके भीतर देखना कि रस तो नहीं आ रहा है। आपको अच्छा तो नहीं लग रहा है, मजा तो नहीं ले रहे हैं सहानभूति में। अगर मजा ले रहे हैं तो इस मजे को आप समझना कि रोग है। और जब कोई सुखी दिखाई पड़े, तो क्या आपको ईर्ष्या पकड़ती है? क्या यह होता है कि दूसरा आदमी सुखी है, तो आपको कष्ट होता है? अगर कष्ट होता है तो आपके मन में जीवन का सम्मान नहीं है।

जीवन कहीं भी खिलता हो, और खुश होता हो, आपको खुश होना चाहिये।

और यह मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि इससे दूसरों को लाभ होगा, यह मैं इस लिए कह रहा हूँ कि इससे तुम रोग से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारे घाव मिट जायेंगे। तुम अपने लिए दुःख पैदा करना बन्द कर दोगे, क्योंकि जो दूसरों के लिए दुःख पैदा करता है, वह अपने ही लिए दुःख पैदा कर रहा है; उसे इसका पता नहीं है।

जो दूसरे के लिए सुख पैदा करता है, वह अपने लिए बड़े सुख का आयोजन कर रहा है।

अगर तुम दुःखी हो तो तुम जिम्मेवार हो।

और यह जिम्मेवारी तुम्हारी तुम्हारे ख्याल में आनी शुरू होगी, क्योंकि हर आदमी

अपने को तो सुखी करना ही चाहता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो अपने को सुखी नहीं करना चाहता।

और बड़े मजे की बात है कि पृथ्वी पर चार अरब आदमी हैं, सभी आदमी अपने को सुखी करना चाहते हैं, और सभी आदमी दुःखी हैं! जरूर कहीं कुछ भूल हो रही है। और भूल कुछ बड़ी है, और बुनियादी है। नहीं तो चार अरब आदमी एक ही भूल को कैसे दोहराते रहेंगे? और सभी सुखी होना चाहते हैं, और कोई सुखी नहीं है!

भूल यह हो रही है कि आप खुद तो सुखी होना चाहते हैं, लेकिन दूसरे को दुःखी करना चाहते हैं। और जो दूसरे को दुःखी करना चाहता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। भूल यह हो रही है कि आप खुद तो सुखी होना चाहते हैं, लेकिन किसी को सुखी देखना नहीं चाहते हैं। और जो किसी को सुखी नहीं देख सकता, वह दुःखी रहेगा, वह कभी सुखी नहीं हो सकता।

जो हम दूसरों के लिए चाहते हैं, वह हमें उपलब्ध हो जाता है। जो हम दूसरों के लिए करते हैं, वह प्रतिध्वनित होकर हम पर बरस जाता है। यह जगत एक गूंज है। यहां सब जो तुम लुटाते हो, तुम पर ही बरस जाता है। तुम गालियां फेंकते हो, गालियां तुम पर लौट आती हैं। तुम सुख लुटाते हो, सुख तुम पर लौट आता है।

यह जगत तुम्हें वही दे देता है, तुम जो इसे देने को तत्पर हो।

अगर तुमने जीवन का सम्मान किया है, तो यह सारा जगत, यह सारा अस्तित्व, तुम्हारे प्रति सम्मान से भर जायेगा।

अगर तुमने जीवन का अपमान किया है, तो यह सारा अस्तित्व तुम्हारे प्रति अपमान से भर जायेगा।

और तब एक बहुत कठिन समस्या पैदा हो जाती है। अगर तुम जगत का अपमान करते हो, जीवन का अपमान करते हो, तो जगत और जीवन तुम्हारा अपमान करता है। और जब तुम्हारा अपमान जगत और जीवन करता है तो तुम सोचते हो कि ठीक ही था मेरा दृष्टिकोण, यह जगत अपमान के ही योग्य है। अब तुम इस चक्कर में पड़ गये, जिसके बाहर आना बहुत मुश्किल हो जायेगा। अब तो तुम्हें लगेगा कि तुम्हारा ख्याल ठीक ही था, कि यह जगत एक दुःख है। यह कोई उत्सव नहीं है, यह एक रुदन है। अब तो तुम्हें पक्का ही हो जायेगा, क्योंकि यह जगत तुम्हें दुःख देगा। और तुम्हें यह ख्याल भी नहीं आयेगा कि यह दुःख तुम्हारा ही बोया हुआ है, जो तुम्हारी ही तरफ वापस लौट रहा है।

अगर कर्म के सिद्धान्त का कोई मौलिक अर्थ है, तो यह है कि तुम जो करते हो, वह तुम पर ही लौट आता है।

तुम जो भी करते हो, वही तुम्हें मिल जाता है।

[तुम्हारा किया हुआ ही तुम्हारी सम्पदा बन जाती है। वही सम्पदा फिर तुम्हें ढोनी पड़ती है। वह सम्पदा दुःख की है, तो तुम समझना कि तुमने जो किया है, वह दुःख लाने वाला था। वह सुख की है तो समझना कि तुमने जो किया है, वह सुख लाने वाला था।]

यह सूत्र महा-सुख के सूत्र ह।

समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए हैं।

...अपने आसपास के निरन्तर बदलने वाले और चलायमान जीवन पर ध्यान दो, क्योंकि यह मानवों के हृदय का ही बना है। और ज्यों-ज्यों तुम उसकी बनावट और उसका आशय समझोगे, त्यों-त्यों क्रमशः जीवन का विशालतर शब्द भी पढ़ और समझ सकोगे।

आठवां सूत्र : समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो।

...समझपूर्वक मानव हृदय मे झांकना सीखो।

...मनुष्यों के हृदय का अध्ययन करो, ताकि तुम जान सको कि वह जगत कैसा है, जिसमें तुम रहते हो और जिसके तुम एक अंश बन जाना चाहते हो।

समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो—हम झांकते ही नहीं, समझ की बात ही दूर है। नासमझी तक से नहीं झांकते। दूसरे के हृदय में झांकने की हम झंझट ही नहीं लेते। सच तो यह है कि हम बिना दूसरे को समझे, दूसरे के सम्बन्ध में धारणाएं बना लेते हैं। हम अपनी धारणाओं से ही चलते हैं। हम दूसरे के हृदय में नहीं झांकते, हम पहले से ही पक्का कर लेते हैं, कौन कैसा है! फिर हम जो पक्का कर लेते है, उसी के अनुकूल हम तत्व भी खोज लेते हैं। हमने हजार तरकीबें बना ली हैं, जिससे हम मानव हृदय में झांकने से बच जाते हैं; वह कष्ट हमें नहीं उठाना पड़ता, वह श्रम नहीं उठाना पड़ता।

आप किसी के पड़ोस में बैठे हैं, आप उससे पूछते हैं कि कौन हैं आप? क्या है धर्म आपका? क्या है जाति? नाम, धाम, पता-ठिकाना? आप यह इसलिए पूछते हैं कि, ताकि उस आदमी में झांकने से बच सकें। अगर वह आदमी कह दे कि मैं ब्राह्मण हूँ और आप भी ब्राह्मण हैं, तो आश्वस्त हुए, अब झांकने की जरूरत नहीं है; आप ब्राह्मण के सम्बन्ध में जानते ही हैं। लेकिन कोई ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण जैसा ब्राह्मण नहीं है। हर आदमी अलग है।

अगर वह आदमी कह दे कि मैं मुसलमान हूँ, तो आप पक्के हो गये, कि अब इससे आगे बातचीत बढ़ाना ठीक नहीं है। आदमी मुसलमान है, और मुसलमान बुरा है हिन्दू के लिए। हिन्दू है तो मुसलमान के लिए बुरा है। बात तय हो गई, अब इस निजी एक व्यक्ति में झांकने की कोई जरूरत नहीं है। हमने लेबल चिपका

दिया है कि वह आदमी मुसलमान है, हमारे भीतर हृदय ने कह दिया है कि आदमी बुरा है। अब आगे सम्बन्ध बढ़ाना ठीक नहीं है। अगर उस आदमी ने कहा कि मैं कम्युनिस्ट हूं, तब हम सरक कर बैठ गये कि अब जरा दूर ही बैठना उचित है।

हम व्यक्तियों में झांकने से बचते हैं, हम लेबल लगा देते हैं।

कोई दो मुसलमान एक से होते हैं? कि कोई दो हिन्दू एक से होते हैं? कि कोई दो कम्युनिस्ट एक से होते हैं?

एक आदमी तो अकेला अपने ही जैसा होता है, दूसरा उसके जैसा कोई होता ही नहीं। लेकिन सुविधा इसमें तो नहीं है। क्योंकि अगर हम एक-एक को अद्वितीय मान लें, तो एक-एक का अध्ययन करना पड़ेगा। इतनी झंझट में कौन पड़े? तो हम उसका धन्धा पूछ लेते हैं, व्यवसाय पूछ लेते हैं, फिर हम निश्चिन्त हो जाते हैं। उससे हम तय कर लेते हैं, ऊपर-ऊपर से दो मिनट में तय हो जाता है कि दूसरा आदमी कौन है।

पूरी जिन्दगी भी अध्ययन करना मुश्किल है, दूसरे आदमी को जानना कि वह क्या है? हम दो मिनट में तय कर लेते है, उस हिसाब से चलने लगते हैं! फिर हम 'इमेज' बना लेते हैं, प्रतिमाएं बना लेते हैं। वे भी तरकीबें हैं हमारी। आपके मन में आपकी पत्नी की एक प्रतिमा है। आपकी पत्नी के मन में आपकी बाबत, अपने पति की बाबत एक प्रतिमा है। बस उसी प्रतिमा से काम चलता है। सीधे आदमी से कोई सम्बन्ध नहीं है! पत्नी जानती है कि पति को क्या करना चाहिये? अगर पति वही करता है तो ठीक है, अगर वही नहीं करता है, तो गलत ह। लेकिन पति क्या है, इसके समझने की उसे कोई चिन्ता नही है। सिद्धान्त पहले से तय है। उन सिद्धान्तों पर, आदमी को हम ढांचे में बिठा देते हैं! ढांचे आदमियों के लिए नहीं हैं, आदमी ढांचों के लिए मालूम पड़ते हैं! तो वह यह नही देखती कि, वह जो पति सामने खड़ा है, वह क्या है? पति की एक धारणा है, उस धारणा से वह जीवित है! अगर वह धारणा के अनुकूल है तो ठीक है, अगर प्रतिकूल है तो ठीक नहीं है!

लेकिन कोई भी आदमी किसी धारणा के अनुकूल, प्रतिकूल नहीं होता। प्रत्येक आदमी अपने ही जैसा होता है। सभी धारणाए ओछी पड़ जाती हैं। सभी धारणाएं रेडीमेड कपड़ों की तरह होती हैं। वह आपके लिए नहीं बनाई गई होती हैं। सामान्य हिसाब से बनाई गई होती हैं, औसत होती हैं। और हर आदमी औसत से भिन्न होता है। कोई आदमी औसत में नहीं होता। जैसे, हो सकता है आप अपने गांव की ऊंचाई नपवा लें, सब आदमी की ऊंचाई नाप ली जाये—छोटे बच्चे भी हैं, बूढ़े भी हैं, लम्बे लोग भी हैं, ठिगने लोग भी हैं। पांच सौ आदमी हैं—पांच सौ की ऊंचाई नापके पांच सौ का भाग दे दिया जाये, तो जो आयेगा, वह औसत ऊंचाई होगी। फिर आप उस औसत ऊंचाई के आदमी को खोजने जायें, गांव में एक

आदमी नहीं मिलेगा, जो उस औसत ऊंचाई का हो। क्योंकि कोई औसत होती ही नहीं। औसत तो एक झूठ है। हर आदमी अपनी ही ऊंचाई का होता है।

औसत जैसी कोई चीज नहीं होती। एवरेज गणित का हिसाब है, जिन्दगी का नहीं है। तो हम सिद्धान्त, प्रतिमाएं निर्मित करके उनमें जीते रहते हैं। सीधा कोई देखता ही नहीं, हृदय में कोई झांकता नहीं! हृदय में क्या हो रहा होगा, इससे किसी को प्रयोजन भी नहीं! वह जरा खतरनाक मामला भी है, क्योंकि हृदय में झांको तो आप उलझन में पड़ सकते हो। इसलिए दूर बाहर खड़े रहना अच्छा है। ज्यादा गहराई में किसी के भी उतरना खतरनाक है। क्योंकि तब दूसरे की गहराई, आपको भी बदलेगी। तब इतनी आसानी से आप निपटारा न कर सकेंगे।

आपका नौकर है। आप उसके हृदय में कैसे झांक सकते हैं? झांकेंगे तो झंझट आयेगी। झांकेंगे तो फिर उसके साथ नौकर जैसा व्यवहार करना मुश्किल हो जायेगा। क्योंकि तब वह एक मानव हृदय है। उसके साथ नौकर जैसा व्यवहार रखना है, तो फिर आपको उसके हृदय में नहीं झांकना चाहिये। कभी आपने ख्याल किया है, कि आप कमरे में बैठे अखबार पढ़ रहे हैं, अगर कोई अजनबी कमरे में आ जाये तो आप उसकी तरफ उठके खड़े हो जायेंगे, बैठने को कहेंगे। कोई परिचित आ जाये, तो आप उसपर ध्यान देंगे। नौकर कमरे में आकर बुहारी लगाके चला जायेगा, आपको पता ही नहीं चलेगा कि कोई आया और गया! जैसे नौकर कोई मनुष्य नहीं है, एक यन्त्र है। काम फंक्शनल है, उसका काम से सम्बध है। उसके हृदय में झांकना खतरनाक है, क्योंकि उसकी मां बीमार है, उसके बच्चे को शिक्षा चाहिये, उसके हृदय में भी वही सब घटित होता है, जो किसी मनुष्य के हृदय में घटित होता है।

अगर आप उसके हृदय में झांकते हैं, आप झंझट में पड़ेंगे। आपको कुछ करना पड़ेगा। तब आप भी सोच में पड़ जायेंगे, पचास रुपये वेतन इस आदमी को हम देते हैं, क्या होता होगा? इसकी मां है बूढ़ी, इसका बच्चा है, इसकी पत्नी है; घर है; पचास रुपये में कैसे जीता होगा? अगर इसके हृदय में झांकेंगे तो आपको किसी न किसी दिन इस आदमी की जगह अपने को रखके सोचना पड़ेगा कि अगर मुझको पचास रुपये मिले, तो क्या होगा? इससे उचित है कि भीतर हृदय में न उतरा जाये, दूर रहा जाये। इतना ही समझा जाये कि यह आदमी काम करता है, पचास रुपये काम के दिये जाते हैं। इससे ज्यादा इस आदमी के सम्बन्ध में समझदारी खतरनाक है। इसलिए हमने दीवालें खड़ी कर लीं हैं। हम किसी के हृदय में नहीं झांकते, हम दूर-दूर रहते हैं। हम सब एक दूसरे से अछूत की तरह रहते हैं।

यह सूत्र कहता है : सम्मानपूर्वक मानव के हृदय में झांकना सीखो।

क्योंकि जब तक तुम मानव के हृदय में झांकना न सीखोगे, तब तक तुम पिघलोगे

नहीं, गलोगे भी नहीं, तब तक तुम मिटोगे भी नहीं, तब तक तुम्हारा अहंकार से छुटकारा बहुत मुश्किल है। तुम दूसरे के हृदय में बढ़ो, तो धीरे-धीरे तुम्हारा अहंकार अपने आप गल जायेगा। क्योंकि तुम पाओगे कि तुम्हारे जैसा ही हृदय दूसरों में भी धड़कता है। तब तुम पाओगे कि ठीक तुम ही, दूसरों के भीतर भी बैठे हुए हो। तब तुम्हें अपना जो दंभ है, वह व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा। तब तुम्हें यह भी दिखाई पड़ना साफ हो जायेगा, यह भी दिखाई पड़ने लगेगा कि व्यक्ति-व्यक्ति के जो फासले हैं, बहुत ऊपरी हैं। भीतर शायद एक ही महा-हृदय धड़क रहा है। अगर हृदय में झांकना तुम सीख लो तो हृदय की जो शुद्धतम गहराई है, वह तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू हो जायेगी। तब तुम पाओगे कि एक ही हृदय धड़क रहा है बहुत हृदयों में। फेफड़े बहुत होंगे, हृदय शायद एक ही है। और यह प्रतीति तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाने में बहुत बड़ा कदम सिद्ध होगी।

...मनुष्यों के हृदयों का अध्ययन करो, ताकि तुम जान सको कि यह जगत कैसा है, जिसमें तुम रहते हो और जिसके तुम एक अंश बन जाना चाहते हो।

...बुद्धि निष्पक्ष होती है। कोई न तुम्हारा शत्रु है, और न कोई मित्र। सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं। तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है। जिसे तुम्हें हल करना है, चाहे इस हल करने में युगों का समय लग जाये। क्योंकि मानव को समझना तो है ही।

...तुम्हारा मित्र तुम्हारा ही एक अंग बन जाता है, तुम्हारा ही एक विस्तृत रूप हो जाता है, जिसे समझना कठिन होता है।

मनुष्यों के हृदय का अध्ययन अगर करना है, तो निष्पक्ष होना जरूरी है, नहीं तो अध्ययन न हो सकेगा। अगर तुम्हारे पक्ष पूर्व से ही तय हैं, तो तुम जो भी खोज लोगे, वह तुम्हारी ही मान्यता का पुनः अविष्कार होगा, वह तुम्हारी ही धारणा की पुनरुक्ति होगी। तुम अपने को ही ठीक सिद्ध कर लोगे। हम इसी तरह जीते हैं। हमारा पक्ष तो पहले से तय होता है, फिर हम सत्य की खोज करने निकलते हैं। तो यह सत्य की खोज तो पहले से ही झूठ हो गई। अगर तुम्हारा पक्ष पहले से ही तय है, तो बात ही व्यर्थ हो गई।

राजस्थान विश्वविद्यालय में एक अध्यापक हैं, वे मृत-आत्माओं और पुनर्जीवन की खोज करते हैं। कभी कोई उन्हें मुझसे मिलने लिवा लाया था, तो उन्होंने कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म होता है।

तो मैंने उनको कहा कि तुमने मुझे आते से ही मुश्किल में डाल दिया, क्योंकि तुम कहते हो कि वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म होता है! इसका एक मतलब तो यह हुआ कि तुम तो मान ही चुके हो कि पुनर्जन्म होता है, और अब तुम

वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहते हो कि पुनर्जन्म होता है। तुम्हारा पक्ष तो पहले से तय है। उचित हो, अगर तुम सच में ही वैज्ञानिक बुद्धि के हो, तो तुम यह कहो कि मैं जानना चाहता हूँ वैज्ञानिक रूप से कि पुनर्जन्म होता है, या नहीं होता है? तुम तो कहते हो कि मैं सिद्ध करना चाहता हूँ! तो इसका अर्थ हुआ कि यह तो तय ही है तुम्हारे लिए कि पुनर्जन्म होता है! अब रह गई बात वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करने की, तो वह तुम करके दिखा दोगे, क्योंकि तुम वही घटनाएं खोज लोगे, जो सिद्ध करती हैं; और वे घटनायें छोड़ दोगे, जो सिद्ध नहीं करतीं। तुम मतलब की बातें छांट लोगे, और गैर-मतलब की छोड़ दोगे। तब तो आदमी कुछ भी सिद्ध कर सकता है।

एक आदमी ने किताब लिखी है, जिसमें सिद्ध किया है कि १३ तारीख अपशकुन है। और वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया है कि १३ तारीख अपशकुन है। उसने क्या किया है? उसने १३ तारीख को दुनिया भर की अदालतों में जितने मुकदमे चलते थे, वे सब इकट्ठे कर लिये हैं। १३ तारीख को कितने लोगों को फांसी लगती है, वह इकट्ठी कर ली है। १३ तारीख को कितने एक्सीडेण्ट होते हैं, वे इकट्ठे कर लिये है। १३ तारीख को कितने लोग मरते हैं, वह इकट्ठा कर लिया है। १३ तारीख को कितने लोग पैदा होते हैं, उनमें से कितने लोग बीमार रहते हैं, वह इकट्ठा कर लिया है। उसने सब इकट्ठा कर लिया उपद्रव। उसने एक भारी किताब लिखी है। अगर आप भी किताब पढ़ेंगे, तो आप भी डर जायेंगे, कि १३ तारीख से बचाना चाहिये।

लेकिन यह १४ तारीख के बाबत भी इतने ही तथ्य उपलब्ध हैं। और १५ के बाबत भी इतने ही उपलब्ध हैं। उसने उसकी कोई फिक्र नहीं की, बस १३ के उपलब्ध कर लिये! और १३ को दुर्घटनाएं ही नहीं होतीं, सुघटनाएं भी होती हैं, वह उसने छोड़ दीं! १३ को असफलताएं ही नहीं होतीं, सफलताएं भी होती हैं। और १३ को मृत्यु ही नहीं होती, जन्म भी होते हैं। १३ को फांसी ही नहीं लगती, १३ को मुकदमे खारिज भी होते हैं और फांसियां छूटती भी हैं। लेकिन वह उसने छोड़ ही दी हैं! और यही सब १४ को भी होता है। लेकिन किताब पढ़के तो आप भी थोड़े घबड़ा जायेंगे, क्योंकि उसने इतने तथ्य इकट्ठे किये हैं कि १३वीं मंजिल से कितने लोग गिरके मर जाते हैं। १२ वीं से भी मरते हैं। कोई मरने वाला १३ और १४, १२ को खोजने जाता है?

उसकी किताब का यह परिणाम हुआ कि अमेरिका में होटलों में १३ नम्बर की मंजिल समाप्त कर दी। अमेरिका की बड़ी होटलों में १२ नम्बर की मंजिल मिलेगी, फिर सीधी १४ नम्बर की मिलेगी! क्योंकि १३ वीं पर कोई रुकने को राजी नहीं होता, कि कौन झंझट ले, जब १३ में इतना उपद्रव हो रहा है! १३ का आंकड़ा ही खराब है। मकान लोग बनाते हैं तो १३ वें नम्बर की मंजिल को छोड़ देते हैं। नम्बर नहीं

रखते १३ का, नहीं तो कोई उसको खरीदता ही नहीं, वह खाली रह जाता है।

यह विक्षिप्तता पैदा हो सकती है, अगर पक्ष पहले से तय हो।

यह सूत्र कहता है कि अगर सच में तुम मनुष्यों के हृदय का अध्ययन करना चाहते हो, तो तुम निष्पक्ष रहना।

और बुद्धि का लक्षण निष्पक्षता है।

अगर तुम बुद्धिमान हो, तो निष्पक्ष होओगे। अगर तुम पक्षपातपूर्ण हो तो तुममें बुद्धि नहीं है। बुद्धि का अर्थ ही है कि जानने के पहले तय नहीं करेंगे। जब तक पूर्णता से कोई बात सिद्ध न हो जाये, तब तक हम कोई पक्ष न लेंगे, तब तक हम बीच में ही खड़े रहेंगे। हम उस पार या इस पार कोई निर्णय न करेंगे।

बुद्धिमान होना कठिन है, क्योंकि उसके लिए प्रतीक्षा चाहिये, धैर्य चाहिये। बुद्धि-हीन होना बहुत आसान है, उसमें दिक्कत ही नहीं है। जल्दी से कहीं भी सम्मिलित हो जाता है कोई आदमी। अगर तुम निष्पक्ष हो तो तुम्हें ख्याल करना पड़ेगा कि न कोई तुम्हारा शत्रु है और न कोई मित्र।

सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं।

यह सूत्र बड़ा गजब का है : सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं।

तुम्हारा मित्र भी तुम्हें कुछ सिखा रहा है, तुम्हारा शत्रु भी तुम्हें कुछ सिखा रहा है। और कई बार मित्र से भी ज्यादा शत्रु सिखाता है। बहुत बार शत्रु से तुम इतना सीख सकते हो, जिसका हिसाब नहीं। लेकिन अगर तुम्हारे मन में यह ख्याल हो कि शत्रु भी शिक्षक है और मित्र भी, तब तुम शत्रु के हृदय में भी उतर सकते हो; तब शत्रु का हृदय भी तुम्हारे लिए बन्द नही होगा। तब तुम्हारे लिये जगत में कोई चीज बन्द नहीं है, सभी चीजें खुली हैं, क्योंकि तुम खुले हो।

...तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है, जिसे तुम्हें हल करना है।

आखिर कोई तुम्हारा शत्रु क्यों है?

हम तो आमतौर से तय कर लेते हैं, क्योंकि वह आदमी बुरा है, इसलिए शत्रु है। आप अच्छे आदमी हैं, यह आदमी बुरा है, इसलिए आपका शत्रु है। और यही वह भी मानता है कि वह अच्छा आदमी है और आप बुरे आदमी हैं, इसलिए उसके शत्रु ह। नहीं, अपने को अच्छा मानके, दूसरे को बुरा मानके आप हल नहीं कर रहे हैं कुछ भी। समझ भी नहीं पड़ रही है आपकी। आप वहीं खड़े हैं, जहां आप सदा से खड़े थे। वह शत्रु है आपका, तो समझने की कोशिश करें कि क्यों शत्रु है? क्या बात है कि वह आपका शत्रु है?

उसकी शत्रुता में आपका होना भी सम्मिलित है। आप जिस ढंग के हैं, वह भी सम्मिलित है। वह जिस ढंग का है, वह भी सम्मिलित है। यह एक रहस्य है।

यह सूत्र कहता है : तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है, एक मिस्ट्री, जिसे तुम्हें हल करना है।

इसे तुम हल करो। और यह तभी हल हो सकेगा, जब तुम निष्पक्ष होओ।

जीसस ने मरते वक्त शूली पर कहा है, क्षमा कर देना, इन सबको जो मुझे शूली पर चढ़ा रहे हैं, क्योंकि इन्हें पता ही नहीं कि ये क्या कर रहे हैं? हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना! यह है, शत्रु के हृदय में झांकना। जीसस मर रहे हैं, शूली पर चढ़े जा रहे हैं, फांसी लगने के करीब है, और उनसे कहा जाता है कि कोई प्रार्थना आखिरी तुम्हें परमात्मा से करनी हो तो कर लो, क्योंकि आखिरी क्षण आ गया है। तो क्या प्रार्थना जीसस ने की? गजब की प्रार्थना, मनुष्य जाति के इतिहास में कभी किसी ने इतनी महत्त्वपूर्ण प्रार्थना नहीं की। जीसस ने प्रार्थना की कि हे पिता, एक ही बात मुझे तुमसे कहनी है, कि इन सबको माफ कर देना, जो मुझे शूली लगा रहे हैं। क्योंकि इन्हें पता ही नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। ये अज्ञान-वश कर रहे हैं, ये क्षमा योग्य हैं। ये भूल में कर रहे हैं। ये सोचते हैं कि मैं इनका शत्रु हूँ, इसलिए कर रहे हैं। ये सोचते हैं कि मैं बुरा आदमी हूँ, इसलिए कर रहे हैं। ये सोचते हैं कि मैं नुकसान पहुंचा रहा हूँ, इसलिए कर रहे हैं। बाकी ये नासमझ हैं, और इनको मेरी फांसी के लिए दण्ड मत देना।

यह शत्रु के हृदय में झांकना है। यह निष्पक्ष भाव है। नहीं तो जो आपको शूली लगा रहा है, उसके लिए आप ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं? आप तो प्रार्थना करते कि इनको जड़-मूल से ही नष्ट कर देना, नरक में डाल देना।

और ऐसा नहीं कि आप ही ऐसा करते हैं, ऐसे ऋषि तक हो गये है, उनको हम ऋषि भी कहते है, जो अभिशाप दे देते हैं! अगर दुर्वासा होते जीसस की जगह, तो आप सोच सकते हैं कि क्या होता? थोड़ी कल्पना करिये—सारा जगत नरक में पड़ा होता। हम ऐसे व्यक्तियों को भी ऋषि कह देते हैं! उसका जिम्मा ऋषियों पर नहीं है, हम पर है। हमें समझ में नहीं आ रहा है कि हम क्या कर रहे हैं? हम कहते हैं कि दुर्वासा ऋषि ने अभिशाप दे दिया। ऋषि और अभिशाप दे सकता है! तो आपमें और ऋषि में फर्क क्या है? और अगर ऋषि अभिशाप दे सकता है, तो आप क्यों कंजूसी कर रहे है, अभिशाप दें और ऋषि हो जायें।

लेकिन जो दुर्वासा को ऋषि कह रहे हैं, वे अपने सम्बन्ध में खबर दे रहे हैं, दुर्वासा के सम्बन्ध में नहीं। यह अपने सम्बन्ध में खबर दे रहे है, इनको दुर्वासा तक में ऋषि दिख जाता है! उसका अर्थ है, इनको ख्याल ही नहीं है कि विध्वंस, घृणा और हिंसा, इनसे ऋषित्व का क्या सम्बन्ध हो सकता है?

निष्पक्ष जिसका मन हो, शत्रु भी उसे पहेली है। चाहे इसे हल करने में युगों का

समय लग जाये, तो भी कोई हर्ज नहीं। जल्दी मत करना, निष्पक्ष रहना। जल्दी के कारण पक्ष मत बनाना, चाहे कितना ही समय लग जाये; मानव को समझना तो है ही।

...तुम्हारा मित्र तुम्हारा एक अंग बन जाता है, तुम्हारा ही एक विस्तृत रूप हो जाता है, जिसे समझना कठिन हो जाता है।

शत्रु को समझना कठिन है, क्योंकि वह एक पहेली है। मित्र को भी समझना कठिन है, क्योंकि वह भी एक पहेली है!

शत्रु को समझना कठिन है, क्योंकि वह बहुत दूर खड़ा हो जाता है। मित्र को समझना कठिन है, क्योंकि वह बहुत पास आ जाता है।

आप अपने मित्रों को भी नहीं समझते। आप फिक्र ही नहीं करते कि किसी को समझना है, कि मानव हृदय एक किताब है, जिसे खोलना है और पढ़ना है; कि मानव हृदय एक सितार है, जिसे सीखना है और बजाना है; कि मानव हृदय एक बीज है, जिसे भूमि देनी है, प्रकाश और पानी देना है और अंकुरित करना है।

नहीं, मानव हृदय के सम्बन्ध मे हम कुछ सोचते ही नहीं।

ये दो सूत्र ख्याल रखें : समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है, और समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो।

ये तुम्हें परम हृदय, परमात्मा के हृदय तक ले चलने वाली सीढ़ियां बन सकती हैं।

अन्तरात्मा का सम्मान

प्रवचन : १४, अप्रैल १३, १९७२, सुबह
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउण्ट आबू

९. अपनी अन्तरात्मा का पूर्णरूप से सम्मान करो।

क्योंकि तुम्हारे हृदय के द्वारा वह प्रकाश प्राप्त होता है, जो जीवन को आलोकि कर सकता है और उसे तुम्हारी आंखों के समक्ष स्पष्ट कर सकता है।

...समझने में कठिन केवल एक ही वस्तु है—स्वयं तुम्हारा अपना हृदय। जब त देह के बंधन ढीले नहीं होते, तब तक आत्मा का गहन रहस्य खुलना आरम्भ नह होता है।

...जब तक तुम उससे अलग एक ओर खड़े नहीं होते, तब तक वह अपने क तुम पर प्रकट नहीं करेगा। तभी तुम उसे समझ सकोगे और उसका पथ-प्रदर्शन क सकोगे, उससे पहले नहीं। तभी तुम उसकी समस्त शक्तियों का उपयोग कर सकों और उन्हें किसी योग्य सेवा में लगा सकोगे, उससे पहले नहीं।

टिप्पणी : जब तक तुम्हें स्वयं कुछ निश्चय नहीं हो जाता, तुम्हारे लिए दूसर की सहायता करना असंभव है। जब तुमको आरंभ के पन्द्रह नियमों का ज्ञान हो चुकेग और तुम अपनी शक्तियों को विकसित और अपनी इन्द्रियों को उन्मुक्त करके ज्ञान-मंदि में प्रविष्ट हो जाओगे, तब तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम्हारे भीतर एक स्रोत है, जहां वाणी मुखरित होगी।

...ये टिप्पणियां केवल उनके लिए लिखी गयी हैं, जिनको मैं अपनी शांति देता हूं और जो लोग, जो कुछ मैंने लिखा है, उसे बाह्य अर्थ के अतिरिक्त उसके भीतर अर्थ को भी साफ समझ सकते हैं।

हजारों-हजारों वर्ष की धारणाओं ने तुम्हारे मनों को इस भांति विकृत कर दिया है, कि जो भी तुम देखते हो, वह निसर्ग का सत्य नहीं होता, तुम्हारी अपनी धारणाओं से देखा गया विकृत रूप होता है। फिर उससे तुम जो भी निर्णय लेते हो, वे भ्रान्ति में ले जाते हैं।

और जीवन को बदला जा सकता है निसर्ग की सहायता से, निसर्ग के विपरीत नहीं। क्योंकि तुम निसर्ग से ही निर्मित होते हो, उससे विपरीत बहने का कोई भी उपाय नहीं है।

तुम जिस प्रकृति में खड़े हो, उसको ही संस्कारित किया जा सकता है। उस प्रकृति के नियमों के ही माध्यम से तुम उसके पार भी जा सकते हो। सीढ़ी के सहारे ही आदमी पार भी चला जाता है। रास्ते के सहारे ही आदमी मंजिल तक पहुंच जाता है, रास्ते को छोड़ देता है। लेकिन रास्ते के विपरीत चलके कोई मंजिल तक नहीं पहुंचता।

लेकिन तर्क में भ्रान्ति हो सकती है।

अगर मैं आपसे कहूं कि यह रास्ता मंजिल तक पहुंचा देगा, लेकिन ध्यान रखना, मंजिल पर जब पहुंचोगे तो इस रास्ते को छोड़ देना होगा। क्योंकि अगर तुमने रास्ते को पकड़ लिया तो मंजिल को नहीं पहुंच सकोगे। तो इसका अर्थ यह भी हो सकता है, तुम यह भी सोच सकते हो, जिस रास्ते को अन्त में छोड़ ही देना है, उसे पहले ही क्यों न छोड़ दिया जाये। लेकिन तब तुम मंजिल तक कभी न पहुंच सकोगे।

रास्ते को पकड़ना भी होगा और छोड़ना भी होगा।

प्रारम्भ में पकड़ना होगा, अन्त में छोड़ना होगा।

लेकिन इसका उल्टा अर्थ दो तरह से हो सकता है। एक तो यह है कि रास्ते को पकड़ें ही क्यों, जब उसे छोड़ना है। यह तर्कयुक्त लगता है, कि जो चीज छोड़ ही

देनी है, उसे पकड़ना ही क्यों? लेकिन जिसे तुमने पकड़ा ही नहीं है, उसे तुम छोड़ न पाओगे। और बिना छोड़े तुम मंजिल तक न पहुंचोगे। इसका दूसरा उपद्रव भी सम्भव है और वह कि जिस रास्ते को पकड़ा है, उसको छोड़ेंगे नहीं। जब पकड़ ही लिया है तो फिर छोड़ना ही क्या? तब भी तुम मंजिल तक न पहुंच पाओगे। रास्ता मंजिल तक ले जाता है, मंजिल में नही ले जाता। और जब तुम रास्ते को छोड़ देते हो, तो मंजिल में प्रवेश होता है।

सीढ़ियां छत तक ले जाती हैं, छत में नहीं ले जाती।

अगर सीढ़ियों पर ही खड़े रहो तो तुम छत के पास पहुंच गये, लेकिन छत पर नहीं पहुचे। लेकिन सीढ़ियों को अगर तुम पहले ही छोड़ दो, तो तुम छत के पास भी न पहुंच सकोगे। सीढ़ियां छोड़नी पड़ती हैं, इसका यह अर्थ नही कि तुम सीढ़ियों के दुश्मन हो जाओ। सीढ़ियां पकड़नी पड़ती हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि सीढ़ियों के तुम प्रेमी हो जाओ। सीढ़ियों का उपयोग करना है। निसर्ग सीढ़ी है, वहां तुम खड़े हो। इस निसर्ग के लिये यह सूत्र है।

पहला सूत्र था : जीवन का सम्मान करो। वह निसर्ग का सम्मान है। और उसे समझो, अगर पार जाना है। पार जाना है जरूर। लेकिन निसर्ग मे ही रहकर तुम परम आनन्द को उपलब्ध न हो सकोगे। निसर्ग में सुख और दुःख दोनों होंगे।

निसर्ग द्वन्द्व है, वह द्वन्द्व पर ही खड़ा है।

वहां सुख भी मिल सकता है, दुःख भी मिलेगा। और जिस अनुपात में तुम सुख चाहोगे, उसी अनुपात मे दुःख मिलेगा। और जिस अनुपात मे तुम सुख पाने में समर्थ हो जाओगे, उसी अनुपात में तुम दुःख पाने में भी समर्थ हो जाओगे। निसर्ग तो द्वन्द्व है। और द्वन्द्व के पलड़े सदा समान बने रहते है, समतुल बने रहते हैं। नहीं तो निसर्ग विकृत हो जाये, अस्त-व्यस्त हो जाये।

तो तुम एक तरफ जो कमाते हो, उससे विपरीत भी तुम कमा रहे हो। अगर तुम यश चाहते हो तो अपयश तुम्हारे साथ ही बढ़ रहा है। वह साथ ही चलेगा। अगर तुम स्वास्थ्य चाहते हो, तो बीमारी तुम्हारे साथ ही खड़ी है। अगर तुम जीवन चाहते हो तो तुम्हें मृत्यु को भी स्वीकार करना होगा। निसर्ग में रहके दुःख-सुख दोनों मिलेंगे। वह द्वन्द्व है। पार तो जाना ही है, क्योंकि द्वन्द्व ही तो उपद्रव है। और उस घड़ी को तो उपलब्ध करना ही है, जहां द्वन्द्व खो जाये।

जहां सुख-दुःख दोनों खो जाते हैं, उस घड़ी को हमने आनन्द कहा है, उस घड़ी को हमने शान्ति कहा है, उस घड़ी को हमने मुक्ति कहा है।

मुक्ति का अर्थ है : द्वन्द्व के बाहर।

जहां दो नहीं दबाते, जहां दोनों तरफ से विपरीत तुम्हें नहीं कसते। जहां विपरीत

तुम्हें खींचते नहीं। जहां किनारे खो जाते हैं और नदी सागर में लीन होती है। किनारों के सहारे ही नदी सागर तक आती है। इसलिए किनारे मित्र हैं और सागर तक उनका उपयोग करना है। लेकिन किनारे इतने मित्र नहीं हैं कि सागर में गिरने से तुम रुक जाओ और किनारों को पकड़के ठहर जाओ।

निसर्ग का सम्मान जीवन का सम्मान है, और जीवन के नियमों का समझपूर्वक उपयोग।

एक मित्र मेरे पास आये, युवा हैं। स्वभावतः स्त्रियों में रस होगा। लेकिन हजारों साल की मन में धारणा है। बचपन से साधु-सत्संग में पड़ गये होंगे, तो ख्याल भी आया कि यह पाप है। जितना ख्याल आया कि स्त्री के प्रति रस लेना पाप है, उतना ज्यादा रस बढ़ता गया। स्त्रियों से भागने भी लगे। लेकिन जितना भागने लगे, उतना उद्दाम वेग होने लगा। भीतर दबाने लगे वासना को, तो वासना और भी नये-नये रूपों में खड़ी होने लगी। दिन में विचार; रात में स्वप्न; सब वासना से भर गये। फिर किसी महात्मा के पास गये, तो महात्मा ने कहा कि स्त्री में मां को देखो। तो बड़ी मुश्किल थी, कैसे स्त्री में मां को देखें। और वह जो प्रबल वेग था वासना का, वह धक्के मार रहा है। तो महात्मा ने सहायता के लिए उनको कहा कि फिर तुम ऐसा करो, कि स्त्री में मां को नहीं देख सकते, तो तुम देवी की पूजा करो। देवी में मां को देखो। और धीरे-धीरे जब तुम्हारा देवी में भाव दृढ़ हो जायेगा, तो तुम देवी को ही सभी स्त्रियों में भी देख सकोगे।

महात्मा का प्रयोजन ठीक ही था। सहायता की ही इच्छा की थी। लेकिन बिना समझके सहायता भी नहीं की जा सकती। और जीवन जटिल है।

और जीवन के नियमों को समझे बिना, आप शुभ इच्छा से भी कुछ सहायता करें, तो भी अशुभ ही फलित होगा।

परिणाम आप सोच भी नहीं सकते। परिणाम यह हुआ कि उस आदमी ने देवी की पूजा शुरू कर दी, और देवी का चित्र अपने साथ रखने लगा। जो परिणाम न महात्मा ने सोचा था और न महात्मा कभी सोच पाते हैं, वह हुआ। परिणाम यह हुआ कि अब देवी के प्रति ही वासना खड़ी हो गई, और रात स्वप्न में देवी से ही काम-सम्बन्ध स्थापित होने लगा। तो बेचारा घबड़ा गया। जो काम को ही पाप समझता था, वह देवी के साथ काम-वासना का भाव आ जाये, तो भयंकर पाप से भर गया कि अब तो मैं मरा, अब तो मेरे बचाव का उपाय ही न रहा। उस व्यक्ति ने मुझे आके कहा कि मैं ऐसा पाप कर रहा हूँ कि जिसका कोई हिसाब ही नहीं। जब देवी का ख्याल करता हूँ तो भी काम-वासना ही उठती है।

तो मैंने उसको कहा कि जिससे तुमने सहायता ली है, उनके पास समझ नहीं है। यही होने वाला था। काम-वासना को समझके उससे पार हुआ जा सकता है। वह

तो नासमझी का काम है कि स्त्रियों को मां समझ लो। समझ लेने से क्या होगा? कि देवी के प्रति आरोपित कर लो अपने को? तो तुम्हारे भीतर जो है, वही तो आरोपित होगा। जो तुम्हारे भीतर नहीं है, वह आरोपित कहां से होगा। देवी थोड़े ही सवाल है, सवाल तो तुम हो। भीतर तो काम-वासना धक्के मार रही है, और काम-वासना इतनी प्रबल है कि तुम जहां भी जाओगे, वह वहीं आरोपित हो जायेगी। तो एक पाप से छूटने को, और बड़ा पाप हो गया। और अब वह व्यक्ति इतना दीन और दुर्बल हो गया, क्योंकि उसे लग रहा है कि देवी नाराज हो जायेगी। मैंने कहा, कोई देवी नाराज नहीं हो जायेगी। देवी तुम्हारे महात्माओं से ज्यादा समझदार है। तुम फिकर न करो, कोई नाराज नहीं हो जायेगा। लेकिन अब इस आदमी की पीड़ा आप समझ सकते हैं कि यह आदमी नरक में पड़ गया है। और कोई भी महात्मा को जिम्मेदार नहीं ठहरायेगा कि उसने इसको नरक में डाला है। उसने ही डाला है। और जिस महात्मा ने इसको इस नर्क में डाला है, वह खुद भी इसी तरह के नर्क में होगा, नहीं तो इस तरह की समझ, इस तरह की सहायता, जो बिलकुल नासमझी से भरी है, और अज्ञान से भरी है, कभी भी पैदा नहीं हो सकती।

अब मैं इस व्यक्ति को क्या कहूं?

मैं इसको नहीं कहूंगा कि तू ऐसा कर। मैं इसको कहूंगा कि बजाय इस तरह की विकृतियों में पड़ने के, तू किसी स्त्री से प्रेम कर, और घबरा मत। और अपने प्रेम स्वाभाविक कर। यह देवी वाला प्रेम घातक है, क्योंकि अस्वाभाविक है। और कल्पना-जन्य है। तू वास्तविक स्त्री के प्रेम में ही उतर और घबरा मत। और प्रेम में ही उतर के प्रेम को समझ कि प्रेम क्या है? तो तेरा सारा प्रेम तो पहले प्राकृतिक होना जरूरी है विकृति से। क्योंकि प्रकृति के सहारे फिर पार जाया जा सकता है। फिर तू प्रेम को ध्यान बना। और फिर प्रेम को तू जितना शुद्ध कर सके, उतना शुद्ध कर। और जितना प्रेम को ध्यानपूर्ण कर सके, उतना ध्यानपूर्ण कर। और प्रेम तेरे जीवन में पाप की तरह न रहे, पुण्य की तरह हो जाये, उस भाव से जी।

और अपराध मत समझ! क्योंकि जो वासना है, वह भी प्रभु-प्रदत्त है। वह भी परमात्मा ने तुझे दी है। और कोई महात्मा, जो परमात्मा ने दिया है, उसे छीन नहीं सकता। कोई उपाय नहीं है। जो तुझे प्रकृति से मिला है, उसका तू सम्यक उपयोग कर, और उससे पार उठ। लेकिन पार दुश्मन की तरह तू न उठ सकेगा। ये दुश्मनी के ही तो इस तरह के परिणाम होंगे। दुश्मनी कहां तक पहुच जाती है, इसका हिसाब लगाना कठिन है।

विक्टोरिया के जमाने में इंग्लैंड में, घरों में लोग कुर्सियों की टांग पर भी कपड़ा बांधते थे, कि नंगी टांग से काम-वासना पैदा होती है। कुर्सी की टांग! अगर किसी

घर में आप जाते और आपको नंगी कुर्सी मिल जाती, तो आप समझते कि यह आदमी अशोभन काम कर रहा है, कुर्सी की टांग नंगी है! विक्टोरिया बहुत सख्त थी इस मामले में।

यह अनीति का काम था। तो घर-घर में लोग कुर्सी रखते थे और उसमें टांग पर कपड़ा रखते थे। अब टांग पर कपड़ा डाला हो तो ज्यादा काम-वासना का ख्याल आता है—यह क्या बेवकूफी है!

लेकिन ऐसा कोई विक्टोरिया के जमाने में था ऐसा नहीं, ऐसे लोग सब तरफ मौजूद हैं। अभी भी इंग्लैण्ड में स्त्रियों का एक समाज है, वे स्त्रियां जरूर ही प्रेम से वंचित रही होंगी, और उनके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव न होगा। उनका एक समाज है, वह उसका प्रचार करता है कि सड़क पर जानवर भी कपड़े में निकाले जाने चाहिये! कुत्ते, घोड़े, बैल, ये नंगे नहीं होने चाहिये, क्योंकि नंगे होने से काम-वासना पैदा होती है! अगर आपको बैल को देखके यह ख्याल भी आता है कि बैल नंगा है, तो इसका मतलब है कि आप रुग्ण हैं। आपके भीतर कोई रोग है, आप स्वस्थ नहीं हैं, नहीं तो यह कोई सवाल नहीं है। अगर आप स्वस्थ होते तो, मनुष्य को नग्न देखके भी आपको कोई तकलीफ नहीं होती। अगर आप अस्वस्थ हों तो कुर्सी को भी नग्न देखके आपको तकलीफ हो सकती है। यह आपके अस्वस्थ होने का प्रतीक है। लेकिन आप जानवरों को भी कानून बनाके कपड़े पहना सकते हैं, कुर्सियों को भी पहना सकते हैं, लेकिन यह जो मन काम में लगा हुआ है, यह मन निसर्ग के प्रतिकूल जा रहा है। और यह मन और भी जाल में पड़ जायेगा। और यह हिम्मत खो रहा है, और अपराधी बन जायेगा।

एक युग था इस मुल्क में कि हमने कोणार्क, खजुराहो, भुवनेश्वर और पुरी के मन्दिर बनाये। बड़े हिम्मतवर लोग रहे होंगे। शानदार लोग थे, प्रकृति को पूरा स्वीकार किया था। मन्दिर के बाहर की दीवाल पर नग्न चित्र खोदे थे, मैथुन-चित्र खोदे थे। सम्भोग की मूर्तियां बनाई थीं, मन्दिर के द्वार पर, मन्दिर की दीवाल पर। बहुत हिम्मतवर लोग रहे होंगे, बड़े शानदार लोग रहे होंगे। जीवन की ऐसी स्वीकृति थी कि मन्दिर भी प्रकृति के ही भीतर था। मन्दिर की बाहर की दीवाल पर प्रकृति थी, और मन्दिर की भीतर की दीवाल पर परमात्मा था।

और ख्याल यह था इन खजुराहो और कोणार्क के मन्दिर बनाने वालों का, कि जब तक तुम्हारा बाहर की दीवालों में रस है, तुम भीतर प्रवेश न कर पाओगे। तो अपने रस को बाहर की दीवाल पर पूरा कर लो, इन मैथुन-चित्रों पर ध्यान कर लो। और जिस दिन तुम्हें बाहर की दीवाल में कुछ भी रस न रह जाये, और तुम बाहर की दीवाल से ऐसे गुजर जाओ, जैसे वहां कोई चित्र नहीं है, उसी दिन तुम समझना

कि अब भीतर प्रवेश के अधिकारी बने, तो तुम भीतर आ जाना। लेकिन मन्दिर की बाहर की दीवाल से बचके, तुम भीतर न आ सकोगे। अगर तुम्हारा रस मन्दिर की बाहर की दीवाल पर है, तो तुम भीतर भी आ जाओगे, तो भी तुम्हारे मन में बाहर की दीवाल ही चलती रहेगी। उसको दबाने की जरूरत नहीं है।

मन्दिर के बाहर की दीवाल पर मैथुन-चित्र खोदना, बड़े अद्‌भुत मनोवैज्ञानिकों का काम रहा होगा, उन्होंने समझा होगा। लेकिन फिर एक कमजोरी इस मुल्क में आई। एक नपुंसकता का लम्बा युग आया। मुल्क गुलाम हुआ, और इसने सारी हिम्मत खो दी। तो आखिर में परिणाम यह हुआ कि महात्मा गान्धी और पुरुषोत्तमदास टण्डन ने एक सुझाव रखा कि खजुराहो, और पुरी, और कोणार्क के मन्दिरों को मिट्टी से ढांकके दबा दिया जाये, चूंकि इनको देखना खतरनाक है। एक बहादुर लोग वे थे, जिन्होंने ये मूर्तियां खोदीं, उन्होंने प्रकृति को स्वीकार किया। ये एक कमजोर लोग हैं, कमजोरी का लक्षण यह है कि इनको थोप दिया जाये! खजुराहो की मूर्तियां थोपी जा सकती हैं, मिटाई जा सकती हैं, लेकिन आदमी की प्रकृति को कैसे मिटाईयेगा ?

आदमी की प्रकृति नहीं मिटाई जा सकती। आदमी की प्रकृति का उपयोग किया जा सकता है—विनाश नहीं किया जा सकता।

स्मरण रहे एक नियम : कि जगत में कोई भी शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती—असम्भव है—सिर्फ रूपान्तरण हो सकता है।

निसर्ग रूपान्तरित हो सकता है और ब्रह्म में लीन हो सकता है—लेकिन निसर्ग नष्ट नहीं हो सकता।

तो जीवन के सम्मान में यह महा-सूत्र ख्याल में रखें कि जीवन ने जो भी दिया है बाहर और भीतर, उसका सम्मान करना। लेकिन ध्यान रहे, बाहर भी आप तभी सम्मान कर सकते हैं, जब भीतर सम्मान हो। बाहर आप उसी चीज का अपमान करते हैं, जिसका भीतर अपमान है। अगर आपके मन में भीतर किसी चीज के प्रति अपमान है तो बाहर भी अपमान होगा। और अगर भीतर सम्मान है तो बाहर भी सम्मान होगा।

आप अपने निसर्ग की खोज करना। अपने भीतर की अन्तरात्मा की खोज करना, स्वभाव की खोज करना।

ध्यान रखना दो शब्द : स्वभाव और स्वरूप।

स्वभाव प्रकृति है और स्वरूप ब्रह्म है।

जब तक आप स्वभाव को न समझेंगे, तब तक आप स्वरूप में न आ सकेंगे। जैसे ही आप भीतर जायेंगे तो पहले मिलेगा स्वभाव, निसर्ग। और भी भीतर जायेंगे, तो मिलेगा स्वरूप, निसर्ग के पार जो ब्रह्म है वह। लेकिन अगर आप स्वभाव से ही डर

गये तो आप भीतर ही न जायेंगे। फिर आप बाहर-बाहर घूमेंगे। और अगर आप स्वभाव से डर गये, तो स्वभाव के विपरीत अपने चारों तरफ आप एक दीवाल बना लेंगे। उस दीवाल का नाम व्यक्तित्व है, 'पर्सनालिटी' है।

अब हम इस सूत्र को समझें।

नौवां सूत्र : अपनी अन्तरात्मा का पूर्ण रूप से सम्मान करो।

सोचके ही कठिनाई होती है, हम कहेंगे, कि अपनी अन्तरात्मा का तो हम सम्मान करते ही हैं। नहीं, अभी यह जो मित्र मेरे पास आये, इन्होंने अपनी काम-वासना का सम्मान नहीं किया; अपमान किया, उसे दबाया, उसे नष्ट करने की कोशिश की। और अब काम-वासना उनसे बदला ले रही है। देवी का सहारा लिया था इन्होंने काम-वासना से मुक्त होने के लिए, अब काम-वासना देवी पर ही आरोपित हो रही है, देवी कमजोर सिद्ध हो रही है, काम-वासना ज्यादा बलवती सिद्ध हो रही है। यह बदला है। यह अपने स्वभाव को नहीं समझा, तो कठिनाई खड़ी होगी।

अपनी अन्तरात्मा का पूर्ण रूप से सम्मान करो—जो भी तुम्हारे भीतर है।

और अभी पहले तो निसर्ग से ही मुलाकात होगी। जब आप आंख बन्द करेंगे, तो पहले आपका किससे मिलना होगा? आपके देह की प्रकृति मिलेगी। मन की प्रकृति मिलेगी। और जब इन दोनों के आप पार चले जायेंगे, तो आपको आत्मा की प्रकृति मिलेगी। ये तीन तल हैं। देह की प्रकृति है, उसका सम्मान करो।

पर हम उसका भी अपमान करते हैं! हम उपवास में रस लेते हैं या भोजन में रस लेते हैं। या तो हम भोजन में इतना रस लेते हैं कि भोजन ही हमारे लिए मृत्यु का कारण बन जाता है। वह भी शरीर का सम्मान नहीं है। जब आप ज्यादा भोजन करते हैं, तब आप शरीर का अपमान कर रहे हैं। क्योंकि जो शरीर को जरूरत नहीं है, वह आप थोप रहे हैं उसपर, आप उसके लिए जहर पैदा कर रहे हैं।

चिकित्सक कहते हैं कि दुनिया में भूख से कम लोग मरते हैं, भोजन से ज्यादा लोग मरते हैं। हालांकि ऐसा होना नहीं चाहिये, क्योंकि दुनिया में बहुत भूख है। लेकिन फिर भी चिकित्सक कहते हैं, कि दुनिया में भूख से बहुत कम लोग मरते हैं, भोजन से ज्यादा लोग मरते हैं। भूखा आदमी जी सकता है, लेकिन ज्यादा भोजन किया हुआ आदमी अपने भीतर जहर इकट्ठा करता है; टॉक्सीन इकट्ठा करता है, और नष्ट होता है।

तो जो आदमी ज्यादा खा रहा है, आप यह मत समझना कि वह शरीर का प्रेमी है, वह शरीर का दुश्मन है। वह अपमान कर रहा है। शरीर की जो सहज सूचना है, उसको स्वीकार नहीं कर रहा है। जब शरीर कहता है मत खाओ, तब भी वह खाये चला जाता है। यह शरीर को नष्ट करने का उपाय हुआ। इस तरह का आदमी, आज नहीं कल उपवास में उत्सुक हो जायेगा। क्योंकि जिसने ज्यादा खाके शरीर को पीड़ित

किया है, तो शरीर दुःख देगा, बदला लेगा। तो दूसरी अति पर जायेगा, उपवास करने लगेगा। उपवास भी शरीर का अपमान है, क्योंकि जब शरीर भूखा है, तब आप उसे भोजन नहीं दे रहे हैं। एक अपमान है कि शरीर जब भूखा नहीं है, तब आप उसमें भोजन ठूंस रहे है। एक अपमान है कि जब शरीर भूखा है, तब आप भोजन नहीं दे रहे हैं।

सम्मान क्या है?

सम्मान यह है कि शरीर की जो निसर्ग प्रकृति है, शरीर की जो सहज, स्वाभाविक मांग है, उसको उतना ही पूरा कर देना—सम्मानपूर्वक, आदरपूर्वक। क्योंकि शरीर तो एक यन्त्र है। और इतना महान यत्र है कि उसके सहारे ही तो आप संसार का अनुभव लेंगे, और उसके सहारे ही आप परमात्मा के द्वार तक पहुंचेंगे। उसके सम्मान की जरूरत है। लेकिन हमें कोई चिंता नहीं है, हम मन का भी कोई सम्मान नहीं करते। हम मन के साथ भी उपद्रव मचाये रखते हैं। अति पर हम डोलते हैं। एक अति से दूसरी अति पर चले जाते हैं। मध्य में सम्मान है।

इसलिए बुद्ध ने अपने पूरे जीवन-दृष्टिकोण का नाम मज्झिम-निकाय दे दिया, मध्य-मार्ग। उन्होंने कहा, न तो यह अति न वह अति, क्योंकि दोनों में अपमान होता है प्रकृति का। तुम ठीक बीच में रुक जाना। अति पर मत जाना। तो तुम सम्मानपूर्वक रहोगे।

शरीर, मन, इनका अगर अपमान किया जाए, तो आपमें झूठा व्यक्तित्व पैदा होगा।

अंग्रेजी में शब्द है, पर्सनालिटी। वह बहुत कीमती शब्द है। यूनान में जो नाटक होते थे, उन नाटकों में पात्रों को अपने चेहरे पर, एक मुखौटा लगाना पड़ता था। उस मुखौटे का नाम परसोना होता था। और उसी शब्द परसोना से पर्सनालिटी बना है। पर्सनालिटी का अर्थ है : ओढ़ा हुआ व्यक्तित्व, ओढ़ा हुआ मुखौटा। जो आप नहीं हैं, वैसा चेहरा।

तो जो व्यक्ति अपने भीतर की प्रकृति के विपरीत होता है, अनिवार्य रूप से उसे उस प्रकृति के विपरीत एक मुखौटा निर्मित करना होता है। एक व्यक्तित्व की खोल अपने चारों तरफ बना लेनी होती है। यह खोल अन्तरात्मा से मिलन न होने देगी। निसर्ग आपके खिलाफ नहीं है, लेकिन आपका व्यक्तित्व आपके खिलाफ है। और हर आदमी व्यक्तित्व बनाये हुए है, और उसको मजबूत किये चला जाता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते है कि आत्मा को जानना है, लेकिन व्यक्तित्व छोड़ने की जरा भी तैयारी नहीं होती। वे अपने व्यक्तित्व को पकड़के ही आत्मा को पाना चाहते हैं। यह असम्भव है। इस व्यक्तित्व को ठीक से समझ लेना जरूरी है, तो ही आप आत्मा की खोज में आगे बढ़ सकेंगे, अन्यथा आप हमेशा भटकते रहेंगे, क्योंकि जिसको आपने पकड़ा है, वही तो बाधा है।

ऐसा समझ लें कि एक आदमी जेल के बाहर आना चाहता है, और जेल की दीवालों को जोर से पकड़े हुए है, और कहता है कि ये दीवालें मैं कभी न छोड़ूंगा, क्योंकि इन दीवालों के साथ मैं इतने दिन रहा हूँ। अपनी ही जंजीरों को तोड़ने को राजी नहीं है। कहता है, ये मेरे आभूषण हैं, ये बड़े कीमती हैं। और कहता है, इन आभूषणों के बिना तो मैं सो भी न सकूंगा। इनके बिना तो मुझे नींद भी न आयेगी, इनके बिना तो मुझे खाली-खाली, नंगापन मालूम पड़ेगा। इनको मैं नहीं छोड़ सकता, लेकिन मुझे स्वतंत्र होना है, मुझे मुक्त होना है।

आपकी व्यवस्था ऐसी ही है।

(जिसको आप बचाना चाहते है, वही दीवाल है। और उसको तोड़े बिना आप अन्तरात्मा में प्रवेश न कर पाएंगे।)

समझें।

(अपनी अन्तरात्मा का पूर्ण रूप से सम्मान करो) क्योंकि तुम्हारे हृदय के द्वारा वह प्रकाश प्राप्त होता है, जो जीवन को आलोकित कर सकता है, और तुम्हारी आंखों के समक्ष स्पष्ट कर सकता है।

समझने में कठिन केवल एक ही वस्तु है—स्वयं तुम्हारा अपना हृदय। जब तक व्यक्तित्व के बन्धन ढीले नहीं होते, तब तक आत्मा का गहन रहस्य खुलना सम्भव नहीं होता है।

क्या हैं व्यक्तित्व के बन्धन ?

हम सब पैदा होते हैं। अनिवार्य-रूपेण समाज, परिवार से शिक्षा हमें उपलब्ध होती है, संस्कार उपलब्ध होते हैं, धारणाएं उपलब्ध होती हैं। कैसे जीना, कैसे उठना, कैसे बैठना ? क्या ठीक है, क्या गलत है ? सब हमें रेडीमेड मिलता है। फिर हम उसके अनुसार बड़े होते हैं। और हमें उसके अनुसार ही बड़ा होना पड़ता है, क्योंकि जिनके बीच हम बड़े हो रहे हैं, वे शक्तिशाली हैं। वे जो भी सिखा रहे हैं, वह हमें सीखना ही पड़ेगा। क्योंकि अगर हम न सीखेंगे तो वे हमें जिन्दा ही न रहने देंगे। उनकी धारणाएं हमें माननी ही पड़ेंगी, क्योंकि उनका दबाव चारों तरफ है, वे शक्तिशाली हैं। समाज उनका है, अधिकार उनका है, ताकत उनकी है, राज्य उनका है। वे सब तरफ से एक छोटे बच्चे को जो भी मनवाना चाहते हैं, मनवा देंगे। फिर यह बच्चा बड़ा होगा, एक व्यक्तित्व को लेकर, जो दूसरों ने इसे दिया है। इस व्यक्तित्व के सहारे आज नहीं कल, इसको भयंकर पीड़ा और संताप पैदा होगा, क्योंकि यह झूठा है।

झूठ से पीड़ा पैदा होती है।

(आनन्द तो केवल सत्य से पैदा हो सकता है, जो तुम्हारा स्वभाव है। उससे ही

तो फिर यह खोज में लगेगा अध्यात्म की, परमात्मा की, ज्ञान की, योग की, ध्यान की। लेकिन इसे यह ख्याल ही नहीं है कि यह जो व्यक्तित्व है, इसे तोड़ना पड़ेगा। वह जैसे एक खोल की तरह तुम्हारे झरने के चारों तरफ हो गया है। जैसे एक पत्थर की तरह तुम्हारे झरने को रोके हुए है। पर यह चाहेगा कि इस व्यक्तित्व को लेके ही परमात्मा तक पहुंच जाये और शान्ति तक पहुच जाये, तो अड़चन है।

और व्यक्तित्व को तोड़ना बड़ी कठिन बात है, क्योंकि हमारा बड़ा मोह निर्मित हो जाता है। हम तो सोचते ही यही हैं कि यही व्यक्तित्व हमारा स्वभाव है, यही हम हैं।

व्यक्तित्व के साथ इस तादात्म्य का नाम ही अहंकार है।

अहंकार की बहुत चर्चा होती है। लोग कहते हैं, अहंकार छोड़ो। लेकिन अहंकार आप समझते ही नहीं कि क्या है? व्यक्तित्व के साथ जो तादात्म्य है, कि यही व्यक्तित्व मैं हूँ—यही अहंकार है। कोई हिन्दू व्यक्तित्व के लिए हैं, कोई मुसलमान व्यक्तित्व को लिए है, कोई जैन व्यक्तित्व को लिए है, कोई ईसाई व्यक्तित्व को लिए है। वह अड़चन डाल रहा है और उससे हम जुड़े हुए हैं। यह 'मैं' हूँ, इसको तोड़ना जरूरी है। इसमें थोड़े से छेद भी हो जायें, तो आपको थोड़ी सी निसर्ग की ताजी हवा मिल जाये। जरूरी नहीं कि आप इसको तोड़के समाज के विपरीत हो जायें, क्योंकि इसको तोड़के अगर आप बिलकुल फेंक दें, तो आप समाज के विपरीत हो जायेंगे। जरूरी नहीं कि आप समाज के दुश्मन हो जायें। इतना ही जरूरी है कि आप इस खोल को उतारके, पहनने में समर्थ हो जायें।

आप मेरी बात को समझ लें।

ऐसा नहीं है कि आप वस्त्रों को फेंक दें सारे व्यक्तित्व के। तो आप दिक्कत में पड़ जायेंगे। क्योंकि जिनके बीच आप रह रहे हैं, उन्होंने व्यक्तित्व नहीं फेंका है। आप अड़चन में पड़ जायेंगे। वे आपको मुसीबत में डाल देंगे; क्योंकि आप उनकी व्यवस्था को तोड़े डाल रहे हैं। और उनकी व्यवस्था में उनका न्यस्त स्वार्थ है, सुविधा है।

व्यक्तित्व को छोड़ने का एक ही अर्थ है कि आपको यह स्मरण आ जाये कि व्यक्तित्व आप नहीं है, चाहें तो उतारके एक तरफ रख सकते हैं। बस इतना काफी है। फिर समाज में काम के लिए आप व्यक्तित्व को ओढे रहें। लेकिन फिर आपकी गुलामी नहीं रही, फिर खेल हो गया। फिर समाज के लिए आप व्यक्तित्व को ओढ़ लेते हैं, और अपने लिए उतारके रख देते हैं। ध्यान के वक्त आप व्यक्ति नहीं रह जाते, सिर्फ आत्मा हो जाते है। तो आपके जीवन में बाहर के जगत के लिए एक नाटक, एक अभिनय शुरू हो जायेगा।

बुद्धिमान आदमी अनिवार्य रूप से समाज में अभिनय के अतिरिक्त और ढंग से नहीं जीता है। समाज के साथ उसका सम्बन्ध नाटकीय है। लेकिन यह नाटकीयता

अपने साथ अगर हो जाये, तो कठिनाई खड़ी होती है। आप दूसरे के लिए चेहरा ओढ़ लें। दूसरे को अच्छा लगता है वैसा ही चेहरा, तो क्या अड़चन है! लेकिन जब आप अपने एकान्त में हैं, तो वहां तो कम से कम चेहरा उतार दें। क्योंकि आप किसके लिए चेहरा ओढ़े हुए हैं, आप किसको धोखा दे रहे हैं? लेकिन यह बोध-पूर्वक हो तो व्यक्तित्व बन्धन नहीं होता। तब व्यक्तित्व एक कुशलता हो जाती है। व्यक्तित्व अच्छी बात है, क्योंकि उससे सम्बन्धों में, सामाजिक सम्बन्धों में, 'लुब्रीकेन्ट' का काम हो जाता है, उससे थोड़ा सा संघर्षण कम होता है। व्यर्थ का संघर्षण बच जाता है।

लेकिन खुद के लिए, खुद के एकान्त में अगर आप उसको ओढ़े बैठे रहें, तो आप अपनी हत्या कर रहे हैं। समाज के साथ व्यक्तित्व, अपने साथ कोई व्यक्तित्व नहीं। और यह व्यक्तित्व के बन्धन जब तक ढीले नहीं होते, तब तक आत्मा का रहस्य खुलना प्रारम्भ नहीं होता है। क्योंकि इसके भीतर, इस व्यक्तित्व की गांठ के भीतर ही आत्मा का रहस्य छिपा है।

थोड़ा समझें, क्या है व्यक्तित्व, और कैसे ढीला हो सकता है?

एक मित्र हैं मेरे, हंसते रहते हैं। और मैं जानता हूँ कि दुःखी आदमी हैं। और बुरा भी नहीं है, क्योंकि किसी दूसरे को क्या दुःख जाहिर करना। लेकिन एक रात मेरे पास रुके। आधी रात मैं उठकर बाथ-रूम की तरफ गया, प्रकाश जलाया तो देखा कि नींद में भी उनका मुंह हंसी की तरह फैला है। तो मैं थोड़ा चिन्तित हुआ। वह आदमी दुःखी हैं, दिनभर मुस्कराते रहते हैं, यह मुस्कराहट थोपी हुई है। क्योंकि वे अपना हृदय भी मुझे खोलते हैं और कहते हैं, मैं दुःखी हूँ, और मुस्कराहट तो सिर्फ मेरी एक सामाजिक आदत है। रात सोते में भी उनका मुंह मुस्करा रहा है!

मैंने सुबह उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा, अभी इतनी आदत हो गई है कि कभी-कभी मैं अकेले में भी चाहता हूँ कि अब न मुस्कराऊं, तो भी जबड़े को ढीला करना मुश्किल होता है, जकड़ गया है।

आप जरा अपने चेहरे पर ख्याल करना। जब आप किसी से मिलके आते हैं, तत्काल आइने के सामने जाके खड़े हो जाना और चेहरे को ढीला छोड़ना, तब आप फौरन दो चेहरे देखेंगे। एक चेहरा जो अभी आप लेकर आये थे, और जब वह शिथिल होगा, तो एक दूसरा चेहरा होगा।

यहां मैं देखता हूँ आपके चेहरे। जब आप ध्यान शुरू करते हैं, तब आपके पास एक चेहरा होता है। जब आप दूसरे चरण में बिलकुल विक्षिप्त हो जाते हैं, तब आपके हजारों चेहरे एक साथ बदलते हैं—एक चेहरा, दूसरा चेहरा, तीसरा चेहरा; एक कतार लग जाती है चेहरों की आपके ऊपर! आपके चेहरे जिनका आप उपयोग

करते है अलग-अलग रूपों में, सब झलक देते हैं। फिर चौथे चरण में जब आप शांत खड़े होते हैं, तो आपके सब चेहरे खो जाते हैं, और एक तरह की 'फेसलेस-नेस', एक तरह की चेहरा-शून्यता पैदा होती है। आपका चेहरा जैसे नहीं रह जाता, उसकी सब रेखाएं तनाव की, खो गई होतीं हैं। आपका चेहरा शायद वैसा होता है, जैसा बचपन में रहा होगा; जब समाज ने आपको बिगाड़ना शुरू नहीं किया था। या मां के गर्भ में रहा होगा, जब कि किसी ने आपको कोई शिक्षा न दी थी। अगर इसमें आप थोड़े और गहरे प्रवेश करते जायें, तो आपको वह चेहरा उपलब्ध हो जायेगा, जो आपका चेहरा है, जो दूसरों का दिया हुआ नहीं है।

जापान में झेन फकीर कहते हैं कि अपने 'ओरिजनल' चेहरे को, अपने मूल चेहरे को खोजो, जो जन्म के पहले तुम्हारे पास था, या मृत्यु के बाद तुम्हारे पास होगा—बीच में सब चेहरे उधार हैं।

पर ये चेहरे सीखने पड़ते हैं। आपके घर में छोटा बच्चा है, घर में कोई मेहमान आते हैं, आप कहते हैं, चलो पैर पड़ो। और वह बिलकुल नहीं पड़ना चाह रहा है। लेकिन आपकी आज्ञा उसे माननी पड़ेगी।

मैं किसी के घर में जाता हूं, मां-बाप पैर पड़ते है, और अपने छोटे-छोटे बच्चों को गर्दन पकड़के झुका देते हैं! वे बच्चे अकड़ रहे हैं, वे इन्कार कर रहे हैं। उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, उनका कोई लेना-देना नहीं है, और बाप उनको दबा रहा है!

यह बच्चा थोड़ी देर में सीख जायेगा कि इसी मे कुशलता है, कि पैर छू लो। इसका पैर छूना व्यक्तित्व का हिस्सा हो जायेगा। फिर यह कहीं भी झुकके पैर छू लेगा, लेकिन इसमें आत्मीयता न होगी। इसकी एक महत्त्वपूर्ण घटना जीवन से खो गई। अब यह किसी के भी पैर छू लेगा और वह कृत्रिम होगा, औपचारिक होगा। और वह जीवन का परम अनुभव, जो किसी के पैर छूने से उपलब्ध होता है, इसको नहीं उपलब्ध होगा। अब इसका पैर छूना एक व्यवस्था का अंग है। यह समझ गया कि इसमें ज्यादा सुविधा है। यह अकड़के खड़े रहना ठीक नहीं है। बाप झुकता ही है, और बाप को नाराज करना उचित भी नहीं है, क्योंकि वह पच्चीस तरह से सताता है, और सता सकता है। तो इसमें ज्यादा सार है, बुद्धिमान बच्चा झुक जायेगा। मगर यह झुकना यांत्रिक हो जायेगा। और खतरा यह है कि किसी दिन ऐसा व्यक्ति भी इसको मिल जाये, जिसके चरणों में सच में वह झुकना चाहता था; तो भी वह झुकेगा, लेकिन वह कृत्रिम होगा। क्योंकि सच इतने पीछे दब गया है, और व्यक्तित्व इतना भारी हो गया है।

बच्चों से मां-बाप कह रहे हैं कि यह तुम्हारी मां है, इसको प्रेम करो। यह भी कोई कहने की बात है! कि यह तुम्हारे पिता है, इनको प्रेम करो! इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि मां कहती है, मैं तुम्हारी मां हूं, मुझे प्रेम करो। यह भी

कोई कहने की बात है! मां होनी चाहिये, प्रेम फलित होना चाहिये। लेकिन वह नहीं फलित हो रहा है। और भूल अगर कहीं होगी, तो मां की हो सकती है, बच्चे की क्या भूल हो सकती है? बच्चा तो अभी कुछ भी नहीं जानता है। लेकिन जिस मां को बेटे से यह कहना पड़ता है, मैं तुम्हारी मां हूँ, मुझे प्रेम करो; वह जननी होगी, मां नहीं। उसने पैदा किया होगा। लेकिन मातृत्व कुछ और बात है, सभी स्त्रियों को उपलब्ध नहीं होता।

जननी तो कोई भी स्त्री बन सकती है, लेकिन मां बनना बड़ा कठिन है। क्योंकि मां तो एक बड़ी लम्बी प्रेम की प्रक्रिया है।

तो वह बेटे को कह रही है, मुझे प्रेम करो, मैं तुम्हारी मां हूँ। बेटा धीरे-धीरे प्रेम दिखाने लगेगा, क्योंकि क्या करेगा? इस मां से दूध लेना है, इस मां से पैसे लेना है, इस मां के ऊपर सब कुछ निर्भर है। बेटा बिलकुल असहाय है। यह मां ही उसकी जीवन सुविधा है, सहारा है, सुरक्षा है। तो सादा हो जायेगा, बेटा प्रेम प्रकट करने लगेगा। मां को देखके हंसने लगा, चाहे हंसी उसे न आ रही हो। मां को देखकर कहने लगेगा कि मेरी जैसी सुन्दर मां और कहीं भी नहीं है। और मां इससे प्रफुल्लित होगी। और बेटा धोखा देना सीख रहा है, और बेटा झूठ सीख रहा है, और प्रेम जैसी परम घटना असत्य हुई जा रही है। फिर यह बेटा बड़ा तो मां के पास होगा, पर फिर यह झूठा प्रेम गहरा हो जायेगा, यह उसका व्यक्तित्व बन जायेगा।

फिर जब यह किसी स्त्री के प्रेम में भी पड़ेगा, तो वह प्रेम आन्तरिक नहीं हो पायेगा। वह झूठ ही बोलता रहेगा। वह उस स्त्री से भी कहेगा कि तुमसे ज्यादा सुन्दर स्त्री कोई भी नहीं है। वह उस स्त्री से भी प्रेम करने की कोशिश करेगा। वह प्रेम प्रकट करेगा। वह दिन में दस दफे कहेगा कि मैं तुझे प्रेम करता हूँ। मगर यह सब झूठा हुआ जा रहा है।

इसे आप कभी सोचना, जब आप अपनी पत्नी को कहते हैं कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, तो भीतर कुछ भी होता है प्रेम जैसा, जब आप कहते हैं? अक्सर तो डर के कारण कहते हैं। अक्सर तो इसलिए कहते हैं कि कहते रहना बार-बार ठीक रहता है, याददाश्त बनी रहती है। पत्नी को भी भरोसा रहता है, आपको भी भरोसा रहता है। पत्नी भी इसी तरह दोहरा रही है, वह भी झूठ है।

आपके व्यक्तित्व बातें कर रहे हैं, आपकी अन्तर-आत्माएं नहीं मिल रही हैं। तब इस झूठ से कोई आनन्द पैदा नहीं होता है। और तब इस झूठ से कोई भी सन्तोष नहीं मिलता। झूठ से मिल भी नहीं सकता।

झूठे बीज से कहीं अंकुर पैदा हुए हैं? झूठे कंठ से कहीं गीत पैदा हुए हैं? झूठी आंख से कहीं कोई दृश्य दिखाई पड़े हैं?

झूठ का अर्थ ही है, जो नहीं है, उससे कुछ भी पैदा नहीं होगा। झूठ का अर्थ ही है कि जो दिखाई पड़ता है, और है नहीं। उससे कुछ भी पैदा नहीं होगा। जीवन तब एक रिक्तता बन जायेगी। इस व्यक्तित्व को पहचान लें! आपके भीतर जो भी झूठ है, उसे पहचान लें।

मैं आपसे यह नहीं कहता कि झूठ इसलिए मत बोलें कि दूसरे को नुकसान पहुंचता है, वह तो पहुंचता ही है। झूठ से लेकिन पहले आपको नुकसान पहुंच रहा है। आप झूठे हुए जा रहे है, मिथ्या हुए जा रहे हैं। हुए जा रहे हैं कहना ठीक नहीं है, आप बिलकुल हो चुके हैं। आप निष्णात हो गये है! आप इतने कुशल हो गये हैं कि आपको याद ही नहीं आता कि आप क्या कर रहे हैं!

मैं झूठ बोलने वाले लोगों को जानता हूं। मैं आपको दोषी नहीं ठहराता, क्योंकि वे झूठ जानके नहीं बोल रहे हैं अब। अब उनसे झूठ बोला जा रहा है। और कभी-कभी वे ऐसे झूठ बोलते हैं कि जिससे न तो कोई लाभ है, न कोई उनका हित है। और जानकर ही नहीं बोल रहे हैं, झूठ ऐसा पक्का हो गया है कि उनसे बोला जाता है। जैसे ही वे बोलते हैं, कुछ भी सोचते हैं, उनके झूठ के ढांचे में पड़के वह झूठ हो जाता है। वे सच भी बोलें तो थोड़ा झूठ बिना मिलाये नहीं बोल सकते! अपने इस ढांचे को पहचानें। इसके प्रति सजग हों, और इसको उतारके रखने की कोशिश करें।

एक मित्र मेरे पास आये। कैसे झूठ मजबूत हो जाता है, वह मैं आपसे कहूं। वे मेरे पास आये, और कहने लगे कि आप कहते है कि दूसरे चरण में बिलकुल पागल हो जाओ, तो मैं नाचता, कूदता हूँ; रोता, चिल्लाता हूँ; लेकिन आज मुझे ख्याल आया कि यह तो मैं झूठ ही कर रहा हूँ। न मुझे रोना आ रहा है, न मुझे नाचना आ रहा है—यह तो मैं झूठ कर रहा हूँ। यह तीन दिन करने के बाद इनको ख्याल आया! इसको मैं कहता हूँ, झूठ कैसा मजबूत ढांचा बन जाता है। तीन दिन से वे नाच-कूद रहे हैं। तीन दिन बाद उनको ख्याल आया कि यह तो मैं झूठ कर रहा हूँ, लेकिन ख्याल फिर भी जल्दी आ गया। उनका ढाचा बहुत मजबूत नहीं है। यह तो पहले ही क्षण याद आ जाना चाहिये कि आप क्या कर रहे हैं!

और झूठ आप कितना ही करे, कितना ही नाचें, कूदें; थोड़ी कवायद हो जायेगी। अच्छा भी लगेगा, जैसे व्यायाम से अच्छा लगता है। लेकिन ध्यान नहीं होगा। ध्यान तो आपके भीतर से सत्य फूटना शुरू हो, तो होगा।

लेकिन कठिनाई है। बचपन से ही समझाया जा रहा है, रोना मत। खासकर पुरुषों को तो इस बुरी तरह समझाया जा रहा है कि रोना मत। तो वे रोने की कला ही भूल गये हैं। उन्हें बुरी तरह समझाया गया है कि क्या लड़कियों जैसा काम कर रहे हो! जैसे रोने का ठेका लड़कियों ने ले रखा है! जैसे पुरुष रोने का अधिकारी

नहीं है। तो परमात्मा ने आंसू क्यों बनाये हैं? और पुरुष की आंखों के पीछे आंसू की ग्रन्थियां क्यों बनाई ह? तो रोने की क्षमता पुरुष को दी गई है, तो वह किसलिए दी गई है? मगर नहीं, हर लड़के को समझाया जा रहा है कि यह क्या लड़कियों जैसा काम कर रहे हो! जैसे वह कुछ बुरा काम है।

और बड़ा मजा यह है कि स्त्रियां भी कहती हैं, मां भी कहती है कि क्या लड़कियों जैसा काम कर रहा है? जैसे यह कोई बुरा काम हो, और इसे सिर्फ स्त्रियां ही कर सकती हों। बुरे काम क्या स्त्रियों ने करने का कोई ठेका ले लिया है?

लेकिन पुरुष को कठोर बनाना है, यह समाज का इन्तजाम है। उसको कठोर बनाता है, ताकि वह दुष्ट बन सके, हिंसा कर सके, मार सके, पीट सके। अगर वह रोयेगा और तरल होगा, कोमल होगा, तो यह सब काम नहीं कर सकेगा। युद्ध पर भेजोगे उसको बन्दूक लेकर, वह रोने लगेगा कि अरे, इसको मारना है आदमी को! मर जायेगा, ठीक नहीं है।

तो आदमी को कठोर बनाना है, पथरीला बनाना है। उसके भीतर से आत्मा मारनी है बुरी तरह। इसलिए उसको समझाया जा रहा है, उसके अहंकार को फुसलाया जा रहा है कि तू पुरुष है, तू रोना मत; यह स्त्रियों का काम है।

स्त्रियां भी अगर कठोर हो जायें, तो पुरुष बड़ी प्रशंसा करते हैं! वे कहते हैं कि खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसीवाली रानी थी! मर्दाना होना जैसे बहुत बड़े गौरव की बात है। एक स्त्री खराब हो गई, वह उसकी प्रशंसा कर रहे हैं! और अगर कोई पुरुष जरा कोमल हो, नाजुक हो, तो वे कहते हैं, स्त्रैण, गैर-मर्दाना!

पुरुष को हमने सिखाया है, हिंसा के लिए तैयार किया है। तो आप रो नहीं सकते! आपके आंसू सूख गये हैं। वर्षों से आप रोये नहीं हैं, आपकी ग्रंथियां जड़ हो गई हैं। तो आप चीख-पुकार भी मचाते हैं, तो आपको आंसू नहीं आते! लेकिन मैं चाहता हूं कि आपकी ग्रंथियां पुनः सक्रिय हो जायें, आंसू पुनः आ जायें। उन आंसुओं के आते ही आप तीस साल का जो समाज का व्यक्तित्व था, वह एक तरफ हट जायेगा। और आप तीस साल, चालीस साल पहले, जब छोटे बच्चे थे, और रो सकते थे, और जब किसी ने आपको यह नहीं कहा था कि क्या लड़कियों जैसे काम कर रहे हो, उस क्षण में वापिस लौट जाएंगे। आपके आंसू अगर बह सकें, सच्चे आंसू ग्रन्थियों से खुल जाएं, तो आप पायेंगे कि आपका व्यक्तित्व सरक गया, नीचे गिर गया; आप हल्के हो गये, एक छेद हो गया।

इसलिए इतना मेरा आग्रह है कि रोओ, चिल्लाओ, हंसो; क्योंकि तुमसे सब कुछ छीन लिया गया है। तुम खिलखिलाके हंस भी नहीं सकते। क्योंकि लोग कहते हैं खिलखिलाके हंसना असभ्यता है। आदमी को इस बुरी तरह मारा है...खिलखिलाके

हंस नहीं सकते, असभ्यता है! अगर चार आदमी जोर से खिलखिलाके हंस रहे हैं, तो लोग उनकी तरफ ऐसे देखेंगे, जैसे कि असंस्कृत हैं! पढ़े-लिखे नहीं हैं, गंवार हैं! मुस्करा सकते हैं सिर्फ आप, आवाज नहीं होनी चाहिये!

यह तो ऐसा है, जैसे कि झरनों से हम कहें कि बस धीरे-धीरे सरक सकते हो, शोर-गुल नहीं। हवाएं इस तरह बहो कि पत्तों में आवाज न हो। जब आप दिल खोलके हंस लेते हैं, तो आपको पता नहीं, कि कितना कचरा उस कोलाहल में बह जाता है। लेकिन आप हंस नहीं सकते, वह कचरा अटका रह जाता है। अब कुछ भी हृदयपूर्वक नहीं करने दिया जा रहा है आपसे। खतरा है, क्योंकि हृदयपूर्वक अगर आप कुछ भी करेंगे, तो समाज आपको गुलाम नहीं बना सकेगा, यह कारण है।

अगर आपकी वृत्तियों को दबा दिया जाये, तो गुलाम बनाए जा सकते हैं। अगर आपकी सारी वृत्तियों को उन्मुक्त छोड़ दिया जाये, तो आप इतने ताजे और इतने जीवन्त होंगे, कि कोई ताकत आपको गुलाम नहीं बना सकती। और समाज चाहता है कि आप गुलाम हों। मालिक न हों, सेवक हों! समाज जिस तरफ इशारा करे, वैसा आप करें! समाज जो कहे, उस तरह उठे और बैठें! आप मुक्त न हों, क्योंकि मुक्त व्यक्ति 'रिबेलियस', विद्रोही हो जाता है। तो समाज सब तरह की मुक्ति छीन लेता है, और आपके ऊपर एक खोल चढ़ा देता है। उस खोल के भीतर से आप हंसें भी, तो वह खोल जगह नहीं देती, रोएं तो वह खोल आंसू नहीं बहने देती!

एक स्त्री को मेरे पास लाया गया, उसका पति मर गया, और तीन महीने से उसे हिस्टीरिया हो गया था, बेहोश हो जाती थी। तो मैंने पूछा कि यह स्त्री पति के मरने पर रोई या नहीं ? तो जो लाये थे, उन्होंने बड़ी प्रशंसा से कहा, कि बड़ी हिम्मतवार स्त्री है, युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है, बड़ी बुद्धिमान है, इसने एक आंसू नहीं गिराया। मैंने कहा कि हिस्टीरिया उसका परिणाम है। और तुम नासमझों ने उसकी प्रशंसा की होगी, कि तू गजब की है, क्या हृदय पाया है मजबूत ?

हृदय और कहीं मजबूत होता है ? हृदय की तो खूबी ही, उसकी मजबूती तो उसकी कोमलता ही है। वह तो फूल जैसी कोमल चीज है। मजबूत हृदय का क्या मतलब ? कोई पत्थर का फूल बनायेगा ?

उन सबने उसकी खूब प्रशंसा की, उन सबने हिस्टीरिया पैदा करवा दिया। और कोई नहीं सोचता कि इसका कर्मफल किसको भोगना पड़ेगा ? और वह स्त्री बेहोश हो जाती है। वह रो नहीं पाई। मैंने उस स्त्री को कहा कि तू इन नासमझों की बातों में पड़ी है, तू रो ले। क्योंकि प्रोफेसर होने से कोई ऐसा थोड़े है, कि तू स्त्री नहीं रह गई। लेकिन प्रोफेसर भारी है, युनिवर्सिटी में किसी डिपार्टमेंट की हेड है, कैसे रो सकती है ? समझदार है, समझदार का रोने से क्या मतलब ?

समझदार हृदयपूर्वक रोएगा, बस इतना फर्क होगा।

वह कहने लगी आप क्या कहते हैं, मुझे रोना चाहिये था? तुझे रोना ही चाहिये था। क्योंकि जिसको तूने प्रेम किया है, और जिससे तूने सुख पाया है, तो दुःख क्या मैं पाऊंगा? दुःख तुझे पाना होगा। सुख पाते वक्त तू मेरे पास कभी नहीं आई। अब दुःख कौन लेगा? संसार द्वन्द्व है, वहां सुख तूने पाया, तो दुःख तुझे पाना होगा। तब तराजू तुल जायेंगे, संतुलन पैदा हो जायेगा। तू खूब छाती पीट, रो, लोट। उसने कहा कि आप क्या बातें कर रहे हैं! मैंने कहा, तो फिर हिस्टीरिया होगा।

यह हिस्टीरिया जो दबा है, वेगपूर्वक दबा है, उसका उफान है, उसका धक्का है, जो नहीं बह रहा है। दुःख, वह इतना धक्का मार रहा है कि तेरे स्नायु-जाल में पूरी की पूरी जकड़न पैदा हो जाती है। यह हालत ऐसी ही है, जैसे कोई कार चला रहा हो; एक्सीलेटर दबा रहा हो, और ब्रेक भी दबा रहा हो, तो कार की जो हालत हो जाए, वह, हिस्टीरिया उसका नाम होगा।

इस औरत का पूरा हृदय रोना चाहता है। क्योंकि मैंने उससे पूछा कि तूने अपने पति से आनन्द पाया है? तो उसने कहा कि मैंने बहुत आनन्द पाया है, मैं बहुत सुखी थी। तो मैंने कहा कि उतना दुःखी होना जरूरी है। तो तेरा पूरा हृदय बहना चाह रहा है, और तेरा प्रोफेसर, तेरा ज्ञान और यह नासमझों की कतार, जो चारों तरफ मौजूद हैं, इनकी प्रशंसा, कि तू गजब की है, ऐसा होना चाहिये—तू ब्रेक लगा रही है। और एक्सीलेटर भी दबा रही है, और ब्रेक भी लगा रही है! जब भी किसी व्यक्तित्व में एक्सीलेटर और ब्रेक एक साथ दबता है, तो हिस्टीरिया पैदा हो जाता है। या तो ब्रेक ही लगा, एक्सीलेटर मत दबा। लेकिन वह तभी सम्भव है, जब तूने पति से कोई सुख न पाया हो। लेकिन सुख तूने पाया है, तो उसका दूसरा पहलू झेलना ही पड़ेगा।

वह स्त्री मेरे सामने बैठी-बैठी रोने लगी। और मैंने उससे कहा कि तू आधा घण्टा यहीं बैठ, और हृदयपूर्वक रो ले। और आधे घण्टे बाद उसने कहा कि मैं जानती हूँ कि हिस्टीरिया अब नहीं आएगा। और मैंने कहा कि तू किसी की मत सुनना। चार छः महीने लगेंगे, दुःख को भोगना ठीक से। दुःख का भोगना भी कीमती है, जरूरी है। वह भी जीवन-शिक्षा का अंग है। हिस्टीरिया वापस नहीं लौटा। कोई आठ महीने हो गये, फिर नहीं आया है। लेकिन वह जो समझदारों की कतार है, उन जैसे नासमझ खोजने कठिन हैं।

व्यक्तित्व को अपने पहचानना और अपने व्यक्तित्व को तोड़ना।

मेरे ध्यान की प्रक्रिया आपके व्यक्तित्व को तोड़ने के लिए व्यवस्था है। वह ध्यान नहीं है, वह आपके व्यक्तित्व का हटाना है। और वह हट जाये, तो ध्यान बड़ी सहज बात है। आपका पत्थर हट जाये, तो झरने के बहने के लिए कुछ करना थोड़े पड़ता

है। झरना अपने से बहता है, सिर्फ पत्थर नहीं चाहिए। ध्यान तो स्वभाव है। अगर व्यक्तित्व के पत्थर न हों, तो वह आ जायेगा। लेकिन कुछ तो सहज बहने दो। आंसू, मुस्कराहट, नाचना, कुछ तो सहज होने दो। तो फिर वह जो परम सहज है, वह भी हो सकता है।

...जब तक तुम अपने व्यक्तित्व से अलग एक ओर खड़े नहीं होते, तब तक वह अपने को तुम पर प्रकट नहीं करेगा।

वह जो तुम्हारा स्वरूप है, तुम पर प्रकट नहीं होगा।

...तभी तुम उसे समझ सकोगे, और उसका पथ-प्रदर्शन कर सकोगे, उससे पहले नहीं। तभी तुम उसकी समस्त शक्तियों का उपयोग कर सकोगे और उन्हें किसी योग्य सेवा में लगा सकोगे, उससे पहले नहीं।

यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है। कि लोग खुद को बिना समझे-बूझे दूसरे की सेवा में लगा देते हैं! ऐसे बहुत सेवक हैं, हमारे मुल्क में तो जरूरत से ज्यादा हैं, जिनको कोई बोध नहीं है स्वयं का, और जिनके जीवन में अन्तरात्मा की एक किरण नहीं उतरी है, वे भी दूसरों की सेवा में अपने को लगा देते हैं। तब उनकी सेवा से दुष्परिणाम होता है। और सेवक जितना नुकसान कर सकते हैं, कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि वे आपके हित में ही करते हैं, उनसे बचना मुश्किल है। आप एक हत्यारे से बच सकते हैं, सेवक से कैसे बचिएगा? क्योंकि हत्यारा गर्दन पकड़ता है, आप फौरन सचेत हो जाते हैं। सेवक पैर से शुरू करता है, आप और पैर फैला देते हैं, कि ठीक है, सेवा करो। लेकिन फिर पैर से वह ऊपर की तरफ बढ़ेगा। प्रगति तो करनी ही होगी। वह भी गर्दन तक आयेगा। जरा वह फासला, वक्त लेगा। और पैर से दबाना शुरू करता है, तो जब गर्दन पकड़ लेता है, तब आप यह नहीं कह सकते कि गर्दन मत दबा देना; क्योंकि आप सोचते हैं, सेवा कर रहा है।

सब सेवक आखिर में गर्दन पकड़ लेते हैं।

गांधीजी के साथ जमात थी सेवकों की। वे सब गर्दन पकड़े हुए हैं मुल्क की। वे जो-जो सेवक थे, वे सब; सब अब पदों पर और कुर्सियों पर हैं, पूरे मुल्क की गर्दन पकड़े हुए हैं। निकले थे सेवा करने, अब वे सेवा ले रहे हैं, और भरपूर ले रहे हैं। और जो नहीं ले पा रहे हैं, वे बड़े दुखी हैं; वे कहते है, जीवन अकारथ हो गया, इतनी सेवा की और कुछ न पाया। वे कहते हैं, कम से कम ताम्र-पत्र ही दे दो लिखके कि तुमने सेवा की! कुछ पेंशन बांध दो—सेवा की! कभी-कभी स्वागत समारंभ करवा दो—सेवा की! और उन्होंने सेवा क्या की है? अगर सेवकों को समझने जायें आप, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे।

मेरे पास सेवक आ जाते है। कोई कहता है, मैं तीस साल से आदिवासी बच्चों की

सेवा कर रहा हूँ, कुछ शिक्षा दे रहा हूँ। अभी एक महिला मेरे पास आई, कहती है, मैंने तीस साल, अपना पूरा जीवन लगा दिया। तब मैंने उससे पूछा कि तूने सेवा की, वह ठीक; तूने अपना जीवन लगाया, वह ठीक; बाकी जिन बच्चों के लिए तूने तीस साल जीवन लगाया, उनको कुछ लाभ हुआ, कि नुकसान हुआ? असली सवाल तो यह है, कि उन बच्चों के जीवन में शांति बढ़ी कि घटी, सुख बढ़ा कि घटा, वे कम आनंदित हुए, कि ज्यादा आनंदित हुए? तो वह थोड़ी बेचैन हो गई। क्योंकि मैंने कहा कि आदिवासी बच्चों को पढ़ा-लिखा कर, ज्यादा से ज्यादा इतना ही करोगे कि हमारे बच्चे जैसे हैं, उस तरह के हो जायेंगे, और क्या होगा? हमारे बच्चे कौन से स्वर्ग में हैं? इधर हम युनिवर्सिटीज में परेशान हैं अपने बच्चों से, क्योंकि उनको पढ़ा-लिखा लिया है—अब वे युनिवर्सिटीज जला रहे हैं, प्रिन्सिपल को पीट रहे हैं, वाइस-चान्सलर का घिराव करके पत्थर मार रहे हैं, छुरे दिखा रहे हैं! यह हमने शिक्षा देकर उनको किया। तुम आदिवासी बच्चों पर बड़ी मेहनत कर रही हो, तुम कह रही हो कि तुमने जीवन लगा दिया। अगर तुम सफल हो गई अपने काम में, तो ये बच्चे यही काम करेंगे, और क्या करेंगे? कौन सा लाभ हुआ जा रहा है? लेकिन उसे लाभ से कोई मतलब नहीं है, वह व्यस्त है! और व्यस्त रहना एक तरकीब है अपने से बचने की। वह अच्छे काम में लगी है, तो भीतर देखने का मौका नहीं आता। वह बहुत अशान्त है, परेशान है, दमित है; सारे वेग रोग बन, गये हैं भीतर, लेकिन वह दूसरों की सेवा में अपने को उलझाये हुए है! इस सेवा की व्यस्तता में उसे ख्याल भी नहीं आता कि मेरी कोई परेशानी है।

अक्सर लोग दूसरे की परेशानियों में उलझ जाते हैं, अपनी परेशानी भूलने को। और उनको अगर आप कहें कि एक पांच दिन की छुट्टी ले लो सेवा से तो...क्योंकि पांच दिन में भी उनको अपनी परेशानियां दिखाई पड़नी शुरू हो जायेंगी।

आदमी बहुत चालाक है। उसके कई पलायन के रास्ते हैं। वह दूसरों में उत्सुकता लेने लगता है, ताकि अपने से बच सके, अपना ख्याल ही न आए! भाग-दौड़ में लगा रहता है, स्कूल खोलना है, आश्रम बनाना है, दिल्ली जाना है! वह महिला इसी काम में लगी है! चन्दा इकट्ठा करना है, एक बस लानी है! लगी हुई है, फ़ुरसत कहां है!

मैंने उससे पूछा कि तू शान्त है? और उसने कहा कि नहीं, शान्त तो नहीं हूँ, और आप कोई रास्ता बतायें। मैंने उसको कहा कि तू आबू शिविर में आ जा। उसने कहा, वह तो बहुत मुश्किल है, उस वक्त मुझे दिल्ली जाना है। काहे के लिए दिल्ली जाना है? एक अस्पताल खुलवाना है, आदिवासियों के गांव में! मैंने उससे पूछा, पहले तू इसकी तो फिक्र करले कि जहां अस्पताल हैं, वहां ज्यादा लोग स्वस्थ हैं, कि आदिवासी, जहां अस्पताल नहीं हैं, वहां ज्यादा लोग स्वस्थ हैं? पहले इसकी

फिक्र कर ले, क्योंकि अस्पताल इलाज भी लाता है, बीमारियां भी लाता है। आदिवासी ज्यादा स्वस्थ हैं, मगर उसको तो अस्पताल खोलना है! वह बोली कि यह बात तो ठीक है, मगर फिर भी अस्पताल के बिना ठीक नहीं है, अस्पताल तो जरूरी है, प्रगति होनी चाहिये। वह यह भी मानती है कि आदिवासी ज्यादा स्वस्थ हैं, लेकिन अस्पताल होना चाहिये! फिर किसलिए अस्पताल होना चाहिये? तो ठीक सेवा यह होगी कि जहां अस्पताल हैं, वहां मिटाओ और लोगों को आदिवासी बना दो, अगर स्वास्थ्य का ही रस है। अगर रस कोई और है, तो बात दूसरी है। लेकिन स्वास्थ्य तो आदिवासियों के पास ज्यादा अच्छा है। मगर वह बोली कि नहीं, आप जो कहते है, वहठीक है, अभी तो दिल्ली जाना ही पड़ेगा, फिर मैं किसी दूसरे शिविर में आ जाऊंगी! मगर ध्यान, शान्ति में कोई रस नहीं है। अशान्ति को निकालने की तरकीब उसने, आदि वासियों की सेवा बना ली है। तो कोई आदमी दुकान पर अपनी अशान्ति निकाल रहा है। पैसा कमाने में लगा है, उसे कोई मतलब नहीं है दूसरी बातों से। कोई आदमी राजनीति के चक्कर में लगा है, इलेक्शन जीतना है, मिनिस्टरी में जाना है, उसे कोई मतलब नहीं है आत्मा से! कोई आदमी सेवा में लगा है, उसे कोई मतलब नही है आत्मा से!

लेकिन ध्यान रहे, जो आदमी भी स्वयं को जाने बिना दूसरे की सेवा में लगेगा, वह नुकसान करेगा दूसरे का। क्योंकि जिसको अभी खुद के हित का पता नहीं है, उसे दूसरे के हित का पता नहीं हो सकता। आत्म-प्रवेश हुए बिना सेवक होने का मतलब है कि आप कोई न कोई 'मिसचीफ', कोई न कोई शरारत पैदा करोगे। यह दुनिया शरारतियों से कम परेशान है, शुभेच्छुओं से ज्यादा परेशान है। वे ऐसा-ऐसा इन्तजाम कर देते हैं शुभेच्छा से, कि उनके साथ आपको जाना पड़ता है। वे नरक भी ले जायें, तो भी जाना पड़ता है। क्योंकि इतनी शुभेच्छा से ले जा रहे हैं, इतने भले मन से ले जा रहे हैं, इतना कष्ट उठा रहे हैं आपके लिए, कि आप भी नही कह सकते कि क्यों नरक की तरफ घसीट रहे हो। इन्कार भी करना अशोभन लगता है, क्योंकि बेचारा कितना श्रम उठा रहा ह।

पुराना अरबी सूत्र है कि नरक का रास्ता शुभेच्छाओं से भरा पड़ा है। शुभेच्छा से भरा पड़ा है!

सेवा का हक केवल उसे उपलब्ध होता है, जो ध्यान की गहराई से पहुंच गया है। उसके पहले सेवा का कोई हक नहीं है। क्योंकि जब तक तुम्हें आनन्द नहीं मिला है, तुम आनन्द दे नहीं सकते। तुम दुःख ही दे सकते हो, नाम तुम कुछ भी रखो।

आनन्द है तुम्हारे भीतर तो वह आनन्द दूसरों में भी प्रवाहित हो सकता है।

...तभी तुम उसकी समस्त शक्तियों का उपयोग कर सकोगे, और उन्हें किसी योग्य सेवा में लगा सकोगे, उससे पहले नहीं।

जब तक तुम्हें स्वयं कुछ निश्चय नहीं हो जाता तुम्हारे लिए, दूसरों की सहायता करना असम्भव है।

कैसे करोगे सहायता?

जिस बात का तुम्हें पता ही नहीं है, उसकी भी तुम सहायता करते हो! तुम यह सोचते ही नहीं कि तुम्हें पता है! तुम्हारे पास कोई सलाह लेने आता है, कभी तुमने ऐसा कहा कि नहीं, मैं सलाह नहीं दे सकूंगा, क्योंकि मुझे कुछ भी पता नहीं है। ना, सलाह देने में तुम इतने उदार हो कि कोई आ भर जाए; आने की ही बात दूसरी, तुम्हें पता भर चल जाये कि अमुक को सलाह की जरूरत है, तुम उसके घर चले जाते हो। वह तुमसे बचना भी चाहे तो बच नहीं सकता, तुम सलाह देते ही हो।

यहां मैं देखता हूँ शिविर में भी, लोग एक दूसरे के कमरे में भी जा रहे हैं, सलाह-मश्वरा भी दे रहे हैं, ज्ञान दे रहे हैं; एक दूसरे को जगा रहे हैं, एक दूसरे को शान्ति पहुंचा रहे हैं! चैन से नहीं बैठे हैं, और न दूसरे को चैन से बैठने देते हैं! तुम्हारी सलाह किसी को चाहिये? तुम्हारे पास सलाह है?

लेकिन बड़ा मजा आता है। गुरु बनने में बड़ा मजा है! कोई शिष्य बनने को उत्सुक नहीं है! गुरु बनने में बड़ा रस है, क्योंकि अहंकार की बड़ी तृप्ति है। और हालत अगर देखना चाहो इन सलाहकारों की, तो अभी वे तुम्हें सलाह दे रहे हैं, और कल जब उन पर वही घटना घट जाए, तो तुम उन्हें सलाह दोगे! और वह इसी दयनीय हालत में होंगे, जिसमें तुम हो। अगर तुम क्रोध में हो तो, वे तुम्हें बतायेंगे क्रोध से कैसे मुक्त होना है! और तुम उनको जरा गाली देकर देखो और वे भूल जायेंगे कि क्या सलाह दे रहे थे! और तुम्हें उनको सलाह देनी पड़ती है।

क्यों इतनी उत्सुकता है दूसरे को सलाह देने की?

बिना ज्ञान के ज्ञानी होने का रस लेना चाहते हैं। बुद्धिमान आदमी से अगर आप सलाह लेने जायेंगे, तो सौ में निन्यानवे मौके पर तो वह कह देगा कि इसका मुझे पता नहीं है। एक मौके पर जिसका उसे पता है, वह आपसे निवेदन कर देगा। लेकिन वह यह भी निवेदन कर देगा कि जरूरी नहीं है यह आपके काम आए, क्योंकि मेरे काम आई है। क्योंकि आदमी अलग-अलग है, परिस्थिति भिन्न-भिन्न है। इसलिए इतना ही मैं कह सकता हूँ कि यह सलाह मेरे काम आई थी, उससे मुझे लाभ हुआ था। इससे आपको हानि भी हो सकती है, इसलिए आप सोच-समझ लेना। यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है। लेकिन जो सलाह आपके ही कभी काम नहीं आई, वह भी आप दूसरे को देते हैं!

मैं पढ़ रहा था, एक मनोवैज्ञानिक की पत्नी का संस्मरण। उसने मुझे संस्मरण लिखके भेजा। उसने मुझे लिखा कि मेरे पति मैरिज काउन्सलर हैं, वह लोगों के शादी-विवाह

में जो झगड़ा-फांसा हो जाता है, उसको सुलझाते हैं। लेकिन हम दोनों के बीच जो झगड़ा-फांसा चल रहा है, उसका कोई हल नहीं है! वह सैकड़ों शादियों में जो झगड़े हो जाते हैं, उनको सुलझा देते हैं। पति-पत्नी लड़ते आते हैं, उन दोनों को समझाते हैं। समझाकर रास्ता बना देते हैं, न मालूम कितने तलाक उन्होंने बचा दिए। लेकिन हमारा तलाक होकर रहेगा, यह निश्चित है! तो उसने मुझे पूछा कि तकलीफ क्या है? आखिर मेरे पति इतने बुद्धिमान हैं, यह मैं भी मानती हूँ, क्योंकि मैंने अपने सामने देखा कि उन्होंने कई लोगों को ठीक रास्ते पर लगा दिया, लेकिन उनकी खुद की सलाह, खुद के काम क्यों नहीं आती?

कभी-कभी यह हो सकता है, कि आपकी सलाह दूसरे के काम आ जाये। लेकिन यह दूसरे के काम आ ही इसलिए रही है कि आप दूसरे से दूर खड़े हैं, तो आप निष्पक्ष देख सकते हैं। जब आपका ही मामला होता है, तो आप दूर खड़े नहीं हो पाते, निष्पक्ष नहीं देख सकते, पक्ष हो जाता है। तो मैंने उसकी पत्नी को पत्र लिखवा दिया, तू फिकर मत कर, किसी और मैरिज काउन्सलर के पास तुम दोनों चले जाओ, वह कुछ रास्ता बना देगा। इस अन्धों की दुनिया में, अन्धे भी एक दूसरे को रास्ता बताते रहते हैं! चले जाओ, तो रास्ता बनेगा। अगर तू अपने ही पति से सलाह लेना चाहती है, तो मुश्किल है। क्योंकि पति से तू सलाह ले नहीं सकती। पति तुझे सलाह निष्पक्ष दे नहीं सकता, क्योंकि वह खुद भी हिस्सा है एक, पार्टी है झगड़े में। तुम दोनों किसी और के पास चले जाओ।

यह जो बुद्धिमानी है, जो इस तरह एक दूसरे के काम आती रहती है, यह बुद्धिमानी बहुत गहरी नहीं है। यह बुद्धिमानी किसी गहरे अनुभव से नहीं निकली है। यह बुद्धिमानी किताबी है, यह ऊपरी है। इससे बचना जरूरी है।

(जब तक हमें आत्मा की कुछ झलक न मिलने लगे, तब तक कम से कम आत्मा के सम्बन्ध में सलाह-मशवरे से बचना जरूरी है। क्योंकि उससे तुम उपद्रव ही पैदा करोगे। और दूसरे की जिन्दगी में अगर तुमसे कोई आनन्द न आए, तो कम से कम इतनी तो कृपा करनी ही चाहिये कि कोई उपद्रव पैदा न हो।

...जब तुमको आरम्भ के पन्द्रह नियमों का ज्ञान हो चुकेगा और तुम अपनी शक्तियों को विकसित और अपनी इन्द्रियों को उन्मुक्त करके ज्ञान-मन्दिर में प्रविष्ट हो जाओगे, तब तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम्हारे भीतर एक स्रोत है, जहां से वाणी मुखरित होगी।)

...ये बातें केवल उनके लिए लिखी गई हैं, जिनको मैं अपनी शान्ति देता हूँ, और जो लोग, जो कुछ मैंने लिखा है, उसके बाह्य अर्थ के अतिरिक्त उसके भीतरी अर्थ को भी साफ समझ सकते हैं।

पूछो—पवित्र पुरुषों से

प्रवचन : १५ अप्रैल १३, १९७२, रात्रि

ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

आंतरिक इन्द्रियों को उपयोग में लाने की शक्ति प्राप्त करके, बाह्य इन्द्रियों की वासनाओं को जीतकर, जीवात्मा की इच्छाओं पर विजय पाकर और ज्ञान प्राप्त करके, हे शिष्य, वास्तव में मार्ग में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो जा। मार्ग मिल गया है, उस पर चलने के लिए अपने को तैयार कर।

१०. पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से—उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाये हुए हैं।

तुम अपनी आन्तरिक इन्द्रियों के विकास के कारण यह कार्य कर सकोगे।

११. पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से, उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं।

बाह्य इन्द्रियों की वासनाओं को जीत लेने से तुम्हें यह रहस्य जान लेने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

सूत्र के पहले कुछ मित्रों ने थोड़े से प्रश्न पूछे हैं...सभी प्रश्न साधना के समय नग्न होने से सम्बन्धित हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि नग्नता पर रोक क्यों लगाई गयी है? क्या उसका उपयोग नहीं है?

नग्नता का तो बहुत उपयोग है। सिर्फ नग्नता, नग्नता ही नहीं है इसलिए। तुम्हारे वस्त्रों के साथ तुम्हारी संस्कृति, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारे संस्कार, सभी जुड़े हुए हैं। उन्हें उतारकर रखते ही वह सब भी, जो तुम्हारे ऊपर चढ़ा है वस्त्रों की भांति, उतारके रख दिया जा सकता है। नग्न होने का भय ही यही है कि, मैं जैसा हूँ, वैसा ही दिखाई न पड़ जाऊं।

बाह्य नग्नता तो प्रथम चरण है। वस्तुतः तो नग्न भीतर होना है, कि मैं जैसा हूँ, वैसा ही प्रकट हो जाऊं। कोई नकाब, कोई चेहरा, कोई मुखौटा, कोई ऊपर का आवरण, जो झूठा है; मेरे ऊपर न रहे। लेकिन मनुष्य चूंकि बाहर ही जीता है, इसलिए बाहर की नग्नता भी भीतर की नग्नता की तरफ सहयोगी होती है। नग्न होने में भय भी लगता है। क्योंकि वस्त्रों ने तुम्हें वह रूप दिया है, जो तुम्हारे शरीर पर नहीं है। वस्त्रों ने तुम्हें ढांक रखा है, वस्त्रों ने तुम्हें छिपा रखा है। दूसरे की आंखों से तुम वस्त्रों के कारण बच जाते हो।

नग्न खड़े होने का अर्थ है : मैं जैसा हूँ, बुरा-भला, सुन्दर-असुन्दर, वैसा प्रकट हूँ और अपने को छिपाता नहीं हूँ।

यह एक प्रतीक है। और सुबह के ध्यान में, दूसरे चरण में, जब कि मैं तुमसे कहता हूँ, जो भी तुम्हारे भीतर हो, उसे प्रकट कर दो; तो स्वभावतः वस्त्रों को फेंक देने का ख्याल भी पैदा होता है। और वस्त्रों को जो उतारके रख देता है, उसे दूसरे चरण में अपनी

विक्षिप्तता को प्रगट करने में ज्यादा आसानी हो जाती है। क्योंकि जो नग्न होने को राजी हो गया, उसे अब दूसरे की चिन्ता नहीं है। अब वह चीख भी सकता है, चिल्ला भी सकता है, नाच भी सकता है। दूसरे की चिन्ता जैसे वस्त्रों के साथ ही उतर गई। दूसरे क्या कहेंगे, जिसको इस बात का भय है, वह तो वस्त्र भी नहीं उतार पायेगा। सहयोगी है, कि वस्त्रों को उतारके रखके ही सुबह के ध्यान में प्रवेश किया जाए। लेकिन कुछ साधक उतना साहस नहीं भी कर पाते, तो बीच में भी दूसरे चरण में उन्हें ऐसा ख्याल आ सकता है कि वस्त्र अलग कर दें, तब भी वस्त्रों को अलग कर देना उपयोगी ह।

यह उपयोगिता अगर वस्त्र सिर्फ वस्त्र ही होते, तो न होती। वस्त्रों के साथ बहुत कुछ जुड़ा है। जब तुम बच्चे की भांति पैदा हुए थे तो नग्न थे। जब भी तुम पुनः नग्न खड़े हो जाते हो, तुम अपने बचपन में वापिस लौट जाते हो। वस्त्र तुम पर आरोपित किये गए हैं। जिस दिन से तुम्हारे वस्त्र आरोपित किए गए, उसी दिन से तुम्हें शरीर का बोध हुआ। उसी दिन से शरीर में कुछ पाप है, शरीर में कुछ छिपाने योग्य है, शरीर में कुछ ढांकने योग्य है, शरीर में कुछ बुरा है; ये सारे भाव पैदा हुए। छोटे बच्चे को उसके मां-बाप, अगर नग्न बाहर आ जाये, तो डांटेंगे, डपटेंगे। तो शरीर के प्रति एक निन्दा का भाव, वस्त्रों के साथ ही पैदा हुआ है।

शरीर में कुछ बुरा है, विशेषकर जननेन्द्रियां बुरी हैं, छिपाने योग्य हैं। उसके साथ ही तुम्हारा शरीर भी दो हिस्सों मे बंट गया है। नीचे का शरीर कुछ बुरा है और ऊपर का शरीर कुछ अच्छा है! यह जो विभाजन है शरीर के भीतर, इसने तुम्हारी जीवन-चेतना को भी दो खण्डों में बांट दिया है। आमतौर से लोग अपने सिर को ही अपना मानते हैं, बाकी शरीर को अपना नहीं मानते! बहुत हुआ तो ऊपर के हिस्से को अपना मानते हैं, नीचे के हिस्से को ऐसा मानते हैं कि मजबूरी है। इससे तुम्हारे भीतर जो जीवन-ऊर्जा है, वह खण्डित हो गई ह। बच्चे के भीतर जीवन-ऊर्जा अखण्ड होती है, उसका वर्तुल होता है। तुम्हारे भीतर वह वर्तुल नहीं है। लेकिन जिस क्षण तुम साहस करते हो, और वस्त्रों को उतारके रख देते हो, उसी दिन, वस्त्र पहनने के दिन से, वस्त्र जबरदस्ती पहनाये जाने के दिन से, अब तक तुम्हारे चित्त पर जो-जो शरीर के सम्बन्ध में निन्दा के भाव थे, वे भी हट जाते हैं।

तुम्हें ख्याल ही न होगा कि हम इतने वस्त्रों में रहते हैं कि धीरे-धीरे हम खुद भूल गए हैं कि वस्त्रों के बिना हमारा शरीर क्या है? वस्त्रों में हम एक कैद की तरह हैं, वस्त्र हटते ही हम मुक्त हो जाते हैं। पशु-पक्षियों की तरह मुक्त हो जाते हैं। उस मुक्तता का उपयोग किया जा सकता ह।

इसलिए उपयोगिता तो बहुत है, लेकिन इस शिविर में मजबूरी थी। मजबूरी ऐसी थी, कि या तो शिविर हो, तो नग्नता की सुविधा न हो सकेगी; नग्नता की सुविधा

करनी हो तो शिविर न हो सकेगा। तो इन दोनों में जो बहुत कम बुराई थी, वही चुन लेनी उचित समझी। क्योंकि राजस्थान सरकार ने केवल दो दिन पहले खबर भेज दी कि वह अपने कोई मैदान, अपनी कोई संस्था, अपना कोई भवन नहीं दे सकेगी। दो दिन पहले कोई भी व्यवस्था होना मुश्किल थी, और साधक सारी दुनिया से आ चुके थे। भारत के साधक तो आने वाले थे, भारत के बाहर के साधक आ चुके थे। और कोई उपाय नहीं था। और सरकार को इतना हक है ही, कि वह अपनी जमीन के लिए इन्कार कर दे, कि वहां नग्न कोई नहीं हो सकेगा। उसके हक में भी कोई बुराई नहीं है, वह जमीन उनकी है; हमारे पास अपनी कोई जमीन नहीं है। यहां इस पैलेस होटल में जहां व्यवस्था की गई है, होटल व्यवस्थापकों की भी मजबूरी है, वे भी साहस नहीं जुटा सकते हैं कि नग्न होने का मौका दें, क्योंकि उनके लिए सवाल व्यवसाय का है।

तो इसलिए मजबूरी थी की सुबह की नग्नता पर प्रतिबंध लगा देना पड़ा। लेकिन इससे आप यह न समझें कि हमने कोई साधना की पद्धति बदल ली ह। और इससे आप यह भी न समझें कि सरकार के सामने कोई हम झुक गये हैं। ये सारी बातें नहीं हैं। न तो कोई झुकने का सवाल है, न कोई व्यवस्था बदलने की बात है। सरकार ने हमें एक सुविधा ही दी और उससे लाभ ही होगा कि हम अपनी ही व्यवस्था शीघ्र कर पायेंगे, जहां किसी का कोई प्रतिबंध न हो सके।

सरकार की अपनी मजबूरियां है; उसके ऊपर अपने दबाव हैं, समाज के, संस्कारों के, समूह के। लेकिन हमारी निजी व्यवस्था हो तो कोई दबाव डाला नहीं जा सकता है। वह हमारी निजी व्यवस्था होगी। उसके भीतर जो नग्न होना चाहते हैं, हो सकते हैं। वह कोई पब्लिक, कोई सार्वजनिक जगह नहीं होगी। अब यह होटल है, सार्वजनिक जगह है, और लोग भी आ सकते हैं। जहां और लोग भी आ सकते हैं, वहां और लोगों का ध्यान भी रखना जरूरी है।

और फिर जीवन को बदलने की जो भी प्रक्रियाएं है, वे आमतौर से हमेशा ही समूह के विपरीत पड़ जाती हैं। नग्नता का ही सवाल नहीं है, नग्नता तो केवल प्रतीक है। हम जो भी कर रहे हैं, वह समूह की धारणाओं के प्रतिकूल पड़ेगा ही। क्योंकि समूह जीता है अन्धे की भांति बिना सोचे-समझे। समूह जीता है परम्परा की लीक पर। जो परम्परा कहती है, उसे ठीक मानता है। चाहे उसे ठीक मानने के कारण उसे कितना ही दुःख झेलना पड़ता हो। उसे ख्याल भी नहीं होता कि मेरी मान्यताएं ही मेरे दुःख का कारण हैं। जो लोग भी जीवन में क्रान्ति करने को उत्सुक हैं, उन्हें समूह की धारणाओं के पार तो उठना ही पड़ता है। संन्यास का यही अर्थ है। संन्यास का अर्थ समाज को छोड़ना नहीं है, क्योंकि समाज को तो छोड़ा जा नहीं सकता।

संन्यास का अर्थ है : समाज की धारणाओं के पार उठना।

वह जो समाज जिसको ठीक समझता है, अगर वह अनुभव से ठीक मालूम पड़े ही मानना, अगर अनुभव से ठीक न मालूम पड़े, तो उससे भिन्न की खोज करना लेकिन फिर भी बुद्धिमान व्यक्ति को यह ध्यान रखना जरूरी है कि हम जिनके बी जीते हैं, उनकी मान्यताएं, उनकी धारणाएं—हम अपने लिए तो छोड़ सकते हैं, लेवि उनकी धारणाओं को हम तोड़ें, वह उचित नहीं ह। हम अपने लिए उनकी धारणा तोड़ सकते हैं, हम धारणाओं से मुक्त हो सकते ह। वह हमारी निजी स्वतन्त्रता है लेकिन मैं आपसे नहीं कहूंगा कि आप सड़क पर जाकर नग्न खड़े हो जाएं, क्यों सड़क आपकी नहीं है। और सड़क के आस-पास रहने वाले जो लोग हैं, उनको कि भी बात से दुःख हो, ऐसा कोई भी काम करना उचित नहीं हैं। लेकिन मैं सड़क के लो से भी कहना चाहता हूँ कि उनका भी यह हक नहीं हैं कि कोई एकान्त निर्जन अपनी व्यवस्था के भीतर नग्न खड़ा हो, तो वह उसमें अड़चन पैदा करें। व्यक्ति स्वतन्त्रता का मूल्य होना जरूरी है।

लेकिन व्यक्ति की स्वतन्त्रता का कभी भी यह अर्थ नहीं है कि वह स्वतन्त्र स्वच्छंदता हो जाए। तुम्हें मैंने अगर कहा भी हो कि सुबह के ध्यान में नग्न हो सक हो तो वह तुम्हें कोई नग्न होने की छूट नहीं दे दी है, कि तुम कहीं भी नग्न हो सक हो। और अगर तुम कहीं भी नग्न होना चाहो, तो उसका अर्थ ही यह हुआ कि तु ध्यान में रस नहीं है, तुम्हें नग्नता में रस है। वह रोग है। फिर तो रोग हो गय उलटा रोग हो गया। कोई वस्त्रों के दीवाने हैं, तुम नग्नता के दीवाने हो गये। इस कुछ फर्क न रहा। नासमझी उलटी हो गई। तुम शीर्षासन करके खड़े हो गये। को पागल है, वह कहता है वस्त्र उतारना नहीं, चाहे कुछ भी हो जाए।

मैंने एक ईसाई साध्वी के सम्बन्ध में पढ़ा है, कि वह अपने स्नान-गृह में भी कप पहनके ही स्नान करती थी! तो उसके साथियों, संगियों ने कहा कि तू बिलकुल पाग है, स्नान-गृह में तेरे अतिरिक्त तो कोई होता नहीं, तो वहां कपड़े पहनके स्ना करने का क्या अर्थ है? स्नान का तो मजा ही चला गया? उस साध्वी ने कहा, जब से मैंने बाइबिल में यह पढ़ा है कि परमात्मा तुम्हें सब जगह देख रहा है, तब से बाथरूम में भी नग्न नहीं हो पाती।

यह एक पागलपन है। और अगर परमात्मा सभी जगह देख रहा है, तो कपड़ के भीतर क्या नहीं देख सकेगा? उसे कपड़े क्या अड़चन देंगे? जब दीवाल अड़च नहीं दे रही है, तो कपड़े क्या अड़चन देंगे? और परमात्मा भी कोई पीपिंग टॉ है कि हर किसी के बाथरूम में झांक रहा है। तो रुग्ण है तुम्हारा परमात्मा भी।

आदमी खुद रुग्ण हो तो वह अपने परमात्मा को भी रुग्ण कर लेता है। तुम्हा

रोग तुम्हारे देवी-देवताओं पर हावी हो जाते हैं। क्योंकि तुम्हारे ईश्वर की धारणा भी तुम्हीं तो निर्मित करते हो। अगर घोड़े ईश्वर की धारणाएं बनाएं, तो उसका चेहरा आदमी जैसा नहीं बनायेंगे, घोड़े जैसा ही बनायेंगे। अगर नीग्रो ईश्वर बनाते हैं तो उसको काला ही चित्रित करते हैं। उनके ईश्वर के ओंठ नीग्रो के ओंठ होते हैं, उनके ईश्वर के बाल नीग्रो के बाल होते हैं। अगर चीनी ईश्वर को बनाते हैं, तो उसकी गाल की हड्डियां निकालते हैं, चपटी नाक रखते हैं।

हम अपने ईश्वर को अपनी ही शकल में बनाते हैं।

तो हमारे जो रोग होते हैं, वे हमारे ईश्वर पर भी हावी हो जाते हैं। अब ये आदमी एक दूसरे के बाथरूम में झांकके जरूर देखना चाहते हैं। यह आदमी का रोग है। ये ईश्वर भी ऐसा बना लेते हैं, जो सब जगह झांक रहा है!

नग्न होने का मोह अगर पैदा हो जाये, तो वह भी रोग है, बीमारी है।

ध्यान रहे आपका नग्न होना एक बात है, और आप दूसरों को नग्न होकर दिखाएं, यह दूसरी बात है। इन दोनों में फर्क है। आप का नग्न होना सहज हो सकता है। लेकिन आप नग्न होकर दूसरे को दिखाने में उत्सुक हो, कि कोई देखे, तो मनोविज्ञान में उसे कहते हैं एक्जीबिसिनिस्ट। वह प्रदर्शनवादी जो है, वह रोगी है।

इसे थोड़ा समझें।

मनोविज्ञान दो तरह की बीमारियां बताता है इस सम्बन्ध में। एक को वह कहता है व्योरिज्म—दूसरा नग्न हो, ऐसा देखने में रस लेना। एक को कहता है, एक्जीबिसिनिज्म—हम नग्न हों और दूसरे देखें, इसमें रस लेना। ये दोनों बीमारियां हैं। ये दोनों सहज नहीं हैं। पुरुष अक्सर व्योउर होते हैं। पुरुषों को जो बीमारी होती है, वह झांकके स्त्रियों को देखने की होती है। स्त्रियां एक्जीबिसिनिस्ट होती हैं। उनकी जो बीमारी होती है, वह यह होती है कि उनको कोई झांकके देखे। इसलिए स्त्रियां सारा उपाय करती हैं। ऐसे वस्त्र पहनती हैं, ऐसे गहने लगाती हैं, ऐसा सारा इन्तजाम करती हैं कि कोई देखे। और पुरुष सारा इन्तजाम करते हैं कि किस भांति देखें। मगर ये दोनों रोग हैं।

और आप जानकर हैरान होंगे कि दोनों रोग ही वस्त्रों के कारण पैदा हुए हैं। अगर आप एक आदिवासी समाज में चले जाएं, जहां पुरुष स्त्री नग्न हैं—न तो वहां व्योउर होता है, न एक्जीबिसिनिस्ट होता है। वहां न तो कोई देखने में उत्सुक होता है, क्योंकि देखने को बचा क्या है, जिसमें उत्सुकता रखो। सभी नग्न हैं, देखने को है क्या? देखने की उत्सुकता तो तब कुछ छिपाया हो, तब होती है। जब बातें खुली ही हों, तो देखने को क्या है? तो आदिवासी समाज में, जहां स्त्री-पुरुष नग्न हैं, न तो कोई देखने में उत्सुक है, न कोई दिखाने में उत्सुक है। देखने-दिखाने का रोग वस्त्रों के साथ पैदा हुआ है। फिर रोग कितना बढ़ सकता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

कितने चित्र, कितनी कहानियां, कितनी फिल्में, कितनी पत्रिकाएं, सिर्फ इसलिए छपती हैं और बिकती हैं कि उनमें नग्न चित्र छपते हैं। और सारी दुनिया की सरकारें रुकावट लगाती हैं, कि वह न हो। लेकिन यह नहीं रुक पाता। अण्डर-ग्राउण्ड प्रेस हैं, भारी प्रचार चलता है, करोड़ों रुपये का साहित्य नीचे-नीचे बिकता रहता ह कोई दुनिया की ताकत उसको रोक लगा नहीं पाती। बल्कि जितनी रोक लगाई जाती है, उतना ब्लैक-मार्केट में वह सारा का सारा साहित्य बिकता है।

पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आदमी क्यों किसी को नग्न देखने में इतना उत्सुक है?

आप जानकर चकित होंगे कि आप उन्हीं हिस्सों को देखने में उत्सुक होते हैं, जो ढंके हैं। जो उघड़े हैं, उनको देखने में उत्सुक नहीं होते। जिन लोगों ने वस्त्रों की ईजाद की, शायद आप सोचते होंगे कि वे लोग काम-वासना के बड़े विपरीत थे, इसलिए ईजाद किए, तो आप गलती में हैं। जिन्होंने वस्त्रों की ईजाद की, उन्होंने आदमियों को कामातुर बनाने का बड़ा भारी उपाय किया। क्योंकि जो अंग छिपा दिये गए हैं, उनमें बहुत रस पैदा हो गया है, रुग्ण रस पैदा हो गया। इस रस का कोई भी कारण नहीं है, शरीर सहज बात है। लेकिन इसको छिपा-छिपा के हमने निषेध कर-कर के बहुत रस पैदा कर दिया। सारी दुनिया इस रस से ग्रस्त हो गई है।

आप दोनों बातें ख्याल रखें। न तो दूसरे को नग्न देखने में उत्सुकता लेनी कोई समझदार व्यक्ति की बात है। और न ही कोई उसे नग्न देखे, इसमें कोई रस लेना समझदार व्यक्तियों की बात है। ये दोनों रोग हैं। और यह दोनों रोग आपके वस्त्रों के साथ ही रख दिये जाने चाहिए। तो ही आपकी नग्नता में अध्यात्म प्रविष्ट होता है। तो ही आपकी नग्नता अश्लील नहीं रह जाती।

लेकिन यह तो आपकी बात है। समाज इसके लिए राजी होगा, जरूरी नहीं है। क्योंकि समाज तो उन्हीं रुग्ण बातों से भरा हुआ पड़ा है। अखबार राजी होंगे, यह सवाल नहीं ह। अखबार छापने वाला, पत्रकार, वे सब उन्हीं रुग्ण बातों से भरे पड़े हैं, उनकी भी तकलीफ वहीं है, उनकी भी अड़चन वही है। सरकार राजी हो जायेगी, ऐसा नहीं है, क्योंकि सरकार के पदों पर जो लोग बैठे हैं, उन्हें कोई अध्यात्म की जरा-सी भी झलक होती, तो वहां नहीं होते, कहीं और होते। इसलिए वे कोई राजी हो जायेंगे, यह सवाल नहीं है। उनको राजी करने की कोई जरूरत भी नहीं है, कोई प्रयोजन भी नहीं है। उनकी तरफ ध्यान भी देने की जरूरत नहीं है, कि वे क्या कर रहे हैं? लेकिन इतना तो तय है कि वे बाधा और अड़चन डाल सकते हैं। लेकिन बाधा और अड़चन वे तभी डाल सकते हैं, जब आप भी नग्नता को रोग की तरह पकड़ लें। नहीं तो वे भी बाधा और अड़चन नहीं डाल सकते। यह हमारी निजी साधना की बात है, और निजी स्थल पर है।

मैं तो पक्ष में नहीं हूँ कि इस बात का भी कि जैन मुनि सड़क पर नग्न निकलें। क्योंकि सड़क निकलने वाले की ही नहीं है, सड़क पर जो लोग रहते हैं, उनकी भी है; जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी भी है। अगर वे नहीं देखना चाहते हैं, तो उनकी आंखों पर हमला करना उचित नहीं है। यह ठीक है, या गलत है, यह सवाल नहीं है। लेकिन आंख मेरी है, और मैं आपको नग्न नहीं देखना चाहता हूँ, तो आपको ऐसी जगह खड़े नहीं होना चाहिये, जहां से आप मुझे नग्न दिखाई पड़ें। और आप ऐसी जगह खड़े होते हैं, तो उसका मतलब ही यह है कि आपको नग्न होने में रस कम है, कोई आपको नग्न देखे, इसमें ज्यादा रस है। तब तो बात ही व्यर्थ हो गई। तब तो यह हुआ कि हम एक रोग को छोड़कर दूसरे रोग में पड़ गये। कुए से बचे तो खाई में गिर गये।

मैं कोई नग्नतावाद का प्रचारक नहीं हूँ। लेकिन नग्नता का एक उपयोग हो सकता है साधना में, उसमें जरूर मेरी सहमति है। लेकिन समाज का ध्यान रखना सदा ही जरूरी है। इसलिए नहीं कि आप समाज से कोई डरते हैं, यह डर का कोई सवाल नहीं है। लेकिन यह तो ऐसा हुआ कि जैसे कोई बस हार्न बजा रही हो और आप सामने ही खड़े रहें, कि हम डरते थोड़े ही हैं, जो रास्ते से हटें ? तो आप पागल हैं। हार्न बज रहा हो, और बस आ रही हो, तो कोई डर की वजह से थोड़े ही हटता है; कि जो हट जाए उसको आप कहेंगे कि डरपोक है, क्योंकि जब बस आ रही थी, तब आप हटे क्यों ? जब हार्न बज रहा था, तब खड़े रहना था। तो कोई पागल होता तो खड़ा रहता।

जीवन में झुकने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जीवन में व्यर्थ अकड़े रहने की भी कोई जरूरत नहीं है, और दोनों के बीच मार्ग खोज लेना जरूरी है।

इसलिए यहां जो एक ही उपाय था कि शिविर हो सकता, तो नग्नता पर रोक लगानी जरूरी थी, नहीं तो शिविर नहीं हो सकता था। दोनों में यही उचित पाया कि नग्नता पर प्रतिबन्ध लगा देना उचित होगा। थोड़ी बाधा तो पड़ेगी ही, लेकिन उस बाधा से इतना नुकसान न होगा, जितना शिविर के न होने से होता। और मैं किसी भी मामले में अन्धा नहीं हूँ। और किसी भी मामले में मुझे किसी तरह का पागलपन नहीं है। जो उचित हो, और जो सुगम हो, और जिस भांति अधिक लोगों को लाभ हो सके, सदा उसपर ही विचार कर लेना उचित है।

आन्तरिक इन्द्रियों को उपयोग में लाने की शक्ति प्राप्त करके, बाह्य इन्द्रियों की वासनाओं को जीतकर, जीवात्मा की इच्छाओं पर विजय पाकर और ज्ञान प्राप्त करके, हे, शिष्य, वास्तव में मार्ग में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो जा। मार्ग मिल गया है, उस पर चलने के लिए अपने को तैयार कर।

दसवां सूत्र : पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से—उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।

तुम अपनी आन्तरिक इन्द्रियों के विकास के कारण यह कार्य कर सकोगे।

दसवां सूत्र बहुत विचारणीय है। लम्बी यात्रा के बाद जिन सूत्रों की हमने बात की है, उनको समझकर और उनको जीने के बाद, दसवें सूत्र पर प्रयोग किया जा सकता है, उसके पहले नहीं। उसके पहले तो यह बात ही बड़ी अजीब लगेगी, यह सूत्र बेबूझ मालूम पड़ेगा। कोई बहुत ही ज्यादा समझने की कोशिश करेगा, तो सोचेगा कि काव्य की बात है, सुन्दर है, प्रतीक है। लेकिन यह काव्य नहीं है और न ही प्रतीक है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। पर यह तथ्य विज्ञान का, सारे प्रयोग कर चुके हैं तो ही ख्याल में आ सकता है।

पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से—उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।

यह अध्यात्म की गुह्य विद्या के कुछ बुनियादी आधारों में से एक है। इसे हम समझें।

इस जगत में भी जो भी श्रेष्ठतम शक्ति की उद्‌घोषणा होती है, वह शास्त्रों में तो संग्रहीत होती है, लेकिन वह अस्तित्व में भी संग्रहीत हो जाती है। शास्त्रों में तो भूल भी हो सकती है, क्योंकि आदमी संग्रहीत करता है। लेकिन अस्तित्व में कोई भूल नहीं हो सकती, क्योंकि कोई संग्रहीत करता नहीं, संग्रहीत होती है।

बुद्ध बोले हैं। पहला वचन बोधि-वृक्ष के नीचे प्रकट हुआ है। उसके भी पहले बुद्ध को जो ज्ञान की परम-अवस्था हुई है, वह बोधि-वृक्ष के नीचे घटित हुई। बौद्धों ने उस बोधि-वृक्ष को बचाने की कोशिश की है। वही बोधि-वृक्ष अब भी जीवित है। उसकी एक शाखा अशोक ने अपनी बेटी संघमित्रा और अपने बेटे महेन्द्र के हाथ लंका भेजी। बौद्ध भिक्षुओं ने, जो भविष्य में झांक सकते थे, उनको यह प्रतीति थी कि भारत में बौद्ध-धर्म बचेगा नहीं। बुद्ध ने भी घोषणा की थी कि मेरा धर्म अब पांच सौ वर्ष से ज्यादा भारत में न बच सकेगा। कारण—कारण था स्त्रियों का संघ में प्रवेश।

बुद्ध बहुत समय तक, स्त्रियों को संन्यास न दिया जाये, इसकी जिद्द पकड़े रखे। बहुत समय तक, वर्षों तक बुद्ध टालते रहे, कि स्त्रियों को संन्यास न दिया जाये। बौद्ध भिक्षुओं का संघ सिर्फ पुरुषों के लिए हो। लेकिन इसमें थोड़ी ज्यादती मालूम पड़ती थी, थी भी। और अनेकों, लाखों स्त्रियां भिक्षुणी होने को तैयार थीं, और उनकी प्रार्थना बढ़ती चली गई। और आखिर उनके दबाव में, और उनके प्रति करुणा के वश बुद्ध राजी हुए और बुद्ध ने स्त्रियों को संन्यास दिया। जिस दिन उन्होंने स्त्रियों को दीक्षा दी, उसी दिन उन्होंने कहा कि अगर मैं स्त्रियों को संघ में दीक्षा न देता, तो जो धर्म हजारों वर्ष चल सकता था, वह अब केवल पांच सौ वर्ष चलेगा।

मैं भी बहुत सोचता था कि बुद्ध ने थोड़ी ज्यादती की, इतनी देर तक स्त्रियों को रोकना उचित न था। लेकिन जैसे-जैसे स्त्रियों से मेरा सम्पर्क बढ़ रहा है, वैसे-वैसे मुझे लगता है कि शायद उन्होंने ठीक ही किया था। स्त्रियों की जो भाव-दशा है, उसके काम करने का जो ढंग है, वह पुरुषों से बहुत भिन्न है। और उसके कारण, अकारण ही बहुत से उपद्रव खड़े हो जाते हैं, जिनसे कि बचा जा सकता है। और ये उपद्रव इस ढंग से खड़ा करती हैं; और इतना जाल बुन लेती हैं, भावना का, कल्पना का; और उसको इतना सत्य मान लेती हैं कि उन्हें उस कल्पना के बाहर खींचना मुश्किल है। वह दूसरों को भी अपनी कल्पना जाल में फंसा डालती हैं। स्त्री और पुरुष के विचार का काम भिन्न है, विपरीत है।

पुरुष चलता है बुद्धि से, विचार से, तर्क से; तो उसके काम में एक व्यवस्था होती है, एक योजना होती है। स्त्रियां चलती हैं भाव से, कल्पना से, स्वप्न से; उनके काम में कोई व्यवस्था, कोई योजना नहीं होती। फिर तर्क और बुद्धि में तो दस लोग राजी हो सकते हैं, कल्पना से कोई राजी नहीं हो सकता। कल्पना आपकी निजी होती है, तर्क सामूहिक हो सकता है। अगर मैं आपको कोई तर्क दूं, तो हम निर्णय कर सकते है कि किस तरफ राजी हो जाना है। लेकिन अगर भावना की ही बात हो, तो कोई निर्णय का उपाय नहीं रहता।

भावना निजी होती है, इसलिए स्त्रियां कभी संघबद्ध नहीं हो पातीं। चार स्त्रियों को भी इकट्ठा करना बहुत मुश्किल है। स्त्रियों की कोई सेना खड़ी करनी हो, तो असम्भव है। क्योंकि हर स्त्री सेनापति बन जायेगी, सैनिक नहीं बन सकती। और हर स्त्री आदेश जारी कर देगी, आदेश मानने वाला कोई भी नहीं होगा। और हर स्त्री अपनी बात में इतनी दृढ़ होगी कि झुकने को भी राजी नहीं हो सकती। और उन्हें झुकाने का कोई उपाय भी नहीं है, क्योंकि तर्क का तो कोई सवाल ही नहीं है। तर्क में तो सुविधा है, कि हम सोच-विचार कर लें, कोई निष्कर्ष निकाल लें कि क्या ठीक है, लेकिन भावना में कोई सुविधा नहीं है।

दस, पच्चीस स्त्रियां इकट्ठी हो जायें, तो वे इतना उपद्रव मचा सकती हैं, जितना कि पचास हजार पुरुष भी इकट्ठा होकर नहीं मचा सकते। और काम करने की प्रक्रिया भिन्न है, ढंग भिन्न है। इसलिए कभी-कभी तो मैं भी सोचता हूं कि बुद्ध ठीक थे। उन पर जोर देना शायद उचित नहीं हुआ।

पहले मैं सोचता था कि यह करुणा नहीं है उनकी, क्यों स्त्रियों को रोकते हैं? अब मैं सोचता हूं कि शायद यही करुणावान हुआ होता कि स्त्रियों को वे रोक देते, तो धर्म उनका हजारों साल रह जाता। वह करुणा ज्यादा होती; कि स्त्रियों को दीक्षा देकर पांच सौ साल में नष्ट हो जाये, या दीक्षा न दी जाये वह करुणा ज्यादा होती—कहना मुश्किल है।

अशोक ने अपने बेटे और अपनी बेटी को बोधि-वृक्ष की एक शाखा लेकर लंका भेजा है, ताकि यह बोधि-वृक्ष सुरक्षित रह सके। क्योंकि भारत में जिस दिन बुद्ध धर्म समाप्त होगा, उसी दिन बोधि-वृक्ष भी जला दिया जायेगा, तोड़ दिया जायेगा, मिटा दिया जायेगा— सूख जायेगा। यह बोधि-वृक्ष लंका में जिन्दा रहा है। और अभी कुछ ही वर्ष पहले उसमें से फिर शाखा लाकर बोधि-वृक्ष को बुद्ध-गया में पुनः स्थापित किया गया। इस वृक्ष के पीछे इतना लगाव का कारण सिर्फ भावना का नहीं है, इस वृक्ष ने बुद्ध के जीवन में जो परम-प्रकाश हुआ, वह अंकित किया है अपने में। यह वृक्ष उस प्रकाश को पी गया है। बुद्ध के अस्तित्व में जो विस्फोट हुआ, वह इस वृक्ष के रोएं-रोएं में समा गया है। तो आदमी ने जो संग्रह किया है बुद्ध के बाबत, उसमें तो भूलें हैं, भूलें होगीं, बड़ी कठिनाई है।

बुद्ध बोलते हैं, तो भी पच्चीस सुनने वाले पच्चीस अर्थ निकालते है। बुद्ध के मर जाने के बाद इकट्ठा हुआ संघ, बुद्ध की वाणी इकट्ठी करने को, तो बड़ी अड़चन आई, कोई ताल मेल न था। जो लोग सदा से उनके साथ रहते थे, उनमें भी भेद था। वे कहते, यह कभी कहा नहीं। कोई कहता था, यह उन्होंने सदा कहा। कोई कहता था, उसका यह अर्थ है। कोई कहता था, उसका यह अर्थ हो ही नहीं सकता। बड़ी कठिनाई थी। फिर किसी तरह सब के बीच छान-बीन के जो सब में ताल-मेल खाता था, वह इकट्ठा किया गया। अगर बुद्ध आएं तो उससे बिलकुल इन्कार कर देंगे, क्योंकि वह मौलिक है ही नहीं। पहले तो पचासों लोगों ने इकट्ठा किया, फिर उसमें भी जिन जिन में ताल-मेल नहीं खाता था, वे हिस्से अलग कर दिये गये। फिर सबकी बात जिसमें सहमति होती थी, वह इकट्ठी कर ली। अगर बुद्ध आएं, तो वे कहेंगे, यह तो मैंने कभी कहा नहीं था।

ऐसा समझें, कि मैं यहां कुछ बोल रहा हूँ, फिर आप सब लोगों का मन्तव्य लिया जाए कि मैंने क्या कहा है, फिर उसमें से सार निकाला जाए, जिसमें कोई नाराज न हो, कोई असहमत न हो, ऐसा सार-बिन्दु खोजा जाये। तो आप इतना पक्का समझ लें कि वह कुछ भी हो, जो मैंने कहा है, वह नहीं हो सकता है। क्योंकि अब इतने लोग मिलके उसको नष्ट ही कर देंगे।

लेकिन यह बोधि-वृक्ष के पास तो कोई मन नहीं है, यह बोधि-वृक्ष तो मौन, मूक है। इसके नीचे जो बुद्धत्व की घटना घटी, वह इस बोधि-वृक्ष में प्रविष्ट हो गई है। न केवल बोधि-वृक्ष में, बल्कि पास से बहती निरन्जना में भी वह समाविष्ट हो गई है। उस पृथ्वी में जिसके पास इतना ज्वलन्त प्रकाश हुआ, उस पृथ्वी के कणों में भी समाविष्ट हो गई। उस आकाश में जो उसका गवाह और साक्षी हुआ, उसमें भी प्रविष्ट हो गई।

यह सूत्र यह कह रहा है कि आन्तरिक इन्द्रियों को उपयोग में लाने की शक्ति

प्राप्त करके, बाह्य इन्द्रियों की वासनाओं को जीतकर, जीवात्माओं की इच्छाओं पर विजय पाकर और ज्ञान प्राप्त करके, हे शिष्य, वास्तव में मार्ग में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो जा। मार्ग मिल गया है, उस पर चलने के लिए अपने को तैयार कर।

पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से—उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।

शास्त्रों से पूछने की जरूरत इसलिए है, कि हम अस्तित्व से पूछने की कला नहीं जानते। अन्यथा बोधि-वृक्ष कहेगा कि क्या हुआ? अन्यथा निरन्जना नदी कहेगी कि क्या हुआ? अन्यथा यह पृथ्वी कहेगी कि क्या हुआ? बुद्ध जब इस पृथ्वी पर चले, महावीर जब इस पृथ्वी पर बैठे, कृष्ण जब इस पृथ्वी पर नाचे, तो इस पृथ्वी की क्या संजोयी हुई स्मृतियाँ हैं?

अब तो धीरे-धीरे इसके वैज्ञानिक आधार भी मिलते जाते हैं, इसलिए यह बात समझनी आसान हो सकती है।

वैज्ञानिक कहते हैं, कि जैसे अभी मैं भी बोल रहा है तो जो मैं बोल रहा हूँ, वह वाणी कभी भी खोएगी नहीं। वह खो नहीं सकती, वह गूंजती ही रहेगी—गूंजती ही रहेगी—वायु की तरंगों में मौजूद रहेगी। और आज नहीं कल, वैज्ञानिक कहते हैं, ऐसे यन्त्र के बनने की सम्भावना है कि हम अतीत की वाणियों को पकड़ सकें। कृष्ण ने सच में ही गीता युद्ध के मैदान पर कही है, या नहीं कही है, इसका निर्णय हो सकेगा। क्योंकि जो वाणी है, वह नष्ट नहीं होती, वह गूंजती रहती है; सूक्ष्म हो जाती है, लेकिन गूंजती रहती है; सूक्ष्मतर हो जाती है, लेकिन गूंजती रहती है। उसको पकड़ा जा सकता है।

ऐसा समझें कि अगर न्यूयार्क से रेडियो स्टेशन कुछ घोषणा करता है, तो आप यहाँ सुनते हैं। लेकिन न्यूयार्क से यहाँ तक आने में समय लगता है। अगर न्यूयार्क में दो मिनट पहले घोषणा की गई, तो आप दो मिनट बाद सुनते हैं। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि जो बात दो मिनट पहले हुई, वह दो मिनट बाद सुनी जा सकती है। अतीत की बात हो गई वह। वह घटी दो मिनट पहले थी, सुनी दो मिनट बाद गयी। अगर दो मिनट बाद सुनी जा सकती है, तो दो दिन बाद क्यों नहीं? क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से तो बात साफ हो गई कि अतीत भी पकड़ा जा सकता है। दो मिनट पहले जो हुआ था, वह दो मिनट बाद पकड़ा जा सकता है; तो दो दिन बाद क्यों नहीं? थोड़े और विस्तीर्ण यन्त्र चाहिये, तो दो दिन बाद भी पकड़ा जा सकेगा। तब जब रेडियो नहीं था, तो हम दो मिनट बाद भी नहीं पकड़ सकते थे। अब हम दो मिनट बाद पकड़ सकते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में, उस पर काम चल रहा है, और वे कहते हैं कि असम्भावना नहीं है कि हम अतीत को, दो हजार साल, दो लाख

साल पहले भी जो वाणी प्रकट हुई हो, उसे हम पकड़ने में समर्थ हो जाएं। जटिलताएं हैं, लेकिन वाणी मौजूद है.

यह सूत्र उसी की बात कर रहा है। विज्ञान किस दिन पकड़ेगा पता नहीं। लेकिन जो व्यक्ति बाह्य इन्द्रियों और अन्तर इन्द्रियों को विजय कर लेता है, इन सारे सूत्रों पर चलकर जो शून्य में विराजमान हो जाता है, जो ध्यान को उपलब्ध हो जाता है, वह व्यक्ति बिना किसी यन्त्र के भी, सिर्फ ध्यान अपना फोकस कर ले, सिर्फ शान्त हो जाए, और अपने ध्यान को अतीत में ले जाए, और उस जगह केन्द्रित कर लें, जहां कृष्ण ने गीता कही, तो पुनः अन्तर्वाणी में गीता सुनी जा सकती है। क्योंकि उस अन्तर जगत के लिए समय का कोई फासला नहीं है। वहां समय है ही नहीं। वहां कोई स्थान का फासला नहीं है, वहां कोई स्थान है ही नहीं। वह जो भीतर का केन्द्र है, वह सनातन है। उस जगह से आप अतीत में जा सकते हैं और भविष्य में भी। तो फिर वायु में जो छिपे हैं, वह आपको पता चल जायेंगे।

यह सूत्र कहता है, पूछो वायु से, पूछो पृथ्वी से, पूछो जल से—इन तीनों ने बहुत से रहस्य छिपाये हुए हैं।

हिन्दुओं ने अपने मन्दिर नदियों के किनारे बनाये हैं, खास कारणों से। हिन्दुओं के सभी तीर्थ नदियों के किनारे हैं, वह भी खास कारणों से। हिन्दु-साधना की जो गहनतम प्रक्रियाएं हैं, हिन्दु ऋषि-महर्षियों ने जल मे उनको सरक्षित किया है, इसलिए तीर्थ इतने मूल्यवान हैं। लोग तो नासमझी की तरह यात्रा करते रहते हैं, गंगा की, जमुना की। चले जाते हैं तीर्थों में, संगम पर पहुंच जाते हैं, मेले जुटा लेते हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि जब प्राथमिक रूप से यह घटना शुरू हुई थी, तो इसके पीछे बड़े रहस्य थे। गंगा में हिन्दुओं ने अपने जीवन-रहस्य के अनुभवों का सब कुछ छिपाया हुआ है। और जो व्यक्ति भी गंगा से पूछने मे समर्थ हो सकता है, उसे उत्तर उपलब्ध हो जायेंगे। तो गंगा के किनारे जाके बैठ जाना, कोई परम्परागत बात ही नहीं है, गंगा के किनारे बैठना बड़ा अर्थपूर्ण है।

जैनों ने अपने सारे मन्दिर और सारे तीर्थ पहाड़ों पर बनाए हुए हैं, जानकर, क्योंकि नदियों के किनारे हिन्दुओं ने अपनी धारणा को काफी दूर तक प्रविष्ट किया था। और दोनों के मिश्रित होने की और दोनों के एक दूसरे में उलझ जाने की संभावना थी। तो जैनों ने अपने सारे तीर्थ पहाड़ों पर चुने हैं, और पर्वतों में उन्होंने अपनी धारणाओं को आविष्ट किया है।

एक छोटे से पहाड़ पर, पारसनाथ हिल पर जैनों के बाईस तीर्थंकरों ने देह-त्याग की। चौबीस में से बाईस! आकस्मिक नहीं हो सकता। चौबीस तीर्थंकरों में से, हजारों साल की यात्रा में, बाईस तीर्थंकर एक ही पर्वत पर जाकर देह को त्याग करें! वे दो

भी नहीं कर पाये तो कुछ आकस्मिक दुर्घटनाओं के कारण। अन्यथा योजना यही थी कि चौबीस के चौबीस तीर्थंकर एक ही पर्वत पर देह को त्याग करें, क्योंकि देह के त्याग के वक्त, तीर्थंकर से जो ज्योति उत्पन्न होती है, वह पत्थरों पर सदा के लिये अंकित हो जाती है। जो इस रहस्य को जानता है, वह पार्श्वनाथ हिल पर जाकर आज भी पहाड़ से पूछ सकता है, कि जब पार्श्वनाथ ने देह त्यागी, तो इस पर्वत पर क्या घटा, इस पर्वत ने क्या अनुभव किया ?

प्रक्रियाओं में फर्क है। क्योंकि नदी में अगर अंकित करना हो, तो और ढंग से अंकित करना होता है, क्योंकि नदी सतत् प्रवाहशील है। अगर पर्वत पर कोई चीज अंकित करनी हो तो और ढंग से अंकित करनी होती है। पूरी प्रक्रिया, पूरा तन्त्र अलग होता है, क्योंकि पर्वत स्थिर है।

सारे धर्मों ने सिर्फ शास्त्र ही नहीं रचे हैं, क्योंकि शास्त्र तो बहुत ही कागजी चीज है, उसका ज्यादा भरोसा नहीं, उससे भी गहरे उपाय उन्होंने खोजे हैं। जैसे इजिप्ट में पिरामिड बनाये हैं, इजिप्ट के धार्मिक लोगों ने। उन्होंने पिरामिड की रचना में सब कुछ छिपा दिया है। पिरामिड की बनावट में, पिरामिड के पत्थर-पत्थर में, उसकी पूरी योजना में, सब छिपा दिया, जो उन्होंने जाना था। और जो पिरामिड को जानने वाले लोग हैं—अब कई तरह से खोज चलती है पिरामिडों की, वे चकित हैं कि कितना रहस्य ! कहा जाता है कि इजिप्ट ने जो भी जाना था, वह सब पिरामिड में डाल दिया है। लेकिन कुंजियां खो गई हैं। थोड़ा बहुत कुछ कुंजी पकड़ में आती है कहीं से, तो थोड़े बहुत रहस्य समझ मे आते हैं। सारी दुनिया में किताब पर भरोसा पुराने धर्मों ने कभी नहीं किया। उन्होंने कुछ और उपाय किया। लेकिन पिरामिड भी आदमी की बनाई हुई चीज है, कितनी ही मजबूत हो, मिट सकती है। इसलिए भारत में हमने, आदमी की बनाई हुई चीजों में छिपाने की कोशिश न करके प्रकृति के ही उपादानों में डाल देने की व्यवस्था की है।

पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से—उन रहस्यों को जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।

एक विशेष ध्यान की अवस्था में, सम्पर्क स्थापित हो जाता है, उत्तर मिलने शुरू हो जाते हैं। लेकिन उसके पहले तुम्हारा हृदय इतना शान्त हो जाना चाहिए कि तुम अपने उत्तर उसमें न डाल लो। नहीं तो सब विकृत हो जायेगा। तुम्हें इतना मौन हो जाना चाहिये कि तुम्हारी तरफ से जोड़ने का कोई उपाय न रहे। तो ही तुम्हें पता चलेगा कि क्या कहा जा रहा है। अन्यथा तुम अपना ही मिश्रित कर लोगे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आपने स्वप्न में हमसे ऐसा कहा। मैं उनसे कहता हूँ कि तुम पहले चुप होना सीखो। नहीं तो स्वप्न भी तुम्हारा है और तुम्हारे स्वप्न में आया हुआ मैं भी, तुम्हारा ही हूँ, मैं नहीं हूँ। स्वप्न भी तुम्हीं निर्मित

कर रहे हो, मुझे भी तुम्हीं निर्मित कर रहे हो, और मुझसे जो वाणी तुम बुलवा रहे हो, वह भी तुम्हारी ही है। लेकिन तुम होशियार हो, क्योंकि तुम अपने पर तो भरोसा नहीं कर सकोगे, इसलिए तुम मुझसे बुलवा रहे हो। और तुम जो चाहते हो वही बुलवा रहे हो। आदमी को स्वयं के साथ छल करने की इतनी सम्भावना है, कि जिसका कोई हिसाब नहीं, अन्त नहीं। मेरे पास ही आके लोग मुझसे कहते है कि आपने ही आदेश दिया था, इसलिए हमने ऐसा किया! कब तुमने मुझसे आदेश लिया था? कहते हैं, स्वप्न में आपने कह दिया था! और किया उन्होंने वही, जो वे करना चाहते थे! और कई दफे तो मैं इतना चकित हो जाता हूँ कि मैं सामने ही उनको आदेश दे रहा हूँ कि ऐसा मत करना, वे उसको सुन ही नहीं रहे हैं! वे कह रहें हैं कि आपने आदेश दिया था, स्वप्न में, उसको हमने किया! और मैं सीधा आदेश दे रहा हूँ, वह उसको सुन ही नहीं रहे हैं, करने की तो बात ही अलग है! इसको कहता हूँ मैं छल। पर इसका उन्हें पता भी नहीं कि वे क्या कर रहे हैं? मैं उनसे कह रहा हूँ प्रकट में कि ऐसा करो, उसको वे सिर हिला रहे हैं कि यह हमसे न होगा! लेकिन स्वप्न में मैंने कहा था, उसको मानके उन्होंने किया! निश्चित ही, जो वे करना चाहते हैं, वही कर रहे हैं।

जब तक तुम्हारा मन पूरी तरह शान्त न हो गया हो, तब तक तुम वही सुनोगे, जो तुम सुनना चाहते थे। तब तुम वही करोगे, जो तुम करना चाहते हो। तब तक इस जगत के रहस्य तुम्हारे सामने न खुल सकेंगे। क्योंकि तुम अपनी ही भावनाओं, अपनी ही वासनाओं, अपनी ही कामनाओं से, इस बुरी तरह भरे हो कि जगत कुछ प्रकट भी करना चाहे, तो प्रकट नहीं कर सकता है। लेकिन अगर ध्यान तुम्हारा सधता जाए और ऐसी घड़ी आ जाये, जब तुम अनुभव कर सको कि अब कोई भी विचार नहीं है, तो थोड़ा प्रयोग करना।

थोड़ा प्रयोग करना। ऐसे ध्यान की अवस्था में किसी वृक्ष के नीचे कुछ दिन प्रयोग करना। किसी भी वृक्ष के नीचे प्रयोग हो सकता है, लेकिन अगर कोई विशेष वृक्ष हो तो परिणाम बहुत शीघ्र और साफ होंगे। जैसे बुद्ध-गया का बोधि-वृक्ष है। अगर उसके नीचे बैठकर तुम सात दिन ध्यान करते रहो, और तुम्हारा ध्यान जम गया हो, ठीक आ गया हो, तो फिर तुम वहाँ चले जाओ और सात रात बैठे रहो वृक्ष के नीचे, ध्यान करते हुए, और जब तुम्हें लगे कि तुम बिलकुल शून्य हो गये हो, तब तुम वृक्ष को सिर्फ इतना कह दो, कि तुझे कुछ मेरे लिए कहना हो तो कह दे। और तब तुम मौन बैठके प्रतीक्षा करते रहो। तुम हैरान हो जाओगे कि वृक्ष तुमसे कुछ कहेगा—और कुछ ऐसा कहेगा जो तुम्हारे पूरे जीवन को रूपान्तरित कर दे।

वृक्ष कुछ संजोए हुए है, कुछ संग्रहीत किये हुए है, और केवल उन्हीं के लिए

संजोए हुए है, जो पूछने की सामर्थ्य रखते हैं, वे पूछेंगे तो उनको उत्तर मिल जायेगा। लेकिन उतनी दूर जाने की भी कोई जरूरत नहीं है। यह आकाश सारे बुद्धों को अपने में समाये हुए है। इस पृथ्वी पर सारे महावीर और सारे जीसस और सारे कृष्ण चले और उठे हैं। इस पृथ्वी से ही पूछ सकते हो।

पूरी तरह ध्यान की अवस्था में पृथ्वी पर नग्न लेट जाओ, जैसे कोई छोटा बच्चा मां की छाती पर लेटा हो। और ऐसा ही ख्याल कर लो कि पूरी पृथ्वी तुम्हारी मां है, तुम उसके स्तन अपने हाथ में लिए हुए उसकी छाती पर लेटे हो। बिलकुल शान्त और शून्य हो जाओ, और जब तुम्हें लगे कि अब तुम्हारे शरीर की मिट्टी में और उसकी मिट्टी में कोई फर्क न रहा, दोनों एक हो गई हैं और तुम्हारे भीतर शून्य विराजमान हो गया है, तब तुम पूछ लो। यह पृथ्वी अगर तुम्हारे लिए कोई सन्देश रखे है, तो तुम्हें उपलब्ध हो जायेगा, और तुम पाओगे कि ऐसा बलशाली सन्देश तुमने कभी कहीं से नहीं पाया। उसके पाने के बाद तुम वही न रह जाओगे, जो तुम थे। और तब इस प्रक्रिया में गहरा उतरा जा सकता है, और इस तरह से बहुत सी चीजें उपलब्ध की जा सकती हैं, जो वैसे खो गई हैं।

यह किताब भी मैबेल कॉलिन्स की इसी तरह खोजके पाई गई है, क्योंकि इसकी मूल-प्रति संस्कृत में तो खो चुकी है, हजारों साल पहले खो चुकी है। इसकी कोई मूल-प्रति अब नहीं है। मैबेल कॉलिन्स ने ये तो इसी तरह के रहस्य-सूत्रों से वापस यह सूत्र उपलब्ध किए हैं। इसलिए वह इसकी लेखिका नहीं है। यह पुस्तक मैबेल कॉलिन्स की लिखी हुई नहीं है। यह उसके द्वारा पढ़ी हुई है। उसने यह पढ़ा है जीवन के किन्हीं गुप्त द्वारों से। उसको उसने संग्रहीत कर दिया है। ये सूत्र, उसने इतना ही उल्लेख किया है कि किसी खो गये संस्कृत ग्रन्थ के हैं। मैं लेखिका नहीं हूँ, मैंने इन्हें रचा नहीं है, मैंने इन्हें सुना है। और इनको वैसा ही संग्रहीत कर दिया है, जैसा वे हैं।

बहुत सी किताबें खो गई हैं। आदमी जो भी बनाता है, वह खो ही जाता है। लेकिन कोई और उपाय भी हैं, जिससे जो खो गया है, उसे वापस पाया जा सकता है। बहुत सी किताबें प्रक्षिप्त हो गई है, उनमें बहुत कुछ डाल दिया गया है, जो बाद में लोग जोड़ते चले गये हैं। जब तक पृथ्वी से, आकाश से वापस उनकी मूल-प्रति पाई न जा सके, तब तक उन पुस्तकों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उनमें बहुत जोड़ा हुआ है, वह मूलतः हीं है। लेकिन हमें कुछ पता नहीं उन कुंजियों का, जिनसे वायु का ताला खुल जाय। एक कुंजी स्पष्ट है, उसको मैं मास्टर-की कहता हूँ। उससे सभी ताले खुल जाते हैं। और वह है तुम्हारी एक शून्य-अवस्था। तब तुम महावीरों से बोल सकते हो, बुद्धों से साक्षात् ले सकते हो, कृष्ण की बांसुरी फिर से सुनी जा सकती है। लेकिन तुम्हारा शून्य हो जाना जरूरी है।

...तुम अपनी आन्तरिक इन्द्रियों के विकास के कारण यह कार्य कर सकोगे।

ग्यारहवां सूत्रः पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं।

...बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीत लेने से तुम्हें यह रहस्य जान लेने क अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से...

यह पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से पूछने की बात भी छोड़ी समझ लेने जैसी है।

इस जगत में, जो शरीर लिये हुए हैं, वे ही अकेले नहीं हैं। इस जगत में अशरीरी पुरुष भी हैं, अशरीरी आत्माएं भी है। जब भी कोई व्यक्ति मरता है, तो अगर साधारण व्यक्ति हो, साधारण वासनाओ से भरा, साधारण शुभ आकांक्षाओं से भरा, साधारण बुराई, साधारण अच्छाई, तो क्षण भर भी नहीं लगता, उसका नया जन्म हो जाता है। क्योंकि साधारण आदमियों के लिए साधारण गर्भ निरन्तर उपलब्ध हैं, उनकी कोई कमी नहीं है। उसे कभी क्यू में खड़े होने की जरूरत नहीं पड़ती।

लेकिन अगर असाधारण बुराई से भरा हुआ आदमी हो, तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि असाधारण बुरा गर्भ पाने मे कठिनाई है। हिटलर मरे तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कभी-कभी सैकड़ों वर्ष भी लग सकते हैं। जब ठीक इतना ही उपद्रव-ग्रस्त गर्भ मिले, जिसमें हिटलर पैदा हो सके। या असाधारण रूप से अच्छी आत्मा हो, बहुत साधु आत्मा हो, तो भी हजारों वर्ष लग जाते हैं, क्योंकि उतना श्रेष्ठ गर्भ पाना भी मुश्किल है। श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ मुश्किल हैं। सामान्य, बिलकुल साधारण रोज उपलब्ध हैं। जो बुरी आत्माएं रुक जाती हैं बिना देह के, उन्हीं को हम प्रेत कहते हैं। जो भली आत्माएं रुक जाती हैं बिना देह के, उन्हें ही हम देवता कहते हैं। इसमें देवताओं का उल्लेख है।

पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से उन रहस्यों को जो तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं।

अगर तुम शान्त हो सको, तो तुम पाओगे कि तुम एक दूसरे जगत मे प्रवेश कर रहे हो, जहां बहुत सी अशरीरी आत्माएं तुम्हे सहायता करने को उत्सुक हैं, और बहुत सी बाते तुम्हें खोल सकती हैं, जो कि तुम अपने श्रम से जन्मों में भी नहीं उपलब्ध कर पाओगे। ये आत्माएं मोक्ष को उपलब्ध नहीं हो गई हैं, क्योंकि जो मोक्ष को उपलब्ध हो गई हैं, उनसे सम्पर्क स्थापित करना अति कठिन है। लेकिन जो आत्माए अशरीरी हैं और केवल किसी शुभ जन्म की प्रतीक्षा कर रही हैं, उनसे सम्पर्क स्थापित कर लेना बहुत ही आसान है। सिर्फ एक ट्युनिंग—जैसे रेडिओ पर तुम बटन को घुमाते हो, नॉब को घुमाते हो, ताकि ठीक स्टेशन पर कांटा रुक जाए। अगर जरा भी गड़बड़ हो, इधर-उधर हिला-डुला हो तो शोरगुल मचता है, कुछ पकड़ में नहीं

आता है। अगर ठीक जगह रुक जाये, तो पकड़ में आना शुरू हो जाता है। ठीक तुम्हारा ध्यान भी, अगर ठीक जगह रोकने की कला आ जाये, तो तुम कहीं भी उस ध्यान को जोड़ ले सकते हो। बहुत सी आत्माएं उत्सुक हैं, जो तुम्हें सहायता कर दें और तुम्हारा बहुत सा काम हल कर दें। और बहुत सी आत्माएं उत्सुक हैं कि तुम्हें नुकसान पहुंचा दें, और तुम्हारा बहुत-सा बना हुआ काम बिगाड़ दें।

जो लोग दुष्ट प्रकृति के हैं, वे दूसरे को परेशान करने में आनन्दित होते हैं। तुम्हारे आसपास बहुत सी आत्माएं हैं, जो तुम्हें लाभ पहुंचा सकती हैं। और बहुत सी आत्माएं हैं, जो तुम्हें नुकसान पहुंचा सकती हैं। अगर तुम बहुत भयभीत हो, अगर तुम बहुत चिन्ताग्रस्त हो, अगर तुम्हारे मन में भीतर बहुत उत्पात चल रहा है, तो तुम्हारी बुरी आत्माओं से सम्बन्धित होने की सम्भावना है, क्योंकि तुम तब बुरी आत्माओं के लिए खुले द्वार हो। अक्सर ऐसा होता है कि जब तुम भयभीत हो, तब तुम्हें भूत-प्रेत दिखाई पड़ जाते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि भय के कारण वे पैदा हो जाते हैं। भय के कारण तुम उनसे सम्बन्धित हो जाते हो। भय तुम्हें खोल देता है उनके प्रति।

जब तुम अभय हो, शान्त हो, आनन्दित हो, तब तुम्हारा बुरी आत्माओं से कोई संपर्क नहीं बन सकता। उस तरफ से तुम्हारा द्वार बंद है। लेकिन उस क्षण में तुम्हारा अच्छी आत्माओं से सम्बन्ध बन सकता है। वह जो मैं निरंतर ध्यान में तुमसे कहता हूँ कि आनंद के क्षण में ही, परम-आनंद के क्षण में ही तुम प्रभु से संयुक्त हो सकते हो, और कोई उपाय नहीं है। वह ट्युनिंग है। तुम जब पूरे आनद से भरे हो, तब तुम इस जगत का जो आनंद का स्रोत है, उससे जुड़ सकते हो। जब तुम दुःख से भरे हो, तो इस जगत में जहां-जहां दुःख का विस्तार है, उससे जुड़ सकते हो।

दुःखी आदमी हम कहते ह कि नरक में चला जाता है। जाने की कोई जरूरत नहीं है। दुःखी आदमी सिर्फ नरक की तरफ खुल जाता है, नरक उसमें आ जाता है। सुखी आदमी स्वर्ग की तरफ खुल जाता है, स्वर्ग उसमें आ जाता है। आनंदित आदमी जीवन की परम-सत्ता की तरफ खुल जाता है, परम-सत्ता उसमें प्रवेश कर जाती है। तुम किस तरफ से खुले हो? उसी तरफ तुम्हारे जीवन का विस्तार होना शुरू हो जायेगा।

यह सूत्र कहता है : पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं। बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीत लेने से तुम्हें यह रहस्य जान लेने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

पूछो—अपने ही अन्तरतम से

प्रवचन : १६ . अप्रैल १४, १९७२, सुबह
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

१२. पूछो अपने ही अन्तरतम, उस एक से, जीवन के परम रहस्य को, जो कि उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है।

जीवात्मा की वासनाओं को जीत लेने का बड़ा और कठिन कार्य युगों का है। इसलिए उसके पुरस्कार को पाने की आशा तब तक मत करो, जब तक युगों के अनुभव एकत्रित न हो जायं। जब इस बारहवें नियम को सीखने का समय आता है, तब मानव मानवेतर (अतिमानव) अवस्था की ड्योढी पर पहुंच जाता है।

जो ज्ञान अब तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह इसी कारण तुम्हें मिला है कि तुम्हारी आत्मा सभी शुद्ध आत्माओं से और उस परम-तत्व से एक हो गयी है। यह ज्ञान तुम्हारे पास उस सर्वोच्च (परमात्मा) की धरोहर है। इसमें यदि तुम विश्वासघात करो, उस ज्ञान का दुरुपयोग करो या उसकी अवहेलना करो, तो अब भी संभव है कि तुम जिस उच्च पद तक पहुंच चुके हो, उससे नीचे गिर पड़ो। बड़े पहुंचे हुए लोग भी अपने दायित्व का भार न सम्हाल सकने के कारण और आगे न बढ़ सकने के कारण ड्योढ़ी से गिर पड़ते हैं और पिछड़ जाते हैं। इसलिए इस क्षण के प्रति श्रद्धा और भय के साथ सजग रहो और युद्ध के लिए तैयार रहो।

सूत्र के पहले दो छोटे प्रश्न हैं।

कोई पूछ रहा है कि क्या कारण ह कि मीरा जहर पीकर भी नहीं मरी? कैसी भक्ति थी वह, कैसा प्रेम था? प्रह्लाद के बारे में भी ऐसा ही कहा जाता है, अग्नि में नहीं जला। लेकिन सुकरात जहर पीकर क्यों मर गये? और सूली पर चढ़ने पर जीसस बचे क्यों नहीं?

कुछ बातें समझ लेनी उपयोगी होंगी।

एक : दो प्रबुद्ध पुरुषों के बीच तुलना भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि कोई एक दूसरे का अनुकरण नहीं है। जीसस जैसा व्यक्ति दुबारा नहीं हुआ, होगा भी नहीं। मीरा जैसा व्यक्तित्व भी दुबारा नहीं होगा। सुकरात अनूठा है, प्रह्लाद भी। लेकिन हमारे मन में साधारण आदत है तुलना करने की। वे एक दूसरे का अनुकरण नहीं हैं, इसलिए उनके व्यक्तित्व का प्रवाह, ढंग और अन्त अलग-अलग होगा। मीरा नहीं मरी जहर पीकर, क्योंकि मीरा जिस भाव दशा में थी, वहां जहर का प्रवेश नहीं हो सकता है। प्रेम की गहनतम अवस्था में जहर का प्रवेश नहीं हो सकता है। जहर शरीर में प्रवेश भी नहीं कर सकेगा।

मीरा का मार्ग था प्रेम का—प्रेम जहर का एण्टीडोट है।

अगर आप बहुत प्रेम से भरे हैं, तो आपके रक्त में जहर प्रवेश नहीं कर सकेगा। जहर के प्रवेश के लिए आपके रक्त में जहर होना जरूरी है। समान ही समान को आकर्षित करता है। अगर आप क्रोध से भरे हैं, तो जहर शीघ्रता से प्रवेश कर जायेगा। क्योंकि क्रोध आपके भीतर जो जहर की ग्रन्थियां हैं, उनको सक्रिय कर देता है, और आपके खून में जहर पहले से ही मौजूद हो जाता है। हम सब क्रोध और घृणा से भरे हैं। हमारे रक्त में जहर मौजूद ही है। उस जहर के कारण ही शरीर में जहर प्रवेश कर सकता है।

जो आपके भीतर नहीं है, वह आपके भीतर प्रवेश नहीं कर सकेगा।

मीरा जैसा व्यक्तित्व इतने प्रेम में जी रहा है, कि उसके अपने भीतर की जहर-ग्रन्थियां समाप्त हो गई हैं। उसका रक्त प्रेम से प्रभावित है, प्रेम से आच्छादित है; जहर प्रवेश नहीं कर सकेगा, जहर शरीर के बाहर हो जायेगा। लेकिन मीरा को इसका पता भी नहीं है। अगर इसका पता चल जाये, तो जहर प्रवेश कर जायेगा। मीरा को यह ख्याल भी नहीं है कि उसे जहर दिया जा रहा है, कि वह जहर पी रही है। वह अपने प्रेम में इस भांति लीन है कि शरीर के तल पर क्या हो रहा है, उसका उसे कोई स्मरण भी नहीं है।

इसे आप ऐसा समझें :

अगर आपको चूहा भी काट ले, और आपको ख्याल हो जाये कि सांप ने काटा है, तो जहर प्रवेश हो जायेगा; पर चूहे में जहर था ही नहीं। आप मर भी सकते हैं, भ्रान्ति काफी है मार डालने के लिए। आप जानकर हैरान होंगे, सर्प-विज्ञान को समझने वाले लोगों का कहना है कि केवल तीन प्रतिशत सर्पों में जहर होता है। सौ में से तीन सांपों में जहर होता है, सन्तानवे सांप बिना जहर के होते हैं। लेकिन चमत्कार यह है कि बिना जहर के सांप के काटने से भी लोग मरते हैं। और इसलिए तो सांप का जहर उतारने वाला सफल हो जाता है। क्योंकि जिस सांप ने काटा है, उसमें जहर था ही नहीं। वह सिर्फ भ्रान्ति है आपकी, इसलिए मन्त्र से कट जाती है। मन्त्रों से भ्रान्तियां कटती हैं। सांप में तो जहर नहीं था, जिसने काटा है; लेकिन सांप ने काटा है, यह भाव-दशा जहर बन जाती है। आप मर सकते हैं, आपके भीतर की ग्रन्थियां जहर छोड़ देती हैं, इस भाव-दशा में। यह भाव-दशा मन्त्र से कट सकती है, इसलिए साप का काटा झाड़ा जा सकता है। इससे विपरीत भी होता है, असली सांप भी आपको काट ले, लेकिन मन्त्र अगर आपको यह भरोसा दिला दे, झाड़नेवाला यह भरोसा दिला दे कि उसने झाड़ दिया है, तो यह भरोसा दीवाल बन जाता है आपके भीतर, यह भरोसा सांप के जहर को आपके खून में मिलने से रोक देता है।

आपको अंदाज नहीं है कि आपके मन की कितनी ताकत है आपके शरीर पर! सम्मोहन के सम्बन्ध में खोज करने वाले लोगों के नतीजे बड़े चमत्कारी हैं। वे कहते हैं कि अगर सम्मोहित व्यक्ति को...और यह मैं अपने प्रयोग से भी कह रहा हूँ, क्योंकि सम्मोहन पर इधर मैंने बहुत प्रयोग किये हैं। आपको बेहोश कर दिया जाए सम्मोहित करके, निद्रा में सुला दिया जाए, और आपके हाथ पर साधारण कंकड़ उठाकर रख दिया जाए और आपसे कहा जाए, यह अंगारा है, आप फौरन चीख मारके उस कंकड़ को फेंक देंगे। और इस तरह चिल्लायेंगे, जैसे अंगारा आपके हाथ पर रखा हो और साधारण ठंडा कंकड़ था। यहां तक तो ठीक है कि आप बेहोश हैं,

आपने भरोसा कर लिया मेरी बात का। लेकिन आपके हाथ पर फफोला भी आ जायेगा! वह फफोला ठीक वैसा ही होगा, जैसा कि अंगारा रखने से आता है! आप होश में भी आ जायेंगे, वह फफोला टिकेगा उतनी ही देर, जितनी देर असली फफोला टिकता है! इससे उलटा भी हो जाता है कि आपको बेहोश करके आपके हाथ पर अंगारा रख दिया जाये और कह जाये कि यह साधारण ठंडा कंकड़ है, आप चीख भी नहीं मारेंगे, और अंगारे को फेकेंगे भी नहीं और फफोला भी नहीं उठेगा!

अब इसके सम्बन्ध में तो वैज्ञानिक निर्णय एकमत हो गया है कि मन जो भाव कर ले, शरीर उसके पीछे चलता है। तो मीरा इतने प्रेम से भरी है कि उसे जहर दिखाई ही नहीं पड़ता।

ध्यान रखें, आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आपका भाव होता है।

मीरा को सारा जगत अमृतमय दिखाई पड़ता है, कृष्णमय दिखाई पड़ता है। वह जहर को भी कृष्ण देखके पी गई होगी, उसमें भी कृष्ण का ही रस उसे आया होगा। यह जो भाव-दशा है, तो जहर का कोई परिणाम नहीं होगा। जहर अस्पर्शित रह जायेगा, मीरा तक नहीं पहुंच पायेगा। और अगर हाथ में अंगारा रखने से फफोला पड़ता हो तो वैज्ञानिक बात तय हो गई।

प्रह्लाद भी आग में जलने से बच सकता है, यह भाव-दशा की बात है। कोई भगवान प्रह्लाद को बचा रहा है, यह तो कहानी है, यह तो विज्ञान नहीं है। कोई भगवान ऐसा एक-एक को बचाते और समझाते-बुझाते और जहर को रोकते फिर रहा हो, तो बहुत बड़ा गोरखधन्धा उसके पीछे हो जायेगा। कोई भगवान बैठके यह सब नहीं कर रहा है। लेकिन प्रह्लाद की भाव-दशा है। उसका यह भरोसा है कि वह नहीं जलेगा, भगवान उसे बचायेगा। भगवान बचा रहा है, यह सवाल नहीं है। लेकिन ध्यान रखिये, अगर आपको यह ख्याल है कि कोई भगवान बचाने वाला नहीं, तो भरोसा पक्का नहीं हो पायेगा। प्रह्लाद को यह पक्का भरोसा है कि भगवान है और वह बचाएगा, मैंने उसके हाथों में अपने को बिलकुल छोड़ दिया है तो प्रह्लाद को आग नहीं जला पाती।

आपने सुना होगा कि लोग अंगारों पर नाच जाते हैं; अलाव भर लेते हैं, निकल जाते हैं, कोई पैर में फफोला भी नहीं आता। कुछ चमत्कार नहीं है, या चमत्कार है, क्योंकि मन की शक्ति है शरीर के ऊपर, आग से बचा जा सकता है। लेकिन अगर जरा सा भी संदेह हुआ तो जल जायेंगे।

तो आज प्रह्लाद को पैदा करना मुश्किल है। वह जमाना गया; जब इतना भरोसा था कि संदेह का रंचमात्र भी नहीं था। इतनी सरलता थी, इतना भोलापन था। आज तो एक छोटा-सा बच्चा भी पूछेगा कि नहीं, यह हो नहीं सकता। आज छोटा बच्चा

भी, एकदम छोटा बच्चा नहीं है। पुराने जमाने में बूढ़ा भी छोटा बच्चा था। जीवन सरल था, प्रकृति के निकट था। सभ्यता न थी, शिक्षा न थी, तो सन्देह भी कम था। जितना शिक्षित व्यक्तित्व होगा, उतना सन्देह बढ़ जायेगा। क्योंकि शिक्षा के साथ प्रश्न उठते हैं—उठने ही चाहिए, नहीं तो शिक्षा आगे नहीं बढ़ सकती।

इसे ऐसा समझें।

अगर दुनिया में विज्ञान बढ़ता रहेगा तो सन्देह बढ़ता रहेगा। क्योंकि सन्देह के बिना विज्ञान नहीं बढ़ सकता। विज्ञान प्रश्नों से जीता है। पूछो तभी तो उत्तर मिलेंगे। खोजो, लेकिन खोज में सन्देह जरूरी है, जिज्ञासा जरूरी है; भरोसा जरूरी नहीं है। धर्म भरोसे से चलता है, जैसे विज्ञान सन्देह से चलता है।

अगर दुनिया में धर्म होगा, तो विज्ञान का होना बहुत मुश्किल है।

अगर दुनिया में विज्ञान होगा तो धर्म का होना बहुत मुश्किल है, बहुत कठिन है। क्योंकि दोनों की आधार-शिलाएं अलग हैं। लेकिन अगर पूरा भरोसा हो, और भीतर कोई सन्देह न हो तो आपका भरोसा, इस जगत में ऐसा कोई भी नियम नहीं है कि जिसे न तोड़ दे। और आपका भरोसा इस जगत में कोई भी ऐसी घटना नहीं है, जिसको सम्भव न बना दे। लेकिन भरोसा पूर्ण होना चाहिए, उसमें रत्ती भर का छेद भी नाव को डुबा देगा।

इसलिए कोई अगर कोशिश करके प्रयोग करे तो दिक्कत में पड़ेगा। भूलकर मत करना। अगर आपने सोचा कि जब प्रह्लाद आग से बच सकता है, तो मैं क्यों नहीं बच सकता, तो मैं आग में हाथ डाल कर देखूं? लेकिन आप जो आग में हाथ डाल रहे है, वह ढंग वैज्ञानिक का है, आस्तिक का नहीं है। आप परीक्षण कर रहे हैं कि देखें? लेकिन देखने का मतलब यही है कि आपको शक है, कि पता नहीं, होगा कि नहीं होगा? आप जलेंगे। इसलिए धर्म के प्रयोग पुनरुक्त नहीं किये जा सकते। विज्ञान का प्रयोग पुनरुक्त किया जा सकता है। दुनिया के किसी कोने में प्रयोग हो, आप उसे कहीं भी दोहरा सकते हैं, क्योंकि वह सन्देह पर खड़ा है, भरोसा उसका हिस्सा नहीं है।

लेकिन जो प्रह्लाद को हुआ है, वह अगर आप दोहराने की कोशिश करेंगे तो आप दिक्कत में पड़ जायेंगे, क्योंकि दोहराया नहीं जा सकता।

धर्म का प्रयोग निजी और वैयक्तिक है। क्योंकि प्रह्लाद की मनोदशा आपके पास नहीं हो सकती। दोहराने वाले के पास होगी कैसे? प्रह्लाद ने किसी का प्रयोग दोहराया नहीं था। वह कोई परीक्षण नहीं कर रहा था परमात्मा का। परीक्षण का मतलब यह है कि सन्देह मौजूद है। वह तो अपने को छोड़ रहा था। उसको कोई पता ही नहीं था, वह तो मानता था कि यही होगा, इससे अन्यथा होने का कोई सवाल नहीं है। यह जो पूर्ण भरोसा है, आस्था है, वह आग से बचा सकती है।

लेकिन जीसस की स्थिति बिलकुल भिन्न है। जीसस सूली से नहीं बच सकते हैं, यह सवाल नहीं है। लेकिन अगर आप ठीक से समझें, तो जो लोग जीसस को गहराई से जानते हैं, वे मानते हैं कि सूली पर चढ़ाने का आयोजन जीसस का ही था। यह व्यवस्था जीसस की ही थी। जीसस चाहते थे कि उनको सूली पर चढ़ा दिया जाये। यह जीसस की योजना का हिस्सा था। प्रह्लाद और मीरा के पास कोई योजना नहीं थी। जीसस के पास एक विराट योजना थी। इसलिए प्रह्लाद को मानने वाले कितने लोग हैं? और मीरा के पीछे चलने वाले कितने लोग हैं?

जीसस ने आधी दुनिया को ईसाई बना दिया। उसके पीछे एक विराट योजना है। जीसस के पास एक ख्याल है जगत के रूपान्तरण करने का। और जीसस को यह बात साफ दिखाई पड़ गई थी कि जो मैं कह रहा हूँ, अगर मैं सूली पर लटका दिया जाऊं, तो मेरा कहा हुआ, मनुष्य के हृदय पर सदा के लिए अंकित हो जायेगा। सूली तो खेल थी, क्योंकि जीसस को कोई मरने का सवाल ही नहीं है। जीसस के लिए सूली तो खेल थी। लेकिन इस खेल का उपयोग किया जा सकता है। वह प्लान्ड था। यह जीसस का पूरा का पूरा खेल सुनियोजित था। इसमें लोग सोचते हैं कि जीसस के दुश्मनों के हाथ में जीसस पड़े। जो जानते हैं, वे समझते हैं कि जीसस के हाथ में उसके दुश्मन पड़े गए। वे समझ नहीं पाए कि हो क्या रहा है?

जीसस के ही एक शिष्य जुडास ने खबर दी दुश्मनों को। लोग समझते हैं कि जुडास जीसस का दुश्मन था। ऐसा नहीं है, वह जीसस का गहरे से गहरा अनुयायी था, और उस सीमा तक अनुयायी था कि जीसस ने उसे आज्ञा दी कि तू मुझे सूली पर लटकवाने का इन्तजाम कर दे, तो उसने वह इन्तजाम भी कर दिया। वह आज्ञा जो थी, उसे पूरा करना था। इसलिए जिस क्षण जुडास जीसस को छोड़के जा रहा है, दुश्मन को खबर देने, उस समय जीसस ने उसके पैर छुए, और उसे चूमा। लोग सोचते हैं कि यह दुश्मन के प्रति प्रेम का कारण था। यह नहीं है मामला। जो गहरी कथा है, वह कुछ और है। जुडास ही उनमें सबसे ज्यादा समझदार शिष्य था। और आपको पता नहीं, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उस दिन बाकी शिष्य तो भाग गये, लेकिन जुडास ने आत्महत्या कर ली, उसने अपने को सूली पर खुद लटका दिया। लोग सोचते हैं कि पश्चात्ताप में ऐसा किया, कि मैंने फंसा दिया जीसस को, मैंने सूली लगवा दी। नहीं, उसका प्रेम गहरा था, बहुत आन्तरिक था। वह इस सीमा तक था कि अगर जीसस कहें कि सूली पर लटकवाना है मुझे, तो वह इसका भी इन्तजाम करेगा। लेकिन प्रेम के लिए बड़ी कठिनाई है। वह इन्तजाम भी उसने किया और अपने को सूली पर भी लटका लिया। क्योंकि अब रहने का कोई अर्थ न था।

वह योजनाबद्ध था, जीसस सूली पर लटकना चाहते थे, क्योंकि सूली पर लटकने से

ही वह घटना घटेगी, जो लोगों के जीवन को रूपान्तरित कर देगी। इसलिए जीसस से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रतीक ईसाइयत के लिए क्रास है। जीसस की मूर्ति नहीं लटकाते हृदय पर, क्रास लटकाते हैं। क्योंकि क्रास के कारण ही, सूली के कारण ही ईसाइयत का जन्म हुआ।

एक बहुत गहरा ईसाई सन्त हुआ सोरेन कीर्कगार्ड, उसने तो क्रिश्चियनिटी को कहा हैं; क्रिश्चियनिटी नहीं कहना चाहिए, क्राश्चियानिटि कहना चाहिए। इसको ईसाइयत नहीं कहना चाहिए, यह तो सूली पर निर्भर है। इसलिए क्रास ज्यादा महत्त्वपूर्ण है क्राइस्ट की बजाय। क्राइस्ट तो बन ही सके क्राइस्ट, जिस दिन वे सूली पर लटके। इसलिए सूली पर लटकाया हुआ चित्र ही जीसस का, सबसे ज्यादा प्यारा हो गया है। यह एक ऐतिहासिक आयोजन था।

सुकरात की मनोदशा और भी भिन्न है। तुलना कभी करनी नही चाहिए। तुलना मैं कर भी नहीं रहा हूँ। मै सिर्फ उनकी व्यक्तिगत खूबी की बात कह रहा हूँ, कि किसलिए ऐसा हुआ। सुकरात से कहा गया था कि तू अगर प्रवचन देना बन्द कर दे, बोलना बन्द कर दे, तो हम तुझे मुक्त कर देते हैं। न्यायाधीशों ने कहा था कि तू अगर बोलना बन्द कर दे तो हम तुझे मुक्त कर देते हैं। लेकिन सुकरात ने कहा कि अगर मैं बोलना बन्द कर दूं तो मेरे होने का प्रयोजन ही क्या है? मेरे होने का एक ही अर्थ है कि मैं सत्य को कहूं। मेरा होना अर्थात् सत्य का कहना, ये दोनों एक ही बात हैं। तो तुम ऐसा मत करो। या तो तुम मुझे सत्य को बोलने दो, तो मुझे जीने दो; या फिर तुम मुझे सत्य बोलने से रोकते हो तो बेहतर है कि तुम मुझे मार ही डालो, तुम मुझे जहर दे ही दो। क्योंकि अगर तुम मुझे जहर दे देते हो, तो याद रखना मैं कभी न मरूंगा। तुम्हारे जहर के कारण मैं सदा के लिए अमर हो जाऊंगा। और तुम्हें भी लोग अगर याद करेंगे तो सिर्फ इसलिए—तुम्हारा नाम याद रहेगा कि तुमने सुकरात को जहर दिया था। तुम्हारा पूछने वाला भी कोई और न होगा। इसी कारण तुम्हारा नाम लिया जायेगा कि तुमने सुकरात को जहर दिया था। लेकिन एक बात सुकरात ने कहा कि साफ हो जानी चाहिए कि सत्य मुझे जीवन से भी ज्यादा प्रिय है। मेरे लिए मृत्यु का कोई मूल्य नहीं हैं, सत्य का मूल्य है। सत्य के लिए मैं मृत्यु स्वीकार कर सकता हूँ।

और जो सत्य के लिए मृत्यु स्वीकार कर सकता है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

जब तक तुम सत्य के लिए मृत्यु स्वीकार न कर सको, तब तक सत्य का कोई मूल्य नहीं है। सत्य जब परम साध्य है, जिसके लिए हम जीवन भी खो सकते हैं, तभी सत्य है। तो सुकरात जो कह रहा था, उसको उसने आचरण में उतार दिया। सुकरात मर रहा है, जहर तैयार किया जा रहा है, वह जो जहर तैयार कर रहा है, वह धीरे-धीरे

तैयार करता है, क्योंकि वह भी सुकरात को प्रेम करने लगा है। जेल में सुकरात था, वह आदमी ऐसा था, कि उसके पास जो भी रहता, वह उसे प्रेम करने लगता। जेलर भी उसको प्रेम करने लगा, वह धीरे-धीरे पीस रहा है जहर को, ताकि जितनी देर सुकरात जी सके, उतना अच्छा है। जितनी देर पृथ्वी पर ऐसा फूल खिला रह जाये उतना अच्छा है। तो सुकरात उससे कहता है, लेकिन तू देर लगा रहा है, तू अपने कर्तव्य से च्युत हो रहा है। मालूम पड़ता है तू मेरे प्रति लगाव और आसक्ति से भर गया है। यह उचित नहीं है, तेरा जो काम है, उसे तू पूरा कर। जल्दी जहर तैयार कर, छः बजने के करीब हो गये और ठीक छः बजे तुझे जहर ले आना है। तो वह जहर पीसने वाला कहता है, तुम कैसे पागल हो सुकरात! मैं थोड़ी देर लगा रहा हूँ कि तुम थोड़ी देर और जी लो, और तुम्हें इतनी जल्दी क्या है?

तो सुकरात कहता है, जीवन को मैंने जान लिया, मृत्यु को जानने का मन है। सुकरात है खोजी। ऐसा खोजी जमीन पर दूसरा नहीं हुआ। सुकरात कोई भक्त नहीं है। सुकरात है खोजी, अन्वेषक। वह कहता है कि मृत्यु के साथ आंखें मिलाने का मन है। मृत्यु को देखना चाहता हूँ कि मृत्यु कैसी है। कोई कहता है, सुकरात तुम घबरा नहीं रहे हो; मौत करीब है, तुम घबरा नहीं रहे हो? तो सुकरात कहता है कि मुझे पता नहीं कि मैं बचूंगा या नहीं, इसलिए घबराने का कोई कारण नहीं है। अगर मुझे पता हो कि मैं बचूंगा, तब भी घबराने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि मैं बचूंगा। और अगर मुझे पता हो कि मैं बचूंगा नहीं, तब तो घबड़ाने की कोई बात ही नहीं है, क्योंकि जो बचेगा ही नहीं, वह घबड़ाएगा क्या? और मुझे कुछ पता नहीं, मैं अपनी मृत्यु में प्रवेश करूंगा और जानूंगा। सुकरात कहता है, जो मुझे पता नहीं, उसके सम्बन्ध में मैं कुछ भी न कहूंगा।

ज्ञान की ऐसी सहज खोज पक्षपात-रहित बड़ी मुश्किल है। मीरा का भाव है, जीसस का भाव है; सुकरात की खोज है। सुकरात कहता है कि मुझे पता नहीं है। ध्यान रहे, आपको अगर भरोसा है कि आत्मा अमर है, तो निर्भय मरना आसान है। लेकिन सुकरात की निर्भयता अनूठी है, वह कहता है कि मुझे पता नहीं कि आत्मा अमर है, यह तो मैं मरके ही जानूंगा। इसके पहले जाना कैसे जा सकता है? मैं तो गुजरूंगा अनुभव से और जानूंगा। अगर मर जाऊंगा, तब तो डर का कोई कारण ही नहीं है; क्योंकि मर ही गया, डरेगा कौन? दुखी कौन होगा? पीड़ित कौन होगा? अगर बचूंगा, तब भी डर का कोई कारण नहीं, क्योंकि बच ही गया। तो सुकरात कहता है, दोनों हालत में मृत्यु से डरना फिजूल है। अगर तुम आस्तिक हो, तो भी फिजूल है, क्योंकि तुम बचोगे। अगर तुम नास्तिक हो तो भी फिजूल है, क्योंकि तुम बचोगे ही नहीं। तो किसके लिए चिन्ता, किसके लिए दुःख?

फिर उसे जहर लेके आया देने वाला, तो उसका हाथ कांप रहा है। सुकरात जैसे आदमी को जहर देने में हाथ कंपेगा ही। तो सुकरात कहता है कि हाथ कंपना नहीं चाहिए, तुम जो कर रहे हो, उसे निष्कम्प करो। हाथ मत कंपाओ, क्योंकि जब मैं नहीं डर रहा हूँ मरने से, तो तुम क्यों डर रहे हो; मेरी तरफ देखो! सुकरात बूढ़ा है, लेकिन अपने हाथ में जहर का प्याला लेता है, तो हाथ कंपता नहीं। वह जहर पी लेता है, वह लेट जाता है। उसके सारे शिष्य रो रहे हैं तो वह कहता है, रोओ मत, क्योंकि अभी तो मैं जिन्दा हूँ। रोना तो तुम पीछे भी कर सकते हो, इतनी जल्दी क्या है! अभी तो यह मृत्यु मेरे ऊपर आ रही है, उसका तुम दर्शन कर लो, शायद इससे तुम्हें कुछ बोध हो। और फिर सुकरात बोलता जाता है कि मेरे पैर ठण्डे पड़ गये, लगता है पैर मर गये। फिर मेरी जांघें ठण्डी हो गईं, लगता है मेरी जांघें मर गईं। वह कहता जाता है कि मृत्यु ऊपर की तरफ सरक रही है, लेकिन एक आश्चर्य है कि मेरा अपना होने का भाव पूरा का पूरा है। आधा शरीर जड़ हो गया है, लेकिन मेरे होने का भाव, अब भी पूरा का पूरा है, उसमें से रत्ती भर नहीं कटा। मैं अब भी अपने भीतर अपने को उतना ही अनुभव करता हूँ, जितना पहले अनुभव करता था। फिर उसके हाथ भी ढीले पड़ गये। फिर वह कहता है, अब मेरे हृदय की धड़कन भी डूबती जाती है। फिर वह कहता है कि मेरे ओंठ शिथिल होते जा रहे हैं, शायद अब मैं उसके आगे न बोल सकूंगा, इसलिए आखिरी वचन मेरा याद रखना कि अभी तक मैं पूरा का पूरा जिन्दा हूँ। इसलिए लगता है कि जब पूरा शरीर भी...जब इतना शरीर मरने के करीब हो गया और मैं पूरा का पूरा हूँ, तो शायद पूरे शरीर के मरने के बाद भी मैं नहीं मरूंगा। लेकिन यह भी अभी खोज है, अभी मैं कुछ कह नहीं सकता।

यह अलग तरह का व्यक्तित्व है। पर इनको तौलना मत। इन्हें छोटा बड़ा करने की कोशिश भी मत करना, वह क्षुद्र मन के लक्षण हैं। ये सब अलग शिखर हैं। हिमालय पर बहुत शिखर हैं, हर शिखर का अपना सौन्दर्य है। मनुष्य चेतना में भी बहुत शिखर उठते हैं, हर शिखर का अपना सौंदर्य है। और अच्छा ही है कि एक से शिखर नहीं हैं, नहीं तो ऊब और बोरियत पैदा हो जाये। बहुत सी मीराएं हों, तो कोई मतलब की नहीं रह जायेंगी। और बहुत प्रह्लाद हों, गांव-गांव में हों, तो वह कूड़े-करकट की तरह हो जायेंगे। बहुत सुकरात चाहिए भी नहीं। और हर आदमी को ख्याल रखना चाहिए कि वह स्वयं होने को पैदा हुआ है। और जिस दिन वह शिखर को छुएगा, तो उस जैसा आदमी न कभी पहले हुआ है और न फिर कभी होगा, वह अनोखी घटना है।

जगत मौलिक को प्रेम करता है; उधार, कार्बन-कापियां उनका जगत में कोई मूल्य नहीं है।

एक और मित्र ने पूछा है कि कल नव-संन्यास अन्तरराष्ट्रीय की बैठक में वक्तव्य दिया गया कि हमारा भरोसा फ्री सैक्स, स्वतन्त्र यौन में है। क्या आप इससे सहमत हैं?

मेरा भरोसा न तो स्वतन्त्र यौन में है और न परतन्त्र यौन में है। इस तरह के भरोसे की कोई जरूरत भी नहीं है। यौन निजी और व्यक्तिगत बात है, उसके सम्बन्ध में कोई भी दृष्टिकोण रखना ओछेपन का सबूत है। आप नहीं पूछते कि भोजन के सम्बन्ध में आपका क्या दृष्टिकोण है? स्नान के सम्बन्ध में आपका क्या दृष्टिकोण है? स्वतन्त्र स्नान, कि परतन्त्र स्नान? पूछेंगे तो आप भी लगेगी, कि मूढ़ हैं। यौन के सम्बन्ध में क्यों पूछते हैं? निजी बात है। एकदम निजी है, किसी के दृष्टिकोण का कोई सवाल नहीं है।

समाज है परतन्त्र यौन में भरोसा रखने वाला, कि यौन के चारों तरफ दीवाल खड़ी करो, कानून खड़े करो, पुलिस और अदालत खड़ी करो। यौन के सम्बन्ध में व्यक्ति को स्वयं का निर्णय मत लेने दो। इसके विपरीत, इसकी प्रतिक्रिया में इसके रिएक्शन में कुछ लोग हैं, वे कहते हैं स्वतन्त्र यौन चाहिए, कोई बाधा न डाल सके। कोई किसी तरह का नियम न बना सके। स्वच्छंदता चाहिये। यह प्रतिक्रिया है दूसरी भी। और दूसरी अति पर ले जाती है।

मेरी अपनी दृष्टि यही है कि हमें यौन को स्वाभाविक मानना चाहिए, और उसके सम्बन्ध में कोई दृष्टि नहीं लेनी चाहिये। दृष्टि लेते ही सब चीजें अस्वाभाविक हो जाती हैं। एक-एक व्यक्ति की अपनी समझ है, उसे अपने जीवन का भाव, बोध, मार्गदर्शक बनाना चाहिए। और मैं छोटी-छोटी बातों में मार्गदर्शन नहीं देता, क्योंकि मेरी मान्यता ऐसी है कि अगर आपके पास बुद्धि हो, ध्यान हो, थोड़ी प्रज्ञा का विस्तार हो, तो अपनी छोटी-छोटी बातों के सम्बन्ध में आप खुद ही निर्णय ले सकेंगे। और अगर एक-एक बात के सम्बन्ध में आप मेरे निर्णय पर निर्भर हैं, तो उसका अर्थ हुआ कि मैं आपको अन्धे की तरह, हाथ पकड़के सहारा दे रहा हूँ। मैं कब तक सहारा दे सकता हूँ? कौन आपको सहारा दे सकता है?

एक अन्धा आदमी मेरे पास आता है और पूछता है कि रास्ता बाएं की तरफ है, कि दाएं की तरफ है। मैं स्टेशन की तरफ जाऊं, तो कहां मुड़ूं? और नदी की तरफ जाऊं तो कहां मुड़ूं? अगर मैं उसको यह सब विस्तार में मार्गदर्शन दूं, तो भी वह अन्धा ही रहेगा। और हो सकता है कि कुछ रास्तों पर मजबूती से चलना सीख जाये। लेकिन जगत में बहुत रास्ते हैं, और रास्ते रोज बदल जाते हैं। कभी नदी जाना है, कभी स्टेशन जाना है, और कभी इस गांव में और कभी किसी गांव में। रोज परिस्थितियां बदलती हैं, रोज रास्ते बदलते हैं, रोज गांव बदल जाते हैं। तो मैं अन्धे को कहूंगा, तू रास्ते मुझसे मत पूछ, तू मुझसे आंख का इलाज पूछ। तेरी आंख ठीक हो जाये, तो तू कहीं भी होगा, रास्ता खोज लेगा।

ध्यान को मैं आंख कहता हूँ, आपके जीवन की।

मुझसे क्षुद्र बातों के सम्बन्ध में मत पूछें। मुझसे लोग कहते हैं कि क्या खायें? क्या न पियें? ये सब व्यर्थ की बातें मुझसे मत पूछें। आपके पास देखने की खुद की आंख होनी चाहिए। वह आपको कहेगी कि क्या खायें और क्या न खायें। मेरे कहने से कुछ भी न होगा। अगर मैं कह भी दूं कि यह मत खायें, यह मत पियें, तो भी अगर आप अन्धे हैं और अन्धेरे से भरे हैं और ध्यान की क्षमता नहीं है, तो आप तरकीबें निकाल लेंगे।

बुद्ध से लोगों ने पूछा कि हम मांसाहार करें या न करें? तो बुद्ध ने कहा, कि हत्या करना, हिंसा करना बुरा है, तो तुम किसी पशु पक्षी को मारके मत खाना। तो पता है आपको—सारे बौद्ध मांस खाते हैं, लेकिन वे कहते हैं, हम मरे हुए का, अपने आप मरे हुए का खाते हैं। बुद्ध ने कहा कि हिंसा पाप है, तुम मारके कुछ मत खाना। उसमें से तरकीब निकाल ली कि जो गाय अपने आप ही मर गई, अब उसको तो खाने में कोई हर्ज नहीं। क्योंकि बुद्ध ने यह तो कहा नहीं कि अपने आप मरे हुए को मत खाना। तो चीन और जापान मे होटलों पर...जैसे हिंदुस्तान में लगा रहता है, यहा शुद्ध घी बिकता है। जहा लिखा है, उसका मतलब ही साफ है, घी काफी है, शुद्ध होने की क्या जरूरत है? लेकिन शुद्ध है तो साफ ही है कि शुद्ध नहीं है। जापान और चीन में तख्ती लगी रहती है कि यहां मरे हुए जानवर का मांस मिलता है, अपने आप मरे हुए! इतने जानवर कैसे अपने आप मरते हैं, यह बड़ा मुश्किल है। पूरा मुल्क मांसाहार करता है। तरकीब है। तुम निकाल ही लोगे। तुम्हे जो करना है, तुम करोगे ही, क्योंकि तुम्हारा जो अन्धेरा है, वहां से तुम्हारा करना निकलता है। उसमें बचने का कोई बहुत उपाय नहीं है।

जैन हैं, तो महावीर ने कहा है कि किन्हीं दिनों में, पर्व और धर्म के दिनों मे, तुम, हरी शाक-सब्जी, ताजी शाक सब्जी मत खाना। तो जैन सुखाकर रख लेते हैं पहले से, फिर सूखी शाक-सब्जी खा लेते हैं!

और मजे की तो हद हो गई। एक घर में मै मेहमान था। पर्यूषण के दिन थे। वे तो मुझे केला देने ले आए। तो मैंने कहा कि आप लोग केला खाते हैं पर्यूषण में? पर उन्होंने कहा, लेकिन यह तो हरा नहीं है, पीला है; हरियाली के लिए मनाई है। तुम महावीर को भी धोखा दे दोगे। तुम धोखा दे ही सकते हो, तुम और कुछ नहीं कर सकते हो। तुम जैसे हो, वहां से तुम गलत को खोज ही लोगे, क्योंकि तुम गलत हो।

अगर मैं कहूं परतन्त्र यौन के पक्ष में हूँ, तो तुम उसमें तरकीबें निकालोगे। अगर मैं कहूं स्वतन्त्र यौन के पक्ष में हूँ, तो तुम तत्काल उसमें तरकीबें निकालोगे। लेकिन तरकीबें तुम्हीं निकालोगे। तो मैं तुमसे नहीं कहता कि मैं किस पक्ष में हूँ, किसी पक्ष में

नहीं हूँ। मैं तो तुम्हारी आंख के पक्ष में हूँ। तुम्हारी आंख खुलनी चाहिए, तुम्हारा बोध बढ़ना चाहिए। फिर तुम्हारा बोध ही निर्णायक होगा, कि तुम्हें जो करना हो, तुम करना। बोधपूर्वक करना, जो भी तुम करो। होशपूर्वक करना, विवेकपूर्वक करना, तुम जो भी करो, तो तुम्हारे जीवन में मार्ग खुलेगा।

मेरी बात को ठीक से समझ लेना। मैं किसी विस्तार में, मार्ग-निर्देश देने के जरा भी पक्ष में नहीं हूँ। क्योंकि सभी मार्ग-निर्देश अगर विस्तार में दिये जाएं तो परतन्त्र करते हैं, क्योंकि फिर तुम उन्हें मानके चलोगे। और जब भी कोई चीज परतन्त्र करती है तो तुम उसमें से छूटने का उपाय भी निकालते हो। तो तुम छूटने का उपाय भी निकाल लोगे।

तो मैं तुम्हें न तो बांधता हूँ और न तुम्हें छूटने का उपाय निकालने को मजबूर करता हूँ। मैं तो तुम्हें तुम्हारी आंख देना चाहता हूँ, जो तुम्हारे रास्ते को साफ करेगी। फिर तुम्हें जैसा ठीक लगे, तुम चलना। अगर तुम गलत चलोगे तो तुम उसका फल भोगोगे और अगर तुम ठीक चलोगे तो तुम उसका फल भोगोगे। अगर तुम्हें दुःख में पड़ना है तो तुम गलत चलोगे। फिर मैं कौन हूँ कि तुम्हें दुःख में पड़ने से रोकूं। क्योंकि वह भी तुम्हारी स्वतन्त्रता पर बाधा होगी। फिर अगर तुम ठीक चलोगे, तो तुम उसका आनन्द भोगोगे। यह तुम्हारे ऊपर निर्णय है कि तुम्हें साफ-साफ दिखाई पड़ने लगे कि कार्य-कारण का सम्बन्ध क्या है? तुम्हें साफ-साफ दिखाई पड़ने लगे कि मैं क्या करता हूँ, उससे दुःख मिलता है और क्या करता हूँ, उससे आनन्द मिलता है। फिर तुम्हारा मार्ग साफ है। आनन्द की खोज तुम्हारी है। तुम अपनी आंख का उपयोग करके, उस मार्ग पर चलते जाना। और सदा के लिए ख्याल रखना कि क्षुद्र बातों में मुझसे कोई मार्ग-दर्शन मत मांगना। और अगर कोई गुरु तुम्हें क्षुद्र बातों में मार्ग-दर्शन देता है, तो वह गुरु ही नहीं है, वह सिर्फ तुम्हें बांध रहा है और गुलाम कर रहा है।

अब हम सूत्र को लें।

बारहवां सूत्र : पूछो अपने ही अन्तरतम उस एक से, जीवन के परम रहस्य को, जो कि उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है।

जीवात्मा की वासनाओं को जीत लेने का बड़ा और कठिन कार्य युगों का है। इसलिए उसके पुरस्कार को पाने की आशा, तब तक मत करो, जब तक युगों के अनुभव एकत्रित न हो जायें। जब इस बारहवें नियम को सीखने का समय आता है, तब मानव मानवेतर (अतिमानव) अवस्था की ड्योढ़ी पर पहुंच जाता है।

जो ज्ञान अब तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह इसी कारण तुम्हें मिला है कि तुम्हारी आत्मा सभी शुद्ध आत्माओं से एक है और उस परम तत्व से एक है। यह ज्ञान तुम्हारे पास

उस सर्वोच्च की धरोहर है, इसमें भी यदि तुममें विश्वासघात करो, या उस ज्ञान का दुरुपयोग करो, या उसकी अवहेलना करो, तो अब भी सम्भव है कि तुम जिस उच्च पद पर पहुंच चुके हो, उससे नीचे गिर पड़ो। बड़े पहुंचे हुए लोग भी अपने दायित्व का भार न सम्हाल सकने के कारण और आगे न बढ़ सकने के कारण ड्योढ़ी से गिर पड़ते है और पिछड़ जाते हैं। इसलिए इस क्षण के प्रति श्रद्धा और भय के साथ सजग रहो और युद्ध के लिए तैयार रहो।

पूछो अपने ही अन्तरतम उस एक से, जीवन के परम रहस्य को, जो उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है।

पूछो पृथ्वी से, पूछो वायु से, पूछो आकाश से, जल से—लेकिन वे तुमसे बाहर हैं और उन्होंने जो भी छिपा रखा है, वह तुमसे बाहर की घटना है। वे तुम्हें बुद्धों के सम्बन्ध में बता सकेंगे, तीर्थंकरों के सम्बन्ध मे, क्राइस्टों, कृष्णों के सम्बन्ध में बता सकेंगे, लेकिन असली रहस्य तो तुम्हारे भीतर ही छिपा है।

तुम्हारा अन्तरतम अनन्त से यात्रा कर रहा है। अनन्त उसके अनुभव ह। तुम क्या नहीं रहे हो ? तुम कभी पत्थर थे, कभी तुम पौधे थे, कभी तुम पक्षी थे, कभी तुम पशु थे, कभी तुम स्त्री थे, कभी तुम पुरुष थे, कभी तुम साधु थे और कभी तुम चोर थे। ऐसा कोई भी अनुभव नहीं है, जो तुम्हें नहीं हो चुका है। ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जिससे तुम पार नहीं हुए हो। तुमने नर्क भी जाने हैं, तुमने स्वर्ग भी। तुमने दुःख भी, तुमने सुख भी। तुमने पीड़ाओं का संताप झेला है, और आत्म-हत्याएं की हैं। और तुमने विनाश भी किया है, हिंसाएं की हैं। तुमने सृजन का सुख भी जाना है। तुमने जन्म भी दिया है, तुमने निर्माण भी किया है, तुमने बनाया भी है। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो तुमसे न गुजर गया हो, जिससे तुम न गुजर गये हो। तुम्हारे अन्तरतम में वह धरोहर सुरक्षित है। तुमने जो भी जिया है, और जो भी जाना है, और जो भी किया है, उस सबका सार संचित है। उस सारे अनुभव का निचोड़ तुम्हारे ज्ञान में छिपा है। इससे भी तुम पूछो, इसको भी तुम खोलो। इसके खुलते ही तुम्हें जीवन का सारा रहस्य खुल जाएगा। क्योंकि तुम जीवन को जिये हो, तुम स्वयं जीवन हो।

ऐसा कुछ भी नहीं है इस जगत में जो अपरिचित हो तुम्हें। लेकिन तुम भूल-भूल गये हो और हर नये शरीर के साथ तुमने नया अहंकार निर्मित कर लिया है। और हर नये अहंकार के साथ तुम्हें विस्मृति हो गई है अतीत की। तुम्हें ख्याल नहीं रहा कि पीछे क्या हुआ है ? इसलिए तुम भूलते चले गये अपनी ही धरोहर को। तुमने ही जो सचित किया है, उसका भी तुम उपयोग नहीं कर पाते हो। और इसलिए तुम बार-बार वही भूलें दोहराते हो, जिनका तुम बहुत बार कर चुके हो।

महावीर निरन्तर अपने शिष्यों को जाति-स्मरण का आग्रह करते थे। वे कहते थे, पहले तुम पिछले जन्मों का स्मरण करो। उन्होंने इसे अपनी पद्धति का आधारभूत बना रखा था। वे कहते थे, जब तक तुम्हें याद न आ जाये पिछला जन्म, तब तक तुम वही भूलें दोहराओगे, जो तुम अभी दोहरा रहे हो। क्योंकि तुम भूल ही जाते हो कि तुम यह काम कर चुके हो। तुमने बहुत बार धन इकट्ठा किया है, यह कोई पहला मौका नहीं है। और बहुत बार धन इकट्ठा करके तुम असफल हुए हो और फिर तुम वही कर रहे हो। तुमने बहुत बार मकान बनाये हैं और वे उजड़ गये हैं, और आज उनका कोई नामो-निशान नहीं है। लेकिन तुम फिर बड़े मकान बना रहे हो, और फिर तुम सोच रहे हो कि ये मकान सदा रहेंगे, और जैसे कि तुम सदा इन मकानों में रहोगे। तुमने पहले भी स्त्रियों को और पुरुषों को प्रेम किया है, और सब प्रेम व्यर्थ गये हैं, और तुमने कुछ उपलब्ध नहीं किया है। लेकिन तुम फिर वही कर रहे हो और तुम सोच रहे हो जैसे जीवन की सम्पदा स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध से उपलब्ध हो जायेगी। तुमने पहले भी बच्चे पैदा किये हैं, तुमने पहले भी उन्हें बड़ी महत्त्वाकांक्षा से बड़ा किया था और वे सब व्यर्थ गये हैं, उन्होंने तुम्हें कभी तृप्त नहीं किया है। क्योंकि जो स्वयं को तृप्त नहीं कर पाता, उसे कोई दूसरा कैसे तृप्त कर सकेगा? लेकिन तुम फिर-फिर वही कर रहे हो। तुम चक्के की तरह घूम रहे हो, जिसके आरे बार-बार नीचे जाते हैं और बार-बार ऊपर आ जाते हैं, और चाक घूमता चला जाता है। हर बार जब तुम्हारा कोई आरा ऊपर आता है, तो तुम सोचते हो कि कोई नई घटना घट गई है। लेकिन तुम अनन्त बार उन घटनाओं से गुजर चुके हो। तो महावीर कहते थे कि तुम पीछे लौट जाओ, थोड़ा स्मरण कर लो अपने पिछले जन्मों का। तो फिर तुम उन भूलों को दोबारा न दोहराओगे। तब तुम समझोगे कि तुम जो कर रहे हो, वह पुनरुक्ति है। पुनरुक्ति व्यर्थ है, उसका कोई अर्थ नहीं है।

लेकिन तुम्हारे भीतर सब छिपा है। सब छिपा है, कुछ भी खोता नहीं। जो भी तुम्हारे ज्ञान में एक बार आ गया है, वह तुम्हारा हिस्सा हो गया है। यह तो है ही, इससे भी बड़ी चीज तुम्हारे भीतर छिपी है, और वह है इस जगत का प्रारम्भ। क्योंकि तुम प्रारम्भ में साक्षी थे। यह सृष्टि जब शुरू हुई, तब तुम साक्षी थे, क्योंकि तुम कभी शुरू नहीं हुए। तुम उसका हिस्सा हो, जो कभी शुरू नहीं होता। सृष्टियां बनती हैं और विलीन हो जाती हैं। सृष्टियां आती हैं, समाप्त हो जाती हैं। लेकिन तुम उस चैतन्य के हिस्से हो, तुम उस चैतन्य की किरण हो, जो सृष्टि के बनने के क्षण में मौजूद होती है, जो सृष्टि को बनाती है कहना चाहिए। और जब सृष्टि विसर्जित होती है, तब भी साक्षी होता है। चैतन्य कभी नष्ट नहीं होता। उस परम-चैतन्य के तुम हिस्से हो। तुम्हें सृष्टि के जन्म का क्षण भी मालूम है, क्योंकि तुमने ही इसे जन्म दिया है,

तुम भागीदार थे। वह तुम्हारे गहरे अन्तरतम में छिपी है घटना। तुम लोगों से पूछते फिरते हो कि जगत को किसने बनाया है? तुम्हें पता ही नहीं कि तुम भी भागीदार हो जगत को बनाने में।

लेकिन यह तो तुम भीतर प्रवेश करोगे, तो ही जान सकोगे। तुम्हारे भीतर जगत का अन्त भी छिपा है। क्योंकि यह कथा तुमने ही लिखी है। इस कहानी के निर्माता तुम्हीं हो। इस सारी लीला के तुम भागीदार हो। यह परम गुह्य रहस्य भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। तुम मृत्यु से भयभीत होते हो, क्योंकि तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे भीतर अमृत का केन्द्र है। तुम डरते हो, कंपते हो, क्षुद्र बातों से; जब कि कुछ भी तुम्हें कंपा नहीं सकता, कुछ भी तुम्हें डरा नहीं सकता, क्योंकि कुछ भी तुम्हें मिटा नहीं सकता। लेकिन वह तुम्हारे भीतर छिपा है।

यह सूत्र कहता है, पूछो अपने ही अन्तरतम उस एक से, जीवन के परम रहस्य को, जो कि उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है।

अपने से ही पूछो।

महर्षि रमण ने अपनी साधना पद्धति को इस एक सूत्र पर ही खड़ा किया था। वे कहते थे कि एक ही साधना है कि पूछो मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ? वे कहते थे सारी शक्ति लगाकर, सारी प्राण-ऊर्जा को समर्पित करके, रोआं-रोआं, श्वांस-श्वांस एक ही सवाल भीतर पूछो—मैं कौन हूँ? और पूछते ही चले जाओ और उत्तर मत देना, क्योंकि तुम्हारे दिए उत्तर सब झूठे होंगे। उत्तर को आने देना, तुम मत देना, क्योंकि तुम बहुत जल्दी उत्तर भी देते हो। तुम्हारे जल्दी में दिए उत्तर सब झूठे होते हैं, क्योंकि तुम्हारे उत्तर प्रश्न के पहले ही तुम्हारे ख्याल में हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम पूछते हैं—मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ? फिर उत्तर आता है कि मैं आत्मा हूँ, मैं परब्रह्म हूँ। इतनी जल्दी नहीं आता उत्तर। यह किसी किताब में तुमने पढ़ा है, यह किसी शास्त्र से तुमने सीखा है। और यह तो तुम्हे पूछने के पहले ही पता है। बड़ा मजा यह है, फिर पूछने की जरूरत ही नहीं है, तुम पूछ क्यों रहे हो? किससे पूछ रहे हो? यह तुम्हें मालूम ही है कि मैं आत्मा हूँ! पूछना क्या है अगर मालूम है! नहीं, तुम्हारी स्मृति से दिए उत्तर काम के न होंगे। तुम्हारी खोपड़ी से आये उत्तर काम के न होंगे। तुम्हारे अन्तरतम से उत्तर आयेगा, वह बहुत भिन्न है। वह तुम्हें सुनाई पड़ेगा कि कोई और बोल रहा है, तुम नहीं। यह फर्क साफ होगा। पूछ रहे हो तुम, बोल रहा है कोई और! वह वाणी तुम्हारी नहीं होगी, वे शब्द तुम्हारे नहीं होंगे, वह ध्वनि तुम्हारी नहीं होगी। वह सब तरफ से अपरिचित होगा।

इसलिए तो फकीरों ने, सूफियों ने, भक्तों ने कहा है कि हमने पूछा और परमात्मा

ने उत्तर दिया। कोई परमात्मा उत्तर नहीं दे रहा है। तुम्हारा अन्तरतम ही उत्तर देता है, क्योंकि वहां तुम ही परमात्मा हो। लेकिन वाणी इतनी अपरिचित होती है, जो तुमने कभी नहीं सुनी। तुम्हारे शब्दों से उसका कोई मेल नहीं होता, तुम्हारे ओठों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। तुम्हारे कंठ से वह आती ही नहीं है। तुम्हारी स्मृति, तुम्हारी बुद्धि से उसका कोई लेना-देना नहीं है। वह बहुत दूर से आती मालूम पड़ती है, बहुत पार से आती मालूम पड़ती है। इसलिए सबको लगा है कि किसी और ने उत्तर दिया है। कोई और उत्तर नहीं देता है। उत्तर तो तुम्हारी ही अंतर-आत्मा से आता है। लेकिन तुम्हारी आत्मा तुमसे इतनी दूर हो गई है, तुम इतने दूर हो गये हो उससे, तुम दूर हटते-हटते इतने फासले पर आ गये हो, कि अपना ही उत्तर, किसी और का उत्तर मालूम पड़ता है।

पूछना मैं कौन हूँ, लेकिन उत्तर मत देना। अपनी सारी शक्ति लगाना पूछने में, उत्तर के लिए जरा भी मत बचाना। क्योंकि तुम्हारे उत्तर का कोई भी मूल्य नहीं है। तुम्हारा उत्तर या तो पढ़ा हुआ होगा, या तो सुना हुआ होगा, ऋषियों-मुनियों से, शास्त्रों से; संस्कारों से आया हुआ होगा। वह तुम्हारे ऊपर बाहर से आई धूल है, उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम तो पूछना इस तरह कि तुम्हारे पास उत्तर ही न बचे। तुम्हारे पूछने की प्रक्रिया में तुम्हारे सब उत्तर गिर जाएं, और सिर्फ प्रश्न रह जाएं। और जिस दिन तुम्हारे पास सिर्फ प्रश्न होगा, उस दिन तुम्हारा प्रश्न तीर की तरह भीतर जाने लगेगा। क्योंकि जब उत्तर रोकने के लिए न होंगे परिधि पर, तब तुम भीतर की तरफ यात्रा करोगे। इसलिए परम-ज्ञान के पहले सभी ज्ञान छोड़ देना पड़ता है, ज्ञान जो तुमने सीखा है। इसलिए परम ज्ञान घटित हो सके, उसके पहले सभी शास्त्र नदी में बहा देने पड़ते हैं। सभी बोझ उतारके रख देने पड़ते हैं, सभी सिद्धान्तों से छुटकारा पा लेना पड़ता है। क्योंकि जो भी बाहर से आया है, वह तुम्हें भीतर नहीं ले जा सकता। अगर तुम एक शुद्ध प्रश्न पूछने में समर्थ हो जाओ और तुम्हारा पूरा प्राण नियोजित हो जाए उस प्रश्न में, कि मैं कौन हूँ, और उत्तर देने की कोई जल्दी न रहे, कोई भाव ही न रहे; बल्कि यह साफ रहे कि उत्तर मुझे पता ही नहीं, उत्तर मैं दूंगा कैसे, तो तुम एक दिन पाओगे कि तुम्हारा प्रश्न तुम्हें अंतरतम की तरफ ले चला; वह नाव बन गया और तुम भीतर की यात्रा पर निकल पड़े। एक घड़ी ऐसी आएगी, कि पूछते-पूछते एक दिन प्रश्न भी गिर जायेगा। क्योंकि जिस परिधि के उत्तर व्यर्थ हैं, उसका प्रश्न भी सार्थक नहीं हो सकता। यह थोड़ा जटिल है।

जिस परिधि के उत्तर व्यर्थ हैं, उसका प्रश्न भी क्या सार्थक होगा?

लेकिन पहले उत्तर गिरेंगे, पहले तुम्हारा ज्ञान गिरेगा और तुम अज्ञानी हो जाओगे। अज्ञान में प्रश्न बचेगा, उत्तर नहीं बचेंगे। फिर तुम्हारा अज्ञान भी गिरेगा, तुम्हारा

प्रश्न भी गिर जायेगा। पूछते-पूछते एक घड़ी आती है, सब उत्तर गिर जाने के बाद, अचानक एक दिन प्रश्न भी तुम्हारे भीतर नहीं उठता। तुम बनाना भी चाहते हो प्रश्न, लेकिन नहीं बनता; तुम शून्य हो जाते हो। मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ, पूछते-पूछते शून्यता फलित हो जाती है—उसी शून्य में पहिली बार तुम्हारी अंतर-वाणी प्रगट होगी और तुम्हें उत्तर सुनाई पड़ेगा।

यह बड़ी उल्टी बात हो गई। जब तक तुम पूछोगे, तब तक उत्तर नहीं मिलेगा। जब पूछना भी गिर जायेगा, तब उत्तर मिलेगा। लेकिन तुम यह मत कहना कि फिर पूछने की जरूरत क्या है? अभी हम आंख बन्द करके बैठ जाते हैं, उत्तर मिल जाये? अभी तो तुम कितना ही कहो कि मैं नहीं पूछ रहा हूँ, तुम पूछ ही रहो हो। अभी नहीं होगा। परिधि से हटने में प्रश्न सहयोगी हैं। ठीक ऐसा ही जैसे एक कांटा गड़ जाये तो हम दूसरे कांटे से उसे निकाल लेते हैं। फिर दूसरे कांटे का आप क्या करते हैं, उसको घाव में रख लेते हैं? उसको भी फेंक देते हैं। अभी आपका मन बहुत से उत्तर से भर गया है, इसलिए रमण कहते हैं पूछो। यह पूछने के कांटे से ज्ञान का कांटा निकाल बाहर करो। फिर दूसरे कांटे का क्या करोगे? बड़ा सहारा दिया उसने, ज्ञान से छुटकारा दिलाया, सम्हालके रखोगे? जब ज्ञान से छुटकारा ही हो गया, तो अज्ञान को क्या सम्हालके रखोगे? जो आदमी ज्ञान तक को छोड़ने में राजी हो गया, उसको अज्ञान पकड़ने का मोह होगा? जो उत्तर छोड़ सका, कि मैं आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ, फलां-ढिकां अहम् ब्रह्मास्मि; इस सब कचरो को जो फेंक सका, वह क्या इस प्रश्न को कि मैं कौन हूँ, इसको पकड़े रखेगा? एक घड़ी आएगी, वह इसको भी छोड़ देगा। दोनों कांटे हट जायेंगे।

ज्ञान भी कांटा है, अज्ञान भी कांटा है।

और जब ज्ञान, अज्ञान दोनों नहीं होते, तो परम-ज्ञान उपलब्ध होता है, तो प्रज्ञा प्रस्फुटित होती है। तब तुम जानोगे कि मैं ब्रह्म हूँ। लेकिन तब तुम जानोगे, अनुभव करोगे; यह तुम्हारी प्रतीति होगी, यह तुम्हारा साक्षात्कार होगा। यह साक्षात्कार तुम्हारा निज का होगा। अब यह तुम किसी से सुनके नहीं कह रहे हो। अब यह तुम अपने ही अनुभव से कह रहे हो। अब दुनिया की सारी ताकत भी तुमसे इस अनुभव को नहीं छीन सकती।

वह जो पहला तुम्हारा ज्ञान था कि मैं ब्रह्म हूँ, वह तो कोई छोटा बच्चा भी सवाल उठाता, तो तुम्हें दिक्कत में डाल देता। वह तो यह कह सकता था, अच्छा तो तुम ब्रह्म हो, तो यह पत्थर का टुकड़ा है, इसको तुम समाप्त कर दो; बस तुम मुश्किल में पड़ जाते, तुम्हारा ज्ञान झंझट में आ जाता। वह कह देता है कि अभी मौसम नहीं है फूल का, इस वृक्ष पर फूल ला दो—ब्रह्म हो।

एक जैन मुनि हैं, मेरे पास आते हैं। उनकी बेचारों की एक ही तकलीफ है। उनको यह ख्याल है कि उनको परम-ज्ञान हो चुका है, कैवल्य की उपलब्धि हो गई है, लेकिन एक झंझट है, क्योंकि जैन-शास्त्रों में कहा गया है कि जिसको कैवल्य-ज्ञान होता है, वह त्रिकालज्ञ हो जाता है, उसको तीनों काल का ज्ञान हो जाता है, तो उनको कोई भी दिक्कत में डाल देता है। वह कहते हैं कि मुझे कैवल्य-ज्ञान हो गया, तो वे कहते हैं कि तीनों काल का ज्ञान? तो वे मेरे पास आते हैं कि यह एक बड़ी झंझट है। क्या कैवल्य-ज्ञान में तीनों कालों का ज्ञान बिलकुल जरूरी है? क्या बिना त्रिकालज्ञ हुए कोई कैवल्य-ज्ञानी नहीं हो सकता? मैं कैवल्य-ज्ञानी तो हो गया हूँ, लेकिन लोग मुझे दिक्कत में डाल देते हैं। वे कहते हैं कि अच्छा कैवल्य-ज्ञानी, तो हमारी मुट्ठी बंद है, उसके भीतर क्या है? इसमें मैं झंझट में पड़ जाता हूँ। तो आप कुछ ऐसा समझाइए कि कैवल्य-ज्ञान हो सकता है, त्रिकालज्ञ होने की कोई जरूरत नहीं।

अब यह शास्त्र में पढ़के उनको कैवल्य-ज्ञान हो गया है। और उसी शास्त्र में पढ़के हुआ है, जिसमें त्रिकालज्ञ होना भी लिखा है। अब वह उसको झुठला भी नहीं सकते। तो मैं उनको कहता हूँ कि तुम बेहतर हो कि तुम अपने को अज्ञानी समझो। अभी जल्दी मत करो, यह कैवल्य-ज्ञान की। क्योंकि जिस दिन तुम्हें कैवल्य-ज्ञान होगा, उस दिन तुम मुझसे गवाही लेने नहीं आओगे, मुझसे सर्टिफिकेट लेने नहीं आओगे, कि लिख दें आप कि इनको कैवल्य-ज्ञान हो गया है और त्रिकालज्ञ होने की कोई जरूरत नहीं है। वह तो तुम्हें कैवल्य-ज्ञान होगा, जब यह तुम्हारी प्रतीति होगी, तो यह सब बातें नहीं रह जायेंगी। अगर तुमको बिना त्रिकालज्ञ हुए, कैवल्य-ज्ञान हो जायेगा तो तुम कहोगे कि ठीक है, त्रिकालज्ञ मैं नहीं हूँ, मुझे कैवल्य-ज्ञान हो गया है। लेकिन दूसरे को कहने की जरूरत क्या है? दूसरे को राजी करने की जरूरत क्या है? उसको राजी करना चाहोगे तो वह भी सवाल उठायेगा, वह भी तर्क उठायेगा। फिर उसके जवाब भी देने पड़ेंगे, फिर मुश्किलें खड़ी होती हैं।

अक्सर जिनका दिमाग थोड़े खराब हैं, उनको कैवल्य-ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान बड़े जल्दी हो जाते हैं। देरी ही नहीं लगती। वह सिर्फ पागलपन के लक्षण हैं, उनका इलाज होना चाहिये। उनको मानसिक चिकित्सालय में रखे जाने की जरूरत है। उनको जो वहम् हो रहा है, वह सिर्फ अहंकार की वजह से हो रहा है।

यह सूत्र कहता है : जीवात्मा की वासनाओं को जीत लेने का बड़ा और कठिन कार्य युगों का है।

यह कोई एक क्षण में नहीं हो जाता। अभी मेरे पास अनेक लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि हमारी कुण्डलिनी जग गई है! कोई देवी ने हाथ लगा दिया और कुण्डलिनी जग गई! और क्या हुआ? वे कहते हैं और कुछ नहीं हुआ, बाकी सब वैसा

का वैसा है। अभी एक देवी हैं बम्बई में, वे दस-पच्चीस लोग, जितने उनके पास जाते हैं, सभी इनलाइटेंड हो गये! पच्चीस के करीब आदमियों को बुद्ध बना दिया उन्होंने, एकदम! और वे जो बुद्ध बन गये हैं, उनसे पूछो और क्या हुआ? वे कहते हैं और कुछ नहीं हुआ, बस बुद्ध बन गये! क्योंकि उन्होंने कहा है कि तुम्हें परम-ज्ञान हो गया है!

आदमी सस्ते के लिए इतना उत्सुक है। और कोई कह दे, इसकी कोशिश में रहता है कि तुम्हें यह हो गया, वह हो गया! वह मान लेता है, वह मानना ही चाहता है। जीवन इतना सस्ता नहीं है। वहां युगों की तपश्चर्या है, युगों का श्रम है, युगों की भटकन है, तभी कुछ थोड़ा-बहुत हाथ मे आता है, वह भी थोड़ा-बहुत।

यह सूत्र कहता है कि सब कुछ कर लेने के बाद भी, ड्योढ़ी पर पहुंचा हुआ आदमी, परमात्मा के दरवाजे पर पहुंचा हुआ आदमी भी, वापस गिर सकता है। थोड़ी सी भूल, और दरवाजा जो सामने था, युगों के लिए खो सकता है। और जितने हम करीब पहुंचते हैं, उतनी ही भूल खतरनाक होने लगती है। क्योंकि जब आप मंजिल से बहुत दूर हैं, तो भटकाव का ज्यादा डर नहीं रहता। क्योंकि आप इतने दूर हैं कि भटकेंगे भी तो क्या होगा? दूर ज्यादा और क्या होंगे इससे, जितने दूर हैं? जितने करीब पहुंचते हैं मंजिल के, उतना एक-एक कदम मुश्किल का हो जाता है। क्योंकि अब एक कदम भी भटके, तो मंजिल चूक सकती है। महंगा सौदा हो गया। दायित्व बढ़ जाता है। बोध ज्यादा चाहिए। जितने निकट पहुंचते हैं, उतनी ज्यादा कठिनाई हो जाती है। लेकिन लोग बिना चले ही पहुंच जाते हैं; कोई उनको वहम् दिला दे, बस वे राजी हो जाते हैं!

अमेरिका में एक सज्जन हैं, उनके शिष्य का एक पत्र मेरे पास आया, कि अनेकों लोगों ने उनको कह दिया है कि वे सिद्ध हो गये हैं। और हिन्दुस्तान से भी दो तीन ज्ञानियों ने उनको लिखके सर्टिफिकेट भेज दिया है कि वे सिद्ध-अवस्था को प्राप्त हो गये हैं, बस आपके सर्टिफिकेट की जरूरत है। क्या पागलपन है! और जिनने भी लिखके भेजा है, उन तक ने सिद्ध कर दिया है कि वह भी अभी सिद्ध नहीं है। कोई सर्टिफिकेट का मामला है? किसी से पूछने की जरूरत है? कोई निर्णय देगा कि तुम पहुंच गये हो? और पहुंचके भी तुम दूसरे के निर्णय की प्रतीक्षा करोगे?

लेकिन आदमी बिना कुछ किए कुछ हो जाना चाहता है! और धर्म में जितनी आसानी है बिना कुछ किए हो जाने की, उतनी और कहीं भी नहीं है। क्योंकि कहीं भी कुछ करना ही पड़ेगा, तभी कुछ हो पाएंगे आप। धर्म में तो ऐसा है आप हो ही सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है, कोई कसौटी नहीं है, कोई बाधा नहीं डाल सकता।

ध्यान रखना इसका, कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, समाधि करीब आएगी, वैसे-वैसे उत्तरदायित्व बढ़ रहा है। खतरा भी बढ़ रहा है, क्योंकि पहले तो कुछ भी भूल होतीं, तो खास फर्क न पड़ता था। भटके इतने थे कि अब और क्या भटकना था? दूर इतने थे कि और दूरी क्या होगी? लेकिन अब तो इंच भर की भूल, और हजारों कोस का फासला हो सकता है। अब तो जरा-सा परिवर्तन दिशा का और भटकाव हो सकता है। निकट पहुंचके बहुत लोग भटकते हैं और गिर जाते हैं। और निकट पहुंचके अगर अहंकार की जरा-सी भी रेखा रह गई, तो वह अहंकार भटका देता है। वह समाधि की पहले ही घोषणा कर देता है कि समाधि हो गई, ध्यान के पहले ही घोषणा कर देता है कि ध्यान हो गया। और जब हो ही गया तो यात्रा उसी क्षण रुक जाती है?

जो ज्ञान अब तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह इसी कारण तुम्हें मिला है कि तुम्हारी आत्मा सभी शुद्ध आत्माओं से एक हो गई है, और इस परम-तत्व से एक हो गई है। यह ज्ञान तुम्हारे पास उस सर्वोच्च परमात्मा की धरोहर है। इसमें यदि तुम विश्वासघात करो, उस ज्ञान का दुरुपयोग करो, या उसकी अवहेलना करो, तो अब भी सम्भव है कि तुम जिस उच्च पद पर पहुंच चुके हो, उससे नीचे गिर पड़ो।

यह मैं रोज देखता हूँ कि जैसे-जैसे लोग करीब पहुंचते हैं, वैसे-वैसे अहंकार आखिरी जोर मारता है, बल मारता है। कल धन का अहंकार था, पद का अहंकार था, फिर वह ध्यान का अहंकार हो जाता है। 'मैं ध्यानी हो गया'—जैसे ही अहंकार बल मारता है, वैसे ही तुम विश्वासघात कर रहे हो, वैसे ही तुम दुरुपयोग कर रहे हो, वैसे ही तुम अवहेलना कर रहे हो। और यह सम्भव है कि तुम वापस फेंक दिये जाओ।

बड़े पहुंचे हुए लोग भी अपने दायित्व का भार न सम्हाल सकने के कारण और आगे न बढ़ सकने के कारण ड्योढ़ी से गिर पड़ते हैं और पिछड़ जाते हैं। इसलिए इस क्षण के प्रति श्रद्धा और भय के साथ सजग रहो, और युद्ध के लिए तैयार।

श्रद्धा और भय के साथ सजग—इसको थोड़ा समझ लेना चाहिए।

क्या अर्थ हुआ? श्रद्धा और भय को एक साथ क्यों रखा? श्रद्धा और भय तो बड़े विपरीत मालूम पड़ते हैं, क्योंकि श्रद्धावान को कैसा भय? और भयभीत को कैसी श्रद्धा? लेकिन प्रयोजन इनका महत्त्वपूर्ण है। और दोनों का ताल-मेल बिठाने की बात नहीं है, दो अलग आयाम में दोनों की उपस्थिति है।

श्रद्धा भविष्य के प्रति और भय पीछे गिर जाने के प्रति।

श्रद्धा आगे बढ़ने के लिए और भय कि कहीं पीछे न गिर जाऊं।

दोनों का आयाम अलग है, दोनों साथ-साथ नहीं हैं। भय इस बात का सदा रखना, कि मैं पीछे अभी भी गिर सकता हूँ। भय रहेगा तो तुम सजग रहोगे। अभी

भी गिर सकता हूँ। अहंकार का स्वर जहां भी सुनाई पड़े, भयभीत हो जाना। अभी तुम पीछे खींचे जा सकते हो, बिलकुल अभी सेतु नहीं मिट गया, अभी रास्ता बना हुआ है पीछे जाने का। अभी तुम रास्ते को पकड़ सकते हो।

और श्रद्धा भविष्य के प्रति, भविष्य के प्रति पूरा भरोसा। और अतीत के प्रति भय, जरा भी भरोसा नहीं। अगर ये दो बातें तुम्हारे ख्याल में रहें कि अभी और बहुत-कुछ होने को है, सब नहीं हो गया है, भविष्य के प्रति यह बोध। और अतीत मिट गया है, लेकिन बिलकुल नहीं मिट गया है, अभी लौटना सम्भव हो सकता है। रास्ते कायम हैं, और ज़रा सी भूल और तुम बहुत पीछे लौट जा सकते हो।

चढ़ना बहुत कठिन है, उतरना कठिन नहीं है। एक क्षण में तुम न मालूम कितना उतर जा सकते हो, गिर जा सकते हो। उठने में युगों लग जाते हैं—यह भय है। और भविष्य के प्रति परिपूर्ण आस्था, आशा। ये दो बातें ख्याल में रहें।

अदृश्य का दर्शन

प्रवचन : १७ अप्रैल १५, १९७१, रात्रि
ध्यान-योग साधना-शिविर, माउन्ट आबू

लिखा है कि जो दिव्यता के द्वार तक पहुच चुका है, उसके लिए कोई भी नियम बनाया नहीं जा सकता और न कोई पथ-प्रदर्शक ही उसके लिए हो सकता है। फिर भी शिष्य को समझाने के लिए इस अन्तिम युद्ध का वर्णन इस प्रकार कर सकते है :

१३. जो मूर्त नहीं है और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलम्बन लो।

१४. केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।

१५. जो बाह्य आर अन्तर दोनों चक्षुओं से अदृश्य है, केवल उसी का दर्शन करो।

तुम्हें शान्ति प्राप्त हो

प्रभु मन्दिर की यात्रा सत्य के लिए वैसे ही कठिन है, उसे कहना मुश्किल है। जो अनुभव उस यात्रा पथ पर होते हैं, शब्दों में ढालते ही झूठे हो जाते हैं। क्योंकि शब्द बहुत छोटा है, अनुभव बहुत विराट् है। जैसे कोई अपनी मुट्ठी में आकाश को भरने की कोशिश करें और असफल हो जाये, वैसा ही सत्य को शब्द में ढालने में असफलता मिलती है। शून्य से कहा जा सकता है, शब्द से नहीं कहा जा सकता। मौन में तो शायद मुखरित भी हो सके, लेकिन वाणी से अवरुद्ध हो जाता है। यह तो यात्रा पथ की बात है। लेकिन मन्दिर के द्वार पर जब खड़ा हो जाता है साधक, तब तो शब्द बिलकुल ही कठिनाई में डाल देते हैं। क्योंकि मन्दिर के द्वार का अर्थ है : द्वन्द्व का हुआ अन्त।

और हमारी सारी भाषा ही द्वन्द्व से निर्मित है। हमारी भाषा में विपरीत का होना जरूरी है। अगर हम अन्धेरे का अर्थ समझ पाते हैं, तो सिर्फ इसलिए कि प्रकाश है, नहीं तो अन्धेरे का अर्थ खो जाये। अगर कोई अन्धेरे की परिभाषा पूछे, तो क्या कहियेगा? यही कहियेगा न, कि प्रकाश का न होना। अन्धेरे की परिभाषा में प्रकाश को लाना पड़े, बड़ी मजबूरी है। और भी मजबूरी तो तब पता चलती है, जब कोई पूछ ले कि प्रकाश की परिभाषा क्या है? तो आप को कहना पड़ता है, अन्धेरे का न होना! यह तो बड़ा जाल हो गया। अन्धेरे की परिभाषा में प्रकाश को लाना पड़ता है। प्रकाश की परिभाषा में अन्धेरे को लाना पड़ता है! दोनों एक दूसरे पर निर्भर मालूम पड़ते हैं। और दोनों अलग-अलग अस्तित्व में नहीं हो सकते, उनकी परिभाषा तक नहीं हो सकती।

भाषा द्वन्द्व से भरी है, क्योंकि भाषा द्वन्द्व-जगत के लिए निर्मित हुई है। यहां जन्म का अर्थ मृत्यु में छिपा है। उलटी दिखाई पड़ने वाली मृत्यु में जन्म का सारा

अर्थ छिपा है। वहां प्रेम का अर्थ भी घृणा में छिपा है। और घृणा अगर संसार से मिट जाये, तो प्रेम मिट जाये।

मन्दिर के प्रवेश द्वार पर द्वन्द्व समाप्त हो जाता है।

तो द्वन्द्व की भाषा फिर काम नहीं आयेगी। तो क्या कहें? परमात्मा को प्रकाश कहें, तो परिभाषा अन्धेरे से करनी पड़ती है? और ऐसा परमात्मा भी क्या जिसकी परिभाषा के लिए अन्धेरे को लाना पड़े? फिर परमात्मा को क्या कहें ? प्रेम कहें, तो घृणा से परिभाषा करती पड़ती है। परमात्मा को शाश्वत कहें, तो परिवर्तनशील से व्याख्या करती पड़ती है। परमात्मा को स्रष्टा कहे, तो सृष्टि से ही सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। और जिसका होना सृष्टि पर निर्भर है, वह क्या स्रष्टा होगा?

विपरीत जब द्वार पर गिर जाता है, तो भीतर के सम्बन्ध में कहने को कुछ भी बचता नहीं।

इसलिए यह सूत्र शुरू होता है, लिखा है कि जो दिव्यता के द्वारा तक पहुंच चुका है, उसके लिए कोई भी नियम नहीं बनाया जा सकता—और न कोई पथ-प्रदर्शक ही उसके लिए हो सकता है। फिर भी शिष्य को समझाने के लिए इस अन्तिम युद्ध का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं।

जो दिव्यता के द्वार तक पहुंच चुका, उसके लिए कोई भी नियम नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि नियम तो सभी संसार के हैं। मन्दिर के बाहर उनका परिणाम और प्रभाव है, मन्दिर के भीतर उनका कोई प्रयोजन नहीं है। क्या ठीक है और क्या गलत है—वह भी द्वन्द्व की ही दुनिया की बात है। वह भी परिभाषाओं पर निर्भर है। इस मन्दिर के द्वार पर तो ठीक और गलत भी गिर जायेगा। यहां तो शुभ-अशुभ भी नहीं बचेगा, यहां तो धर्म और अधर्म भी नहीं बचेगा, नीति-अनीति भी नहीं बचेगी। यहां तो हमने, दो के जगत में जो भी सीखा था, उसे हमें द्वार पर ही छोड़ देना होगा। तो इस निर्द्वन्द्व, अद्वैत, इस मन्दिर के भीतर के लिए क्या नियम हो सकता है?

हमने परमहंस को नियमातीत कहा है। उसके लिए हम कोई नियम नहीं बना सकते। वह क्या करे, क्या न करे, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह जो करे, वही ठीक है। वह जो न करे; वही गलत ह। हमारे लिए उलटी है बात। जो गलत है, वह हमें नहीं करना चाहिए। जो ठीक है, वह हमें करना चाहिए। परमहंस के लिए कहा है कि वह जो करे, वही ठीक है। वह जो न करे, वही गलत है। और उसके ऊपर कोई भी नियम नहीं है, क्योंकि जो मन्दिर में प्रविष्ट हो गया, वह नियम के बाहर हो गया।

नियम का अस्तित्व है परिधि पर, केन्द्र पर नियम का कोई अस्तित्व नहीं है।

और जब तक हम परिधि पर होते हैं, नियम लागू होते हैं और जैसे ही हम केन्द्र पर पहुंच जाते हैं, नियम लागू नहीं होते हैं।

फिर भी परमहंस नियम मानके चल सकता है, यह उसकी मौज है। वह नियम तोड़के भी चल सकता है, यह भी उसकी मौज है। और दायित्व उसका कोई भी नहीं है, उत्तरदायित्व उसका कोई भी नहीं है, क्योंकि अब कोई भी नहीं है, जिसके प्रति वह उत्तरदायी हो। अब वह स्वयं उस जगह खड़ा है, जिसके पार और कुछ भी नहीं है।

तो यह सूत्र कहता है : कोई नियम नहीं है, कोई नियम बनाया नहीं जा सकता, न ही कोई पथ-प्रदर्शन ही हो सकता है। न उससे कहा जा सकता ह कि अब तू कैसे मन्दिर में प्रवेश कर। इतना ही कहा जा सकता है कि तू जो भी है अब तक, द्वन्द्व से सीखा हुआ, उसे तू द्वार पर छोड़ दे। उस मन्दिर के द्वार पर निषेध की व्यवस्था हो सकती है। इसलिए उपनिषद् कहते हैं : नेति, नेति। यह मन्दिर के आखिरी चरण पर कहा हुआ वक्तव्य है। इसके पार फिर कोई वक्तव्य नहीं है।

नेति-नेति का अर्थ है, यह भी नहीं, वह भी नहीं। तुम जो भी कहो, वैसा नहीं है। तुम्हारा सब इन्कार कर देने का है। तुम्हारे पास अपना कुछ भी नहीं बचे। तुमने जो भी सीखा था संसार से, अनुभव से, वह सब व्यर्थ हो रहा है। वह तुम द्वार पर ही छोड़ देना। उसमें से तुम कुछ भी लेकर भीतर मत जाना, अन्यथा तुम भीतर ही न पहुंच पाओगे। तो नियम निषेध का हो सकता है कि जो भी सीखा है, वह द्वार पर छोड़ दो। और तुम अनसीखे, निर्दोष, कोरे कागज की तरह; जैसे कि संसार में गये ही नहीं कभी, जैसे कि तुमने कुछ जाना नहीं, जैसे कि तुमने कुछ जिया नहीं, जैसे कि तुम बिलकुल कुआंरे हो, तुम पर कोई रेखा भी नहीं अनुभव की, ऐसे कुआंरे तुम प्रवेश कर जाना मन्दिर में। यह जो कुआंरापन है, इसकी परिभाषा निषेध से ही हो सकती है। कि जो जो तुमने सीखा है, पोंछ डालना, क्योंकि द्वंद्व से सीखा हुआ भीतर नहीं ले जाया जा सकता। और अगर जरा सा भी तुमने बचाया, तो तुम मन्दिर में भीतर नहीं पहुंच सकोगे, तुम्हें द्वार ही नहीं मिलेगा।

नियम तो नहीं बनाए जा सकते और न कोई पथ-प्रदर्शन ही किया जा सकता है, कोई नक्शा भी हाथ में नहीं दिया जा सकता, कि मन्दिर के भीतर, प्रभु के मन्दिर के भीतर या प्रभु के भीतर यह नक्शा तुम्हारा सहयोगी होगा, ये रास्ते, इन मार्गों से तुम भीतर यात्रा कर सकोगे। इसे थोड़ा समझ लेने जैसा है।

चेतना का आकाश ठीक इस आकाश जैसा ही है एक अर्थों में। जमीन पर कोई चलता है तो चिन्ह बन जाते हैं, पद-चिन्ह बनते हैं। आकाश में पक्षी उड़ते ह तो पद-चिन्ह नहीं बनते हैं। जमीन पर तो रास्ते होते हैं, आकाश में कोई रास्ता नहीं बनता। जो तुमसे पहले चले हैं, उनके कोई पद-चिन्ह नहीं छूटते, जिनका पीछे तुम अनुसरण कर सको। वह जो परमात्मा का मन्दिर है, वह जो अन्तिम घटना है अनुभव की, बोध की, चैतन्य की—वहां कोई पद-चिन्ह नहीं है। वहां बुद्ध चले हैं, वहां जीसस

चले हैं, लेकिन कोई पद-चिन्ह नहीं छूट गये। इसलिए नक्शा नहीं बनाया जा सकता। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि नक्शा सम्हाल लो और इसके अनुसार तुम उसके भीतर चले जाना। तुम्हारा नक्शा भी इसी तरफ छूट जायेगा, क्योंकि नक्शे जिस पदार्थ के जगत में काम आते हैं, वह पदार्थ का जगत नहीं है। पदार्थ पर तो चिन्ह बनते हैं, परमात्मा पर कोई चिन्ह नहीं बनते। पदार्थ पर तो कोई रेखाएं खिंचती हैं, आत्माओं पर कोई रेखाएं नहीं खिंचतीं। इसलिए वहा कोई मार्ग नहीं है, कोई दिशा-सूचक व्यवस्था नहीं है, इसलिए कोई पथ-प्रदर्शन नहीं किया जा सकता।

वहां तो अज्ञात में उतरने का जिनके पास साहस है, वे ही केवल उतर पाते हैं। जो नक्शा मांगते हैं, उन्हें मन्दिर के बाहर ही रुक जाना पड़ेगा। जो कहते हैं, आगे जाके क्या होगा; जब तक हम यह न जान लें, तब तक हम आगे न बढ़ेंगे; वे आगे बढ़ ही नहीं सकते। वहां तो केवल वे ही प्रवेश कर सकते हैं, जो दुस्साहसी हैं, जो कहते हैं कि कोई चिन्ता नहीं है कि आगे क्या होगा? जो कहते हैं कि कोई सुरक्षा की फिक्र नहीं। जो कहते हैं कि मृत्यु भी घटित होगी, तो भी हम राजी हैं। सदा के लिए खो जायेंगे और कुछ न मिलेगा, तो भी हम राजी हैं।

मन्दिर के द्वार पर जो इतना दुस्साहस करता है अपने को खोने का, वही प्रवेश करता है।

बाहर से लाया हुआ कोई ज्ञान सहयोगी नहीं हो सकता, क्योंकि कोई ज्ञान स्पर्श नहीं कर सकता उस परम अनुभव का। और इसलिए जो भी वहां पहुंचता है, वह मौलिक अनुभव में पहुंचता है। हजारों बुद्ध पहुंचे हैं वहां, लेकिन फिर भी मौलिक, अभी भी अछूता अनुभव है। मौलिक है अनुभव। जब भी कोई व्यक्ति पुनः पहुंचता है उस मन्दिर में, तो वह अनुभव करता है, कि कुछ भी बासा नहीं है। अगर तुम्हें नक्शे दिये जा सकें और शास्त्र दिये जा सके और गाइड दिये जा सकें, और तुम उनके हिसाब से भीतर जा सको, तो अनुभव झूठा हो जायेगा।

अमरीका में मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आज अमरीकन यात्री कहीं भी जाए, उसे लगता है, जो भी वह देख रहा है, सब बासा है। मजा यह है कि आज अमेरीका के पास ही सर्वाधिक सुविधा है दुनिया में चक्कर मारने की। दुनिया भर में यात्रियों का जो विराट् दल घूमता है, उसमें अस्सी प्रतिशत अमेरीका के निवासी हैं। सारी दुनिया मे कोने-कोने तक यात्री पहुंचते हैं, वे अमेरीका के निवासी हैं। लेकिन एक मजे की घटना घटी है, ये जहां भी पहुंचते हैं, उनको लगता है, सब बासा है। क्योंकि ताजमहल को वे देख चुके हजार दफे चित्रों में, टेलिविजन पर, फिल्म में। जब वे ताजमहल पहुंचते हैं, तो वह हजार दफा देखा हुआ ताजमहल है। वह बासा है। वे बड़ी आशाएं बांधके आते हैं ताजमहल देखने, लेकिन जब देखते हैं, तो वे अनुभव

करते हैं, यह तो हजार दफे देख चुके हैं। और सच तो यह है कि फोटोग्राफी से, टेलिविजन पर, फिल्मों में, जितना सुन्दर ताजमहल दिख सकता है, उतनी खाली आंखों से दिख नहीं सकता। इसलिए जो असली ताजमहल है, वह फीका लगता है। जो देखा था फिल्मों में, वह कहीं ज्यादा रंगीन था, कहीं ज्यादा बहुमूल्य मालूम पड़ा था। उसको देख कर सोचके कि मूल इससे भी मूल्यवान होगा, वे देखने आए। लेकिन मूल फीका मालूम पड़ता है। और फिर इतनी दफा देखा जा चुका है, तो मौलिकता तो कुछ है नहीं। इसलिए अमरीकन यात्री घूमता तो बहुत है, लेकिन पहुंचता कहीं भी नहीं, अनुभव उसे कुछ भी नहीं होता। क्योंकि वह जो भी है, सब देखा हुआ है, सब बासा है, सब चीजें ऊबाने वाली हैं।

अच्छा ही है कि परमात्मा के मन्दिर का कोई नक्शा नहीं है। नहीं तो तुम वहां भी पहुंचके सिर पीट लेते। यह वही का वही, जो गीता में पढ़ा था; यह वही का वही, जो पहले ही बुद्ध समझा चुके हैं—तुम वहां भी ऊब जाते। लेकिन उसका कोई नक्शा बन नहीं सका, बनेगा भी नहीं कभी। और उसके सम्बन्ध में जो भी खबरें दी गई हैं, वे कोई भी खबरें मन्दिर के भीतर काम नहीं आतीं, मन्दिर के द्वार तक ही ले जाती हैं। इसलिए मन्दिर सदा अछूता और कुआंरा है। उसमें जब भी पहुंचते हो तो अनुभव अनूठा है, अद्वितीय है। तुम भी उस अनुभव को करने के बाद किसी को कह न सकोगे। तुम अचानक उस अनुभव के बाद पाओगे कि जो भी कहा जा सकता है, उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। और यह जो देखा है, इसका कहने में कोई सम्बन्ध नहीं बनाया जा सकता।

इसलिए सूत्र कहता है, न तो कोई नियम, न कोई पथ-प्रदर्शन ही उसके लिए हो सकता है। फिर भी शिष्य को समझाने के लिए इस अन्तिम युद्ध का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं।

यह जो अन्तिम घटना, आखिरी घटना जीवन की घटेगी, मन्दिर के द्वार पर सब छोड़कर भीतर प्रवेश की; यह जो मन्दिर के द्वार पर छोड़ने की घटना है, उसका वर्णन किया जा सकता है। वह भी कोशिश है, वह भी पूरी सफल नहीं होती, लेकिन इशारा हो सकता है। तो इशारा कठिन है।

तेरहवां सूत्र : जो मूर्त नहीं है और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलम्बन लो।

जटिलता द्वन्द्व की ही है—जो मूर्त नहीं है और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलम्बन लो।

हम जानते हैं कि मूर्त क्या है, पदार्थ क्या है, साकार क्या है? पदार्थ का हमें पता है। हमें अमूर्त का कोई पता नहीं है। इसलिए लोग कहते हैं कि आत्मा अमूर्त है, पदार्थ के पार है। पदार्थ का आकार है, गुण हैं; आत्मा का आकार नहीं, गुण नहीं;

निर्गुण है, निराकार है। तो पदार्थ से हम आत्मा की व्याख्या करते हैं। पदार्थ है मूर्त, आत्मा है अमूर्त। हमें तो मूर्त का ही पता है, अमूर्त का कोई पता नहीं है।

यह सूत्र कहता है, लेकिन अगर तुम्हें आत्यन्तिक सत्य में प्रवेश करना है, तो मूर्त तो छोड़ ही देना पड़ेगा, अमूर्त भी छोड़ देना पड़ेगा; आकार तो छोड़ ही देना पड़ेगा, निराकार भी छोड़ देना पड़ेगा।

क्यों?

थोड़ा कठिन है। इसलिए इतनी झिझक के साथ ये सूत्र लिखे गए हैं। आकार तो छोड़ ही देना पड़ेगा, निराकार भी छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि निराकार में ही आकार मौजूद है। वह आकार से ही पारिभाषित होता है। अगर कोई पूछे कि निराकार क्या है? तो आप यही कहेंगे न कि जहां आकार नहीं। आकार से ही बंधा है निराकार भी। निराकार भी आकार से मुक्त नहीं हो पाता, क्योंकि निराकार की भी कोई व्याख्या नहीं हो सकती आकार के बिना। झगड़ा चलता है—आकारवादी हैं, निराकारवादी हैं; सगुणवादी हैं, निर्गुणवादी हैं। वे बड़ा विवाद करते हैं कि परमात्मा निर्गुण है कि सगुण। हजारों साल से विवाद चलता है।

लेकिन यह सूत्र कहता है कि परमात्मा न सगुण है, न निर्गुण है। यह सूत्र यह कहता है कि निर्गुण की भी परिभाषा जब गुण से ही होती हो, तो कितना सार रहा तुम्हारे निर्गुण में। अगर सच में ही परमात्मा निगुण है, तो उसको निर्गुण भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह तो गुण का ही निषेध हो रहा है सिर्फ, गुण का ही इन्कार हो रहा है। तो गुण के बिना तुम परमात्मा को भी कुछ नहीं कह सकते हो, तो इतना तो कम से कम तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि परमात्मा में गुण भले ही न हों, लेकिन उसकी परिभाषा गुण के बिना नहीं हो सकती। और जिसकी परिभाषा गुण के बिना नहीं हो सकती, उसको निर्गुण कैसे कहियेगा?

यह सूत्र कहता है कि न वहां सगुण की गति है और न निर्गुण की; वहां न आकार बचता है, न निराकार; वहां न मूर्त बचता है, न अमूर्त; वहां न पदार्थ बचता है, न आत्मा।

जटिल है, कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि पहले तो पदार्थ से आत्मा तक उठना कठिन है और फिर आत्मा से भी उठना और भी कठिन हो जाता है। पदार्थ और आत्मा द्वन्द्व का हिस्सा है। पदार्थ और आत्मा भी दो विरोध हैं। चेतना और पदार्थ दो विरोध हैं। पदार्थ तो छूट ही जाना है, चैतन्य भी। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप अचेतन हो जायेंगे वहां, लेकिन जो कुछ भी आपने चेतना की तरह जाना था, वह पायेंगे कि सब व्यर्थ हो गया, और कुछ नई ही घटना घटी है, जो चेतना के भी पार जाती है; जो परा-चैतन्य है, चेतना के भी अतीत हो जाती है।

जो मूर्त नहीं है, और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलम्बन लो।

इस द्वार के बाहर ही छोड़ देना। इसे हम ऐसा समझें कि यात्रा को हम बांट लें, एक तो यात्रा है—मूर्त को छोड़ो। जो-जो आकार है, उसको छोड़ो, ताकि तुम भीतर के निराकार में प्रवेश कर सको। यह पहली व्यवस्था है। जिस दिन तुम्हारा भीतर प्रवेश हो जाये पूरा, बाहर को छोड़ा था भीतर जाने के लिए; लेकिन जब बाहर बिल्कुल छूट जाए, तो भीतर को भी छोड़ देना, क्योंकि भीतर भी बाहर का ही हिस्सा है। पदार्थ को छोड़ा था आत्मवान् बनने के लिए और जब पदार्थ पूरा छूट जाए तो इस आत्मवत्ता को भी छोड़ देना।

इसलिए बुद्ध ने कह दिया है कि आत्मा नहीं है। और बुद्ध की बात समझी नहीं जा सकी, परम-ज्ञान की बात थी। तो उन्होंने कहा, आत्मा भी नहीं है। अनात्मा वह इसी अर्थ में है कि जिस पदार्थ को छोड़कर आत्मा जानी थी, वह आत्मा भी छोड़ने योग्य है। उसके बाद जो बच रहेगा, तो बुद्ध ने उसके लिए कोई शब्द प्रयोग नहीं किया। उन्होंने कहा कि कुछ भी शब्द उपयोग करूंगा तो जटिलता बढ़ती है; कुछ भी कहूंगा तो सीमा बनती है; कुछ भी कहूंगा तो उसके विपरीत भी होता है; इसलिए मैं कुछ भी न कहूंगा।

बुद्ध से जन्म भर लोग पूछते रहे कि क्या होता है उस परम घड़ी में? तो बुद्ध कहते थे, जैसे दीया बुझ जाता है, बस ऐसा ही होता है। तुम बुझ जाओगे, जैसे दीये कि ज्योत बुझ जाती है—फिर कोई पूछता नहीं कि कहां गई ज्योति? ऐसे ही तुम भी बुझ जाओगे। ज्योति कहां गई, यह पूछना व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए बुद्ध ने मोक्ष शब्द का उपयोग नहीं किया। निर्वाण शब्द का उपयोग किया। निर्वाण का अर्थ है, दीये का बुझ जाना। मोक्ष शब्द से ऐसा लगता है कि तुम बचोगे मुक्त होकर, लेकिन तुम बचोगे जरूर। बुद्ध कहते हैं, तुम बचोगे ही नहीं, क्योंकि तुम द्वन्द्व का ही हिस्सा हो। इसका यह मतलब नहीं कि कुछ भी नहीं बचेगा। सब कुछ बचेगा। जो बचने योग्य है, वह बचेगा। लेकिन उसके लिए बुद्ध कहते है, मैं कोई शब्द न दूंगा, क्योंकि सभी शब्द विपरीत से बंधे हैं, और विपरीत संसार का हिस्सा है।

जो मूर्त नहीं, और जो अमूर्त नहीं है, उसका अवलम्बन लो।

चौदहवां सूत्र : केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।

जो भी वाणी हम सुनते हैं, वह सब आघात से पैदा होती है, दो चीजों के टक्कर से पैदा होती है, द्वन्द्व से पैदा होती है। अगर आप मंजीरे को टकराते हैं तो आवाज पैदा होती है। अगर दोनों हाथों को टकराते है तो ताली पैदा होती है। अगर हवाएं वृक्षों से गुजरती हैं, तो सरसराहट पैदा होती है। अगर मैं बोल रहा हूं, तो मेरा कंठ टक्कर देता है, तो वाणी पैदा होती है। हम जो भी वाणी

जानते हैं, वह सब नाद है। संघर्ष से पैदा हुआ है, दो की टक्कर से।

लेकिन उस मन्दिर में दो तो बचेंगे नहीं, तो वहां कोई वाणी नहीं हो सकती। वहां शब्द नहीं हो सकता. वहां दो की टकराहट हो नहीं सकती, क्योंकि जहां द्वन्द्व नहीं है, वहां टक्कर कैसी? खाली आकाश है। जहां कोई दूसरा नहीं है, तो वहां कैसी वाणी होगी? वहां नाद आघात वाला पैदा नहीं हो सकता।

तो दो बातें हैं : या तो हम कहें नाद-रहित वाणी, नाद-रहित स्वर, ऐसा स्वर जो टक्कर से पैदा नहीं होता, जो दो चीजों के आघात से पैदा नहीं होता। और या फिर सन्तों ने एक और शब्द चुना है, वह भी बहुत कीमती है—अनाहत नाद। अनाहत का मतलब यही होता है कि जो आहत से नहीं, टक्कर से नहीं पैदा होता है। अनाहत। क्या कोई ऐसा नाद है, जो अनाहत है? क्या ऐसा भी कोई नाद है, जो बिना टक्कर से पैदा होता है?

ऐसा अगर कोई नाद है तो वही जीवन का मूल-स्वर है। इसमें कई बातें समझ लेने जैसी हैं, क्योंकि जो चीज टकराहट से पैदा होती है, वह नष्ट हो जायेगी। क्योंकि टकराहट से एक शक्ति की मात्रा उपलब्ध होती है। लेकिन वह एक शक्ति की मात्रा कितनी देर चलेगी? मैं ताली बजाता हूं, तो मेरे दोनों हाथों की टक्कर से जितनी शक्ति पैदा होती है, वह शक्ति सीमित है। कितनी देर वह स्वर गूंजेगा? जो पैदा हुआ है, वह नष्ट हो जायेगा। जो बना है, वह मिट जायेगा।

बुद्ध कहते थे, जो संघात से बना है, वह शाश्वत नहीं हो सकता, सनातन नहीं हो सकता। कैसे होगा? जो अभी नहीं था, अभी पैदा हुआ, वह सदा तो नहीं हो सकता। जिस डण्डे में एक छोर है, उसमें दूसरा छोर भी होगा ही। तो जिसमें पैदा होने वाला छोर है, उसमें मरने वाला छोर भी होगा। सिर्फ वही हो सकता है शाश्वत, जो पैदा ही न हुआ हो, जो अजन्मा हो, जो अनादि हो—वही अनन्त हो सकता है। तो क्या ऐसा भी कोई स्वर, ऐसा भी कोई नाद, ऐसा भी कोई संगीत है, जिसे हम जीवन का संगीत कहें, जो कभी पैदा नहीं हुआ और कभी मिटेगा भी नहीं। और जब तक हम उसे न जान लें, तब तक हमने जीवन की परम व्यवस्था को नहीं जाना।

केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।

वही होगी शक्ति। केवल नाद-रहित स्वर सुनो, वही है परम-संगीत। लेकिन कैसे इसे सुनेंगे?

मन्त्र शास्त्र ने इसकी व्यवस्था की है। मन्त्र शास्त्र कहता है : किसी मन्त्र का उच्चार शुरू करो, ओम् का उच्चार शुरू करो। तो पहले जोर से उच्चार करो, ओम् सुनाई पड़ेगा, हवाओं में गूंजेगा। फिर जब यह उच्चार सध जाये और जब ओम् इस तरह गूंजने लगे कि तुम्हारे भीतर कोई दूसरा शब्द, कोई दूसरा विचार न रह जाये, तभी तुम्हारा ओम्

शुद्ध होगा। नहीं तो तुम्हारे भीतर जब कोई भी विचार चल रहा है, तो उसकी छाया तुम्हारे ओम् की गूंज में भी मौजूद रहेगी। इसे थोड़ा समझना।

अगर तुम ओम् कह रहे हो, और तुम्हारे मन में चल रहा है कि जाके बाजार से कोई सामान खरीद लाएं, तो तुम्हारा ओम् जो है, वह अशुद्ध हो रहा है। क्योंकि उसके पीछे यह स्वर भी जुड़ा हुआ है बारीक, कि बाजार जाएं, सामान खरीद लाएं, यह स्वर उसे विकृत कर रहा है। तुम्हारा ओम् तब शुद्ध हो जायेगा, जब सिर्फ ओम् की ही गूंज होगी और भीतर कोई दूसरा विचार न होगा, उसे विकृत करने वाला कोई भी मौजूद नहीं होगा। जिस दिन तुम्हारे ओम् का यह गुंजार शुद्ध हो जाय, उस दिन तुम ओंठ बन्द कर लेना और अब तुम भीतर ही ओम् को गुंजाना। अब तुम जोर से मत बोलना, अब तुम सिर्फ भीतर ही गुंजाना। ओंठ बन्द रखना, हवा की टक्कर से बचाना, तो भीतर ओम् का गुंजार चलेगा। और जब भीतर ओम् का गुंजार चलेगा, तब फिर ख्याल रखना, दूसरे गहरे तल पर भी तुम्हारे मन में कोई विचार तो नहीं है; कोई कामना, कोई वासना, कोई भावना तो नहीं है। अगर वह भावना और वासना, और कोई विचार चल रहा है गहरे तल पर, तो वह अशुद्ध कर रहा है, उसको भी विसर्जित करना। और भीतर सिर्फ ओम् की जब गूंज रह जाये, तब तुम तीसरा प्रयोग करना। तब तुम ओम् को पैदा मत करना, तुम सिर्फ आंख बन्द करके सुनना। जैसे कि ओम् तुम्हारे भीतर गूंज रहा है, तुम कर नहीं रहे हो, यह घटना घटती है। अगर दोनों चीजें शुद्ध हो गई हों पहले प्रयोग में—तुमने ओम् का गुंजार किया, और भीतर कोई विचार न बचे, तो तुम्हारे चेतन मन से विचार समाप्त हो गये। अब तुम ओंठ बन्द कर लो, अब तुम ओम् का गुंजार भीतर करो। अब तुम्हारे अचेतन मन के विचार बाधा डालेंगे। अब तुम गुंजार इतना करो कि तुम्हारा अचेतन मन भी उसमें गूंज जाए और कोई भीतर विचार न रह जाएं, तो तुम्हारा अचेतन मन भी शान्त हो गया। तुम्हारे मन की दो पर्तें शान्त हो गईं। अब तुम ओम् का गुंजार बन्द कर दो, क्योंकि मन जब शान्त हो जाता है, तो तुम्हारे हृदय के अन्तस्तल में जो गुंजार चल ही रहा है स्वभावतः, सदा से चल रहा है; जिससे तुम बने हो, जो तुम्हारी मूल प्रकृति है, वह अब तुम्हें सुनायी पड़ सकता है। तुम्हारे विचारों के कारण ही वह तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता था। अब सुनाई पड़ सकता है। तो तुमने जो पहले ओम् का पाठ किया, वह असली मन्त्र नहीं है, वह तो केवल तुम्हारे विचारों से छुटकारे का उपाय है। अब तुम चुप हो जाओ और सुनो। बोलो मत, अब तक तुम बोलते थे। पहले तुम जोर से ओम् बोले थे, फिर तुमने धीमे से भीतर बोला था। अब तुम बोलो मत, अब तुम सुनो। अब तुम सिर्फ सुनो भीतर कि क्या वहां ओम् गूंज रहा है ! और तुम चकित हो जाओगे, ओम् का गुंजार तुम्हारे प्राणों से

आ रहा है। और तुम्हारे रोएं-रोएं, शरीर में फैलता जा रहा है। यह प्रतीति जैसे-जैसे तुम्हारी साफ होती जायेगी, तुम पाओगे कि ओम् तुम्हारा जीवन-स्वर है।

यह जो स्वर तुम्हें सुनाई पड़ेगा, वह अनाहत है। क्योंकि यह किसी चीज के संघर्षण से पैदा नहीं हो रहा है। इसको कबीर और नानक अजपा कहते हैं, क्योंकि वह किसी जप से पैदा नहीं हो रहा है। यह सूत्र इसको नाद-रहित वाणी कहता है।

केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।

पन्द्रहवा सूत्र (जो बाह्य और अन्तर दोनों चक्षुओं से अदृश्य है, केवल उसी का दर्शन करो। जगत् को हमने देखा—इन्द्रियों का एक आयाम। जो बाहर था, वह हमने देखा। फिर हमने इन्द्रियों का दूसरा आयाम खोला और हमने उसको देखा, जो भीतर है। आंख ने बाहर देखा और देखा जगत को, पदार्थ को। फिर आंख ने भीतर देखा और देखा आत्मा को।

यह सूत्र कहता है : अब तुम बाहर और भीतर दोनों ही आंखें बन्द कर लो। अब तुम उसे देखो, जो आंखों से देखा ही नहीं जाता। अब तुम उसे देखो, जो इन्द्रियों से स्पर्शित ही नहीं होता। अब तुम बाहर, भीतर से भी मुक्त हो जाओ और अब तुम उस परम को देखो, जो न बाहर है, न भीतर है। या दोनों में है; बाहर भी है, भीतर भी है।

यह जो तीसरा है : बाहर भी नहीं, भीतर भी नहीं या बाहर भी और भीतर भी, यही है वह एक।

इस एक की खोज में तुम्हें दोनों तरह के प्रयोग इन्द्रियों के छोड़ देने पड़ेंगे।

इसे हम ऐसा समझें।

बाहर की इंद्रियों से जो हम देखते हैं, वह है जगत, पदार्थ। भीतर की इन्द्रियों से जो हम देखते है, वह है आत्मा, चेतना। और दोनों को छोड़कर जो हम देखते हैं, वह है परमात्मा।

या ऐसा समझें।

(बाहर की इन्द्रियों से जो हम देखते हैं, वह है विचार। भीतर की इन्द्रियों से जो हम देखते हैं, वह है ध्यान। और बाहर और भीतर दोनों इन्द्रियों को छोड़कर जो हम देखते हैं, वह है समाधि।

बाहर से जो देखा, वह भी आधा है, भीतर जो देखा, वह भी आधा है। बाहर और भीतर दोनों को छोड़के जब हम देखते हैं, तो वही पूरा है, वही पूर्ण है।

और जब तक पूर्ण को नहीं देखा, तब तक मुक्ति नहीं है।

अधूरा बांधता है, पूर्ण मुक्त करता है।

तुम्हें शान्ति प्राप्त हो।

परम-शान्ति उसी क्षण प्राप्त होती है, जब तुम बचे ही नहीं।

जब तक तुम हो, तुम अशान्त रहोगे।

इसलिए आखिरी बात ख्याल में ले लेनी चाहिए।

तुम कभी भी शान्त न हो सकोगे, क्योंकि तुम्हारे होने में ही अशान्ति भरी है। तुम्हारा होना ही अशान्ति है, उपद्रव है। जब तुम ही न रहोगे, तब ही शान्त हो पाओगे।

इसलिए जब कहा जाता है, 'कि तुम्हें शान्ति प्राप्त हो', इसके बहुत अर्थ हैं। इसका अर्थ है कि तुम न हो जाओ, तुम समाप्त हो जाओ, ताकि शान्ति ही बचे।

तुम्हीं तो उपद्रव हो। सागर में तूफान आता है, फिर तूफान शान्त हो जाता है। तो हम कहते हैं, तूफान शान्त हो गया। लेकिन इसका क्या मतलब ह? क्या शान्त तूफान वहां मौजूद है? शान्त तूफान का अर्थ ही होता है कि तूफान न रहा। कोई आदमी बीमार पड़ता है, फिर ठीक हो जाता है। हम कहते हैं, बीमारी ठीक हो गई। इसका क्या मतलब है? बीमारी ठीक होके वहा मौजूद है? बीमारी ठीक हो गई, इसका अर्थ ही यह है कि बीमारी नहीं हो गई, बीमारी अब नहीं है? बीमारी थी, अब नहीं है। आप जो भी अभी हैं, बीमारी का जोड़ हैं। तुम कभी शान्त न हो सकोगे, जब तक कि यह 'तुम' शान्त ही न हो जाये, जब तक कि यह 'तुम' खो ही न जाये।

तुम्हें शान्ति प्राप्त हो, इसका एक ही अर्थ है कि तुम उस जगह पहुंच जाओ, जहां तुम न रहो। जब तक तुम हो, तुम अशान्ति का स्वर खींचते ही चलोगे। इसलिए धर्म महा-मृत्यु है, उसमें तुम पूरी तरह मर जाते हो, तुम बचते नहीं। जो बचता है, वह तुम्हारा अन्तरतम् है, तुम्हारा केन्द्र है। लेकिन उससे तुम्हारा अभी कोई परिचय नहीं है। वह शान्त है, वह अभी भी शान्त है। अगर तुम चुप हो जाओ अभी भी, तुम न रहो, तो अभी भी तुम उस शान्ति को सुन सकोगे। तुम हो कोलाहल, भीड़, उपद्रव, विक्षिप्तता। तुम्हारे कारण वह जो भीतर का शान्त अनाहत नाद है, वह जो नाद-रहित वाणी है, वह जो शून्य-स्वर है, वह सुनाई नहीं पड़ता।

एक क्षण को भी 'तुम' न रहो, तो उसका दर्शन हो जाये। और एक बार उसका दर्शन हो जाए, तो तुम फिर वापस न लौट सकोगे। क्योंकि तब तुम जान ही लोगे कि इस बीमारी को वापस बुलाने का कोई प्रयोजन नहीं।

लेकिन अभी हम कोशिश करते हैं। अभी हम कोशिश करते ह कि मैं शान्त हो जाऊं, बिना इसकी फिक्र किये कि 'मैं' ही तो अशान्ति है। अभी हम कोशिश करते हैं कि मैं कैसे मुक्त हो जाऊं, बिना इसकी फिक्र किए कि 'मैं' ही तो अमुक्ति है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारी मुक्ति नहीं—तुमसे मुक्ति। तुम्हारी कोई मुक्ति न होगी, तुमसे ही मुक्ति होगी। और जिस दिन तुम अपने को छोड़ पाओगे, जैसे सांप अपनी केंचुल

छोड़ देता है, उस दिन अचानक तुम पाओगे कि तुम कभी असुक्त नहीं थे। लेकिन तुमने वस्त्रों को बहुत जोर से पकड़ रखा था, तुमने खोल जोर से पकड़ रखी थी। तुमने देह जोर से पकड़ रखी की, तुमने आवरण इतने जोर से पकड़ रख था कि तुम भूल ही गये थे कि यह आवरण हाथ से छोड़ा भी जा सकता है।

ध्यान की समस्त प्रक्रियाएं, क्षण भर को ही सही, तुमसे इस आवरण को छुड़ा लेने के उपाय हैं। एक बार तुमको झलक आ जाये, फिर ध्यान की कोई जरूरत नहीं। फिर तो वह झलक ही तुम्हें खींचने लगेगी। फिर तो वह झलक ही चुम्बक बन जायेगी। फिर तो वह झलक तुम्हें पुकारने लगेगी और ले चलेगी उस राह पर, जहां यह सूत्र पूरा हो सकता है, 'तुम्हें शान्ति प्राप्त हो।'